विषयानुक्रमणिका

प्रथम अध्याय

भैषज्य कल्पना का इतिहास 1–13

भैषज्य कल्पना की व्युत्पत्ति	1	मध्यकाल या रसशास्त्रीय काल	9
भैषज्य कल्पना का इतिहास	2	आधुनिक काल	10
वैदिक काल	3	औषध एवं भैषज में अन्तर	11
संहिता काल	7		

द्वितीय अध्याय

भैषज्य कल्पना के आधारभूत सिद्धान्त 14–26

परिभाषा एवं मान	15	द्रव्य स्थित रस, गुण, वीर्य,	
अनुक्त या विशेषोक्त ग्रहण	16	विपाक तथा प्रभाव	18
औषधि द्रव्य की विशिष्टता	17	संस्कार (गुणान्तराधान)	20
पञ्चविध कषाय कल्पना	17	औषध योगों का नामकरण	25

तृतीय अध्याय

मान प्रकरण 27–78

मान की निरूक्ति	27	द्रवयमान	38
मान का प्रयोजन	27	कुड़वपात्र	39
मान के भेद	28	पाय्यमान (दैर्घ्यमान)	39
पौतवमान	29	ब्रिटिश फार्मेकोपिया के अनुसार मान	40
चरकोक्त मागधमान	29	शुष्क एवं आर्द्र द्रव्य ग्राह्य नियम	43
सुश्रुतोक्त कालिङ्गमान	31	द्रवद्वैगुण्य का सिद्धान्त	45
शार्ङ्गधरोक्त मागधमान	32	औषध द्रव्यों की ग्राह्याग्राह्यता	45
शार्ङ्गधरोक्त कालिङ्गमान	35	नवीन एवं पुरातन द्रव्य ग्राह्य नियम	47
रसार्णवोक्त मान	36	औषध द्रव्य संग्रहण	47
रसरत्नसमुच्चयोक्त मान	36		

OASIS

Scanned with CamScanner

औषध संग्रह विधि 48
द्रव्यों के अवयवों का संग्रहण 50
आधुनिक मतानुसार द्रव्य संग्रहण 52
औषध द्रव्य संरक्षण एवं भेषजागार 52
निर्मित औषध योग संरक्षण विधि 55
निर्मित औषध भेषजागार 55
औषधि कल्पनाओं की सवीर्यता अवधि 57
भेषज प्रयोग विधि 60
औषध मात्रा 60
अनुपान 65
औषध सेवन काल 71
आधुनिक मतानुसार औषध सेवन काल 78

चतुर्थ अध्याय

पंचविधकषाय कल्पना 79–182

कषाय की परिभाषा 80
कषाय शब्द की निष्पत्ति 80
पञ्चकषाय योनियाँ 81
स्वरस कल्पना 82
आर्द्रकस्वरस 85
तुलसी स्वरस 85
कुमारी स्वरस 86
वासा पुटपाक स्वरस 86
कल्क कल्पना 86
निम्बकल्क 88
रसोनकल्क 88
क्वाथ कल्पना 88
पुनर्नवाष्टक क्वाथ 94
रास्नासप्तक क्वाथ 94
कुलत्थ क्वाथ 94
हिम कल्पना 95
धान्यक हिम 96
सारिवादि हिम 96
पित्तप्रमाथि हिम 96
फाण्ट कल्पना 97
पञ्चकोल फाण्ट 98
यष्टिमधु फाण्ट 98
प्रमथ्या 98
मुस्तादि प्रमथ्या 100
औषध सिद्धपानीय 100
षडङ्गपानीय 101
उष्णोदक 101
तण्डुलोदक 102
लाक्षारस 102
मन्थ 103
खर्जूरादि मन्थ 105
पानक 105
चिञ्चापानक 105
चन्दन पानक 106
आम्रशलाटु पानक 106
अर्क 107
यवान्यर्क 109
गुलाब अर्क 110
मिश्रेयार्क 110
चूर्ण 110
सितोपलादि चूर्ण 114
हिंग्वष्टक चूर्ण 115

हिंगु शोधन	116	गुग्गुल कल्पना	139
अविपत्तिकर चूर्ण	116	गुग्गुलु शोधन	139
रसक्रिया-फाणित, अवलेह-प्राश	117	त्रिफला गुग्गुलु	141
रसाञ्जन	118	कैशोर गुग्गुलु	142
गुडूचीघन	119	योगराज गुग्गुलु	143
कुटजघन (रसक्रिया)	119	सिंहनाद गुग्गुलु	144
फाणित	120	काञ्चनार गुग्गुलु	145
अवलेह	121	वटी कल्पना	146
च्यवनप्राशावलेह	124	चित्रकादि वटी	149
वासावलेह	126	सञ्जीवनी वटी	150
व्याघ्री हरीतकी	127	अर्कवटी	151
मणिभद्रावलेह	128	लवङ्गादि वटी	151
हरिद्राखण्ड	128	वर्तिकल्पना	152
नारिकेल खण्ड	129	फलवर्ति	154
सौभाग्यशुण्ठीपाक	130	चन्द्रोदया वर्ति	155
गुडपाक	131	वटी का आधुनिक मत	156
शार्कर	132	टेबलेट	157
बनप्सा शार्कर	133	केप्सूल	169
निम्बू शार्कर	134	मसी कल्पना	170
सीरप	134	त्रिफलामसी	171
Elixirs	135	मयूरपिच्छ मसी	172
Linctuses	135	लवण कल्पना	172
क्षीरपाक	135	अर्कलवण	172
अर्जुन क्षीरपाक	136	नारिकेल लवण	173
रसोन क्षीरपाक	137	क्षार कल्पना	175
शुण्ठी क्षीरपाक	137	अपामार्ग क्षार	180
सत्त्व कल्पना	137	स्नुहीक्षार	181
गुडूचीसत्त्व	138	क्षारसूत्र	182

Scanned with CamScanner

अर्क तैल	224	जात्यादि तैल	226
बला तैल	224	भल्लातक तैलपातन	227
पञ्चगुण तैल	226	जयपाल तैलपातन	229

सप्तम अध्याय

सन्धान कल्पना 231–261

सन्धान कल्पना	231	मद्य कल्पना	244
आसव	235	मद्य निरूक्ति	244
आसव योनियाँ	235	मद्य के पर्याय	244
आसव संख्या	235	मद्य के गुण	244
आसव के गुण	236	मद्य के दोष	245
अरिष्ट	236	विधिपूर्वक सेवित मद्य के गुण	246
आसवारिष्ट निर्माण विधि	236	सेवन योग्य मद्य	246
आसवारिष्टों में जल, गुड, मधु एवं प्रक्षेप का मान	237	मद्य का शरीर पर कार्यकारी प्रभाव	246
		अति मद्यपान के दुष्प्रभाव	246
अरिष्ट के गुण	237	शुक्तकल्पना	247
आसवारिष्ट सेवन मात्रा	238	मधु शुक्त	247
आसवारिष्ट में भेद	238	गुड शुक्त	248
आसवारिष्ट निर्माण में सावधानियाँ	238	काञ्जिक	248
सुरा	239	सौवीरक एवं तुषोदक	249
सुरा के भेद	240	चुक्र	250
प्रसन्ना के गुण	240	तक्रारिष्ट	250
कादम्बरी के गुण	241	कुटजारिष्ट	251
जगल के गुण	241	द्राक्षारिष्ट	252
वक्कस (सुराबीज) के गुण	241	अशोकारिष्ट	253
मैरेयक	241	दशमूलारिष्ट	254
सुरासव	242	कुमार्यासव	257
वारूणी	242	चन्दनासव	259
सीधु	243	कनकासव	260

Scanned with CamScanner

पञ्चम अध्याय

यन्त्र उपकरण 183–203

Disintegrator 183
Grinder 184
Pulverizer 187
Mixer 189
Mixer-Grinder 191
End Runner Mill 191
Edge runner mill 193
Sieve 194
Mesh 194
Sieve shaker 195
Granulator 195
Tablet making machine 196
Pill making machine 199
Coating and polishing pan 200
Capsule Filling Machine 201

षष्ठ अध्याय

स्नेह कल्पना 204–230

स्नेह निरुक्ति 204
स्नेह के गुण 204
स्नेह योनि 204
स्नेह के प्रकार 205
स्नेह पाक कल्पना 205
स्नेहमूर्च्छन विधि 206
घृत मूर्च्छन 206
तिलतैल मूर्च्छन 206
कटुतैल (सर्षप तैल) मूर्च्छन 207
एरण्ड तैल मूर्च्छन 208
स्नेहपाक विधि 208
स्नेहपाक में अधिक द्रवों का परिमाण 210
स्नेहपाकार्थ क्वाथ में जल का परिमाण 210
स्नेहपाक में कल्क का परिमाण 211
कल्क से स्नेहपाक 212
क्वाथ से स्नेहपाक 212
कल्कहीन स्नेहपाक 212
पुष्पकल्क से स्नेहपाक 212
क्षीर से स्नेहपाक 212
स्नेहपाक काल 213
स्नेहपाक प्रमाण 213
पात्रपाक 214
पत्रकल्क 214
स्नेह सिद्धि लक्षण 214
स्नेहपाक के भेद 215
स्नेहपाक भेदों का उपयोग 216
स्नेहसिद्ध सेवन मात्रा – 1पल 217
त्रिफला घृत 217
ब्राह्मी घृत 218
जात्यादि घृत 219
क्षीरषट्पल घृत 220
नारायण तैल 220
अणुतैल 222

अष्टम अध्याय

कृतान्न और औषधिसिद्ध अन्न कल्पना 262–285

कृतान्न परिभाषा	262	भक्त कल्पना	270
पथ्य-अपथ्य विवेचन	262	ओदन के गुण	271
यवागू	265	यूष कल्पना	272
मण्ड	267	यूष के भेद	272
वाट्यमण्ड	268	मांसरस	275
लाजमण्ड	268	कृत मांसरस निर्माण विधि	276
पेया	269	वेसवार	277
विलेपी	269	खड काम्बलिक	278
अन्न कल्पना	270	रागषाडव	280
		दधि एवं तक्र वर्ग	281

Part - B

नवम अध्याय

बाह्योपचारार्थ कल्पना 286–301

लेप कल्पना	286	सर्जरस मलहर	294
लेप के पर्याय	287	गन्धकाद्य मलहर	294
लेप के भेद	287	उपनाह	295
लेप के गुण	288	अतस्यादि उपनाह	295
लेप में स्नेह प्रमाण	288	शतधौत और सहस्रधौत घृत	296
लेप के नियम	289	ऑइन्टमेन्ट	297
शोथघ्न लेप	290	क्रीम	297
दशाङ्गलेप	290	पेस्ट	297
मुखकान्तिकर लेप	291	जैली	297
उद्वर्तन	291	पोलटिस या कैटाप्लाज्म	300
अवचूर्णन योग	292	लिनिमेन्ट्स	300
सिक्थ तैल निर्माण	293	लोशन	301
मलहर	293		

Scanned with CamScanner

दशम अध्याय

नेत्रोपचारार्थ कल्पना 302–372

सेक	302	धूमपान के भेद	330
आश्च्योतन	304	धूमनेत्र	332
पिण्डी	306	धूमपान विधि	333
विडालक	307	धूमपान काल	333
तर्पण	308	धूमपान उपयोग	335
पुटपाक	311	धूमपान निषेध	335
अञ्जन	314	उचित धूमपान लक्षण	336
चन्द्रोदयवर्ति (गुटिकाञ्जन)	315	धूपन	336
रसक्रियाञ्जन	315	व्रणधूपन	337
चूर्णाञ्जन (लेखन)	316	अर्शोधूपन	337
चूर्णाञ्जन (रोपण)	316	मुखप्रयोगार्थ कल्पना	337
चूर्णाञ्जन (प्रसादन)	317	गण्डूष	337
शलाका	317	गण्डूष के भेद	338
अञ्जन पात्र	318	तिलादि गण्डूष	339
अञ्जन विधि	318	कवल	339
अञ्जन काल	319	कवल के भेद	340
अञ्जन निषेध	319	मातुलुङ्गादि कवल	341
नेत्र कल्पना (आधुनिक मतानुसार)	319	गण्डूष कवल धारणार्थ वय	341
नस्योपचारार्थ कल्पना	321	प्रतिसारण	342
नस्य के भेद	321	प्रतिसारण भेद	343
नस्य	323	प्रतिसारण विधि एवं प्रभाव	343
शिरोविरेचन	323	कुष्ठादि प्रतिसारण	344
नावन	323	दशनसंस्कार चूर्ण	344
अवपीड	323	Dental Preparation	344
प्रधमन या ध्मापन	324	बस्ति कल्पना	347
मर्श एवं प्रतिमर्श	324	बस्ति निरूक्ति	347
नस्य विधि	326	बस्ति की परिभाषा	347
धूमपानार्थ कल्पना	329		

Scanned with CamScanner

बस्ति में प्रयुक्त उपकरण या द्रव्य 347
बस्ति की प्रधानता 348
बस्ति वर्गीकरण 348
बस्ति लक्षण 349
आस्थापन (निरुह) बस्ति 349
आस्थापन बस्ति के भेद 350
संख्या के आधार पर बस्ति भेद 356
बस्ति नेत्र 357
बलादि निरुह बस्ति विधि 358
निरुह बस्ति की मात्रा 359
निरुह बस्ति पश्चात् कर्म 360
बस्तियों में प्रक्षेप द्रव्य 360
निरुह बस्ति संख्या 361
निरुह बस्ति धारण काल 361
निरुह बस्ति में पथ्यापथ्य 361
निरुह बस्ति सम्यक् योग लक्षण 361
निरुह बस्ति गुण 362
अनुवासन बस्ति 362
अनुवासन बस्ति मात्रा 362
मात्रा बस्ति का उपयोग 363
अनुवासन बस्ति विधि
(दशमूलादि स्नेहबस्ति) 364
बस्ति का प्रभाव 365
अनुवासन बस्ति संख्या 365
अनुवासन बस्ति धारण काल 365
अनुवासन बस्ति सम्यक् योग लक्षण 365
अनुवासन बस्ति गुण 366
अनुवासन बस्ति काल 366
अनुवासन बस्ति द्रव्य 366
अनुवासन बस्ति में पथ्यापथ्य 367
उत्तरबस्ति 367
उत्तर बस्ति नेत्र 367
उत्तर बस्ति मात्रा 369
पुरुषों में उत्तरबस्ति विधि 369
स्त्रियों में उत्तरबस्ति विधि 370
स्त्रियों में उत्तरबस्ति काल 371
उत्तर बस्ति गुण 372
उत्तरबस्ति लक्षण समन्वय 372

एकादश अध्याय

मानकीकरण 373–418
औषध मानकीकरण परिचय 373
कच्ची काष्ठौषधियों के विश्लेषणात्मक मानक 375
Metals\Minerals standard 376
विभिन्न कल्पनाओं के सामान्य विश्लेषणात्मक मानक 376
विभिन्न कम्पनाओं के विशेष विश्लेषणात्मक मानक 377
A.P.C. Commitee and Published Books 381
Defermination of Powder fineness 382
Determination of foreign matter 385
Determination of Total Ash 385

Determination of Acid-Insoluble Ash	385
Determination of Water Soluble Ash	385
Determination of Sulphated Ash	386
Determination of Alcohol Soluble Extractive	386
Determination of Water Soluble Extractive	386
Determination of Ether Soluble Extractive (Fixed Oil Content)	386
Determination of Moisture Content (Loss on Drying)	387
Determination of Volatile Oil in Drugs	387
Special Processes Used in Alkaloidal Assays	389
Thin-Layer Chromatography (TLC)	391
Refractive Index	394
Weight per millilitre	395
Specific gravity	395
Determination of pH Values	396
Determination of Viscosity	396
Determination of Total Solids	398
Solubility in Water	398
Determination of Saponification Value	399
Determination of Iodine Value	399
Determination of Acid Value	401
Determination of Peroxide Value	402
Determination of Unsaponifiable Matter	403
Detection of Mineral oil (Hold's test)	404
Rancidity Test (Kreis Test)	404
Determination of Alcohol Content	405
Method I	405
Method II	405
Method III	406
Apparatus	406
Estimation of Sugars	410
Reducing sugars	411
Total sugars	411
Uniformity of Weight (Tablets)	413
Determination of Hardness (Tablets)	413
Determmation of Friability (Tablets)	415

Scanned with CamScanner

Disintegration Test (Tablets) 416
Dissolution Test (Teblets) 417
औषध एवं प्रसाधन अधिनियम-1940 एवं नियम 1945 419
औषध निर्माण शाला GMP 431
गत वर्षों के प्रश्न पत्र 447–454

✻ ✻ ✻

प्रथम अध्याय

भैषज्य कल्पना का इतिहास

भैषज्य कल्पना की व्युत्पत्ति:–संस्कृत वाङ्मय में सार्थक शब्दों का निर्माण प्रायः किसी धातु विशेष से होता है। व्युत्पत्ति द्वारा किसी शब्द के विशेषार्थ का अवबोध होता है एवं शब्द में निहित अर्थ का स्पष्ट ज्ञान होता है। अतः शब्द की शक्ति के ज्ञान के लिए व्युत्पत्ति ज्ञान अनिवार्य है।

भैषज्य कल्पना में भैषज्य + कल्पना दो पदों का समास होता है। भैषज्य शब्द की निष्पत्ति भेषृ भये धातु से "भेषति भेषते वा" इस प्रकार से शब्द कल्पद्रुम में की गई है। भेषृ धातु से स्वार्थ में अण् प्रत्यय लगाने से भेष शब्द की निष्पत्ति होती है, जिसका अर्थ भयजनक होता है। आयुर्वेद में भय शब्द से व्याधि भय ही स्वीकार किया जाता है। इस भेष शब्द से भेषज शब्द की निष्पत्ति होती है। भेषपूर्वक जि–जये–जीतनार्थक धातु से अच् प्रत्यय द्वारा भेषज शब्द निष्पन्न होता है।

1. "भेषं रोगभयं जयति येन इति भेषजम् तस्य भावः कर्म वा भैषज्यम्।" अर्थात् जिसके द्वारा रोग भय को दूर किया जाता है, उसे भेषज कहते हैं और उसका भाव या कर्म भैषज्य कहलाता है।

2. "भिषज्यन्ति चिकित्सन्ति रोगान् निवर्तयन्ति वा अनेनेति भेषजम्। भेषजमेव भैषज्यम्। अर्थात् जिसके द्वारा रोगों की चिकित्सा की जाती है या रोगों को दूर किया जाता है, उसे भेषज कहते हैं और भेषज ही भैषज्य होती है।

कल्पना शब्द की निष्पत्ति "कृप् सामर्थ्ये" धातु से अच् व घञ् प्रत्यय के द्वारा होती है। जिसका अर्थ सामान्यतः उस प्रक्रिया से लिया जाता है, जिसके द्वारा किसी द्रव्य या वस्तु विशेष में विभिन्न कार्यों को संपन्न करने के लिए शक्ति उत्पन्न की जाती है। आयुर्वेदीय दृष्टिकोण से जिन प्रक्रियाओं के द्वारा द्रव्यों में रोगनाशक शक्ति उत्पन्न की जाती है, उसे कल्प या कल्पना कहते हैं। विभिन्न शब्दकोश, ग्रन्थों एवं टीकाओं में कल्प शब्द के निम्नांकित अर्थ प्राप्त होते हैं। यथाः–

1. कल्पे विधि क्रमौ। (अमरकोश)
2. कल्पः शास्त्रे विधौ, न्याये, संवर्ते ब्रह्मणोदिते। (मेदिनी)

Scanned with CamScanner

3. क्रमं कल्प प्रयोगाणां कल्पं तत्र प्रचक्षते।

4. कल्प विधि विधाने संस्कारे।

5. कल्पनं योजनमित्यर्थः। (अरूणदत्त)

6. कल्पनं उपयोगार्थ प्रकल्पनं संस्करणमिति। (चक्रपाणि)

अर्थात् विधि, विधान, संस्कार एवं प्रयोग ही कल्प होता है। शरीर में योजना (युक्ति) से संस्कारित भेषज का उपयोग करना ही कल्पना है।

"करणं पुनः स्वाभाविकानां द्रव्याणामभिसंस्कारः। संस्कारो हि नाम गुणान्तराधानमुच्यते। ते गुणा तोयाग्निसन्निकर्षशौचमन्थनदेशकालवासन भावना-दिभिःकालप्रकर्ष भाजनादिभिश्चापि धीयन्ते।।" (च. वि. 1/26)

अर्थात् कल्पना में संस्कार द्वारा गुणान्तराधान किया जाता है, जो द्रव्य के साथ तोय सन्निकर्ष, अग्नि सन्निकर्ष, शौच, मंथन, देश, काल, वासन, भावना, भाजन (पात्र) आदि के द्वारा होता है।

इस प्रकार व्याधि (रोग) को दूर करने के लिए प्रयोग में ली गई चिकित्सा विधि को भेषज कहते हैं। चिकित्सार्थ विविध औषधि द्रव्यों की संस्कारात्मक योजना करना ही भैषज्य कल्पना है।

भैषज्य कल्पना का इतिहासः-सामान्यतः सभी इतिहासकार ज्ञान-विज्ञान का विकास वेदों से ही स्वीकार करते हैं। अतः भैषज्य कल्पना का लिखित इतिहास भी वैदिक काल से ही माना गया है। यद्यपि भैषज्य कल्पना के मूल आधार पञ्चविध कषाय कल्पनाओं की प्रायोगिक क्रियाओं का अवलोकन किया जाये तो यह माना जा सकता है कि प्राणीमात्र की उत्पत्ति के साथ की भैषज्य कल्पना का आविर्भाव हो गया था। उदाहरणार्थ :- कल्क का प्रायोगिक स्वरूप शास्त्रों में इस प्रकार बताया गया हैः- **"उपलदशनादि पिष्टस्तु कल्कः"** अर्थात् पत्थर या दाँतों के द्वारा पीसा गया द्रव्य का स्वरूप कल्क कहलाता है। सम्भवतः आदि मानव ने अपनी भूख को शान्त करने के लिए वानस्पतिक द्रव्य (फल आदि) को दाँतों से चबाया होगा और यही मौलिक रूप में कल्क कल्पना का प्रारम्भ है। इसी प्रकार द्रव्यों का चर्वण कर उसका रस भी आचूषित किया होगा, जो स्वरस कल्पना का स्वरूप माना जा सकता है। इस प्रकार प्रायोगिक दृष्टिकोण से इन कल्पनाओं का विकास प्राणी की आहार प्रक्रियाओं से ही आरम्भ हो गया था। भैषज्य कल्पना के मूल आधार पञ्चविध कषाय कल्पनाओं का मुख्य आधार स्वरस एवं कल्क कल्पनाओं को ही माना जाता है, शेष अन्य कल्पनाएँ इन्हीं दो कल्पनाओं का विकसित रूप है।

Scanned with CamScanner

भैषज्य कल्पना के इतिहास को विवेचन की सुगमता के दृष्टिकोण से निम्न कालों में विभक्त किया जा सकता है :- 1. वैदिक काल, 2. संहिता काल, 3. मध्य काल या रसशास्त्रीय काल, 4. आधुनिक काल।

1. वैदिक कालः-विश्व के प्राचीनतम साहित्य वेदों में औषध तथा आहार द्रव्यों का प्रचुरता से वर्णन मिलता है। औषधियों की उत्पत्ति के संबंध में भी वर्णन मिलता है। जिसमें तीन युगों पूर्व एक सौ सात औषधियों की उत्पत्ति देवताओं द्वारा हुई है। सैंकड़ों-हजारों बार इन औषधियों द्वारा रोगी मनुष्यों को रोगमुवत किया गया है। यथा :- **या औषधि पूर्वा जाता देवेभ्यस्त्रियुगं पुरा।**

मनै नु बभ्रुणामहं शतं धामानि सप्त च।।

शतं वो अम्ब धामानि सहस्रमुत वो रुहः।

अधा शतक्रत्वो यूयमिमं मे अगदं कृत।। (ऋग्वेद 10/97/1-2)

ऋग्वेद के औषधि सूक्त तथा अन्य वेदों में अनेक औषधियों सोम, करञ्ज, पिप्पली, खदिरसार, शाल्मलि, विष, विभीतक, दूर्वा, पलाश, कमल, बेर, अर्जुन, अश्वत्थ, कास, पृश्निपर्णी, अपामार्ग, लाक्षा, तलाशा, सहदेवी, अर्क, चीपद्रु, अंजन, विषाणक, गुग्गुलु, बिल्व, उदुम्बर आदि का वर्णन प्राप्त होता है। जिनमें सोम को प्रमुख औषधि माना गया है। "सोम औषधिनामाधिराजा" (गोपथब्राह्मण-1/17) अर्थात् सोम नामक औषधि को औषधियों का राजा कहा गया है।

इस प्रकार आयुर्वेद की दृष्टि से अथर्ववेद में महत्त्वपूर्ण उल्लेख मिलते हैं। इसलिए अथर्ववेद को "**भिषग्वेद**" या "**भैषज्य वेद**" भी कहा गया है। वेदों में औषधियों का एकौषध रूप में प्रयोग प्राप्त होता है। जिनका प्रयोग स्वरस, कल्क, क्वाथ, चूर्ण आदि कल्पनाओं के रूप में होता था। वेदों में अनेक कल्पनाओं का प्रारम्भिक स्वरूप देखने को मिलता है। वेदों के अध्ययन से ऐसा लगता है कि पञ्चविध कषाय कल्पना उस काल में अपना नवजातत्व व्यतीत कर रही थी। उस समय तक इनका नामकरण संस्कार भी नहीं हुआ था। ये कल्पनाएँ विविध रूपों में विद्यमान अवश्य थी, ऐसा स्पष्ट परिलक्षित होता है।

ऋग्वेद के नवम मण्डल में सोमरस का वर्णन मिलता है। यद्यपि इसकी निर्माण विधि का वेदों में वर्णन नहीं मिलता है। लेकिन तत्कालीन मनुष्य सोमरस का निर्माण तो करते होंगे। सामान्य रूप से इसका प्रक्षालन कर कूट पीसकर स्वरस निचोड़ लिया जाता होगा। अतः यह निर्विवाद सत्य है कि तत्कालीन मनुष्य स्वरस कल्पना से विधिवत् परिचित थे। यथा :-

Scanned with CamScanner

यद् दण्डेन यदिष्वा यद् वारूर्हरसा कृतम्।
तस्य त्वमसि निष्कृतिः सेमं निष्कृधि पुरुषम्।।

(अथर्व. 5/5/4)

अर्थात् डण्डे, तीर या चोट से बने घाव के लिए सिलाची (लाक्षा) अचूक औषधि कही गई है। प्रयोगार्थ इसे पीसा जाता होगा, अतः यह कल्क कल्पना का संकेत देता है।

अथर्ववेद में "आबय" नामक विषाक्त औषधि के स्वरस को पकाने पर निर्विष होने का उल्लेख मिलता है, वस्तुतः यह शृत कल्पना (क्वाथ) ही है। त्वचा के विषजन्य वैवर्ण्य को दूर करने के लिए इसी आबय को जल के साथ पीसकर करम्भ (लेप) बनाया जाता था, जो स्पष्ट रूप से "कल्क कल्पना" ही है। करम्भ के लिए हलायुध कोष में कहा गया है। "केन जलेन रम्यते मिश्रीक्रियते इति करम्भः"। अर्थात् अनेक औषधियों को जल के साथ मिश्रित करके करम्भ बनाया जाता था।

अथर्ववेद में विष को जल में घोलकर देने के लिए कहा गया है। इसमें सम्भवतः शीतल जल का प्रयोग होता होगा, इसलिए यह शीत कल्पना है। इसी प्रकार कौशिक सूत्र में फाण्ट कल्पना का वर्णन मिलता है। वेदों में सुरा, मद्य आदि शब्दों का कई स्थानों पर प्रयोग हुआ है। इससे स्पष्ट होता है। कि तत्कालीन मनुष्य संधान कल्पना में पारंगत हो चुके थे। यथा :-

"चिकित्सक प्रमाणाः प्रत्येकशो विकाराणामरिष्टाः"।

(अथर्व. 6/25/14)

अर्थात् अथर्ववेद में कहा गया है कि मद्य के वे विकार, जिनका प्रयोग रोगों में होता है, वे अरिष्ट कहलाते हैं। ऋग्वेद में भी सोम के संदर्भ में 'असावि' शब्द का प्रयोग किया गया है। यथा :-

"इन्द्रावरूणा सुतपाविमं सुतं सोमं पिबते मद्यं घृतव्रता"।

(ऋ. 6/68/10)

इस प्रकार वैदिक कालीन समाज संधान प्रक्रिया, मद्य की अनेक प्रकार की कल्पनाएँ और उनके गुण दोषों के बारे में जान चुका होगा, इसलिए अथर्ववेद में सुरापान की निन्दा की गई है। यथा:-

यथामांस यथासुरा यथाक्षा अधिदेवने।
यथापुंसो विषण्यत स्त्रियां निहन्यते मनः।।

(अथर्व.6/70/1)

परन्तु वेदों में सन्धान निर्माण विधि का उल्लेख नहीं किया गया है।

Scanned with CamScanner

अथर्ववेद में अञ्जन का भी उल्लेख मिलता है। यथा:-

"भक्ष्यौ नौ मधुसङ्काशे अनीकं नौ समञ्जनम्"।

(अथर्व.7/36/1)

अथर्ववेद में पीवस पाक के रूप में विष को तैल में पकाकर देने का उल्लेख मिलता है, जो स्पष्ट रूप से स्नेह कल्पना है। यथा:-

करम्भं कृत्वा तिर्यं पीवसपाकमुदारथिन्।
क्षुधाकिल त्वा दुष्टनो जक्षिवान्त्स न रूरूपः।।

(अथर्व.4/7/3)

वैदिककालीन मनुष्य दूध से दही, दही से मट्ठा और नवनीत तथा नवनीत से घृत निकालने में पूर्णतः निष्णात थे। साथ ही दूध के विविध विकारों का भी उन्हें ज्ञान था। इसी प्रकार वेदों में मैत्रीवारुणी पयस्या (पनीर), वाजिन (मस्तु), आमिक्षा (उबला हुआ फटा दूध) का वर्णन मिलता है।

वैदिक वाङ्मय में विविध अन्नों से निर्मित अनेक प्रकार की आहार कल्पनाओं का उल्लेख मिलता है। यजुर्वेद में धाना (भूर्जित अन्न), करम्भ (अन्न का मांड), सक्तू (अन्न को भूनकर किया गया चूर्ण), परीवाप (भूने हुए चावल का चबेना), आमिक्षा (फटा हुआ दूध), वाजिन (दही से पृथक् किया हुआ तरल), लाजा (भूर्जित धान, खील), मासर (ब्रीहि, श्यामाक आदि को मिलाकर बनाया गया किण्वचूर्ण), नग्नूह (एक प्रकार का किण्वचूर्ण), तोक्म (अंकुरित ब्रीहि या यव), परिस्रुता (आसव क्रिया से निर्मित कोई मद्यजन्य पेय) का उल्लेख मिलता है। इसी प्रकार वैदिक साहित्य में शष्प (घास में निकलने वाली नवीन बाली), वाजपेय (शक्तिवर्धक पेय), ओदन (पका हुआ चावल) का उल्लेख मिलता है। यथा:-

धानाः करम्भः सक्तवः परीवापः पयो दधि।
सोमस्य रूप हविष आमिक्षा वाजिनं मधु।।

(यजु.19/21)

यवैः कर्कन्धुभिर्मधु लाजैर्न मासरं पयः सोमः परिस्रुता घृतं मधु व्यन्त्वा-ज्यस्य होतर्यज। (यजु. 21/32)

यविनिष्पन्ना सूक्ष्मसक्तवः दधि मिश्रा दर्भैः परिवेष्ठिता ....।
यवानां सूक्ष्मचूर्णानि संस्रवेण भिषिक्तानि।

इस प्रकार समस्त उदाहरणों से निष्कर्ष निकलता है कि भैषज्य कल्पना की मौलिक पञ्चविध कषाय कल्पनाएँ तथा अनेक व्युत्पन्न कल्पनाएँ वैदिक काल में

Scanned with CamScanner

विद्यमान थी। वैदिक काल भैषज्य कल्पना का प्रारम्भिक काल था। परन्तु वेदों में निर्माण प्रक्रियाओं का वर्णन नहीं मिलता है।

सर्वप्रथम ब्राह्मण ग्रन्थों और पुराणों में सोमरस निर्माण विधि का वर्णन मिलता है। सामान्य रूप से इसे धोकर कूटा पीसा जाता था और फिर इसका रस निचोड़ लिया जाता था। इसके अतिरिक्त एक अन्य विधि का भी वर्णन आया है। इस विधि में सोम को सर्वप्रथम प्रक्षालन करके फलक (चपटा और चौड़ा प्रस्तर) पर रखा जाता था। पुनः सोम को कूटने के लिए 36 अंगुल लम्बे और 18 अंगुल चौड़े अमिश्रवण नामक दो पटल होते थे, के ऊपर सोम को रखते होंगे। फिर एक पत्थर के यन्त्र (ग्रावा) से इसे कूटा जाता था। इस ग्रावा का ऊपरी भाग पतला और निचला भाग मोटा होता था। सोम को कूटते समय यथा विधि मंत्रपाठ करते हुए थोड़े-थोड़े जल का छींटा देकर धीरे-धीरे रगड़ा जाता था। तत्पश्चात् इस कल्कीकृत सोम को मिट्टी या धातु के एक पात्र में रखते थे। इस पात्र को 'अधावनीय' कहते थे। इस पात्र में रखे सोम कल्क में उचित परिमाण में जल मिलाया जाता था, फिर इसे एक स्वच्छ वस्त्र से छानते थे। छानने के लिए प्रयुक्त वस्त्र को 'दशापवित्र' कहते थे। छानते समय दशापवित्र में एक छोटा सा छिद्र करके उसमें कुश से बनी हुई 'पवित्री' या वर्तिका लगा दी जाती थी, जिससे रस बूँद-बूँद करके निकलता था और नीचे रखे पात्र में एकत्र हो जाता था। नीचे रखे पात्र को चामस कहा जाता था। छानने के बाद दशापवित्र में अवशिष्ट भाग 'ऋषिज' या 'खुञ्जी' कहलाता था।

शतपथ ब्राह्मण में दुग्ध को औषधियों के साथ अग्नि पर पकाने का उल्लेख मिलता है, जो क्षीरपाक कल्पना है। शतपथ ब्राह्मण में ही मैत्रीवारूणी पयस्या (पनीर) और वाजिन (मस्तु) का उल्लेख मिलता है। शतपथ ब्राह्मण में घृत के लिए तीन शब्दों का प्रयोग हुआ है :- आज्य, घृत और सर्पि। ऐतरेय ब्राह्मण में घृत के लिए चार शब्दों नवनीत, आज्य, घृत और आयुत का प्रयोग हुआ है। इसमें नवनीत का प्रयोग गर्भस्थ जीवों के लिए, आज्य का प्रयोग देवताओं के लिए, घृत का प्रयोग मनुष्यों के लिए और आयुत का प्रयोग पूर्वजों के लिए बताया गया है। बृहदारण्यकोपनिषद् में पुत्र की इच्छा के लिए बैल, सांड आदि पशुओं के मांस को चावल व घृत के साथ पकाकर प्रयोग करने का विधान बताया गया है। इसी उपनिषद् के छठे अध्याय में घृत संस्कार तथा मन्थ कल्पना का उल्लेख है। मनुस्मृति में विविध मांस के भोजन पकाने का उल्लेख मिलता है।

Scanned with CamScanner

2. संहिता काल:–आयुर्वेद में चरक संहिता, सुश्रुत संहिता, काश्यप संहिता, अष्टाङ्ग संग्रह, अष्टाङ्ग हृदय आदि ग्रन्थों में विभिन्न प्रकार की भैषज्य कल्पनाओं का उल्लेख मिलता है।

(i) चरक संहिता:–आयुर्वेद की संहिताओं में चरक संहिता का स्थान सर्वोपरि है। जिसके सूत्रस्थान के द्वितीय अध्याय में 32 यवागू और तृतीय अध्याय में 32 सिद्धतम चूर्ण प्रदेह का वर्णन मिलता है। चतुर्थ अध्याय में मधुर कषाय, अम्ल कषाय, कटु कषाय, तिक्त कषाय एवं कषाय कषाय इन पाँच कषाय योनियों का वर्णन किया गया है। यथा:–

"पञ्चकषाययोनय इति मधुरकषायोऽम्लकषाय: कटुकषायस्तिक्त–कषाय: कषायकषायश्चेति तन्त्रे संज्ञा"। (च.सू. 4/6)

उक्त पञ्च कषाय योनियों से पञ्चविध कषाय कल्पनाओं की उत्पत्ति मानी गयी है। यहाँ पर पाँच रसों से पञ्च कषाय कल्पनाओं की ही उत्पत्ति बतलायी है क्योंकि लवण रस के निष्प्रयोजन होने के कारण छठी कषाय योनि नहीं मानी गयी है।

"पञ्चविधं कषायकल्पनमिति तद्यथा–स्वरस:, कल्क:, शृत:, शीत:, फाण्ट: कषाय इति"। (च.सू. 4/7) अर्थात् स्वरस, कल्क, शृत (क्वाथ), शीत (हिम) और फाण्ट पाँच प्रकार की कषाय कल्पनाएँ होती हैं।

"तेषां यथापूर्वम् बलाधिक्यम् अत: कषायकल्पना व्याध्यातुरबलापे–क्षिणी न त्वेवं खलु सर्वाणि सर्वत्रोपयोगिनी भवन्ति।।" (च. सू.4/7)

अर्थात ये कषाय कल्पनाएँ यथापूर्व गुरु होती है। अत: इन कषाय कल्पनाओं का प्रयोग व्याधि एवं रोगी के बल पर निर्भर करता है। क्योंकि पञ्चविध कषाय कल्पनाएँ सम्पूर्ण रोगों में समान रूप से उपयोगी नहीं होती है। ये पञ्चविध कषाय कल्पनाएँ ही मौलिक कषाय कल्पनाएँ हैं। उन मौलिक कल्पनाओं के अतिरिक्त अञ्जन, अवलेह, अणुतैल, अयस्कृति, उष्णोदक, कर्णपूरण, कवल, काम्बलिक, कृशरा, क्षार, क्षीरपाक, खडयूष, खण्ड, गण्डूष, गुटिका, गुड, घृतपाक, चटकाण्डरस, चूर्ण, तक्र, तक्रपिण्ड, तर्पण, तिलपिष्ट, तैलपाक, धूपन, धूमवर्ति, धूमपान, नवनीत, नस्य, पायस, पूपलिका, पेया, प्रलेप, प्रदेह, फाणित, बस्ति, मण्ड, मण्डूर, मद्य, आसव, अरिष्ट, मत्स्यण्डिका, मधु, सिक्थ तैल, मांसरस, रसक्रिया, रसायन, लाजमण्ड, वटक, वर्ति, विडालक, विलेपी, वेसवार, शतधौत घृत, षडङ्गपानीय, सक्तु, सर्पिगुड, सहस्रधौत घृत आदि 128 कल्पनाओं का चरक संहिता में उल्लेख मिलता है। चरक संहिता में खनिज द्रव्यों का चिकित्सकीय प्रयोग भी प्रारम्भ हो चुका था। परन्तु इनका प्रयोग भस्मों के रूप में न होकर चूर्ण (रज=अयस्कृति) के रूप में होता था।

Scanned with CamScanner

(ii) सुश्रुत संहिताः–चरक संहिता के पश्चात् प्राचीनता के क्रम में सुश्रुत संहिता का स्थान है। इसमें 6 प्रकार की मौलिक कल्पनाएँ मानी है :-

क्षीरं रसः कल्कमथो कषायः शृतश्च शीतश्च तथैव फाण्टम्।
कल्पाः षडेते खलु भेषजानां यथोत्तरं ते लघवः प्रदिष्टाः।।

(सु. सू. 44/91)

अर्थात् क्षीर, स्वरस, कल्क, शृत (क्वाथ), शीत (हिम) और फाण्ट–इन छः कल्पनाओं को आचार्य सुश्रुत ने मौलिक कल्पनाएँ माना है। लेकिन क्षीर कल्पना का स्वरस में समावेश हो जाने से इसको छठी कल्पना मानना उचित नहीं है। इन कल्पनाओं के अतिरिक्त सुश्रुत संहिता में अञ्जन, अकृतयूष, अणु तैल, अयस्कृति, अवलेह, आलेप, इक्षुरस, उष्णाम्बु, ओदन, कवल, काम्बलिक, कुम्भसर्पि, कृतयूषरस, कृशरा, कूर्चिका, क्षार, क्षारसूत्र, क्षारोदक, खडयूष, खण्ड, गण्डूष, गुड़, घृत, घृतमण्ड, चूर्ण, तक्र, तैलपाक, दधि, धान्याम्ल, धूमवर्ति, नवनीत, नस्य, पानक, पायस, पूर्णकोश (कचौड़ी), पेया, पृथुक, प्रदेह, प्रलेप, फाणित, फेनक, मण्ड, मण्डूर, मद्य, आसव, अरिष्ट, मधु, मन्थ, मस्तु, मांसरस, मोदक, यवागू, यूष, रसक्रिया, रसाला, रागषाडव, लाजमण्ड, लेह, लौहरजः, वटक, वर्ति, विलेपी, वेशवार, शष्कुली, शिण्डाकी, षडङ्गपानीय, षाड़व, सक्तु आदि विविध कल्पनाओं का उल्लेख मिलता है।

सुश्रुत संहिता के चिकित्सा स्थान के चतुर्थ अध्याय में वातरोगों में शतपाकी एवं सहस्रपाकी तैल कल्पना एवं लवण कल्पों का प्रयोग बताया गया है। इसके अतिरिक्त गुग्गुल कल्प, अयस्कृति कल्पना, मसी कल्पना तथा क्षारसूत्र कल्पना का सर्वप्रथम वर्णन मिलता है।

(iii) काश्यप संहिताः–

चूर्णं शीतकषायश्च स्वरसोऽभिषवस्तथा।
फाण्टःकल्कस्तथा क्वाथो यथावतं निबोध मे।।

(का. सं. खि. 3/35)

अर्थात् आचार्य काश्यप ने चूर्ण, शीत, स्वरस, अभिषव, फाण्ट, कल्क और क्वाथ–इन सात को मौलिक कल्पनाएँ माना है। जिनमें चूर्ण एवं अभिषव कल्पनाओं का पञ्चविध कषाय कल्पना में समावेश हो जाता है। अतः आचार्य चरकोक्त पञ्चविधकषाय कल्पनाएँ ही मौलिक कषाय कल्पनाएँ होती हैं। इनके अतिरिक्त धूपन, लेह, घृत, तैल, अरिष्ट, गुड़, रसक्रिया, बस्ति, अञ्जन, गुटिका, चूर्ण, पुष्प आदि कषाय कल्पनाओं का काश्यप संहिता में उल्लेख मिलता है। काश्यप संहिता के खिलस्थान में यूषों का विस्तार से वर्णन किया गया है।

Scanned with CamScanner

(iv) अष्टाङ्ग संग्रहः व अष्टाङ्ग हृदयः:– आचार्य वाग्भट द्वारा विरचित इन दोनों ग्रन्थों में पञ्चविध कषाय कल्पनाओं को ही मौलिक कल्पनाएँ मानी है। यथाः–

"**पञ्चविधस्तु भेषजानां कषायकल्पः। निर्यासः कल्को निर्यूहः शीतः फाण्टश्च। ते यथापूर्वं बलिनः**" (अ. सं. क. 8/9)

कषाययोनयः पञ्चरसा लवणवर्जिताः।
रसः कल्कः शृत शीतः फाण्टश्चेति प्रकल्पना।।
पञ्चधैवं कषायाणां पूर्वं पूर्वं बलाधिका।।

(अ. हृ. क. 6/9)

अर्थात् दोनों ही ग्रन्थों में स्वरस, कल्क, क्वाथ, हिम और फाण्ट–इन पञ्चविध कषाय कल्पनाओं का उल्लेख मिलता है। इनके अतिरिक्त अन्य अनेक कल्पनाएँ यथाः–अञ्जन, अणुतैल, अवलेह, आश्च्योतन, इक्षुरस, उष्णोदक, ओदन, कवल, किलाट, कूर्चिका, क्षार, क्षीरपाक, खल, खण्ड, गण्डूष, गुटिका, गुड़, घृत, चूर्ण, तक्र, तण्डुलोदक, तैलपाक, दधि, धूपन, धूमपान, नवनीत, नस्य, पानक, पायस, पेया, पृथुक, प्रदेह, प्रसेक, फाणित, बस्ति, मण्ड, मद्य, आसव, अरिष्ट, मन्थ, मुद्गयूष, मोदक, रसक्रिया, रसायन, रसाला, रागषाडव, लाजा, लेप, वटक, वटी, वर्ति, बिडालक, विलेपी, वेसवार, शर्करा, शतधौत घृत, शष्कुली, शिरोबस्ति, सक्तु, सर्पिगुड आदि विविध कल्पनाओं का उल्लेख मिलता है।

3. मध्यकाल या रसशास्त्रीय कालः:– संहिता काल के पश्चात् रसाचार्य नागार्जुन द्वितीय ने अपने ग्रन्थों रसेन्द्र मंगल, रसरत्नाकर, कक्षपुट आदि में खनिजों पर अनेक धातुवादात्मक क्रियाओं का वर्णन किया है। इस काल में खनिज द्रव्यों की भैषज्य कल्पना का विकास हुआ। जिसमें खनिज द्रव्यों का शोधन, मारण, सत्त्वपातन, द्रुति, पारद के विभिन्न संस्कार तथा अनेक औषधीय कल्पनाओं का विकास हुआ। इस काल में चिकित्सा की दृष्टि से खनिज द्रव्यों की भस्में, सत्त्वपातन, द्रुति, सत्त्व भस्म, रससिन्दूर आदि कूपीपक्व रसायनों का निर्माण प्रारम्भ हो गया था। दसवीं शताब्दी में विभिन्न खनिज कल्पनाओं का उपयोग चिकित्सा में बहुलता से होने लगा। रसौषधियों के शीघ्रप्रभावकारी, अल्पमात्रा में उपयोगी आदि गुणों के कारण रस चिकित्सा को श्रेष्ठ माना जाने लगा।

(i) चक्रदत्तः–आचार्य चक्रपाणि द्वारा लिखित इस ग्रन्थ में पूर्ववर्ती संहिताओं का सार देखने को मिलता है। इसमें पर्पटी कल्पना का सर्वप्रथम वर्णन प्राप्त होता है। चिकित्सा की दृष्टि से यह ग्रन्थ अत्यन्त महत्त्वपूर्ण माना जाता है। इस ग्रन्थ में अवलेह, ओदन, कल्क, क्वाथ, क्षार, खण्ड, गुडपाक, चूर्ण, तैलपाक, अगद, अञ्जन, अर्कलवण,

Scanned with CamScanner

आश्च्योतन, कवल, काम्बलिक, क्षार सूत्र, क्षारगुड़, खड्यूष , गण्डूष, गुटिका, घृतपाक, तक्र, दधिसर, धूमपान, प्रलेप, पर्पटी, पायस, पूपिका, पेया, प्रदेह, बस्ति, मसी, मण्ड, काञ्जी, मद्य, मोदक, शुक्त, यवागू, लाजपेया, वटक, षडङ्गपानीय, क्षीरपाक, धूपन, नस्य, पूपक, पिण्डी, पुटपाक, प्रमथ्या, फाणित, मन्थ, अरिष्ट, चुक्र, मांसरस, यूष, रसाला, रसक्रिया, वटिका, वर्ति, वेशवार, शिण्डाकी, स्वरस आदि कल्पनाओं का उल्लेख मिलता है।

(ii) गद निग्रहः–आचार्य सोढ़ल द्वारा 12 वीं शताब्दी में विरचित इस ग्रन्थ में तैलाधिकार, घृताधिकर, चूर्णाधिकार, लेहाधिकार, आसवाधिकार कल्पना विषयक विस्तृत वर्णन मिलता है।

12वीं शताब्दी में मुस्लिमों के आक्रमण के पश्चात् यूनानी चिकित्सा प्रणाली का आगमन हमारे देश में हुआ, जिसके फलस्वरूप अर्क, खमीरा, गुलकन्द आदि का प्रचुरता से प्रयोग आयुर्वेद चिकित्सा में होने लगा। इसी काल में रचित ग्रन्थ अर्क प्रकाश में अर्क कल्पना का विस्तृत वर्णन प्राप्त होता है।

(iii) शार्ङ्गधर संहिताः–आचार्य शार्ङ्गधर मिश्र द्वारा 14 वी शताब्दी में इस ग्रन्थ को लिखा गया है। यह ग्रन्थ भैषज्य कल्पना का आधार स्तम्भ माना जाता है। इस ग्रन्थ के मध्यम खण्ड में स्वरस, क्वाथ, फाण्ट, हिम, कल्क, चूर्ण, वटक, अवलेह, घृत, तैल, आसवारिष्ट आदि का पृथक्–पृथक् अध्यायों में वर्णन किया गया है। इनके अतिरिक्त अञ्जन, अवगाहन, अनुवासन बस्ति, अवपीडन, आश्च्योतन, उष्णोदक, उत्तरबस्ति, ओदन, कर्णपूरण, कवल, कृशरा, क्षार, क्षीरपाक, गुड, गण्डूष, तर्पण, धूमपान, नस्य, निरुह बस्ति, पिण्डी, पुटपाक, पेया, पोट्टली, पर्पटी, प्रदेह, प्रधमन, प्रमथ्या, मण्ड, मद्य, मन्थ, मलहर, मोदक, यवागू, यूष, रसक्रिया, रसायन, लेप, वर्ति, विलेपी, षडङ्गपानीय, सक्तु, सेक आदि कल्पनाओं का वर्णन मिलता है।

4. आधुनिक कालः– 16वीं शताब्दी के पश्चात् आधुनिक काल माना जाता है। इस काल में भावप्रकाश, बृहद्योगतरंगिणी, योगरत्नाकर, भैषज्यरत्नावली, सिद्धभेषजमणिमाला, रसतन्त्रसार एवं सिद्ध प्रयोग संग्रह, भारत भैषज्य रत्नाकर, सिद्धयोगसंग्रह, आयुर्वेदसार संग्रह आदि ग्रन्थ लिखे गए है। इन सभी ग्रन्थों में चूर्ण, क्वाथ, आसव, अरिष्ट, घृत, तैल, अवलेह आदि पूर्ववर्ती सभी कल्पनायें उल्लिखित है। बृहद्योगतरंगिणी, आयुर्वेद सारसंग्रह, रसतन्त्रसार एवं सिद्धप्रयोगसंग्रह में कल्पना विषयक वर्णन किया गया है। भारतभैषज्यरत्नाकर भैषज्यकल्पना का बृहद् ग्रन्थ है, जो पाँच भागों में प्रकाशित है तथा इसमें अकारादि क्रम से औषधयोगों का वर्णन संग्रहित रूप में किया गया है।

Scanned with CamScanner

भारतीय आयुर्वेद योग संग्रह (Ayurvedic formulary of India-A.F.I) भारत सरकार द्वारा प्रकाशित ग्रन्थ है, जिसमें कल्पनाओं के अनुसार प्रधान योगों का वर्णन किया गया है। यह अंग्रेजी और हिन्दी दोनों भाषाओं में प्रकाशित है। गुजरात सरकार द्वारा भी भेषज संहिता प्रकाशित की गई है।

वर्तमान में औषधिनिर्माता कम्पनियाँ विभिन्न प्रकार के चूर्ण, वटी, कैप्सूल, अवलेह, ग्रेन्यूल्स, तैल, घृत, आसवारिष्ट, ड्राप्स, कैचेट, टूथपेस्ट, सूचीवेध (Injection), सीरप, लेप, वर्ति, एनीमा (बस्ति), शैम्पू, क्रीम, आयन्टमेंट (Ointment) कल्पनाओं को वर्तमान समय के अनुसार निर्माण कर विक्रय कर रही है। अतः यह कहा जा सकता है कि प्राचीनकाल में पञ्चविध मौलिक कषाय कल्पनाओं का प्रादुर्भाव हुआ था। लेकिन बाद में धीरे-धीरे अन्य कल्पनाओं का विकास होता गया। वर्तमान काल में भैषज्य कल्पना का विकसित स्वरूप दिखाई दे रहा है।

औषध एवं भैषज (भैषज्य) में अन्तर :-

औषध एवं भैषज्य दोनों का प्रयोजन रोग को दूर करना है। इसलिए औषध एवं भेषज पर्यायवाची है। आचार्य चरक ने भेषज एवं औषध को पर्याय माना है।

चिकित्सितं व्याधिहरं पथ्यं साधनमौषधम्।
प्रायश्चितं प्रशमनं प्रकृतिस्थापनं हितम्।।
विद्यात् भेषजनामानि..................।

(च.चि.1/1/3)

अर्थात् 1. चिकित्सित 2. व्याधिहर 3. पथ्य 4. साधन 5. औषध 6. प्रायश्चित 7. प्रशमन 8. प्रकृतिस्थापन और 9. हित ये 9 पर्याय भेषज के हैं।

परन्तु आचार्य काश्यप ने औषध तथा भेषज में अन्तर बताया है। यद्यपि दोनों ही चिकित्सा से संबंधित है। यथाः-

औषधं भेषजं प्रोक्तं द्विप्रकारं चिकित्सितम्।
तयोर्विशेषं वक्ष्यामि भेषजौषधयोद्वयो।।
औषध द्रव्यसंयोग ब्रूयते दीपनादिकम्।
हुंतव्रततपोदानं शान्तिकर्म च भेषजम्।।

(का.सं. इन्द्रिय 5/3-4)

अर्थात् चिकित्सा दो प्रकार की होती है :- 1. औषध 2. भेषज

1. औषधः-दीपन, पाचन आदि द्रव्यों का संयोग करके रोगों का शमन किया जाता है, उसे औषध कहते हैं। चरक के अनुसार यह युक्तिव्यपाश्रय चिकित्सा

Scanned with CamScanner

है। यह द्रव्यभूत और प्रत्यक्ष चिकित्सा है। इससे शारीरिक और मानसिक दोनों व्याधियों को दूर किया जाता है।

(i) **ओषो नाम रस सोऽस्या धीयते यत्तदौषधिः ।**
ओषादारोग्यमाद्यते तस्मादोषधिरोषधः ।।

(का.स.खि.3/27)

अर्थात् जिसमें ओष (रस) होता है, वह औषधि कहलाती है। इसी ओष (रस) से आरोग्य प्राप्त होता है। इसलिए उसे औषधि और औषध कहते हैं।

(ii) औषधिभिर्निष्पन्नं व्याधिहितं तदुपलक्षणत्वात् सर्वं चिकित्सितम् औषधं रूढ़म्। (गंगाधर)

अर्थात् औषधियाँ व्याधि में हितकर होती है, अतः उपलक्षण मात्र से सभी प्रकार की चिकित्सा के लिए औषध शब्द रूढ़ हो गया है।

(iii) ओषं रूजं धयति इति औषधि।

अर्थात् ओष (रस) से पीड़ा को दूर किया जाता है, अतः उसे औषधि कहते हैं।

2. भेषजः– **''हुतव्रततपोदानं शान्तिकर्म च भेषजम् ।''**

अर्थात् स्वस्ति, बलि, होम, व्रत, तप, शान्तिकर्म द्वारा रोगों का शमन करना भैषज कहलाता है। यह चरकोक्त दैवव्यपाश्रय, अद्रव्यभूत चिकित्सा (अप्रत्यक्ष) और नैष्ठिकी चिकित्सा है। भेषज विशेष रूप से मानसिक रोगों में प्रयुक्त होती है।

(i) **भिषग्विज्ञाननेयत्वाद् भेषजं भिषजो विदुः ।**
भिषग्जिते हितच्वाच्च भैषज्यं परिचक्षते।।

(का. सं. खि. 3/28)

अर्थात् जो चिकित्सक भिषक्विज्ञान को जानता है और जो रोगियों के लिए हितकारी हो, उसे भेषज या भैषज्य कहते हैं।

(ii) **भेषजं नाम तद्यदुपकरणारयोपकल्पते भिषजो ।**
धातुसाम्याभि निर्वृती प्रयतमानस्य विशेषतः ।।

(च.वि.8/87)

अर्थात् जिस औषध की कार्ययोनि, प्रवृत्ति, देश आदि शारीरिक, मानसिक एवं भूतात्मा के रोगों को दूर करने वाली हो तथा जिसका कोई प्रतिकूल प्रभाव उत्पन्न नहीं हो, उसे भेषज कहते हैं।

Scanned with CamScanner

(iii) भेषं रोगभयं जयति येन इति भेषजं तस्य भावः कर्म वा भैषज्यम्।

अर्थात् जिसके द्वारा रोगभय को जीता जाता है, उसे भेषज कहते हैं, उसका भाव या कर्म ही भैषज्य कहलाता है।

(iv) भिषज्यन्ति चिकित्सन्ति रोगान् निवर्तयन्ति वा अनेनेति भेषजम्। भेषजमेव भैषज्यम्।

अर्थात् जिसके द्वारा रोगों की चिकित्सा की जाती है या रोगों को हटाया जाता है, उन सब उपायों को भेषज कहते हैं। भेषज ही भैषज्य है।

उपरोक्त वर्णन से स्पष्ट होता है कि प्रयोजन की दृष्टि से औषध एवं भेषज में कोई अन्तर नहीं है, क्योंकि औषध एवं भेषज दोनों से रोगों को दूर किया जाता है। किन्तु आचार्य काश्यप के अनुसार दोनों में यह अन्तर है कि औषध चरकोक्त युक्तिव्यपाश्रय, द्रव्यभूत एवं प्रत्यक्ष चिकित्सा है, जबकि भेषज चरकोक्त दैवव्यपाश्रय, अद्रव्यभूत (अप्रत्यक्ष) एवं नैष्ठिकी चिकित्सा है।

Scanned with CamScanner

द्वितीय अध्याय

भैषज्य कल्पना के आधारभूत सिद्धान्त
(Fundamental principles of bhaishajya kalpana)

औषध निर्माण के लिए प्राचीन आचार्यों ने कुछ सिद्धान्तों का निरूपण किया है। जिनको भैषज्य कल्पना के आधारभूत सिद्धान्त कहा जाता है। कोई भी कल्पना का निर्माण रोगी एवं रोगानुसार, स्वाद, गंध आदि की अनुकूलता, पाचनशक्ति, काल आदि का निर्णय करके किया जाता है। चिकित्सक वनौषधियों का संग्रह करके द्रव्यों के कटु तिक्त, कषाय आदि अरुचिकर स्वाद का परिवर्तन कर रुचिकर एवं सुगमता से सेवन योग्य बनाता है। साथ ही औषध को चिरस्थायी बनाने के लिए विविध प्रक्रियाओं के बाद कल्पनाओं के रूप में शरीर के लिए उपयोगी बनाता है। जिससे गुणवत्ता में भी वृद्धि हो जाती है। कल्पनाओं से ही अरुचिकर औषधियों के सेवन के लिए रोगियों में रुचि एवं आकर्षण उत्पन्न हो जाता है। जैसे-''वासा पत्र'' का स्वरस अरुचिकर होता है, लेकिन 'वासावलेह' कल्पना रुचिकर होती है और रोग पर शीघ्र ही प्रभाव करती है। वासा स्वरस की कल्पना को चिरस्थायी बनाने के लिए चीनी का पाक करके शार्कर (Syrup) बनायी जाये तो वह ज्यादा दिनों तक रुचिकर एवं उपयोगी बना रहता है। औषधियों की इसी तरह कल्पनाओं के निर्माण के लिए ही भैषज्य कल्पना के निम्नलिखित आधारभूत सिद्धान्तों की जानकारी रखना अत्यन्त आवश्यक होता है। यथा :-

1. परिभाषा एवं मान
2. अनुक्त या विशेषोक्त ग्रहण
3. औषधि द्रव्य की विशिष्टता
4. पञ्चविध कषाय कल्पना
5. द्रव्य स्थिति रस, गुण, वीर्य, विपाक तथा प्रभाव
6. संस्कार (गुणान्तराधान)
7. औषध योगों का नामकरण

Scanned with CamScanner

1. परिभाषा एवं मान :-

अव्यक्तानुक्त लेशोक्तसंदिग्धार्थ प्रकाशिकाः ।
परिभाषाः प्रकथ्यन्ते दीपीभूताः सुनिश्चिताः ।।

(वै. प. प्र. 1/6)

अर्थात् स्पष्ट रूप से नहीं कहना, बिना कहे हुए, संक्षिप्त में कहे हुए और संदिग्धार्थ आदि को परिभाषा के ज्ञान के द्वारा एक निश्चित अर्थ की जानकारी हो जाती है। जो दीपक की तरह ग्रन्थ के सभी विषयों पर प्रकाश डालती है।

भैषज्य कल्पना में संपूर्ण समस्याओं के निराकरण के लिए परिभाषा का ज्ञान रखना जरूरी होता है। क्योंकि परिभाषा के द्वारा वाक्यों का (संक्षिप्त में संकेत-Termimology) का ज्ञान जाता है। यथा-त्रिफला शब्द से ही हरीतकी, बिभीतकी, आमलकी तीनों द्रव्यों का ज्ञान हो जाता है। उसी प्रकार दशमूल कहने मात्रा से बिल्ब, अग्निमंथ, श्योनाक, पाटला, गम्भारी, शालिपर्णी, पृश्निपर्णी, बृहती, कण्टकारी एवं गोक्षुर-इन दस द्रव्यों का ज्ञान हो जाता है।

पथ्याबिभीतधात्रीनां फलैः स्यात्त्रिफला समैः ।
फलत्रिकं च त्रिफला सा वरा च प्रकीर्तिता ।।

(भा. प्र. हरी./42)

एकां हरीतकी योज्या द्वौ च यौज्यौ बिभीतकौ ।
चत्वार्यामलकान्येवं त्रिफलैषां प्रकीर्तिता ।।

(शा. सं. म. ख.-6/9)

श्रीफल सर्वतोभद्रा पाटला गणिकारिका।
श्योनाकः पञ्चभिश्चैतेः पञ्चमूलं महन्मतम् ।।

(भा. प्र. गुडू./29)

शालिपर्णी पृश्निपर्णी वार्त्ताकी कण्टकारिका ।
गोक्षुरः पञ्चभिश्चैतेः कनिष्ठं पञ्चमूलकम् ।।

(भा. प्र. गुडू./47)

उभाभ्यां पञ्चमूलाभ्यां दशमूलमुदाहृतम् ।।

(भा. प्र. गुडू./49)

आयुर्वेद में परिभाषा ज्ञान के साथ ही औषधि कल्पनाओं के निर्माण, औषध सेवन, पथ्य सेवन, अनुपान आदि विविध कार्यों के लिए मान का ज्ञान होना भी अत्यन्त आवश्यक है। यथाः-

Scanned with CamScanner

न मानेन बिना युक्तिर्द्रव्याणां जायते क्वचित् ।
अतः प्रयोगकार्यार्थं मानमत्रोच्यते मया ।।

(शा. सं. प्र. ख. 1/14)

अर्थात् मान के बिना कोई भी युक्ति सफल नहीं होती है। औषध द्रव्यों का प्रयोग भी मान के बिना निष्फल ही होता है। यथाः- यदि सितोपलादि चूर्ण का प्रयोग 2-4 रत्ती की मात्रा में किया जाय तो उसका शरीर पर यथेष्ट प्रभाव नहीं हो पाता है। उसी प्रकार यदि लक्ष्मीविलास रस, समीरपन्नग रस का प्रयोग एक ग्राम से अधिक मात्रा में किया जाय जो इसका शरीर पर हानिकारक प्रभाव होता है। अतः औषध निर्माण, पथ्य निर्माण, आहार निर्माण एवं अनुपान आदि मान के अनुसार निर्माण या सेवन करने पर लाभदायक एवं रुचिकर होता है। इसलिए मान के ज्ञान को प्राचीन आचार्यों ने अत्यन्त महत्वपूर्ण माना है।

2. अनुक्त या विशेषोक्त ग्रहण :-

भैषज्य कल्पना में अनुक्त या विशेषोक्त शब्दों का विशेष महत्व है। इसके लिए आचार्य शार्ङ्गधर ने एक विशेष नियम निर्धारित किया है :-

कालेऽनुक्ते प्रभातं स्यादङ्गेऽनुक्ते जटा भवेत् ।
भागेऽनुक्ते तु साम्यं स्यात्पात्रेऽनुक्ते मृन्मयम् ।
द्रवेऽनुक्ते जलं ग्राह्यं तैलेऽनुक्ते तिलोद्भवम् ।।
एकमप्यौषधं योगे यस्मिन्यत्पुनरूच्यते ।
मानतो द्विगुणं कार्यं तद्द्रव्यं तत्त्वदर्शिभिः ।।
चूर्णस्नेहासवा लेहाः प्रायशश्चन्दनान्विताः ।
कषायलेपयोः प्रायो युज्यते रक्तचन्दनम् ।।

(शा. सं. प्र. ख. 1/47-50)

अर्थात् औषध सेवन के समय का निर्देश नहीं होने पर प्रातःकाल, द्रव्य के अङ्गविशेष का निर्देश नहीं होने पर वनस्पति की जटा, औषधनिर्माण में औषधि की मात्रा का निर्देश नहीं होने पर वहाँ पर प्रत्येक औषधि को समभाग, पात्रविशेष का निर्देश नहीं होने पर मिट्टी का पात्र, भावना आदि के लिए द्रव द्रव्य का निर्देश नहीं होने पर जल और अनुक्त तैल के स्थान पर सामान्य नियमानुसार तिल तैल का ग्रहण करना चाहिए। इसके अतिरिक्त जिन औषधि योगों में एक औषध दो बार लिखी हुई हो तो उसे दुगुनी मात्रा में लेना चाहिए। चूर्ण, स्नेह, आसव एवं लेह में चन्दन का निर्देश होने पर श्वेत चन्दन तथा क्वाथ लेपादि के लिए चन्दन का निर्देश होने पर रक्तचन्दन का

Scanned with CamScanner

ग्रहण करना चाहिए। इसी प्रकार मूत्र, घृत एवं दूध का स्पष्ट निर्देश नहीं होने पर गोमूत्र, गोघृत एंव गोदुग्ध का ग्रहण करना चाहिए। लवण का स्पष्ट निर्देश नहीं होने पर सैन्धव लवण का ग्रहण करना चाहिए।

इसी प्रकार विशेषोक्त के क्रम में ''पञ्चकोल'' शब्द से पिप्पली, पिप्पलीमूल, चव्य, चित्रक और सोंठ-इन पाँच द्रव्यों की एक-एक कोल की मात्रा का ज्ञान हो जाता है। ''दशमूल'' शब्द से उनके द्रव्यों एवं ग्राह्य अंगविशेष का भी स्पष्ट रूप से ज्ञान हो जाता है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है। कि भैषज्य कल्पना में अनुक्त या विशेषोक्त का महत्वपूर्ण स्थान है।

3. औषधि द्रव्य की विशिष्टता :-

भैषज्य कल्पना निर्माण के लिए औषधि द्रव्य की कुछ विशिष्टता होती है। यथा:-

बहुता तत्र योग्यत्वमनेकविध कल्पना।
संपच्चेति चतुष्कोऽयं द्रव्याणां गुण उच्यते।।

(च. सू. 9/7)

अर्थात् औषधियाँ प्रभूतमात्रा में उपलब्ध, औषधियों की रोगनाश में समर्थता, एक औषधि में अनेक प्रकार की कल्पना की योग्यता होना और औषधियों का रस, गुण आदि से युक्त होने पर ही भैषज्य निर्माण के लिए लिया जाना चाहिए।

अल्पमात्रं महावेगं बहुदोषहरं सुखम्।
लघुपाकं सुखास्वादं प्रीणनं व्याधिनाशनम्।।
अविकारि च व्यापत्तौ नातिग्लानिकरं च यत्।
गन्धवर्णरसोपेतं विद्यान्मात्रावदौषधम्।।

(च. सि. 6/15-16)

अर्थात् अल्पमात्रा में प्रयुक्त औषधि, वेगपूर्वक बहुत दोषों को निकालने वाली, अनेक दोषहर, सुखजनक, लघुपाकी, अच्छे स्वाद वाली, मन को तृप्त करने वाली, व्याधिनाशक, अनुपद्रवकारक, ग्लानि नहीं करने वाली, गन्ध, वर्ण, रसयुक्त और योग्य मात्रा में प्रयुक्त की जा सके ऐसी गुणयुक्त निर्मित औषध ही भैषज्य कल्पना की सार्थकता को सिद्ध कर सकती है।

4. पञ्चविध कषाय कल्पना :-

भैषज्य कल्पना का मूल आधार स्वरस, कल्क, क्वाथ, हिम एवं फाण्ट (पंचविधकषाय कल्पना) है। यथा :-

Scanned with CamScanner

"पंचविधं कषायकल्पनमिति तद्यथा–स्वरसः कल्कः शृतः शीतः फाण्टः कषाय इति"। (च.सू.4/7)

"तेषां यथापूर्वं बलाधिक्यम् अतः कषायकल्पना व्याध्यातुरबलापेक्षिणी, न त्वेवं खलु सर्वाणि सर्वत्रोपयोगिनी भवन्ति। (च.सू.4/7)

उक्त कषाय कल्पनायें यथापूर्व बलवान् होती हैं अर्थात् फाण्ट से हिम, हिम से क्वाथ, क्वाथ से कल्क और कल्क से स्वरस बलवान् और गुरु होता है। ये कषाय कल्पनायें व्याधि और रोगी के बल पर निर्भर करती है। क्योंकि सभी कषाय कल्पनायें सभी रोगों में समान रूप से लाभकारी नहीं होती है। इस प्रकार भैषज्य कल्पना में पञ्चविध कषाय कल्पनायें ही मौलिक हैं। इनसे ही अन्य सभी कल्पनाओं का निर्माण किया जाता है।

कण्ठस्य कषणात् प्रायो रोगाणां वाऽपि कर्षणात्।
कषायशब्दः प्राधान्यात् सर्वयोगेषु कल्प्यते ।।

(का. सं. खिल.3/29)

अर्थात् कण्ठ में लगने अथवा अवरोध पैदा करने से और रोगों का नाश करने के कारण सभी योगों में प्रधान रूप से कषाय शब्द का प्रयोग किया है। कषाय कल्पना औषध द्रव्य को नष्ट करने के बाद ही प्राप्त होती है। इन कषाय कल्पनाओं द्वारा ही औषधियों को सेवन योग्य बनाया जाता है। यथा :– वानस्पतिक द्रव्यों के विभिन्न अङ्गो (पत्र,पुष्पादि) का प्रयोग उसी स्वरूप में नहीं किया जा सकता है, अतः उनका स्वरस आदि निकालकर शार्कर आदि अनेक कल्पनाओं का निर्माण किया जाता है। अतः यह स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि पञ्चविध कषाय कल्पना से ही अन्य कल्पनाओं का निर्माण कर चिरस्थायी, रुचिकर एवं रोगनाशक बनाया जा सकता है।

5. द्रव्य स्थित रस, गुण, वीर्य, विपाक तथा प्रभाव :–

भैषज्य कल्पना का विकास वानस्पतिक द्रव्यों के साथ ही हुआ है। जिनके रस, गुण, वीर्य, विपाक और प्रभाव सिद्धान्त भैषज्य कल्पना के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण है। यथा :–

द्रव्ये रसो गुणो वीर्यं विपाकः शक्तिरेव च।
पदार्थाः पञ्चतिष्ठन्ति स्वं स्वं कुर्वन्ति कर्म च ।।
रसाः स्वाद्वम्ललवणतिक्तोषणकषायकाः।
षड्द्रव्यमाश्रितास्ते च यथापूर्वं बलावहाः ।।
तत्राद्या मारूतं घ्नन्ति त्रयस्तिक्तादयः कफम्।
कषायतिक्तमधुराः पित्तमन्ये तु कुर्वते ।।

Scanned with CamScanner

ये रसा वातशमना भवन्ति यदि तेषु वै।
रौक्ष्यलाघवशैत्यानि न ते हन्युः समीरणम्।।
ये रसाः पित्तशमना भवन्ति यदि तेषु वै।
तीक्ष्णोष्णलघुताश्चैव नैते तत्कर्मकारिणः।।
ये रसाः श्लेष्मशमना भवन्ति यदि तेषु वै।
स्नेहगौरवशैत्यानि न ते हन्युः कफं तदा।।

(भा.प्र. मिश्र.6/169-174)

अर्थात् द्रव्य स्थित रस, गुण, वीर्य, विपाक और प्रभाव ये पाँचों ही द्रव्य में रहकर अपने-अपने कर्मों को करते हैं। मधुर, अम्ल, लवण, कटु, तिक्त और कषाय सभी छः रस द्रव्यों में रहते हैं और ये रस यथापूर्व बलशाली होते है। मधुर अम्ल, लवण का कार्य वात दोष नाशक, तिक्त, कटु, कषाय कफनाशक तथा कषाय, तिक्त और मधुर पित्त का नाश करते हैं। वातनाशक रसों में यदि रूक्ष, लघु एवं शीत गुण हो तो वे वात का नाश नहीं करेगें। पित्तनाशक रसों में यदि तीक्ष्ण, उष्ण एवं लघु गुण हो तो वे पित्त का नाश नहीं करेगें। श्लेष्मानाशक रसों में यदि स्नेह, गौरव एवं शीत गुण हो तो वे कफ का नाश नहीं करेगें। इस प्रकार औषध निर्माण के लिए प्रयुक्त द्रव्य में स्थित रस गुण आदि के पाँच भौतिक संगठन का ध्यान रखना अत्यन्त आवश्यक है।

लघुर्गुरुस्तथा स्निग्धो रूक्षश्तीक्ष्ण इति क्रमात्।
नभोभूवारिवातानां वह्नेरेते गुणाः स्मृता।।

(भा.प्र. मिश्र. 6/201)

अर्थात् द्रव्य स्थित गुणों लघु, गुरु, स्निग्ध, रूक्ष, तीक्ष्ण का निर्माण पञ्च महाभूतों आकाश, पृथ्वी, जल, वायु एवं अग्नि के आधार पर ही होता है।

गुर्वादयो गुणा द्रव्ये पृथिव्यादौ रसाश्रये।
रसेषु व्यपदिश्यन्ते साहचर्योपचारतः।।

(भा.प्र. मिश्र. 6/202)

अर्थात् इस पृथ्वी पर प्रत्येक द्रव्य ''**पञ्चमहाभूत**'' से निर्मित होता है। इनसे निर्मित होने वाला प्रत्येक रस यथाः-मधुररस=जल+पृथ्वी, अम्लरस-पृथ्वी+अग्नि, लवण रस-जल+अग्नि, कटु रस-वायु+अग्नि, तिक्तरस-वायु+आकाश और कषाय रस-वायु+पृथ्वी तत्त्व की बहुलता से निर्मित ''**पञ्चमहाभूतात्मक**'' ही होता है। इन्हीं वानस्पतिक द्रव्यों से स्वरस, कल्कादि विभिन्न कल्पनायें तैयार होने के कारण

Scanned with CamScanner

द्रव्यस्थित रसः गुण, वीर्य, विपाक और प्रभाव का महत्वपूर्ण स्थान होने से भैषज्य कल्पना का आधार भूत सिद्धान्त कहा जाता है।

यदि किसी योग में विरुद्धवीर्य द्रव्यों का प्रयोग करना हो तो इस प्रकार के द्रव्यों का प्रयोग करें, जो प्रधान कार्य का अवरोध न करे अर्थात् प्रधान गुणों को बाधित न करने वाले विरुद्ध वीर्य द्रव्यों का प्रयोग योग निर्माण में किया जा सकता है।

6. संस्कार (गुणान्तराधान) :-

संसार में उद्भव भेद के अनुसार त्रिविध द्रव्य (जांगम, औद्भिद और पार्थिव) पाये जाते हैं। किन्तु इनका प्रयोग रोगनाश हेतु प्राकृतिक रूप में नहीं किया जा सकता है। इन्हें शरीर के लिए उपयोगी अथवा औषधीय प्रयोग हेतु योग्य बनाने के लिए इनमें कुछ परिवर्तन करना आवश्यक होता है। आचार्य चक्रपाणि के अनुसार कल्पना द्रव्यों को शरीरोपयोगी बनाने हेतु किया जाने वाला संस्कार है। यथा :-

कल्पनं उपयोगार्थं संस्करणमिति यावत्।

(च. सू. 4 पर चक्रपाणि टीका)

अर्थात् कल्पना वह है जिसके द्वारा द्रव्यों को शरीरोपयोगी बनाया जाये, इसके अतिरिक्त द्रव्यों की कल्पना के प्रयोजन की व्याख्या करते हुए कहा है:-

शक्तिविशेष कल्पनार्थं च कल्पना क्रियते।

(च. सू. 4 पर चक्रपाणि टीका)

अर्थात् द्रव्यों में विशिष्ट शक्ति उत्पन्न करने के लिए कल्पना की जाती है, जिससे वे रोगनाशन में विशेष कार्यकारी हो सके। यह शक्ति औषध द्रव्यों में विभिन्न प्रक्रियाओं के द्वारा उत्पन्न होती है। इस शक्ति विशेष के उत्पादन में संस्कारों का अत्यधिक महत्व है। आचार्य चरक ने संस्कार के महत्व को वर्णित किया है और अष्टविध विशेषायतनों में करण (संस्कार) को एक आयतन बताया है। करण से निर्माण प्रक्रिया का ग्रहण किया जाता है। करण शब्द का अर्थ करते हुए आचार्य चरक ने कहा है :-

"करणं पुनः स्वाभाविकानां द्रव्याणामभिसंस्कारः। संस्कारो हि नाम गुणान्तराधानमुच्यते। ते गुणास्तोयाग्निसन्निकर्षशौचमन्थनदेशकालवासनभावनादिभिः कालप्रकर्षभाजनादिभिश्चाधीयन्ते।।" (च. वि. 1/22)

अर्थात् स्वाभाविक द्रव्यों में जो संस्कार किया जाता है, उसे करण कहते हैं। संस्कार के द्वारा द्रव्यों में गुणान्तराधान अथवा अन्य गुणों की उत्पत्ति होती है। यही संस्कार द्रव्यों को शरीरोपयोगी एवं रोगनाशक बनाने में कारण है। उसे भैषज्य कल्पना

Scanned with CamScanner

का आधारभूत सिद्धान्त माना जाता है। आधुनिक मतानुसार संस्कार एक ऐसा परिवर्तन है, जिसके द्वारा द्रव्य में गुणान्तराधान (भौतिक एवं रासायनिक परिवर्तन) होता है एवं द्रव्य शक्ति सम्पन्न (गुणकारी) हो जाता है। द्रव्यों में विशिष्ट क्रियाओं के द्वारा गुणान्तराधान किया जाता है। यथाः- (i) तोयसन्निकर्ष, (ii) अग्निसन्निकर्ष, (iii) शौच (शोधन), (iv) मन्थन, (v) देश, (vi) काल, (vii) वासन, (viii) भावना, (ix) कालप्रकर्ष और (x) भाजन।

(i) तोयसन्निकर्ष:–तोयसन्निकर्ष का सामान्य अर्थ जल संयोग लिया जाता है, किन्तु विशिष्ट अर्थ में तोयसन्निकर्ष किसी भी द्रव (स्वरस, क्वाथ, गोदुग्ध, गोमूत्र आदि) के संयोग का निर्देशक माना जा सकता है। द्रव्यों में तोयसन्निकर्ष अनेक प्रकार से हो सकता है। यथा :-

(अ) जल में भिगोकर (Infusion):- जल में भिगोने से द्रव्यों के गुणों में परिवर्तन देखा जाता है। उदाहरणतः–इमली अत्यधिक अम्ल होने से अरुचिकर होती है, इसके अतिरिक्त गुणों में उष्ण और सर होती है। किन्तु इसका जल में भिगोकर बनाया गया पानक (चिञ्चा पानक) रुचिकर, शीतल एवं दाहशान्तिकर होता है। इसी प्रकार धान्यक (धनिया) उष्णवीर्य है किन्तु इससे निर्मित हिम (धान्यक हिम) अन्तर्दाह, तृष्णाशामक होता है। इस प्रक्रिया का उपयोग भैषज्य कल्पना में अनेक योगों एवं कल्पनाओं के निर्माण में किया जाता है। उदाहरणतः–हिम निर्माण, फाण्टनिर्माण, आसवनिर्माण, तण्डुलोदक निर्माण आदि।

(ब) जल में घोलकर (Solution)–जल में घोलने से अनेक द्रव्यों में गुण परिवर्तन देखा जाता है। उदाहरणतः–देशी शर्करा शुष्क रूप में किंचित उष्ण होती है, किन्तु इसका जलीय विलयन शीतल एवं तृष्णाशामक होता है।

(स) शोधनोपक्रम (Purification):–जल अथवा द्रवों (अम्लरस, क्वाथ आदि) के द्वारा विभिन्न द्रव्यों का शोधन किया जाता है, जिससे वे संस्कारित हो जाते हैं। उदाहरणतः–शंख, प्रवाल आदि द्रव्यों का शोधन अम्ल द्रवों में किया जाता है। वत्सनाभ का शोधन गोमूत्र में किया जाता है। जिससे उनकी उग्रता, तीक्ष्णता का नाश हो जाता है।

(ii) अग्निसन्निकर्ष (By Application of Heat):–अग्निसन्निकर्ष निम्न क्रियाओं के रूप में होता है। यथा :-

(अ) वाष्पीकरण (Evaporation):–इस क्रिया के द्वारा किसी भी द्रव्य का द्रव भाग अग्नि की सहायता से वाष्पीकृत कर घनसत्व प्राप्त किया जाता है। उदाहरणतः- गिलोय घनसत्व, सर्पगन्धा घनसत्व, यवक्षार आदि।

Scanned with CamScanner

(ब) ऊर्ध्वपातन (Sublimation):–इस प्रक्रिया में दो समान पात्रों का प्रयोग किया जाता है, जिनके मुखों को सन्धिबन्धन कर दिया जाता है। नीचे के पात्र में रखे द्रव्य को अग्नि द्वारा वाष्पीकृत कर ऊपर के पात्र के निम्न तल पर एकत्रित करना ऊर्ध्वपातन कहलाता है। उदाहरणतः–हिंगुल से पारद प्राप्त करने के लिए ऊर्ध्वपातन किया जाता है।

(स) तिर्यक्पातन (Distillation):–इस क्रिया में किसी भी द्रव्य को वाष्पीकृत कर दूसरी और एकत्रित करते हैं, जिससे एक ओर अशुद्धियाँ तथा दूसरी ओर शुद्ध द्रव्य प्राप्त होता हैं। इस प्रक्रिया द्वारा अर्क निर्माण एवं पारद का तिर्यक् पातन किया जाता है।

(द) क्वाथ निर्माण (Decoction):–अग्निसन्निकर्ष के द्वारा ही क्वाथ कल्पना का निर्माण किया जाता है। इस कल्पना के द्वारा औषध द्रव्यों के जल में घुलनशील गुण या तत्व क्वाथ में आ जाते हैं। क्वाथ का प्रयोग अन्य अनेक कल्पनाओं के निर्माण में किया जाता है। उदाहरणतः– अरिष्ट निर्माण, क्षीरपाक, अवलेह, शार्कर, तैल निर्माण आदि।

(iii) शौच या शोधन (Purification):– शोधन के द्वारा द्रव्यों के दोषों एवं अशुद्धियों को दूर किया जाता है। इससे भौतिक एवं रासायनिक परिवर्तन होकर द्रव्य संस्कारित हो जाता है। शोधन प्रक्रिया के लिए प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप में जल संयोग एवं अग्नि संयोग किया जाता है। शोधन करने के लिए निम्न प्रक्रियायें की जाती है। यथा :–

(अ) प्रक्षालन/धोवनः–केवल प्रक्षालन या धोवन से द्रव्यों में नवीन गुणों की उत्पत्ति देखी जाती है। उदाहरणतः–शतधौत घृत और सहस्रधौत घृत (घी को जल से 100 बार या 1000 बार धोना) में घृत को संस्कारित किया जाता है। इसके द्वारा घृत अतिशीतल हो जाता है एवं दग्ध तथा अन्य पित्तज विकारों में अत्यधिक उपयोगी हो जाता है। जल के स्थान पर यदि इसी घृत को मंजिष्ठादि क्वाथ से धोया जाए तो मंजिष्ठादि क्वाथ के गुण घृत में आ जाते हैं तथा यह घृत विभिन्न त्वक्रोगों में अधिक उपयोगी हो जाता है।

(ब) गालन (Filtration):–किसी द्रव्य को वस्त्र से छानने पर उसकी अशुद्धियाँ एवं अन्य अवांछित तत्त्व पृथक् हो जाते हैं। इस प्रक्रिया द्वारा गन्धक को गोघृत के साथ द्रवित कर वस्त्र के द्वारा गोदुग्ध या भृंगराज स्वरस में छानते हैं। इसी प्रकार गुग्गुलु को द्रवित कर त्रिफला क्वाथ में छाना जाता है।

Scanned with CamScanner

इन प्रक्रियाओं के अतिरिक्त द्रव्यों के शोधन अथवा दोषहरण हेतु द्रव्यों के स्वरस, क्वाथ, कांजी, गोमूत्र, गोघृत आदि द्रव द्रव्यों के साथ मर्दन, स्वेदन, पातन, निर्वाप, भर्जन इत्यादि अनेक प्रक्रियाओं का प्रयोग किया जाता है।

(iv) मंथन (Trituration):–मंथन क्रिया द्वारा भी द्रव्य में गुणान्तराधान किया जाता है। उदाहरणतः दधि शोथकर है, किन्तु उससे मंथन क्रिया द्वारा निर्मित तक्र शोथघ्न माना गया है:-

शोथकृद् दधि शोथघ्न सस्नेहमपि मन्थनात्। (चक्रपाणि)

(v) देश:–देश जांगम, आनूप एवं साधारण भेद से तीन प्रकार का होता है। देश विशेष का प्रभाव वनस्पतियों एवं शरीर दोनों पर होता है। उदाहरणतः- आनूप देश में उत्पन्न औषधियाँ कफकारक एवं वातशामक गुण युक्त होती है। इसके अतिरिक्त स्थान विशेष में उत्पन्न औषध द्रव्यों को श्रेष्ठ माना जाता है। उदाहरणतः केसर कश्मीर की, पिप्पली मगधप्रदेश की, अश्वगंधा नागौर की, स्फटिका (फिटकरी) सौराष्ट्र की श्रेष्ठ मानी जाती है।

संग्रहण/संरक्षण स्थान:–औषधियों को विशिष्ट विधि से संग्रहित करने पर उनमें विशिष्ट गुण उत्पन्न हो जाते हैं। उचित संग्रहण के द्वारा औषधियाँ दीर्घकाल तक सुरक्षित रहती है। अनेक बार संरक्षण द्वारा औषधियों में नवीन गुणों की उत्पत्ति होती है। उदाहरणतः- आर्द्रक को गीली रेत में लंबे समय तक सुरक्षित रखा जा सकता है। इसी प्रकार अमलतास का फल प्रयोग करने से पूर्व एक सप्ताह तक रेत में दबाकर रखने से यह फल ठीक प्रकार से पक्व होकर औषधीय प्रयोग हेतु उपयुक्त हो जाता है। आम्र को मधु अथवा तैल में डालकर लंबे समय तक सुरक्षित रखा जाता है।

(vi) काल (Effect of Season & Time):–काल के अन्तर्गत समय एवं ऋतु दोनों का ग्रहण किया जाता है। किसी भी द्रव्य का कालपाक आवश्यक माना जाता है। इसके अभाव में वह द्रव्य हानिकारक होता है। उदाहरणतः-मन्दक दधि (उचित प्रकार से नहीं जमा हुआ दधि) कालपाक के अभाव में त्रिदोषकारक होता है। जबकि पूर्णरूप से जमा हुआ दधि वातशामक माना गया है। इसी प्रकार अपक्व आम अरुचिकारक है एवं अपक्व कैथ का फल कण्ठ के लिए हानिकारक माना गया है, किन्तु इनके पकने पर ये दोष नष्ट हो जाते हैं। आयुर्वेद में अनेक द्रव्यों को पुराना ही ग्रहण करने का निर्देश है। यथा :- विडंग, पिप्पली, मधु एवं घृत पुराने ही ग्रहण करने चाहिए। इन द्रव्यों में पुराने होने पर सम्भवतः कालपाक के कारण गुणान्तराधान होता है। रसशास्त्रीय द्रव्यों में मण्डूर को कम से कम 60 वर्ष पुराना होने पर ग्रहण

Scanned with CamScanner

करने का निर्देश दिया गया है। इससे कम पुराने मण्डूर को विषतुल्य माना गया है। इस प्रकार काल के कारण औषधियों में गुणवृद्धि होती है।

काल के अतिरिक्त ऋतु का भी महत्व माना गया है। औषध के संग्रहण हेतु अंग प्रत्यंगों को विशेष ऋतु में संग्रहित करने का निर्देश किया गया है। उदाहरणतः- मूल को ग्रीष्म एवं शिशिर ऋतु में संग्रहित करना निर्दिष्ट है। त्वक्, कन्द एवं क्षीर को शरद ऋतु में एकत्रित करना चाहिए।

(vii) वासन–वासनोपक्रम (Flavouring):–वास से तात्पर्य गन्ध से है। गन्ध के द्वारा द्रव्यों में संस्कार (गुणान्तराधान) किया जाता है। उदाहरणतः- अरुचिकारक अवलेह एवं पाक में सुगन्धित द्रव्य मिला देने से सुगन्ध युक्त होकर रुचिकारक बन जाते हैं। अवलेह एवं पाक में केसर, कस्तूरी, लवंग, एला, दालचीनी, तेजपत्र, जायफल, जावित्री इत्यादि द्रव्य मिलाने पर ये द्रव्य सुगन्ध के द्वारा गुण एवं रुचि दोनों उत्पन्न करते हैं।

(viii) भावनोपक्रमः–भावना से तात्पर्य किसी द्रव्य या औषधि में द्रव की सहायता से गुणों की वृद्धि करना है। भावना के द्वारा विभिन्न द्रव्यों को संस्कारित कर उनके गुणों में वृद्धि की जा सकती है, जैसा कि चरक संहिता में कहा गया है :-

"भूयश्चैषा बलाधानं कार्यं स्वरसभावनैः।
सुभावितं ह्यल्पमपि द्रव्यं स्याद्बहुकर्मकृत्।।
स्वरसै तुल्यवीर्ये वा तस्माद् द्रव्याणि भावयेत्।"

(च. क. 12/47)

अर्थात् द्रव्य में बलाधान (गुणवृद्धि) करने के लिए उसी द्रव्य या तुल्य वीर्य वाले द्रव्य के स्वरस, क्वाथ आदि की भावना देने से अल्पवीर्य द्रव्य भी बहुवीर्यवान हो जाता है। उदाहरणतः-

1. आमलकी चूर्ण में आमलकी स्वरस की 21 भावना देने से वह अत्यधिक गुणकारी हो जाता है। इसे ही आमलकी रसायन कहा गया है।

2. त्रिवृत् (निशोथ) चूर्ण में त्रिवृत् क्वाथ अथवा स्नुहीक्षीर की भावना देने पर वह जयपाल के सदृश तीक्ष्ण विरेचक का कार्य करता है।

3. रसशास्त्र में भावना का विशेष महत्व है। पारद, स्वर्ण, रजत, अभ्रक आदि निरीन्द्रिय द्रव्यों को शरीरोपयोगी बनाने के लिए भावना दी जाती है। वानस्पतिक द्रव्यों की भावना के द्वारा इन पार्थिव द्रव्यों में सेन्द्रियत्व गुण उत्पन्न किये जाते हैं।

4. शतपुटी अभ्रक भस्म एवं सहस्रपुटी अभ्रकभस्म में गुणों का अन्तर पुटों की अपेक्षा भावना के कारण अधिक उत्पन्न होता है।

Scanned with CamScanner

भावना से तीक्ष्ण, उष्ण गुण युक्त द्रव्यों एवं विष द्रव्यों की उग्रता भी कम की जाती है। भावना द्वारा विष के दोषहरण के अतिरिक्त गुणवर्धन भी होता है। उदाहरणतः- अहिफेन को आर्द्रक स्वरस की 21 भावना देने से शोधन हो जाता है।

(ix) कालप्रकर्षोपक्रमः- काल के कारण औषधों में गुणवृद्धि या गुणहानि संभव है। भैषज्य कल्पना के अन्तर्गत अनेक कल्पनाओं के निर्माण में काल का निर्देश किया गया है। आसव-अरिष्ट का निर्माण औषध द्रव्यों को कुछ कालपर्यन्त रखने पर संधान क्रिया के द्वारा किया जाता है। यह कल्पना दीर्घकाल तक सुरक्षित एवं उपयोगी होती है। इसके अतिरिक्त स्नेहपाक (घृत-तैल निर्माण) में भी अनेक स्थलों पर समय सीमा का निर्देश दिया गया है। इसके अतिरिक्त रसौषधियों एवं धातुभस्मों के लिए कहा गया है कि ये पुरानी होने पर श्रेष्ठ होती है। यथाः-

"पुराणाः स्युः गुणैर्युक्ता आसवा धातवो रसाः।।"

(शा. सं. पू. ख. 1/57)

(x) भाजनोपक्रम (Effect of Container) :- पात्र के प्रभाव से द्रव्य अथवा औषध संस्कारित एवं गुणकारी हो जाती है। इसके विपरीत पात्र के प्रभाव से औषध हानिकारक एवं हीनवीर्य भी हो जाती है। उदाहरणतः-

(अ) ताम्रपात्र में दधि एवं घृत रखना हानिकारक माना गया है, जबकि ताम्रपात्र में जल रखना श्रेष्ठ माना गया है।

(ब) नवीन लौहपात्र पर त्रिफलाकल्क का लेप करने से गुणयुक्त हो जाता है। आचार्य चरक ने इसे त्रिफला रसायन कहा है।

(स) रजतपात्र में पेया पिलाने का विधान बताया है, जिससे वह शीतल, कल्याणप्रद एवं विशिष्ट गुणयुक्त हो जाती है।

(द) विषनाशक 'अजीत अगद' को गोशृंग में रखने का निर्देश है, क्योंकि गोशृंग स्निग्ध एवं उष्ण होता है तथा अगद को हीनवीर्य नहीं होने देता है। इसके अतिरिक्त गोशृंग कोई धातुनिर्मित पात्र नहीं है, जिसके कारण अगद में कोई रासायनिक प्रक्रिया संभव नहीं है जिससे अगद किसी प्रकार से प्रभावित नहीं हो पाता है।

7. औषध योगों का नामकरण :-

यदौषधं तु प्रथमं यस्य योगस्य कथ्यते।
तन्नाम्नैव स योगो हि कथ्यतेऽत्र विनिश्चयः।।

(शा. सं. पू. ख. 1/36)

Scanned with CamScanner

अर्थात् जिस औषध योग में सर्वप्रथम जिस द्रव्य का नाम होता है। वह औषध योग उसी द्रव्य के नाम से कहा गया है। लेकिन अन्य आधार पर भी **''प्राधान्येन व्यपदेशा भवन्ति''** औषधि योगों के नामकरण शास्त्रों में किए गए हैं। यथा:–

1. द्रव्यानुसार – पुनर्नवादिमण्डूर, चित्रकादि वटी
2. आकृत्यनुसार – कज्जली, रसपर्पटी
3. विशेषकार्यानुसार – क्रव्याद रस
4. कालानुसार – पुष्यानुग चूर्ण
5. मात्रानुसार – क्षीरषट्पल घृत
6. रोगनाशकतानुसार – कुष्ठारि रस, ज्वरमुरारिरस
7. निर्मातानुसार – नागार्जुनाभ्ररस, लवणभास्कर चूर्ण
8. प्रथम सेवनकर्त्तानुसार – च्यवनप्राश
9. मान के अनुसार – कंस हरीतकी
10. प्रमुख घटकानुसार – योगराज गुग्गुलु
11. गुण एवं प्रभावानुसार – चन्द्रप्रभा वटी, आरोग्यवर्धिनी वटी
12. देवताओं के अस्त्रशस्त्रानुसार – सुदर्शन चूर्ण, ग्रहणी गजेन्द्र रस
13. निश्चित समय प्रभावानुसार – अष्टयामिका वटी, अष्टयामिका रस
14. आविष्कारकानुसार – ब्रह्म रसायन, कांकायन वटी

Scanned with CamScanner

तृतीय अध्याय

मान प्रकरण

मान की निरुक्ति :-

"**मीयतेऽनेनेति मानम्**"। (अमरकोश-दीक्षित)

अर्थात् जिसके द्वारा पदार्थ को मापा या तोला जाये, उसे मान कहा जाता है।

मान का प्रयोजन :-

न मानेन बिना युक्तिर्द्रव्याणां जायते क्वचित्।
अतः प्रयोगकार्यार्थं मानमत्रोच्यते मया।।

(शा. सं. पू. ख. 1/14)

परिमाणं बिना क्वापि नागदाज्जायते फलम्।
तस्मात् सर्वे यतन्तेऽत्र परिमाणविधौ सदा।।

(वै. प. प्र. 1/7)

मानापेक्षितमाचार्या भेषजानां प्रकल्पनम्।
मेनिरे यत्ततोमानमुच्यते पारिभाषिकम्।।

(वै. प. प्र. 1/9)

अर्थात् मान के ज्ञान के बिना रोगग्रस्त एवं स्वस्थ शरीर पर द्रव्यों का प्रयोग नहीं किया जा सकता है। क्योंकि औषध एवं आहार द्रव्यों की विभिन्न मात्राओं की कल्पना एक निश्चित मान में ही की जाती है। औषध के विभिन्न योगों में द्रव्यों का संयोग भी एक निश्चित मात्रा में होता है। अतः चिकित्सा में औषध एवं पथ्य के प्रयोग के लिए तथा औषध योग के निर्माण के लिए मान का ज्ञान अत्यावश्यक होता है।

दोषभेषजदेशकालबलशरीरसारआहारसात्म्यसत्त्वप्रकृतिवयसां मानमवहितमनसा यथावज्ज्ञेयं भवति भिषजा, दोषादिमानज्ञानायत्तत्वात् क्रियायाः न ह्यमानज्ञो दोषादीनां भिषग्व्याधि निग्रहसमर्थो भवति। (च.वि.1/3)

अर्थात् महर्षि अग्निवेश के अनुसार चिकित्सक को चिकित्सा करते समय दोष, भेषज, देश, काल, बल, शरीर, सार, आहार, सात्म्य, सत्त्व, प्रकृति और आयु के मान का ज्ञान होना अति आवश्यक होता है। दोष आदि उपरोक्त सभी के मान का

Scanned with CamScanner

ज्ञान नहीं होने पर चिकित्सक रोगों की चिकित्सा करने में समर्थ नहीं होता है। अर्थात् मान के ज्ञान के बिना किसी भी औषध एवं आहार कल्पना के निर्माण में औषध एवं आहार द्रव्यों की योजना किया जाना संभव नहीं होता है। और इनसे यथेष्ट लाभ होने के बजाय रोगी एवं स्वस्थ पुरुष को हानि होना निश्चित रहता है। अतः यह स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि मान के ज्ञान के बिना औषध एवं आहार द्रव्य की कोई भी कल्पना नहीं की जा सकती है।

मान के भेद :–

मानं च द्विविधं प्राहुः कालिङ्गं मागधं तथा।
कालिङ्गान्मागधं श्रेष्ठमेवं मानविदो विदुः॥

(च. क. 12/105)

कालिङ्गं मागधं चैव द्विविधं मानमुच्यते।
कालिङ्गान्मागधं श्रेष्ठं मानं मानविदो विदुः॥

(शा. सं. पू. ख. 1/43)

अर्थात् आचार्यो ने कालिङ्गमान और मागधमान भेद से मान को दो प्रकार का माना है, जिसमें कालिङ्गमान से मागधमान को सर्वश्रेष्ठ बतलाया गया है। सम्भवतः मगध (बिहार) और कलिङ्ग (उड़ीसा) प्रदेशों में सर्वप्रथम प्रचलित होने से इनका नामकरण हुआ है।

पौतवं द्रुवयं पाय्यमिति मानार्थकं त्रयम्।
मानं तुलाङ्गुलिप्रस्थैः गुञ्जापञ्चाद्यमाषकः॥

(अ. को. 2/9/85)

पाय्यं हस्तादिभिर्मानं द्रुवयं कुडवादिभिः।
पौतवं तुलया तस्य सूत्रं स्याद्भागसूत्रकम्॥

(वैजयन्ती कोश)

अर्थात् प्राचीन कोश ग्रन्थों में पौतवमान, द्रुवयमान और पाय्यमान भेद से मान को तीन प्रकार का माना है। पौतव मान तुला से, द्रुवयमान कुड़वादि से और पाय्यमान हाथ आदि या नापने की डोरी (भागसूत्र) से नापकर ज्ञात किया जाता है।

1. पौतवमान :– तुला पर ठोस द्रव्यों को तौलने पर उसे पौतवमान कहा जाता है।

2. द्रुवयमान :– द्रव पदार्थ को पात्र विशेष में मापने पर उसे द्रुवयमान कहा जाता है।

3. पाय्यमान (दैर्घ्यमान) :– पदार्थो की लम्बाई, चौड़ाई आदि की दूरी मापने पर उसे पाय्यमान कहा जाता है।

Scanned with CamScanner

1. पौतवमान

चरकोक्त मागधमान :-

षड्ध्वंशयस्तु मरीचिः स्यात् षण्मरीच्यस्तु सर्षपः।
अष्टौ ते सर्षपा रक्तास्तण्डुलश्चापि तद्द्वयम्।।
धान्यमाषो भवेदेको धान्यमाषद्वयं यवः।
अण्डिका ते तु चत्वारस्ताश्चतस्रस्तु माषकः।
हेमश्च धान्यकश्चोक्तो भवेच्छाणस्तु ते त्रयः।
शाणौ द्वौ द्रक्षणं विद्याद् कोलं बदरमेव च।।
विद्याद् द्वौ द्रक्षणौ कर्षं सुवर्णं चाक्षमेव च।
विडालपदकं चैव पिचुं पाणितलं तथा।।
तिन्दुकं च विजानीयात् कवलग्रहमेव च।
द्वे सुवर्णे पलार्धं स्याच्छुक्तिरष्टमिका तथा।
द्वे पलार्धे पलं मुष्टिः प्रकुञ्चोऽथ चतुर्थिका।
बिल्वं षोडशिका चाम्रं द्वे पले प्रसृतं विदुः।
अष्टमानं तु विज्ञेयं कुडवौ द्वौ तु मानिका।
पलं चतुर्गुणं विद्यादञ्जलिं कुडवं तथा।
चत्वारः कुडवाः प्रस्थश्चतुःप्रस्थमथाढकम्।
पात्रं तदेव विज्ञेयं कंसः प्रस्थाष्टकं तथा।
कंसश्चतुर्गुणो द्रोणश्चार्मणं नल्वणं च तत्।
स एव कलशः ख्यातो घटमुन्मानमेव च।।
द्रोणस्तु द्विगुणः शूर्पो विज्ञेयः कुम्भ एव च।
गोणीं शूर्पद्वयं विद्याद् खारीं भारं तथैव च।
द्वात्रिंशतं विजानीयाद्वाहं शूर्पाणि बुद्धिमान्।
तुला पलशतं विद्यात् परिमाणविशारदः।।
शुष्कद्रव्येष्विदं मानमेवादि प्रकीर्तितम्।
द्विगुणं तद् द्रवेष्विष्टं तथा सद्योधृतेषु च।।

(च. क. 12/87-98)

अर्थात् आचार्य चरक का पौतवमान ध्वंशी या वंशी से प्रारम्भ होता है। खिड़कियों से आती हुई सूर्य किरण में उड़ते हुए धूल के कण दिखाई देते हैं, उन्हें ध्वंशी या वंशी कहते हैं। दाशमिक मान (Metric system) में एक ध्वंशी लगभग 0.054 मि.ग्रा. के बराबर होता है।

1 ध्वंशी = 0.054 mg.

			दाशमिक मान	पर्याय नाम
6 ध्वंशी	=	1 मरीचि	.33मि.ग्रा.	–
6 मरीचि	=	1 रक्तसर्षप	1.95 मि.ग्रा.	–
8 रक्तसर्षप	=	1 तण्डुल	15.62 मि.ग्रा	–
2 तण्डुल	=	1 धान्यमाष	31.25 मि.ग्रा	–
2 धान्यमाष	=	1 यव	62.5 मि.ग्रा	–
2 यव	=	1 गुञ्जा (रत्ती)	125 मि.ग्रा	रक्तिका
4 यव	=	1 अण्डिका	250 मि.ग्रा	–
4 अण्डिका	=	1 माषक	1 ग्राम	हेम, धान्यक
3 माषक	=	1 शाण	3 ग्राम	–
2 शाण	=	1 कोल	6 ग्राम	द्रंक्षण, बदर
2 कोल	=	1 कर्ष(तोला)	12 ग्राम	सुवर्ण, अक्ष, विडालपदक, पिचु, तिन्दुक, पाणितल, कवलग्रह
2 कर्ष	=	1 शुक्ति	24 ग्राम	पलार्ध, अष्टमिका
2 शुक्ति	=	1 पल	48 ग्राम	मुष्टि, प्रकुञ्च, बिल्व, आम्र, चतुर्थिका, षोडशिका
2 पल	=	1 प्रसृति	96 ग्राम	प्रसृत
2 प्रसृति	=	1 कुडव	192 ग्राम	अञ्जलि
2 कुडव	=	1 मानिका	384 ग्राम	शराव
2 मानिका	=	1 प्रस्थ	768 ग्राम	
4 प्रस्थ	=	1 आढ़क	3.072 कि.ग्रा.	कंस, पात्र, भाजन

4 कर्ष = 1 पल

4 आढ़क	=	1 द्रोण	12.288 कि.ग्रा.	अर्मण, नल्वण, कलश, घट, उन्मान
2 द्रोण	=	1 शूर्प	24.576 कि.ग्रा.	कुम्भ
2 शूर्प	=	1 खारी	49.152 कि.ग्रा.	गोणी, भार
32 शूर्प	=	1 वाह	786.432 कि.ग्रा.	
100 पल	=	1 तुला	4.800 कि.ग्रा.	

यह मान शुष्क द्रव्यों का कहा गया है, आर्द्र (सद्योधृत) द्रव्यों एवं द्रव द्रव्यों का मान दुगुना लेना चाहिए।

विमर्श :- 1. आचार्य चरक ने गुञ्जा (रत्ती) को मान में नहीं लिखा है। प्रसंगानुसार ऊपर 2 यव = 1 गुञ्जा (125 मि.ग्रा.) लिखा गया है।

2. मान शब्दों के अन्य पर्यायवाची शब्द चरक संहिता के मूल उद्धरण के आधार पर लिखे गये हैं।

3. प्रत्येक मान के साथ दाशमिक मान (Metric system) में परिवर्तित कर जो वजन लिखा गया है, वह भारतीय आयुर्वेद योग संग्रह (A.F.I) को आधार मानकर लिखा गया है। A.F.I. में 1 गुञ्जा = 125 मि.ग्रा. से मान प्रारम्भ किया है। कर्ष (तोला) को 12 ग्राम का माना है। A.F.I द्वारा स्वीकृत मान को एकरूपता की दृष्टि से मानना उचित है। इन मीट्रिक मानों को आयुर्वेदीय भेषज समिति ने भारतीय मानक संस्थान से परामर्श करके अनुमोदित किया है।

सुश्रुतोक्त कालिङ्गमानः-

पलकुडवादीनामतो मानं तु व्याख्यास्यामः-तत्र द्वादश धान्यमाषामध्यमाः सुवर्णमाषकः ते षोडश सुवर्णम्, अथवा मध्यमनिष्पावा एकोनविंशतिर्धरणं, तान्यर्धतृतीयानि कर्षः, ततश्चोर्ध्वं चतुर्गुणमभिवर्धयन्तः पलकुडवप्रस्थाढकद्रोणा इत्यभि निष्पद्यन्ते, तुला पुनः पलशतं, ताः पुनर्विंशतिर्भारः, शुष्काणामिदं मानम्। आर्द्रद्रव्याणां च द्विगुणमिति। (सु.चि.31/7)

आचार्य सुश्रुत ने कालिङ्गमान माना है, जिसका प्रारम्भ निम्न प्रकार से किया है :-

Scanned with CamScanner

मध्यम प्रमाण के 12 धान्यमाष	= 1 सुवर्णमाषक	= 750 मि.ग्रा.
16 सुवर्णमाषक	= 1 सुवर्ण(1कर्ष)	= 12 ग्राम
अथवा		
मध्यम प्रमाण के 19 निष्पाव	= 1 धरण	= 4.8 ग्राम
2 ½ धरण	= 1 कर्ष	= 12 ग्राम

इसके बाद उत्तरोत्तर 4 गुना बढ़ाते जाने पर पल-कुडव-प्रस्थ-आढ़क-द्रोण होते हैं।

100 पल = 1 तुला (4.800 कि.ग्रा.)

20 तुला = 1 भार (96 कि.ग्रा.)

यह मान शुष्क द्रव्यों के लिए कहा गया है, आर्द्र द्रव्य एवं द्रव द्रव्यों का मान इससे दुगुना बताया है।

विमर्श :- 1. आचार्य सुश्रुत ने मान का प्रारम्भ दो प्रकार से किया है। यथाः-

(क) मध्यम प्रमाण के धान्यमाष (उड़द) से, जो दाशमिक मान में लगभग 62.5 मि. ग्रा. का माना जा सकता है।

(ख) मध्यम प्रमाण के निष्पाव (सेमबीज), जो दाशमिक मान में 252.6 मि. ग्रा. का माना जा सकता है।

2. सुश्रुत का मान कालिङ्गमान है, जो मागधमान से लघु होता है, इसलिए इसमें सुवर्णमाषक (माशा)-750 मि.ग्रा. का होता है तथा कर्ष (सुवर्ण या तोला) 16 सुवर्णमाषक का होता है, जो मागधमान के समान ही 12 ग्राम के बराबर होता है। सुश्रुत का मान सुवर्णमाषक तक मागधमान से लघु है। आगे के मान कर्ष (तोला) पल-कुडव आदि बराबर ही होते हैं। आचार्य चरक एवं सुश्रुत के अनुसार उपरोक्त मान केवल शुष्क द्रव्यों के लिए कहा गया है। यदि आर्द्र द्रव्य अथवा द्रव पदार्थ लेना हो तो उनको दुगुनी मात्रा में लेने का निर्देश किया है।

शार्ङ्गधरोक्त मागधमान:-

त्रसरेणुर्बुधैः प्रोक्तस्त्रिंशता परमाणुभिः।
त्रसरेणुस्तु पर्यायनाम्ना वंशी निगद्यते॥
जालान्तरगते भानौ यत्सूक्ष्मं दृश्यते रजः।
तस्य त्रिंशत्तमो भागः परमाणुः स कथ्यते॥

Scanned with CamScanner

जालान्तरगतैः सूर्यकरैर्वंशी विलोक्यते।
षड्वंशीभिर्मरीचिः स्यात्ताभिः षड्भिस्तु राजिका।।
तिसृभि राजिकाभिश्च सर्षपः प्रोच्यते बुधैः।
यवोऽष्ट सर्षपैः प्रोक्तो गुञ्जा स्यात्तच्चतुष्टयम्।।
षड्भिस्तु रक्तिकाभिः स्यान्माषको हेमधान्यकौ।
माषैश्चतुर्भिः शाणःस्याद्धरणः स निगद्यते।
टङ्कः स एव कथितस्तद्द्वयं कोल उच्यते।
क्षुद्रको वटकश्चैव द्रंक्षणः स निगद्यते
कोलद्वयं च कर्षः स्यात् स प्रोक्तः पाणिमानिका।।
अक्षं पिचुः पाणितलं किञ्चित्पाणिश्च तिन्दुकम्।
विडालपदकं चैव तथा षोडशिका मता।।
करमध्यो हंसपदं सुवर्णं कवलग्रहः।
उदुम्बरं च पर्यायैः कर्ष एव निगद्यते।
स्यात्कर्षाभ्यामर्धपलं शुक्तिरष्टमिका तथा।
शुक्तिभ्यां च पलं ज्ञेयं मुष्टिराम्रं चतुर्थिका।।
प्रकुञ्चःषोडशी बिल्वं पलमेवात्र कीर्त्यते।
पलाभ्यां प्रसृतिर्ज्ञेया प्रसृतश्च निगद्यते।।
प्रसृतिभ्यामञ्जलिः स्यात्कुडवोऽर्धशरावकः।
अष्टमानं च स ज्ञेयः कुडवाभ्यां च मानिका।।
शरावोऽष्टपलं तद्वज्ज्ञेयमत्र विचक्षणैः।
शरावाभ्यां भवेत् प्रस्थश्चतुःप्रस्थैस्तथाढकम्।।
भाजनं कंसपात्रं च चतुःषष्टिपलं च तत्।
चतुर्भिराढकैर्द्रोणः कलशो नल्वणोन्मनो।।
उन्मानश्च घटो राशिर्द्रोणपर्याय वाचकाः।
द्रोणाभ्यां शूर्पकुम्भौ च चतुःषष्टिशरावकाः।।
शूर्पाभ्यां च भवेद् द्रोणी वाहो गोणी च सा स्मृता।
द्रोणीचतुष्टयं खारी कथिता सूक्ष्मबुद्धिभिः।।
चतुः सहस्रपलिका षण्णवत्यधिका च सा।
पलानां द्विसहस्रं च भार एकः प्रकीर्तितः।।
तुला पलशतं ज्ञेया सर्वत्रैवैष निश्चयः।।

(शा.सं.पू.ख.1/15-31)

आचार्य शार्ङ्गधर ने खिड़की में से आयी हुई सूर्य की किरणों के प्रकाश में दिखाई देने वाले एक सूक्ष्म धूल के कण के तीसवें भाग को परमाणु कह कर मान का प्रारम्भ "परमाणु" से किया है-

30 परमाणु	=	1 वंशी	2 पल	=	1 प्रसृति
6 वंशी	=	1 मरीचि	2 प्रसृति	=	1 कुडव
6 मरीचि	=	1 राजिका	2 कुडव	=	1 मानिका (शराव)
3 राजिका	=	1 सर्षप	2 शराव	=	1 प्रस्थ
8 सर्षप	=	1 यव	4 प्रस्थ	=	1 आढ़क
4 यव	=	1 गुञ्जा	4 आढ़क	=	1 द्रोण
6 रत्ती (गुञ्जा)	=	1 माषक	2 द्रोण	=	1 शूर्प
4 माषक	=	1 शाण	2 शूर्प	=	1 द्रोणी
2 शाण	=	1 कोल	4 द्रोणी	=	1 खारी
2 कोल	=	1 कर्ष	2000 पल	=	1 भार
2 कर्ष	=	1 शुक्ति	100 पल	=	1 तुला
2 शुक्ति	=	1 पल			

शार्ङ्गधर के अनुसार मानों के पर्यायवाची शब्द

शाण = धरण, टंक
कोल = क्षुद्रक, वटक, टंकद्वय, द्रंक्षण, बदर
कर्ष = पाणिमानिका, पाणि, करमध्य, हंसपद, उदुम्बर, चतुःशाण, अक्ष, पिचु, पाणितल, तिन्दुक, विडालपदक, षोडशिका, सुवर्ण, कवलग्रह
शुक्ति = अर्धपल, अष्टमिका
पल = मुष्टि, आम्र, चतुर्थिका, प्रकुञ्च, षोडशी, बिल्व
प्रसृति = प्रसृत
कुडव = अर्धशराव, अष्टमान, अंजलि
मानिका = शराव, अष्टपल
प्रस्थ = षोडशपल
आढ़क = भाजन, कंसपात्र, चतुषष्टिपल
द्रोण = कलश, नल्वण, अर्मण, उन्मान, घट, राशि, उन्मन
शूर्प = कुम्भ, चतुषष्टिशराव
द्रोणी = वाही, गोणी
खारी = द्रोणीचतुष्टय

Scanned with CamScanner

चरक, सुश्रुत एवं शार्ङ्गधर के मानों की तुलना एवं समन्वय:-

यद्यपि तीनों आचार्यों के प्रारम्भिक मान परिभाषाओं (रत्ती, माशा, शाण, कर्ष तक) में अन्तर है, किन्तु कर्ष से आगे के मान एक जैसे है। इन तीनों आचार्यों के मानों की तुलना निम्न प्रकार की जा सकती है:-

1. चरक ने 8 रत्ती का 1 माशा माना है, 3 माशा का 1 शाण (24 रत्ती) और 12 माशा का 1 कर्ष (96 रत्ती) माना है।

2. सुश्रुत ने 12 धान्यमाष (उड़द) का 1 सुवर्णमाषक (माशा) माना है और 16 सुवर्णमाषक का 1 कर्ष (192 उड़द = 96 रत्ती) माना है। वजन करने पर 2 उड़द की 1 रत्ती होती है।

3. शार्ङ्गधर ने 6 रत्ती का माशा माना है और 4 माशा का 1 शाण (24 रत्ती) और 16 माशा का 1 कर्ष (96 रत्ती) माना है।

इस प्रकार तीनों आचार्यों ने 96 रत्ती का कर्ष माना है और शाण 24 रत्ती का माना है। इस प्रकार तीनों आचार्यों ने शाण, कोल, कर्ष एक जैसे माने है।

शार्ङ्गधरोक्त कालिङ्गमान:-

यवोद्वादशभिर्गौरसर्षपैः प्रोच्यते बुधैः।
यवद्वयेन गुञ्जा स्यात् त्रिगुञ्जो वल्ल उच्यते।
माषो गुञ्जाभिरष्टाभिः सप्तभिर्वा भवेत्क्वचित्।।
स्याच्चतुर्माषकैः शाण स निष्कष्टङ्क एव च।
गद्याणो माषकैः षड्भिः कर्षः स्याद्दशमाषकः।
चतुष्कर्षैः पलं प्रोक्तं दशशाणमितं बुधैः।
चतुष्पलैश्च कुडवं प्रस्थाद्याःपूर्ववन्मता ।।

(शा. सं. पू. ख. 1/39-42)

12 गौर सर्षप	=	1 यव	6 माष	=	1 गद्याण
2 यव	=	1 रत्ती	10 माष	=	1 कर्ष
3 रत्ती	=	1 वल्ल	4 कर्ष	=	1 पल
8 रत्ती	=	1 माषक	4 पल	=	1 कुड़व
7 रत्ती	=	1 माषक			
4 माषक	=	1 शाण (निष्क, टंक)			

इसके आगे प्रस्थादि मान मागधमान के समान ही होते हैं।

Scanned with CamScanner

शार्ङ्गधरोक्त चतुर्गुण सूत्रः-

माषटङ्काक्षबिल्वानि कुडवः प्रस्थमाढ़कम् ।
राशिर्गोणी खारिकेति यथोत्तरचतुर्गुणाः ।।
(शा. सं. पू. ख. 1/32)

आचार्य शार्ङ्गधर ने मागध मान को सामान्य रूप से समझने के लिए चतुर्गुण सूत्र का निर्देश किया है। यथाः-

4 माष	=	1 टङ्क (शाण)	4 प्रस्थ	=	1 आढ़क
4 टङ्क	=	1 अक्ष (कर्ष)	4 आढ़क	=	1 राशि (द्रोण)
4 अक्ष	=	1 बिल्व (पल)	4 राशि	=	1 गोणी
4 बिल्व	=	1 कुड़व (अञ्जलि)	4 द्रोणी	=	1 खारी (गोणी)
4 कुड़व	=	1 प्रस्थ			

रसार्णवोक्त मानः-

षट्त्रुट्यश्चैकलिक्षा स्यात् षट्लिक्षा यूक एव च ।
षट्यूकास्तु रजः संज्ञाः कथितास्तत्र सुव्रते ।।
षड्रजः सर्षप साक्षात् सिद्धार्थः स च कीर्तितः ।
षट् सिद्धार्थाश्च देवेशि! यवस्त्वेकः प्रकीर्तितः ।।
षड् यवैरेकगुञ्जा स्यात् षड् गुञ्जाश्चैक माषकः ।
माषा द्वादश तोलः स्याद् अष्टौ तोलाः पलं भवेत् ।।
द्वात्रिंशत्पलकं देवि! शुभन्तु परिकीर्तितम् ।
शुभस्य तु सहस्रे द्वे भार एकः प्रकीर्तितः ।।
(रसार्णव 10/32-35)

6 त्रुटि	=	1 लिक्षा	6 रत्ती	=	1 मापक
6 लिक्षा	=	1 यूक	12 मापक	=	1 तोला
6 यूक	=	1 रज	8 तोला	=	1 पल
6 रज	=	1 सर्षप	32 पल	=	1 शुभ
6 सर्षप	=	1 यव	2000शुभ	=	1 भार
6 यव	=	1 रत्ती			

रसरत्नसमुच्चयोक्त मानः-

त्रुटिःस्यादणुभिः षड्भिस्तैलिक्षा षड्भिरीरिता ।
ताभिषड्भिर्भवेद्यूका षड्यूकास्तद्रजः स्मृतम् ।।

Scanned with CamScanner

षड्रजः सर्षपः प्रोक्तस्तैः षडभिर्यव ईरितः।
एका गुञ्जा यवैः षड्भिर्निष्पावस्तु द्विगुञ्जकः।।
स्याद्गुञ्जात्रितयं वल्लो द्वौ वल्लौ माष उच्यते।
द्वौ माषौ धरणं ते द्वे शाणनिष्ककलाः स्मृता।।
निष्कद्वयन्तु वटकः स च कोल इतीरितः।
स्यात्कोलत्रितयं तोलः कर्षो निष्कचतुष्टयम्।।
उदुम्बरं पाणितलं सुवर्णं कवलग्रहः।
अक्षं विडालपदकं शुक्तिः पाणितलद्वयम्।।
शुक्तिद्वयं पलं केचिदन्ये शुक्तिस्त्रयं विदुः।
तदेव कथितं मुष्टिः प्रकुञ्चो बिल्वमित्यपि।।
पलद्वयं तु प्रसृतं तद्द्वयं कुडवोऽञ्जलिः।
कुडवो मानिका तौ स्यात्प्रस्थो द्वे मानिके स्मृतः।।
प्रस्थद्वयं शुभं तौ पात्रकं द्वयमाढ़कम्।
तैश्चतुर्भिर्घटोन्माननल्वनार्मणशूर्पकाः ।।
द्रोणस्य शब्दाः पर्यायाः पलानां शतकं तुला।
चत्वारिंशतपलशततुला भारः प्रकीर्तितः।।

(र. र. स. 11/4-12)

6 अणु	=	1 त्रुटि	2 पाणितल (तोला)	=	1 शुक्ति
6 त्रुटि	=	1 लिक्षा	2 शुक्ति	=	1 पल
6 लिक्षा	=	1 यूक	3 शुक्ति	=	1 पल
6 यूक	=	1 रज	2 पल	=	1 प्रसृत
6 रज	=	1 सर्षप	2 प्रसृत	=	1 कुडव
6 सर्षप	=	1 यव	2 कुडव	=	1 मानिका
6 यव	=	1 रत्ती	2 मानिका	=	1 प्रस्थ
2 रत्ती	=	1 निष्पाव	2 प्रस्थ	=	1 शुभ
3 रत्ती	=	1 वल्ल	2 शुभ	=	1 पात्रक
2 वल्ल	=	1 माष	2 पात्रक	=	1 आढ़क
2 माष	=	1 धरण	4 आढ़क	=	1 द्रोण
2 धरण	=	1 शाण	100 पल	=	1 तुला
2 शाण	=	1 वटक (कोल)	40 तुला	=	1 भार
3 कोल	=	1 तोला			

Scanned with CamScanner

विमर्श:–प्राचीन आचार्यों ने मान का प्रारम्भ परमाणु, वंशी, ध्वंशी, त्रुटि आदि से किया है, जो तीव्र विषाक्त द्रव्यों के प्रयोग के लिए ही प्रयुक्त किया गया है। साधारण रसौषधियों का प्रयोग यव से तथा काष्ठौषधियों का प्रयोग एक ग्राम से प्रारम्भ होता है। वर्तमान समय में चरकोक्त मागधमान को 4 यव = 2 रत्ती, 3 ग्राम = 1 शाण (तीन ग्राम), 2 शाण=1 कोल, तथा 2 कोल = 1 कर्ष (12 ग्राम) के हिसाब से आगे के मानों की गणना करके रसशास्त्र एवं भैषज्यकल्पना विज्ञान में प्रयुक्त किया जा रहा है।

उपरोक्त वर्णित सभी मानों के अतिरिक्त विष्णु, मनु, याज्ञवल्क्य, कौटिल्य, लीलावती, यवन प्रचारित एवं कालमान आदि अनेक प्रकार के मानों का भी उल्लेख शास्त्रों में मिलता है। यद्यपि आचार्यों ने 4 कर्ष का 1 पल माना है, किन्तु रसार्णव एवं रसरत्नसमुच्चय में 8 कर्ष (तोला) का 1 पल माना है। आचार्य चरक ने 3 माशा का एक शाण तथा शार्ङ्गधर मिश्र एवं गोविन्ददास सेन ने 4 माशा का एक शाण माना है। आचार्यों ने 100 पल की एक तुला मानी है। इस प्रकार सभी ग्रन्थों के मानों में कुछ विविधता एवं कुछ एकरूपता भी दिखाई पड़ती है। उपरोक्त मानों में मागधमान ही सर्वश्रेष्ठ मान है। अतः उसी मान को वर्तमान समय में अधिक महत्त्व दिया जाता है।

2. द्रवयमान:–

आयुर्वेद में द्रवयमान की सबसे छोटी इकाई बिन्दु है। प्रदेशिनी (तर्जनी) अंगुली के दो पर्वों को किसी द्रव पदार्थ (तैल, जल, दुग्ध, स्वरस, क्वाथ आदि) में डुबोकर ऊँचा उठाने से गिरी एक बूंद को बिन्दु कहते हैं:-

प्रदेशिन्युगंलीपर्वद्वयान्मग्नसमुद्धृतात्।
यावत्पतत्यसौ बिन्दु.............. ।।

(अ. ह. सू. 20/9)

8 बिन्दु	=	1 शाण
32 बिन्दु	=	1 शुक्ति
64 बिन्दु	=	1 पाणिशुक्ति

यह द्रवयमान नस्य, कर्णपूरणादि कर्म के लिए कहा गया है। यथा:-

बिन्दुभिश्चाष्टभिः शाणःप्रोक्तश्चैव भिषक्तमैः।
द्वात्रिंशबिन्दुभिश्चात्र शुक्तिश्चैव निगद्यते।।
द्वे शुक्ति पाणिशुक्तिश्च नस्यकर्मणि पूजिता।।

(टोडरानन्द में हारीतवचन)

Scanned with CamScanner

पाणिशुक्ति से आगे का द्रवयमान आयुर्वेद के प्राचीन ग्रन्थों में नहीं मिलता है। शार्ङ्गधर संहिता में 'द्रवपदार्थ मान' कुडवमान दिया गया है और कुडवपात्र का वर्णन किया है।

कुड़वपात्र :-

मृद्वृक्षवेणुलोहादेर्भाण्डं यच्चतुरङ्गुलम्।
विस्तीर्णं च तथोच्चं च तन्मानं कुडवं वदेत्॥

(शा. सं. पू. ख. 1/35)

अर्थात् मिट्टी, काष्ठ, बाँस, लौह आदि से बने हुए 4 अङ्गुल चौड़े, 4 अङ्गुल ऊँचे एवं 4 अङ्गुल गहरे पात्र को कुडव पात्र कहा जाता है। इस पात्र में जितना द्रव भरा जाता है, उसका मान कुड़वमान कहलाता है।

विमर्श :- आचार्य शार्ङ्गधर ने द्रव द्रव्यों को मापने के लिए इस प्रकार का कुडवपात्र बनाने का उल्लेख किया है। अंगुल तीन प्रकार का माना गया है :- 6 यव, 7 यव और 8 यव की चौड़ाई का। एक यव की लम्बाई 1/10 इंच के बराबर होती है। यदि 6 यव का 1अंगुल मानकर 4 अंगुल (24 यव या 2.4 इंच) चौड़ा और गहरा गोल पात्र बनाया जाये, तो उसमें 16 कर्ष (1 कुडव) जल आ सकता है। आयुर्वेदीय पद्धति से द्रव द्रव्य मापने के लिए कुडव का मान बनाना आवश्यक है। इसमें कर्ष, पल, कुडव आदि के स्थान में रेखाएँ लगाकर नागरी अंक और मान के नाम लिखने चाहिए। जब तक इस प्रकार कुडव का मान बनकर बाजार में मिलने नहीं लगे, तब तक सरकारी छाप के पाव, आधा सेर और सेर (लीटर) के मानो का उपयोग करना चाहिए।

भारतीय आयुर्वेद योग संग्रह (A.F.I.) में द्रवों के मान के संदर्भ में कहा है कि द्रवयमान पौतवमान के अनुसार ही लीटर, मिलीलीटर में तुल्यार्थ होंगे। यथा:-

1 कर्ष	=	12 मि.ली.	1 पल	=	48 मि.ली.
1 कुडव	=	192 मि.ली.	1 मानिका	=	384 मि.ली.
1 प्रस्थ	=	768 मि.ली.	1 आढ़क	=	3.072 लीटर
1 द्रोण	=	12.288 लीटर	1 शूर्प	=	24.576 लीटर

शेष मान भी इसी प्रकार समझने चाहिए।

3. पाय्यमान (दैर्घ्यमान) :-

पाय्यमान का आयुर्वेद में स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता है, किन्तु अंगुल, वितस्ति, अरत्नि, व्याम आदि शब्दों का उल्लेख कई स्थानों पर मिलता है, जिनका लीलावती, कौटिल्य अर्थशास्त्र, अमरकोश आदि में वर्णन मिलता है। इसमें सबसे छोटी इकाई अंगुल मानी जाती है।

Scanned with CamScanner

1 अंगुल = 8 यवों को मध्य (यवोदर) में सुई पिराने से जो लम्बाई होती है, वह 1 अंगुल होती है। एक यवोदर ¾ इंच का $\frac{1}{8}$ भाग = 0.24 सें.मी. होता है। इसलिए 1 अंगुल = 1.905 से.मी. के बराबर होती है।

12 अंगुल	= 1 वितस्ति (वित्ता)	= 9 इंच	(22.86 से.मी.)
22 अंगुल	= 1 अरत्नि	= 16½ इंच	(41.91 से.मी.)
24 अंगुल	= 1 हस्त	= 18 इंच	(45.72 से.मी.)
4 हस्त	= 1 व्याम	= 72 इंच	(182.88 से.मी.)
1 राजहस्त	= 30 अंगुल	= 22 इंच	(55.88 से.मी.)

अमरकोश में वितस्ति, अरत्नि, हस्त, व्याम आदि की परिभाषा निम्न प्रकार से दी है :-

अंगुष्ठे सकनिष्ठे स्याद्वितस्तिर्द्वादशाङ्गुलः।
प्रकोष्ठे विस्तृतकरे हस्तमुष्ठ्या तु बद्धया ।।
स रत्निः स्यादरत्निस्तु निष्कनिष्ठेन मुष्टिना।
व्यामो बाह्वोः सकरयोस्ततयोस्तिर्यगन्तरम् ।। (अ. को. 2/6/86)
मध्यमाङ्गुलिकूर्परयोर्मध्ये प्रामाणिक करः।
बद्धमुष्टिकरो रत्निररत्निः सकनिष्ठिकः ।। (हलायुध कोष)

अर्थात् अंगुष्ठ से कनिष्ठिका अंगुली तक फैलाने पर एक वितस्ति होता है। कूर्पर सन्धि से मध्यम अंगुली तक हस्त कहलाता है। मुष्ठि बाँधकर जितनी लम्बाई हाथ की होती है, उसे रत्नि कहते है। हाथ को फैलाने पर कूर्पर संधि से कनिष्ठिका अंगुली तक जितनी लम्बाई होती है, उसे अरत्नि कहते हैं। दोनों बाहु और हाथ सहित पूर्ण फैलाने पर जो लम्बाई होती है, उसे एक व्याम कहते हैं।

राजहस्त :- आजानुभुज अर्थात् जानु (घुटने) तक जिसका हस्त होता है, वह राजहस्त (राजा का हाथ) कहलाता है। यह सवाई हस्त (1¼) होता है। इसकी लम्बाई 30 अंगुल (22 इंच = 55.88 से.मी.) होती है।

ब्रिटिश फार्मेकोपिया के अनुसार मानः-

पदार्थों का नाप तोल तीन प्रकार से किया जाता है -

1. तुला से ठोस पदार्थ को तोलना भार कहलाता है।
2. द्रव पदार्थ को गिलास से नापना द्रवमान कहलाता है।
3. फीते से लम्बाई आदि नापना लम्बमान कहलाता है।

इन तीन प्रकार के मानों को मापने के लिए ब्रिटिश फार्मोकोपिया में दो विधियाँ स्वीकृत है :-

1. दाशमिक मान (Metric system)
2. आंग्लमान (Imperial system)

1. दाशमिक मान (Metric system) :- इस मान में भार की इकाई किलोग्राम, द्रवमान की इकाई लीटर तथा लम्बमान की इकाई मीटर होती है। इसमें न्यूनतम मान से आगे का मान क्रमशः दश गुना होता है, अतः इसे दाशमिक मान कहते हैं।

(i) पौतवमान (घन पदार्थों का मान) :- इस मान में प्रचलित छोटी इकाई मिलीग्राम (mg.) है। यद्यपि इससे भी छोटी इकाई माइक्रोग्राम (mcg.) है, जो $\frac{1}{1000}$mg. (1 मिलीग्राम का हजारवाँ भाग) होती है, लेकिन यह व्यवहार में अधिक उपयोगी नहीं है।

10 मि.ग्रा.	=	1 सेन्टीग्राम (cg)		
10 से.ग्रा	=	1 डेसीग्राम (dg)	=	100 मि.ग्रा.
10 डेसीग्राम	=	1 ग्राम (g)	=	1000 मि.ग्रा.
10 ग्राम	=	1 डेकाग्राम (dag.)		
10 डेकाग्राम	=	1 हेक्टोग्राम (hg)	=	100 ग्राम
10 हेक्टोग्राम	=	1 किलोग्राम (kg)	=	1000 ग्राम
1000 कि.ग्रा	=	1 मिट्रिक टन		

(ii) द्रवयमान (द्रवमान) :- इस मान में प्रचलित छोटी इकाई मिलीलीटर (ml) है।

सामान्य जल का स्वाभाविक तापमान 16.7° C होता है। एक ग्राम परिस्रुत जल का आयतन 16.7 डिग्री सेन्टीग्रेड पर एक मिली होता है।

10 मिली	=	1 सेन्टीलीटर (cl)		
10 सेन्टीलीटर	=	1 डेसीलीटर (dl)	=	100 मिली
10 डेसीलीटर	=	1 लीटर (l)	=	1000 मिली
10 लीटर	=	1 डेकालीटर	=	10 लीटर
10 डेकालीटर	=	1 हेक्टोलीटर	=	100 लीटर
10 हेक्टोलीटर	=	1 किलोलीटर	=	1000 लीटर

Scanned with CamScanner

(iii) पाय्यमान (लम्बमान) :– इस मान में प्रचलित छोटी इकाई मिलीमीटर है। यद्यपि इससे भी छोटी इकाई मायक्रोन एवं मिली मायक्रोन है, लेकिन व्यवहार में अधिक उपयोगी नहीं है।

1000 मिलीमायक्रोन	=	1 मायक्रोन		
1000 मायक्रोन	=	1 मिलीमीटर (mm)		
10 मिलीमीटर	=	1 सेन्टीमीटर (cm)		
10 सेन्टीमीटर	=	1 डेसीमीटर		
10 डेसीमीटर	=	1 मीटर (m)		
10 मीटर	=	1 डेकामीटर		
10 डेकामीटर	=	1 हेक्टोमीटर	=	100 मीटर
10 हेक्टोमीटर	=	1 किलोमीटर (km)	=	1000 मीटर
10 किलोमीटर	=	1 मिरियामीटर		

2. आंग्लमान (Imperial system) :– इस मान के अनुसार भार की इकाई पौण्ड, द्रव की इकाई औंस एवं लम्बमान की इकाई गज मानी गई है।

(i) घन पदार्थों का आंग्लमान

1 ग्रेन	=	1 गेहूँ (लगभग ½ रत्ती)
60 ग्रेन	=	1 ड्राम
437 ग्रेन	=	1 औंस (लगभग 2¼ तोला)
16 औंस	=	1 पौण्ड (लगभग 7½ छटांक)
14 पौण्ड	=	1 स्टोन
2 स्टोन	=	1 क्वार्टर
4 क्वार्टर	=	1 हण्डरवेट
20 हण्डरवेट	=	1 टन (लगभग 27 मन)

(ii) द्रव पदार्थों का आंग्लमान

1 बूंद (ड्रॉप)	=	1 मिनिम
60 मिनिम	=	1 फ्ल्यूड ड्राम
8 फ्ल्यूड ड्राम	=	1 फ्ल्यूड औंस
16 फ्ल्यूड औंस	=	1 फ्ल्यूड पौण्ड
20 फ्ल्यूड पौण्ड	=	1 फ्ल्यूड पाइण्ट
8 पाइन्ट	=	1 गैलन

Scanned with CamScanner

(iii) लम्बाई मापन का आंग्लमान

1 टेन्थ	=	1 इंच (2.54 से.मी.) का दशमांश
12 इंच	=	1 फुट
3 फीट	=	1 गज (यार्ड)
220 गज (यार्ड)	=	1 फर्लाङ्ग
8 फलाङ्ग	=	1 मील

शुष्क एवं आर्द्र द्रव्य ग्राह्य नियम

आयुर्वेदीय ग्रन्थों में औषधयोगों में घटक द्रव्यों का जो मान (मात्रा) बताया गया है, वह शुष्क द्रव्यों का बताया है। अतः आर्द्रद्रव्यों के ग्रहण में उक्त द्रव्य दुगुने मान में ग्रहण करने चाहिए। शुष्क द्रव्य गुरु एवं तीक्ष्ण वीर्य के होते हैं।

शुष्कं नवीनं यद् द्रव्यं योज्यं सकलकर्मसु।
आर्द्रं च द्विगुणं युञ्ज्यादेष सर्वत्र निश्चयः ।।

(शा. सं. पू. ख. 1/48)

शुष्कद्रव्यस्य या मात्रा आर्द्रस्य द्विगुणा हि सा।
शुष्कस्य गुरुतीक्ष्णत्वात्तस्मादर्धं प्रयोजयेत् ।।

(भै. र. 2/13)

शुष्कद्रव्ये तु या मात्रा चार्द्रस्य द्विगुणा हि सा।
शुष्कस्य गुरुतीक्ष्णत्वात् तस्मादर्द्धं प्रकीर्तितम् ।।

(वै.प.प्र.1/47)

शुष्कद्रव्येष्विदं मानमेवादि प्रकीर्तितम्।
द्विगुणं तद् द्रवेष्विष्ट तथा सद्योद्धतेषु च ।।

(च.क.12/98)

अर्थात् औषध निर्माण में द्रव्य शुष्क एवं नवीन ही लेना उपयोगी रहता है किन्तु जहाँ पर आर्द्र एवं ताजा द्रव्य के प्रयोग से औषध निर्माण करना हो तो वहाँ पर आर्द्र द्रव्य शुष्क द्रव्य से दुगनी मात्रा में लेना चाहिए। क्योंकि शुष्क द्रव्य गुरु एवं तीक्ष्ण वीर्य बहुल होते है। इस नियम के अपवाद स्वरूप ग्रन्थों में कुछ ऐसे द्रव्य भी बताये हैं, जिन्हें हमेशा आर्द्र ही ग्रहण करना चाहिए, किन्तु उन्हें द्विगुण मात्रा में नहीं लेना चाहिए। यथा :-

गुडूची कुटजो वासा कूष्माण्डश्च शतावरी।
अश्वगंधा सहचरी शतपुष्पा प्रसारिणी।

Scanned with CamScanner

पटोलं च तथा निम्बो बला नागबला तथा ।
पथ्या पुनर्नवा चैव विदारी चेन्द्रवारूणी ।।
पलङ्कषा तथा छत्रा केतकी चेति विंशतिः ।
प्रयोक्तव्या सदैवार्द्रा द्विगुणा नैव कारयेत् ।।
(शा. सं. पू. ख. 1/45-47

वासानिम्बपटोलकेतकीबलाकूष्माण्डकेन्दीवरी
वर्षाभूकुटजाश्वगन्धसहितास्ताः पूतिगन्धामृताः ।
मासं नागबला सहाचरपुरो हिंग्वाद्रके नित्यशो
ग्राह्यास्तत्क्षणमेव न द्विगुणिता ये चेक्षुजाता घनाः ।।
(भै. र. परि 2/14

वासाकुटजकूष्माण्डशतपुष्पासहामृता ।
प्रसारिन्यश्वगन्धा च नागाख्यातिबलाबला ।।
नित्यमार्द्रा प्रयोक्तव्या न तासां द्विगुर्णो भवेत् ।
(वै. प. प्र. 1/50-51

हस्तिकर्णपलाशवाट्यालकगोरक्षतण्डुलाश्चैतत् ।।
वास्तुककुटज गुडूचीवासाकुष्माण्डकादिशतपत्री ।
इत्यादि तु नित्यार्द्रं गुणवच्छुष्कं यदा तदा द्विगुणम् ।।
(रा. नि. धर. 49

अर्थात् सामान्य नियम के विरूद्ध गुडूची, कुटज, वासा, कूष्माण्ड, शतावरी अश्वगंधा, हरीतकी, पुनर्वा, विदारी, इन्द्रवारूणी, पलङ्कषा, छत्रा, केतकी, मांस गुग्गुलु, हिङ्गु, आर्द्रक, ईक्षुगण, घृतकुमारी, अतिबला, पलाश, महाबला, गोरखमुण्डी चौलाई आदि द्रव्यों को हमेशा ताजा लेने एवं द्विगुण मात्रा में नहीं लेने का विधा आचार्यों ने किया है।

शार्ङ्गधर संहिता में आर्द्र एवं द्रव द्रव्य को द्विगुण लेने में विशेष निया प्रतिपादित किया है। यथाः-

गुञ्जादिमानमारभ्य यावत् स्यात् कुडवस्थितिः ।
द्रवार्द्रशुष्कद्रव्याणां तावन्मानं समं मतम् ।।
प्रस्थादिमानमारभ्य द्विगुणं तद् द्रवार्द्रयोः ।
मानं तथा तुलायास्तु द्विगुणं न क्वचित् स्मृतम् ।।
(शा. सं. पू. ख. 1/33-34)

Scanned with CamScanner

अर्थात् एक रत्ती से कुडव तक सभी द्रव, आर्द्र या शुष्क द्रव्यों का मान निर्दिष्ट मात्रा के अनुसार ही लेना चाहिए अर्थात् किसी औषध योग में किसी द्रव्य की मात्रा गुञ्जा, माषा, शाण, कोल, कर्ष, पल, या कुडव में हो तो उनको निर्दिष्ट मात्रा में ही ग्रहण करना चाहिए। यदि द्रव्य प्रस्थादि मान से तुला के पूर्व तक के मान में निर्दिष्ट हो तो द्रव्य (द्रव द्रव्य हो या आर्द्र द्रव्य हो) को द्विगुण मात्रा में लेना चाहिए। (यहाँ पर प्रस्थादि मान का अर्थ टीकाकारों ने शराव के मान से स्वीकार किया है) तुला एवं उससे आगे के मान द्रोण, खारी आदि में द्रव्य निर्दिष्ट हो तो उसे द्विगुण मात्रा में नहीं लेना चाहिए।

द्रवद्वैगुण्य का सिद्धान्त:-

सभी आचार्यों ने आर्द्र और द्रव द्रव्य द्विगुण मान में लेने का उपदेश किया है। शुष्क द्रव्य आर्द्र की अपेक्षा गुरु और तीक्ष्ण होने के कारण आर्द्र द्रव्य द्विगुण मान में लेने चाहिए- यह तर्क उचित लगता है। किन्तु ग्रन्थों में उल्लिखित द्रव का मान द्विगुण मान में लेने के लिए कोई कारण नजर नहीं आता है। यदि आचार्यों को द्रव-द्वैगुण्य अभीष्ट होता तो वे योगों में स्पष्ट रूप से द्विगुण मान में ही द्रव का उल्लेख कर देते।

द्रवद्वैगुण्य के विषय में पं. हरिप्रपन्न शर्मा ने रसयोगसागर के उपोद्घात में विस्तार से विचार प्रकट किये है। विस्तारभय से उन विचारों को यहाँ नहीं लिखा गया है।

औषध द्रव्यों की ग्राह्याग्राह्यता :-

"रसविपाकप्रभावातिरिक्ते प्रभूतकार्यकारिणी गुणे वीर्यम् इति संज्ञा"

(चक्रदत्त)

अर्थात् द्रव्य रस, विपाक, प्रभाव आदि के अतिरिक्त जिस शक्ति (गुण) से कार्य करता है, उसे वीर्य कहते है। द्रव्य के जिस अङ्ग (भाग) में वीर्य होता है, उसी अङ्गविशेष का ग्रहण कर चिकित्सा में प्रयोग करना चाहिए।

सर्वाणि चाद्राणि नवौषधानि सुवीर्यवन्तीति वदन्ति धीराः।
सर्वाणि शुष्कानि तु मध्यमानि शुष्काणि जीर्णा च निष्फलानि ।।

(रा. नि. धर. 48)

अर्थात् सभी आर्द्र एवं नवीन द्रव्य वीर्यवान् होते हैं। सभी शुष्क औषध द्रव्य मध्यम वीर्य एवं सभी जीर्ण औषध द्रव्य निर्वीर्य या निष्फल होते हैं।

विगन्धेनापरामृष्टमविपन्नं रसादिभिः।
नवं द्रव्यं पुराणं वा ग्राह्यमेव विनिर्दिशेत् ।। (शा. सं. पू. ख. 1/57)

Scanned with CamScanner

अर्थात् जो औषध द्रव्य विकृत गन्ध वाला नहीं हो एवं स्वाभाविक रस गुण आदि से परिपूर्ण हो, तो वह द्रव्य नवीन या पुरातन कैसा भी हो उसको ग्रहण कर लेना चाहिए। अर्थात् चिकित्सा कर्म के लिए औषध निर्माण में पहले कहे हुए संपूर्ण नियमों का ध्यान रखकर औषध द्रव्यों का ग्रहण किया जाना चाहिए। दुर्गन्धित एवं निर्वीर्य औषध द्रव्यों का चिकित्सा में कभी भी प्रयोग नहीं किया जाना चाहिए।

व्याधेरयुक्तं यद् द्रव्यं गणोक्तमपि तत् त्यजेत्।
अनुक्तमपि यद् युक्तं योजयेत् तत्र तद् बुधः ।।

(शा. सं. पू. ख. 1/60)

अर्थात् चिकित्सक द्वारा औषध द्रव्यों के गण में कहे गए द्रव्य जो रोगी का रोग शमन करने में अनुपयुक्त हो उस द्रव्य का भी ग्रहण नहीं करना चाहिए और द्रव्य के उस गण में नहीं होने पर भी यदि रोगशमन में उपयोगी हो तो उस द्रव्य का ग्रहण कर लेना चाहिए। अर्थात् ग्रन्थोक्त कल्क, क्वाथ, चूर्ण, तैल, घृत, आसव, अरिष्ट, अवलेह आदि योगों में उपयोगी या अनुपयोगी द्रव्यों को मिलाने या हटाने की अनुमति आचार्य ने चिकित्सक को प्रदान की है। चिकित्सक स्वविवेक से रोगी हितार्थ निर्णय कर सकता है

। ल्मीककूपरथ्याश्मशानजाः ।
ूलोत्था न्यूनाधिकचिरन्तनाः ।।
ः मिसंक्षुण्णा औषध्यस्तु न सिद्धिदाः ।

(वै. प. ... /64)

कृत्स्नानूपश्मशानोषरमार्गजाः ।
जन्तुर्वह्निहिमव्याप्ता नौषध्यः कार्यसिद्धिदा ।।

(शा.सं.पू.ख.1/66)

अर्थात् देवालय, वल्मीक, कुँआ, मार्ग एवं श्मशान भूमि में उत्पन्न, अकाल एवं वृक्ष के मूल के पास उत्पन्न अपने सामान्य आकार से कम या अधिक, जल, अग्नि एवं कीड़े आदि से खाई हुई औषधियों का ग्रहण नहीं करना चाहिए।

जो औषध द्रव्य बाम्बी मिट्टी, निन्दित, आनूपदेश, श्मशान, ऊषर भूमि, मार्ग के बीच उत्पन्न हुई हो, कृमि भक्षित, जली हुई, हिम आदि से व्याप्त हो, वह औषध कार्य में सिद्धिदायक नहीं होने से ग्राह्य नहीं होती है। अतः इनको ग्रहण नहीं करना चाहिए। इसका तात्पर्य यह है कि समस्त गुणयुक्त औषध द्रव्य ही चिकित्सा में लाभदायक होते हैं।

Scanned with CamScanner

साधारणधराद्रव्यं गृहणीयादुत्तराश्रितम्।
द्रव्याणि तत्र जायन्ते तद्गुणानि विशेषतः ।।
(शा. सं. पू. ख. 1/65)

अर्थात् साधारण देश की उत्तरदिशा में उत्पन्न औषध द्रव्य का ग्रहण करना चाहिए। क्योंकि वहाँ पर उत्पन्न औषध द्रव्य विशेष रूप से अपने गुणों से परिपूर्ण होते हैं।

जङ्गमानां वयःस्थानां रक्तरोमनखादिकम्।
क्षीरमूत्रपुरीषाणि जीर्णाहारे च संहरेत्।।
(शा. सं. पू. ख. 1/51)

अर्थात् प्राणिज द्रव्य रक्त, केश, नख, अस्थि, मांस, वसा और शुक्र द्रव्य युवा पशुओं के शरीर से ग्रहण करने चाहिए। इसी प्रकार दूध, मूत्र मल इन द्रव्यों को पशुओं का आहार पच जाने पर ग्रहण करना चाहिए।

नवीन एवं पुरातन द्रव्य ग्राह्य नियम :-

सर्वाण्येव चाभिनवानि अन्यत्र मधुघृतगुडपिप्पलीविडङ्गेभ्यः ।।
(सु. सू. 36/7)

तेषामसंपत्तावतिक्रान्तसंवत्सराण्याददीतेति।
(सु. सू. 36/9)

विडङ्गं पिप्पली क्षौद्रं सर्पिश्चाप्यनवं हितम्।
शेषमन्यत्वभिनवं गृहणीयाद्दोषविवर्जितम्।
(सु. सू. 36/8)

नवान्येव ही योज्यानि द्रव्याण्यखिलकर्मसु।
बिना विडङ्गकृष्णाभ्यां गुड़धान्याज्यमाक्षिकैः ।।
(शा. सं. पू. ख. 1/44)

अर्थात् आचार्य सुश्रुत एवं शार्ङ्गधर ने सम्पूर्ण प्रकार के द्रव्यों को नवीन ही लेने का निर्देश दिया है। किन्तु विडङ्ग, पिप्पली, गुड़, धनियाँ, मधु और घी को पुरातन ही लेने का स्पष्ट निर्देश किया है।

औषध द्रव्य संग्रहण

प्राचीन आचार्यों ने औषधादि द्रव्यों के संग्रहण के आधार निर्धारित किये हैं। अतः उन्हीं को ध्यान में रखते हुए द्रव्यों का संग्रहण किया जाना चाहिए।

''तत्र देशे साधारणे जाङ्गले वा यथाकालं शिशिर आतपवनसलिलसेविते समे शुचौ प्रदक्षिणोदके श्मशानचैत्यदेवयजनागारसभश्वभ्रामवल्मीकीषर विरहिते

Scanned with CamScanner

कुशरोहिषास्तीर्णस्निग्धकृष्णमधुरमृत्तिके या मृदावफालकृष्टेऽनुपहतेऽन्यैर्बलवत्तरैद्रुमैरौषध द्रव्या जातानि प्रशस्यन्ते''। (च. क. 1/9)

अर्थात् साधारण या जाङ्गल देश में शीत, उष्ण, वायु, जल से परिपक्व औषधि कंकड़, गड्ढ़ा-वल्मीक आदि से रहित, श्मशान, वधस्थान, मन्दिर, सभा स्थान, क्षार, बड़े-बड़े वृक्षरहित, जलाशय के समीप, स्निग्ध, कृष्ण, मधुर मृत्तिका युक्त, आफालकृष्ट भूमि में उत्पन्न और अनुपहत गन्ध-रस-वर्ण आदि प्रभावयुक्त औषध द्रव्यों का संग्रहण श्रेष्ठ होता है।

अव्यक्तः किल तोयस्य रसो निश्चयनिश्चितः।
रस एव स चाव्यक्तो व्यक्तो भूमिरसाद्भवेत्।।
(सु. सू. 36/13)

गन्धवर्णरसोपेता षड्विधा भूमिरिष्यते।
तस्माद् भूमिस्वाभावेन बीजिनः षड्रसायुताः।।
(सु. सू. 36/12)

अर्थात् जल में कोई व्यक्तरस नहीं होता है, परन्तु पृथ्वी से संपर्क होने पर जल में रस की अभिव्यक्ति हो जाती है। रस की दृष्टि से भूमि को छः प्रकार का माना है। और उसी के अनुसार औषधि द्रव्यों में छः रसों का सञ्चार होता है।

औषध संग्रह विधिः-

गृह्णीयात्तानि सुमनाः शुचिः प्रातः सुवासरे।
आदित्यसंमुखो मौनी नमस्कृत्य शिवं हृदि।।
साधारणधराद्रव्यं गृह्णीयादुत्तराश्रितम्।।
(शा. सं. पू. ख. 1/63-65)

अर्थात् सभी प्रकार की औषधियाँ चिकित्सक द्वारा प्रसन्न चित्त होकर, मनसा-वाचा पवित्र होकर, प्रातःकाल, शुभ दिन, सूर्य की ओर मुख करके मौनधारण कर और हृदय में भगवान शिव को प्रणाम कर संग्रहण करनी चाहिए।

येन त्वां खनते ब्रह्मा येनेन्द्रो येन केशवः।
तेनाहं त्वां खनिष्यामि मन्त्रपूतेन पाणिना।।
(वै. प. प्र. 1/68)

अर्थात् मन्त्रों से पवित्र जिन हाथों से ब्रह्मा, इन्द्र और केशव ने औषधि को उखाड़ा था, उन्हीं पवित्र मन्त्रपूत हाथों से मैं भी औषधि को उखाड़ता हूं। इस मन्त्र को पढ़कर औषधि को उखाड़ना चाहिए।

Scanned with CamScanner

"मङ्गलाचारः शुचिः शुक्लवासा सम्पूज्य देवहा आश्विनौ गोब्राह्मणांश्च प्राङ्मुख उदङ्मुखो वा गृहणीयात्" ।। (च.क.1/10)

अर्थात् मंगलाचार करते हुए, पवित्र होकर, शुक्लपक्ष, देवता-अश्विनीकुमार, गाय, ब्राह्मण की पूजा करके पूर्व या उत्तर दिशा में मुख करके औषधियों को संग्रहण हेतु उखाड़ना चाहिए।

"तेषां शाखापलाशमचिरप्ररूढं वर्षाबसन्तयोर्ग्राह्यं, ग्रीष्मे मूलानि, शिशिरे वा शीर्णप्ररूढ़पर्णानां, शरदित्वक्कन्दक्षीराणि, हेमन्ते साराणि, यथर्तु पुष्पफलमिति" (च.क.1/10)

अर्थात् आचार्य चरक ने शाखा एवं पत्र को वर्षा व बसन्त ऋतु में, मूल को ग्रीष्म व शिशिर ऋतु में, त्वक्-कन्द-क्षीर को शरद ऋतु में, सार-हेमन्त ऋतु में और पुष्फ-फल को यथा ऋतु में संग्रह करने का निर्देश दिया है।

कन्दं हिमर्तौ शिशिरे च मूलं पुष्पं बसन्ते फलदं वदन्ति।
प्रवालपत्राणि निदाधकाले स्युः पञ्च जातानि शरत्प्रयोगे ।।
(रा. नि. 2)

अर्थात् आचार्य नरहरि पण्डित ने औषधियों के कन्द-हेमन्त, मूल-शिशिर, पुष्प-बसन्त, पत्र-ग्रीष्म एवं पञ्चाङ्ग शरद ऋतु में संग्रहण करने का निर्देश दिया है। इस प्रकार से संग्रहित औषधियाँ अधिक गुणवती होती है।

"प्रावृट् वर्षा शरदहेमन्तबसन्तग्रीष्मेपुयथासंख्यं मूलपत्रत्वक्क्षीर सारफलान्याददीतेति; तत्तु न सम्यक् सौम्याग्नेयत्वाज्जगतः । सौम्यान्यौषधानि सौम्यष्वृतुष्वाददीत, आग्नेयाग्याग्नेषु, एवमव्यापन्नगुणानि भवन्ति" । (सु. सू. 36/5)

अर्थात् आचार्य सुश्रुत ने प्रावृट् व वर्षा में मूल-पत्र, शरद में त्वक्, हेमन्त में क्षीर, बसन्त में सार एवं ग्रीष्म में फल लेने का निर्देश दिया है। किन्तु यह भी कहा है कि सृष्टि अग्निसोमीय होने से ऋतु के अनुसार ही औषध संग्रहण उचित नहीं है। सौम्यद्रव्य सौम्य ऋतु में तथा आग्नेय द्रव्य आग्नेय ऋतु में ग्रहण करने पर द्रव्यों में अव्यापन्न (प्रचुर) गुण होते हैं।

शरद्यखिलकार्यार्थं ग्राह्यं सरसमौषधम् ।
विरेकवमनार्थं च बसन्तान्ते समाहरेत् ।।
(शा. सं. पू. ख. 1/67)

अर्थात् शरद ऋतु में औषधियाँ सरस होने से सम्पूर्ण कार्यों के लिए द्रव्यों का संग्रह इस ऋतु में किया जाना चाहिए। वमन और विरेचन के लिए बसन्त ऋतु के अन्त में औषधियों का संग्रहण किया जाना चाहिए।

Scanned with CamScanner

आग्नेय विन्ध्यशैलाद्याः सौम्यो हिमगिरिर्मतः ।
अतस्तदौषधानि स्युरनुरूपाणि हेतुभिः ।
अन्येष्वपि प्रोहन्ति वनेषूपवनेषु च ।।

(शा. सं. पू. ख. 1/61-62)

अर्थात् उष्ण वीर्य वाली औषधियाँ विन्ध्याचल आदि आग्नेय पर्वतों तथा सौम्य स्वभाववाली औषधियाँ हिमालय आदि सौम्य पर्वतों से संग्रह करनी चाहिए। उक्त प्रकार के पर्वतों से उत्पन्न औषधियाँ तदनुरूप गुणों वाली ही होती है। इसके अलावा वनों एवं उपवनों में औषधियों को उगाया जा सकता है।

"तत्र पृथिव्यम्बुगुणभूयिष्ठायां भूमौ जातानि विरेचनद्रव्याण्याददीत, अग्न्याकाशमारूतगुणभूयिष्ठायां वमनद्रव्याणि, उभयगुणभूयिष्ठायामुभयतो भागानि, आकाशगुणभूयिष्ठायां संशमनानि, एवं बलवत्तराणि भवन्ति" । (सु. सू.36/6)

अर्थात् आचार्य सुश्रुत के मतानुसार विरेचन के लिए पृथ्वी जल भूयिष्ठ भूमि से, वमन के लिए अग्नि-आकाश-वायु भूयिष्ठ भूमि से, उभयतो भागहर औषधियाँ उभय भूयिष्ठ भूमि से तथा संशमन द्रव्य औषधियाँ आकाश भूयिष्ठ भूमि में उत्पन्न होने वाली संग्रहण करनी चाहिए। इस प्रकार उपरोक्त नियमों को ध्यान में रखकर औषधियों का संग्रहण करने पर द्रव्य विशेष गुणवान् होते हैं।

द्रव्यों के अवयवों का संग्रहणः-

फलेषु परिक्वं यद्गुणवत्तदुदाहृतम् ।
विल्वादन्यत्र विज्ञेयमामं तद्धि गुणोत्तरम् ।
व्याधितं कृमिजुष्टं च पाकातीतमकालजम् ।
वर्जनीयं फलं सर्वमपर्यागतमेव च ।।

(सु. सू. 46/209-210)

अर्थात् सभी फल सुपक्व होने पर गुणवान् होने के कारण उसी अवस्था में संग्रहण करना चाहिए। किन्तु बिल्व का फल अपक्व ही गुणवान् होने से अपक्व लेना चाहिए। कृमिजुष्ट, रोगग्रसित, अधिक पका हुआ (सड़ा हुआ) और अकाल में उत्पन्न अल्पपक्व फल अग्राह्य होता है।

बालं ह्यनार्तवं जीर्णं व्याधितं कृमिभक्षितम् ।
कन्दं विवर्जयेत् सर्वं यो वा सम्यङ् न रोहति ।।

(सु. सू. 46/312)

अर्थात् कच्चा, बेमौसम में उत्पन्न, अधिक पका हुआ, रोगग्रसित, कृमिजुष्ट और असम्यक् पुष्ट कन्द अग्राह्य होता है। इसके विपरीत पक्व, सम्यक पुष्ट, यथाऋतु उत्पन्न, रोगरहित और कृमि रहित कन्द का संग्रहण किया जाना चाहिए।

Scanned with CamScanner

अतिस्थूलजटा याः स्युस्तासां ग्राह्यास्त्वचो बुधैः ।।
गृहणीयात् सूक्ष्ममूलानि सकलान्यपि बुद्धिमान् ।
न्यग्रोधादेस्त्वचो ग्राह्याः सारः स्याद् बीजकादितः ।।
तालीसादेश्च पत्राणि फलं स्यात् त्रिफलादितः ।
धातक्यादेश्च पुष्पाणि स्नुह्यादे क्षीरमाहरेत् ।।
विदार्यादेश्च कन्दानि गुन्द्रं सर्जरसादितः ।
मज्जा अक्षोटकादेश्च शेषं वृद्धोपदेशतः ।।

(शा. सं. पू. ख. 1/68-71)

सारः स्याद् खदिरादीनां निम्बादीनां च वल्कलम् ।
फलं तु दाडिमादीनां पटोलादेश्छदस्तथा ।।

(वै. प. प्र. 1/70)

अर्थात् अधिक मोटे मूल वाली औषधियों के मूल की छाल, छोटे मूल वाली औषधियों का पञ्चाङ्ग ग्रहण करना चाहिए। वट आदि वृक्षों की त्वक्, बीजकादि वृक्षों का सार, तालीस आदि के पत्र, त्रिफला आदि के फल, धातकी आदि वृक्षों के फूल, स्नुही आदि क्षीरी वृक्षों का दूध, विदारीकन्द आदि के कन्द, सर्जरस आदि के गोंद और अखरोट आदि की मज्जा का ग्रहण करना चाहिए। शेष द्रव्यों के प्रयोज्याङ्गो का आयुर्वेदज्ञ वृद्धों के कथनानुसार ग्रहण करना चाहिए। यथाः-

फल	:- त्रिफला, दाडिम, सुपारी, मरिच, पिप्पली, विडंग, मदनफल।
कन्द	:- हरिद्रा, आर्द्रक, दन्ती, विदारीकन्द, वाराहीकन्द, मूसली।
सार	:- खदिर, देवदारु, चन्दन, विजयसार।
पत्र	:- तालीश, रास्ना, सनाय, तुलसी, पटोल, वासा, तेजपत्र।
पुष्प	:- धातकी, शतपत्री, मालती, कमल, मधूक, लवङ्ग।
बीज	:- आत्मगुप्ता, जयपाल, एरण्ड, गुञ्जा, बाकुची, करञ्ज।
निर्यास	:- गुग्गुल, सर्जरस, शल्लकी, हिङ्गु, अहिफेन, अश्मन्तक।
काण्ड	:- दारुहरिद्रा, देवदारु, सरल, चन्दन, खदिर, मधुयष्टि।
पञ्चाङ्ग	:- दूर्वा, कुश, कास, शालिपर्णी, पृश्निपर्णी, कण्टकारी।
क्षार	:- यव, अपामार्ग, तिलनाल, पलाश, चणक, स्नुही, चिञ्चा।
क्षीर	:- अर्कक्षीर, स्नुहीक्षीर, वटक्षीर।
मज्जा	:- काजू, बादाम, पिस्ता।
त्वक्	:- अशोक, लोध्र, दालचीनी, अर्जुन, वट।

Scanned with CamScanner

आधुनिक मतानुसार द्रव्य संग्रहण :-

सामान्यतः औषधि वृक्षादि के परिपक्व होने पर ही विभिन्न प्रयोज्याङ्गों का संग्रहण किया जाता है। मूल को शरद् या बसन्त ऋतु में (पत्र परिपुष्ट होने या फलपाक होने पर), पत्र को वनस्पतियों में पुष्प पूर्णरूप से खिलने एवं फल के परिपक्व होने के मध्यकाल पर, कुछ पुष्प को थोड़ा खिलने और कुछ को पूर्ण खिलने पर, फल को सुपक्व होने पर, बीज को पूर्णरूप से फल पकने पर, त्वक् को बसन्त ऋतु के पूर्व या पश्चात् और काष्ठ का शीतकाल में संग्रहण करना चाहिए। इस प्रकार प्राचीन आचार्यों द्वारा कथित एवं आधुनिक आचार्यों द्वारा कथित नियमानुसार ही औषधि द्रव्य का संग्रहण किया जाना चाहिए। अन्यथा चिकित्सक द्वारा औषधिद्रव्यों से औषधि योग निर्मित करने पर भी रोगी के रोग पर उसका यथेष्ट लाभ प्राप्त होना संभव नहीं हैं।

औषध द्रव्य संरक्षण एवं भेषजागार (Preservation and store of raw drugs) :-

संग्रह की गई औषधियों को छायाशुष्क करना चाहिए। क्योंकि सुगन्धित द्रव्यों को धूप में सुखाने से उनकी सुगन्ध नष्ट होकर अल्पगुण वाली हो जाती है। अतः द्रव्यों के अनुसार किसी को छाया शुष्क या किसी को सामान्य धूप में सुखाकर उनका संरक्षण किया जाना चाहिए। औषधियों में यदि थोड़ी भी आर्द्रता रह जाय तो उनमें फफूँद या दुर्गन्ध उत्पन्न होकर खराब हो जाती है। चरक, सुश्रुत एवं शार्ङ्गधर मिश्र ने औषधियों के संरक्षण के लिए भेषजागार का उल्लेख किया है। यथाः-

"गृहीत्वा चानुरूपगुणवद्भाजनस्थान्यगारेषु प्रागुदग्द्वारेषु निवातप्रवातैकदेशेषु नित्यपुष्पोपहारबलिकर्मवत्सु, अग्निसलिलोपस्वेदधूमरजोमूषकचतुष्पदामनभिगमनीयानि स्ववच्छन्नानि शिक्येष्वासज्य स्थापयेत्"।। (च.क.1/11)

अर्थात् औषधियों का आहरण कर संग्रहण किया जाता था, फिर धूप में या छाया में सुखाकर नमी दूर हो जाने पर औषधियों के गुणानुरूप पात्रों में धूपन करके औषध रखकर पिधान लगाकर मुख को बन्द कर दिया जाता था। भेषजागार (संरक्षण कक्ष) का द्वार पूर्व या उत्तर दिशा वाला एवं तीव्र वायु प्रवेशरहित होता था, किन्तु हवा के आवागमन हेतु खिड़कियाँ बनी हुई होती थी। जिस घर में निरन्तर पुष्प, उपहार, बलिकर्म होता हो तथा अग्नि, जल, उपस्वेद, धुआँ, धूल, चूहा एवं पशुओं का सीधा संपर्क नहीं होता हो, उस घर में औषधियों को भलीभांति ढककर दीवार से लगी खूँटियों से लटकाया जाता था। इस प्रकार से औषधियों का संग्रहण करके संरक्षण करने से औषधियों के गुण सुरक्षित रहते हैं।

Scanned with CamScanner

प्लोतमृद्भाण्डफलकशङ्कुविन्यस्तभेषजम् ।
प्रशस्तायां दिशि शुचौ भेषजागारमिष्यते ।। (सु. सू. 36/17)

अर्थात् कपड़े के थैलों, मिट्टी या काष्ठ के पात्रों में, लकड़ी से बने तख्त और खूँटियों पर औषधियाँ रखनी चाहिए। साथ ही अत्यन्त पवित्र और प्रशस्त दिशा और स्थान पर भेषजागार का निर्माण किया जाना चाहिए।

धूमवर्षानिलक्लेदैः सर्वर्तुष्वनभिद्रुते ।
ग्राहयित्वा गृहे न्यस्येद्विधिनौषधसंग्रहम् ।। (सु. सू. 38/81)

अर्थात् औषधियों के संग्रहण के पश्चात् धुआं, वर्षा, वायु और जल से विकृत न होने वाले तथा समस्त ऋतुओं में भी अनुकूल हो, इस प्रकार के भेषजागार में औषधियों का संरक्षण किया जाना चाहिए।

इस भेषजागार में मिट्टी पात्र, काष्ठ पात्र, चीनी मिट्टी, काँच एवं प्लास्टिक आदि पात्रों में वातरहित पैकिंग करके औषधि द्रव्यों का संरक्षण किया जाना चाहिए। द्रव्यों का संरक्षण वैज्ञानिक तरीके से नहीं किया जायेगा तो निश्चित रूप से औषध द्रव्य विकृत होकर अनुपयोगी हो जाती है एवं साथ ही पर्यावरण भी प्रदूषित हो जाता है।

आधुनिक मतानुसार :– आधुनिक समय में औषधियों का संरक्षण करने के लिए जी.एम.पी. के नियमानुसार सीमेन्ट से निर्मित वायु एवं ताप नियन्त्रित भेषजागार का निर्माण किया जाना चाहिए। आजकल भेषजागार के लिए 20 × 20 फीट के बड़े-बड़े कमरे जिनकी छत 15 फीट ऊँची हो, जिससे वातावरण का प्रभाव नहीं पड़े, कमरे में अनेक खिड़कियाँ बनी होनी चाहिए। जिससे हवा एवं सूर्य के प्रकाश का भी आवागमन होता रहे। इस भवन में वातानुकूलन (ए.सी.) व प्रकाश की व्यवस्था तथा दरवाजे मजबूत कुंदी वाले बने होने चाहिए। साथ ही फर्श कोटा स्टोन या चिप्स की मजबूत बनी होनी चाहिए। इस भेषजागार में आधुनिक सुविधानुसार पंखे, बिजली, पानी आदि की फिटिंग कुशल इलेक्ट्रिशियन एवं सीवरेज के ज्ञाता द्वारा करवानी चाहिए। भवन एक्जास्ट फेन या चिमनी की व्यवस्था युक्त एवं वर्षा या आँधी के दुष्प्रभाव से रहित होना चाहिए। भवन में औषधियों के संग्रहण एवं संरक्षण के लिए चीनी मिट्टी के पात्र, काँच पात्र, लोहे के ड्रम, स्टील पात्र, प्लास्टिक के पात्र आदि को व्यवस्थित रखने के लिए आलमारियों की रैकों का भी निर्माण किया जाना चाहिए।

भेषजागार के सामने सीमेन्ट से बना हुआ एक बड़ा चबूतरा बनाया जाना चाहिए, जो चारों तरफ दीवारयुक्त हो, जहाँ पर कभी-कभी औषध द्रव्यों को धूप में फैलाकर सुखाने में सुविधा रहे। औषधियों को बड़े-बड़े लोहे के ड्रमों में भरकर ढक्कन लगाकर औषधि द्रव्य का नाम लिखकर संरक्षण किया जाता है।

Scanned with CamScanner

ताजा औषधि द्रव्यों को लम्बे समय तक सुरक्षित रखने के लिए शीत गृह (Cold storage) में रखने से द्रव्य अधिक समय तक सुरक्षित रहते हैं। भेषजागार पूर्ण रूप से स्वच्छ होना चाहिए। कर्मचारियों को भवन में अन्दर जूता पहनकर नहीं जाना चाहिए। भेषजागार की छत एवं दीवारों का मजबूत निर्माण किया जावें ताकि भवन में सीलन नहीं आवें। इस प्रकार उपरोक्त समस्त साधन सुविधाओं से युक्त नवीन भेषजागार का निर्माण किया जाना चाहिए, जिससे औषधि द्रव्य दीर्घकाल तक संरक्षित रहे।

आचार्य विश्वनाथ द्विवेदी ने कुछ औषधि द्रव्यों के संरक्षक द्रव्यों (Preservative) का भी उल्लेख किया है। यथाः-

क्र. सं.	द्रव्यनाम	संरक्षक द्रव्य
1.	शुण्ठी	चूर्णोदक
2.	पारसीक यवानी	चूर्णोदक
3.	चावल	चूना मिलाकर रखना
4.	आर्द्रक	रेत में रखकर पानी से तर रखना
5.	वत्सनाभ, शृङ्गिक	गोमूत्र या कासीसद्रव में उबालकर सूखने पर कोयला व तैल का लेप लगाना
6.	पिप्पली, मरिच, छोटी हरड़	कोयला व तैल लिपकर रखना
7.	कुटकी	मिट्टी का लेप कर 7 दिन रखना
8.	तुत्थ, कासीस, टंकण	काँच पात्र में बन्द कर रखना
9.	हरीतकी	सुखाकर रखना
10.	हरिद्रा, अतिविषा, निशोथ, दन्तीमूल	रसपुष्प के घोल से प्रक्षालन कर बालसुधा (टंकण) में मिलाकर रखना
11.	रसदार शुष्क द्रव्यः-द्राक्षा (मुनक्का), अंजीर आदि	बोरी या कपड़े के बैग में रखना
12.	शुष्क मूलकन्दः-सौंफ, हरिद्रा, अतीस आदि	टिन के पात्र में रखना
13.	गन्ध द्रव्यः- सौंफ, लवङ्ग, एलादि	काँच के ढक्कनयुक्त पात्र में रखना
14.	क्षीर युक्त मूलः-त्रिवृत, दन्ती आदि	छींके पर लटकाकर रखना
15.	सरसद्रव्यः-लक्ष्मणा, शतावरी आदि	खुले स्थान में रखना

Scanned with CamScanner

निर्मित औषध योग संरक्षण विधि:–

(Preservation of Prepared Aushadhi yoga)

आयुर्वेदिक औषधि योगों को चिरकाल तक सुरक्षित रखने के लिए संरक्षण किया जाना आवश्यक होता है। द्रव औषधियों को अधिक समय तक सुरक्षित रखने के लिए प्रायः गाढ़ी चासनी का उपयोग किया जाता है। इस चासनी में भी शुभ्राभस्म, टंकण भस्म और निम्बु सत्व का प्रयोग एक लीटर द्रव पदार्थ (औषधि) में एक ग्राम मात्रा में किया जा सकता है। औषधि योंगों को सुरक्षित रखने के लिए निर्माणप्रक्रिया, संरक्षक द्रव्य, पात्र, स्थान, पर्यावरण का ध्यान, धूपनक्रिया आदि की उचित व्यवस्था किया जाना अति आवश्यक होता है। इस प्रकार औषधि योगों को अधिक समय तक सुरक्षित रखने के लिए जितनी औषधि निर्माण में सावधानी रखी जाती है, उतनी ही सावधानियाँ उनके उचित संरक्षण के लिए रखी जाती है। क्योंकि उचित संरक्षण नहीं किये जाने पर औषधि विकृत हो जाती है। अतः वर्तमान समय में औषधियों में निश्चित मात्रा में संरक्षक द्रव्य (Preservative drugs) मिलाकर औषधियों को लम्बे समय तक प्रयोग योग्य बनाया जा सकता है। औषधियों में सूक्ष्मजीवों की उत्पत्ति की सम्भावनाएँ रहने से निर्माण के समय ही संरक्षी पदार्थों को मिश्रित किया जाता है। ये संरक्षी पदार्थ सूक्ष्म जीवों की अधिक मात्रा के प्रति प्रभावकारी होते हैं। संरक्षी द्रव्य का हानिकारक प्रभाव नहीं होना चाहिए। इनमें किसी भी प्रकार की दुर्गन्ध नहीं होनी चाहिए। औषधि संरक्षण हेतु एक या एक से अधिक संरक्षी पदार्थों का उपयोग किया जा सकता है।

आधुनिक संरक्षक द्रव्य:–

1. बेन्जोइक एसिड	-	0.1 से 0.2%
2. मिथाइल पैराबेन	-	0.1 से 0.2%
3. सोडियम बेन्जोएट	-	0.1 से 0.2%
4. प्रोपाइल पेराबेन	-	0.1 से 0.2%
5. सेलिसिलिक एसिड	-	0.1%
6. बेन्जाल्कोनियम क्लोराइड	-	0.04 से 0.02%

निर्मित औषध भेषजागार (Finished Goods Store)

निर्मित औषधियों के भण्डारण (Storage) के लिए भी भेषजागार (Prepared drug store) बनाया जाना चाहिए। जिसमें 20×20 फीट के दो तीन बड़े कक्ष हो, जिनकी छत की ऊँचाई 15 फीट होनी चाहिए। वायु व प्रकाश के लिए

Scanned with CamScanner

रोशनदान व खिड़कियाँ बनी हो। ऐसे कक्ष में स्टेनलेस स्टील या लोहे की 10 फी ऊँचे रैंको की दो लाइन सटा कर बनानी चाहिए। रैकों के स्लेबों (Slavs) की ऊँचा पैकिंग के हिसाब से घटानी बढ़ानी चाहिए। एक कक्ष में स्टील या गैल्वेनाइज्ड लोहे के ढक्कनदार ड्रमों को औषध का नाम लिखकर एक तरफ लाईन में रखना चाहिए।

निर्मित औषधियों को काँच की या प्लास्टिक की बोतलों-जारों या पॉलीथीन की थैलियों में पैक करके लेबल लगाकर रैंकों व आलमारियों में सुरक्षित रखना चाहिए। काँच की बोतलें 50 ml. 100ml. 150 ml. 500ml. 750ml आदि विभिन्न माप के आकारों की आती हैं। काँच व प्लास्टिक P.V.C. के जार भी विभिन्न आकारों के मिलते हैं। आजकल P.V.C. प्लास्टिक के अपेक्षा पर्लपेट (पोलीथिलीन टेरीष्थैलेट नामक पोलीमर से निर्मित) से निर्मित जार कम वजन, दुर्गन्धरहित होने से बहु प्रचलित है। ये आसानी से टूटती नहीं है।

घृत, तैल, शार्कर को काँच या पर्लपेट की बोतलों में तथा अवलेह-प्राश को जारों में भरकर अलमारियां में पृथक्-पृथक् वर्गीकृत कर सुव्यवस्थित रखना चाहिए। तैल, घृत, अवलेह, शार्कर आदि को दर्वी से निकालना व भरना चाहिए।

आसव, अरिष्ट सागवान के ड्रमों या सीमेंट के टैंकों में भरकर रखना चाहिए। थोड़ी मात्रा में रखना है तो काँच की बोतलों में भरकर रखना चाहिए।

सुगन्धित चूर्णों (जिनमें हींग, जीरक, अजवायन, दालचीनी, इलायची आदि डाली जाती है) को स्टेनलेस स्टील या काँच की शीशी या जारों में भरकर रखना चाहिए। लवण और क्षारीय द्रव्यों से निर्मित चूर्ण को धातु निर्मित पात्र में नहीं रखना चाहिए।

रसौषधियों को काँच या चीनी मिट्टी के पात्रों में रखना चाहिए, धातुनिर्मित पात्रों में रखने से विकृत हो सकती है।

शहद को धातु के पॉलिश किये पात्र या काँच के पात्र में रखना चाहिए।

प्रत्येक औषध को उचित पात्र में पैक करके उस पर छपा हुआ लेबल लगाना चाहिए, जिस पर निम्न बातें लिखी होनी चाहिए:-

1. औषध का नाम
2. ग्रन्थाधार
3. बैच नम्बर
4. निर्माण तिथि
5. वीर्यहीन होने के तिथि (Expiry date)
6. मूल्य
7. घटक द्रव्यों की सूची
8. प्रयोग की मात्रा
9. उपयोग
10. निर्माता का नाम-पता

Scanned with CamScanner

काँच की शीशी, जार आदि पर Air tight (वातसंरोधी) पैकिंग करनी चाहिए। आजकल सीलिंग मशीन, केप सीलिंग मशीनों द्वारा बोतलों पर एल्यूमिनियम कैप, कार्क आदि से पैकिंग की जाती है।

पैक की हुई भस्म, रसौषधि, चूर्ण, वटी, तैल, घृत, पाक, अवलेह, आसव, अरिष्ट, क्वाथ चूर्णों को अलग-अलग रैक में रखना चाहिए। निर्माण के बाद अधिक मात्रा की औषधियों को बड़े ड्रमों में रखना चाहिए।

पैकिंग के समय औषधियों का परीक्षण कर लेना चाहिए तथा मानक (Standard) औषधियों की ही सही मात्रा में पैकिंग करनी चाहिए।

G.M.P. प्रावधान के अनुसार रसायनशाला में कच्ची औषधि भण्डार (Raw drug store) और निर्मित औषध भण्डार (Finished goods store) पृथक-पृथक होने चाहिए।

औषधि कल्पनाओं की सवीर्यता अवधि

विभिन्न आयुर्वेदीय औषध कल्पनायें निर्माण करने के बाद कितने समय तक वीर्यवान् अर्थात् गुणवान् रहती है तथा प्रयोग करने पर निर्दिष्ट रोगों का शमन करती है, वह अवधि (समय) उस औषध की सवीर्यता अवधि (Self life) होती है। इसके लिए सर्वप्रथम आचार्य शार्ङ्गधर ने कुछ कल्पनाओं की सवीर्यता अवधि बतायी है। यथा:-

गुणहीनं भवेद् वर्षादूर्ध्वं तद्रूपमौषधम्।।
मासद्वयात् तथा चूर्णं हीनवीर्यत्वमाप्नुयात्।
हीनत्वं गुटिकालेहौ लभेते वत्सरात् परम्।
हीनाः स्युर्घृततैलाद्याश्चतुर्मासाधिकात् तथा।
ओषध्यो लघुपाकाः स्युर्निर्वीर्या वत्सरात् परम्।।
पुराणाः स्युर्गुणैर्युक्ता आसवा धातवो रसाः।

(शा. सं. पू. ख. 1/54-56½)

अर्थात औषधि द्रव्य (वानस्पतिक द्रव्य) एक वर्ष में रस-गुण-वीर्य, विपाक, प्रभाव से हीन (गुण हीन) हो जाता है। चूर्ण दो माह बाद हीन वीर्य हो जाते है। वटी और अवलेह एक वर्ष बाद हीन वीर्य हो जाते हैं। औषधियों से निर्मित घी, तैल, वसा आदि एक वर्ष चार माह बाद हीन वीर्य हो जाते हैं। लघुपाकी (शीघ्र पक्व होने वाली) औषधियाँ भी एक वर्ष के बाद हीन वीर्य हो जाती है। परन्तु आसव, अरिष्ट, लौह आदि धातुओं की भस्में और रसौषधि योग जितने अधिक पुराने होते हैं, उतने अधिक गुणवान् होते जाते हैं।

Scanned with CamScanner

स्नेहसिद्धो गुडादिश्च गुणहीनोऽब्दतो भवेत्।
स्नेहाद्याः पूर्णवीर्याः स्युराचतुर्मासतः परम्।।
अब्दादूर्ध्वं घृतं पक्वं हीनवीर्यन्तु तद्भवेत्।
तैले विपर्ययं विद्यात् पक्वेऽपक्वे विशेषतः।। (वै. प. प्र. 1/54-55)

अर्थात् घृत आदि स्नेह में सिद्ध गुड आदि औषधियाँ एक वर्ष बाद गुणहीन हो जाती हैं। औषधियों से सिद्ध घृत-तैल आदि पाक के चार माह बाद ही वीर्य से परिपूर्ण होते हैं। औषधि के साथ पकाया हुआ घृत एक वर्ष बाद हीनवीर्य हो जाता है, किन्तु तिल तैल पक्व हो या अपक्व, पुराना होने पर गुणकारी होता जाता है।

उपरोक्त कल्पनाएँ एवं अन्य कल्पनायें पर्ल पेट के डिब्बों आदि संरक्षण पात्रों एवं संरक्षण द्रव्यों द्वारा भी अधिक समय तक सुरक्षित रखी जा सकती है। अन्य कल्पनाओं का इसी के आधार पर समय निर्धारण किया गया है।

स्वरस, कल्क, क्वाथ, हिम, फाण्ट, उष्णोदक, क्षीरपाक, तण्डुलोदक, मांसरस, यूष, मण्ड, पेया, विलेपी, यवागू, वेशवार आदि कल्पनाओं को तुरन्त या एक दिन में ही प्रयोग कर लेना चाहिए।

वटी, गुटिका, अवलेह, घनसत्त्व, रसक्रिया, अर्क, लवणयोग, क्षार आदि औषधियाँ एक वर्ष तक गुणयुक्त रहती है। धातु, महारस, उपरस, साधारण रस आदि से निर्मित रसौषधियाँ, भस्म, मसी, पर्पटी, पोट्टली, आसव और अरिष्ट जितने अधिक पुराने हो उतने ही अधिक गुणकारी माने जाते हैं।

ड्रग एण्ड कास्मेटिक एक्ट 1945 के नियम161B के अनुसार भारत सरकार के आयुष विभाग द्वारा 1 अप्रेल 2010 से सवीर्यता अवधि का समय निर्धारण किया गया है। यथा :-

आयुर्वेदिक औषधियों की सवीर्यता अवधि

क्र. सं.	औषधि कल्पनाएँ	सवीर्यता अवधि
1.	चूर्ण, क्वाथ चूर्ण	2 वर्ष
2.	काष्ठौषधि गुटिका	3 वर्ष
3.	रसौषधि गुटिका	5 वर्ष
4.	रसौषधियाँ	समाप्ति तिथि नहीं
5.	आसव, अरिष्ट	समाप्ति तिथि नहीं
6.	अवलेह	3 वर्ष
7.	गुग्गुलु	5 वर्ष
8.	लौह, मण्डूर	10 वर्ष

Scanned with CamScanner

9.	घृत	2 वर्ष
10.	तैल	3 वर्ष
11.	अर्व.	1 वर्ष
12.	द्रावक, लवण, क्षार	5 वर्ष
13.	लेप चूर्ण	3 वर्ष
14.	दन्तमञ्जन चूर्ण	2 वर्ष
15.	दन्तमञ्जन पेस्ट	2 वर्ष
16.	लेप गुटि	3 वर्ष
17.	लेप मलहर (Ointment आदि)	3 वर्ष
18.	वर्ति	2 वर्ष
19.	घन वटी	3 वर्ष
20.	कूपीपक्व रसायन	समाप्ति तिथि नहीं
21.	पर्पटी	समाप्ति तिथि नहीं
22.	श्वेत पर्पटी	2 वर्ष
23.	पिष्टी व भस्म	समाप्ति तिथि नहीं
24.	स्वर्ण, रजत, लौह, मण्डूर अभ्रक, गोदन्ती, शंखभस्म आदि	समाप्ति तिथि नहीं
25.	नाग, वंग, ताम्र भस्म	5 वर्ष
26.	काष्ठौषधि के सौफ्ट जिलेटिन द्वारा निर्मित कैपसूल	3 वर्ष
27.	काष्ठौषधि, रसभस्म, पारद-गंधक के हार्ड जिलेटिन द्वारा निर्मित कैपसूल	5 वर्ष
28.	सीरप, लिक्विड, ओरल	3 वर्ष
29.	कर्ण, नासा, बिन्दु, आई ड्रोप	2 वर्ष
30.	खण्ड, ग्रैन्यूल, पाक	3 वर्ष
31.	धूपन, इन्हेलर्स	2 वर्ष
32.	प्रवाहीक्वाथ (संरक्षक द्रव्य सहित)	3 वर्ष

क्र.सं. 4, 5, 20, 21, 23, 24 की सवीर्यता अवधि लम्बे समय तक रहती है, 10 वर्ष तक इनका रिकार्ड रखना चाहिए। क्र.सं. 25 की भस्में 5 वर्ष बाद कठिन हो जाती है। अतः पाँच साल में एक या दो पुट और लगाकर औषधियों का सेवन किया जाना चाहिए।

Scanned with CamScanner

इस प्रकार कौनसी कल्पना कितने समय तक सुरक्षित रहकर शरीर पर लाभदायक होती है इसका समय निर्धारण किया गया है। जिसके अनुसार ही औषधि कल्पनाओं का उपयोग किया जाना चाहिए। यह नियम लागू होने से सभी औषध योगों पर सवीर्यता अवधि (Self life or expire date) लिखना आवश्यक हो गया है।

भेषज प्रयोग विधि :-

भेषज का प्रयोग कितनी मात्रा में, किस समय और किस अनुपान (सहपान) से करना है, ये सब भेषज प्रयोग विधि कहलाती है। इसलिए औषध मात्रा, अनुपान (सहपान) और भेषज काल का ज्ञान आवश्यक है।

औषध मात्रा:-

औषध का प्रयोग उचित मात्रा में करने पर ही चिकित्सा में सफलता प्राप्त की जा सकती है। आयुर्वेदीय ग्रन्थों में औषध की मात्रा रोगी के बल, काल, अग्नि, आयु, प्रकृति, देश एवं दोषों का विचार कर निर्धारित करने का निर्देश किया है। औषध की मात्रा के सम्बन्ध में आचार्य सुश्रुत ने कहा है :-

तत्र मासादूर्ध्वं क्षीरपायाङ्गुलिपर्वद्वयग्रहणसम्मितामौषधमात्रां विदध्यात्, कोलास्थिसम्मितां कल्कमात्रां क्षीरान्नादाय, कोलसम्मितामन्नादायेति।

(सु. शा. 10/38)

अर्थात् क्षीरप अवस्था (एक वर्ष तक) के बालक को एक चुटकी, क्षीरान्नाद को कोलास्थि के बराबर और अन्नाद को कोल (बेर) के बराबर औषधि देनी चाहिए।

शार्ङ्गधर संहिता में औषधि की मात्रा का निर्देश करते हुए कहा गया है :-

बालकस्य प्रथमे मासि देया भेषजरक्तिका।
अवलेहीकृतैकैव क्षीरक्षौद्रसिताघृतैः।।
वर्धयेत्तावदेकैकां यावद्भवति वत्सरः।
माषैर्वृद्धिस्तदूर्ध्वं स्याद्यावत्षोडशवत्सरः।।
ततः स्थिरा भवेत्तावद्यावद्वर्षाणि सप्ततिः।
ततो बालकवन्मात्रा ह्रासनीया शनैः शनैः।।
मात्रेयं कल्कचूर्णानां कषायाणां चतुर्गुणा।

(शा. सं. पू. ख.6/48-51)

अर्थात् बालक को प्रथम मास में एक रत्ती औषध देनी चाहिए। उसके बाद जब तक बालक एक वर्ष का नहीं हो जाता, तब तक प्रति मास एक-एक रत्ती बढ़ाते जाना चाहिए। यह मात्रा उसे माँ के दूध, मधु, चीनी या घी में मिलाकर चटानी चाहिए। एक वर्ष के बालक को औषधि एक माशा की मात्रा में देनी चाहिए। उसके बाद 16

वर्ष की वय तक प्रतिवर्ष एक-एक माशा बढ़ानी चाहिए अर्थात् 16 वर्ष आयु के बालक को 16 माशा औषध मात्रा खिलानी चाहिए। यह मात्रा 16 वर्ष से 70 वर्ष की वय तक स्थिर रहेगी। 70 वर्ष की वय के बाद औषधि की मात्रा प्रतिवर्ष उत्तरोत्तर उसी प्रकार घटानी चाहिए, जिस प्रकार बाल्यावस्था में बढ़ाते हैं। यह मात्रा चूर्ण व कल्कों के लिए है। कषाय आदि की मात्रा इसकी चार गुना समझनी चाहिए।

शार्ङ्गधर के अनुसार औषध की मात्रा को निम्न प्रकार से समझ सकते हैं।

16 से 70 वर्ष तक	–	पूर्ण मात्रा (16 माशा)
4 वर्ष के बालक के लिए	–	¼ मात्रा (4 माशा)
8 वर्ष के बालक के लिए	–	½ मात्रा (8 माशा)
12 वर्ष के बालक के लिए	–	¾ मात्रा (12 माशा)

स्थितिर्नास्त्येव मात्रायाः कालमग्निं बलं वयः।
प्रकृतिं देशदोषौ च दृष्ट्वा मात्रां प्रकल्पयेत्।।
यतो मन्दानला ह्रस्वा हीनसत्त्वा नराः कलौ।
अतस्तु मात्रा तद्योग्या प्रोच्यते सुज्ञसम्मता।।

(वै. प. प्र. 2/33-34)

अर्थात् औषधि द्रव्यों की मात्रा में स्थिरता नहीं होती है। क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति एवं रोग के बलाबल में विविधता रहती है। अतः विद्वान् चिकित्सक काल, अग्नि, बल, आयु, प्रकृति, देश एवं दोषों का विचार कर मात्रा निर्धारित करें। प्राचीन काल में अग्निबल श्रेष्ठ रहता था, किन्तु वर्तमान कलियुग में मन्दाग्नि एवं अल्प बल वाले व्यक्ति होने के कारण वैद्य उसी के अनुसार उचित मात्रा में औषध का प्रयोग करें।

नाल्पं हन्त्यौषधं व्याधिं यथाल्पाम्बु महानलम्।
दोषवच्चातिमात्रं स्यात् सस्यमत्युदकं यथा।।

(वै. प. प्र. 2/35)

अर्थात् जिस प्रकार अल्पमात्रा में प्रयुक्त जल प्रज्वलित अग्नि को नहीं बुझा सकता है, उसी प्रकार अल्प मात्रा में उचित औषध भी रोग को दूर नहीं कर सकती है। जिस प्रकार अधिक मात्रा में जल धान को नष्ट करता है, उसी प्रकार अधिक मात्रा में औषध देना भी दोष उत्पन्न करता है। अतः उचित मात्रा में प्रयुक्त औषध ही रोगनाश करने में समर्थ होती है।

मात्रया हीनया द्रव्यं विकारं न निवर्तयेत्।
द्रव्याणामतिबाहुल्याद् व्यापत् सञ्जायते ध्रुवम्।।

(वै. प. प्र. 2/36)

Scanned with CamScanner

अर्थात् अल्प मात्रा में औषध से व्याधि निवारण नहीं होता है और अधिक मात्रा में देने पर निश्चित रूप से अनेक उपद्रव हो जाते हैं।

मात्राया नास्त्यवस्थानं दोषमग्निं बलं वयः।
व्याधिं द्रव्यञ्च कोष्ठञ्च वीक्ष्य मात्रां प्रयोजयेत्।।

(वै. प. प्र. 2/37)

अर्थात् औषध मात्रा का निश्चित निर्धारण नहीं होने के कारण दोष, अग्नि, बल, आयु, रोग, औषध और कोष्ठ आदि के बलाबल के अनुसार मात्रा का निर्धारण करना चाहिए।

उत्तमस्य पलं मात्रा त्रिभिश्चाक्षैश्च मध्यमे।
जघन्यस्य पलार्द्धेन स्नेहक्वाथ्यौषधेषु च।।

(वै. प. प्र. 2/38)

अर्थात् श्रेष्ठ बल वाले पुरुष के लिए घृत तैलादि स्नेह एवं क्वाथ की मात्रा एक पल (48 ग्राम), मध्यम बल वाले पुरुष के लिए तीन कर्ष (36 ग्राम) और हीन बल वाले पुरुष के लिए आधा पल (24 ग्राम) प्रयुक्त करनी चाहिए। यह मात्रा स्नेह एवं क्वाथ की है।

सार्द्धं पलं पलञ्चार्द्धं विदध्यात् गुडखण्डयोः।
श्रेष्ठमध्यमहीनेषु मात्रेयं मुनिभिः कृता।।
अत्र स्यात् सोश्रुतं पञ्चरक्तिमाषात्मकं पलम्।।

(वै. प. प्र. 2/39)

अर्थात् गुड एवं खण्ड नामक औषध कल्पनाएँ श्रेष्ठ बल वाले में डेढ़ पल, मध्यम बल वाले में एक पल और हीन बल वाले व्यक्ति में आधा पल की मात्रा में प्रयुक्त करें। यहाँ पर सुश्रुतोक्त पाँच रत्ती वाले माषा से होने वाले पल को लेना चाहिए।

मोदकं वटकं लेहं कर्षमात्रं प्रयोजयेत्।
कर्षद्वयं पलं वापि देयं कोष्ठाग्न्यपेक्षया।।

(वै. प. प्र. 2/40)

अर्थात् मोदक, वटक, अवलेह का एक कर्ष की मात्रा में प्रयोग करना चाहिए। साथ ही कोष्ठ, अग्नि आदि का विचार करके दो कर्ष या एक पल की मात्रा में भी प्रयुक्त किया जा सकता है।

श्रेष्ठमध्यमहीनेषु द्वादशाष्टचतुष्ट्वैः।
माषकैर्गुगुलोर्मात्रां कोष्ठं वीक्ष्यावतारयेत्।।

(वै. प. प्र. 2/41)

श्रेष्ठ - 12 माशा
मध्यम - 8 माशा
हीन - 4 माशा } गुग्गुलु

अर्थात् श्रेष्ठ बल वाले पुरुष को 12 माषा, मध्यम बल वाले पुरुष को आठ माषा और अल्प बल वाले पुरुष को 4 माषा की मात्रा में कोष्ठादि का विचार कर गुग्गुलु का सेवन करना चाहिए।

गुञ्जामात्रं रसं देवि! हेमतीर्थञ्च भक्षयेत्।
तारं त्रिगुञ्जकं प्रोक्तं रविजीर्णं द्विगुञ्जकम्।।
लोहाभ्रनागवङ्गानां खर्परस्य शिलाजतोः।
षड्गुञ्जा प्रमिता मात्रा मलोपरसमाषकम्।।
कांस्यपित्तलयोर्मानं भक्षयेत् ताम्रजीर्णवत्।
यवमात्रं विषं देवि! गुञ्जामात्रन्तु कुष्ठिने।।
यज्रं यवद्वयमितं तालकं यवसप्तकम्।
ततो बुद्ध्या भिषग् दद्यात् प्रायो मात्रेति कीर्तिता।।

(वै. प. प्र. 2/42-45)

अर्थात् रसौषधियों की मात्रा आचार्य ने निम्नानुसार निर्धारित की है, किन्तु अग्नि, बल, कालादि का विचार कर मात्रा का न्यूनाधिक्य किया जा सकता है।

पारद भस्म (रससिंदूर)	- 1 रत्ती	शिलाजतु	-6 रत्ती
स्वर्ण भस्म	- 1 रत्ती	लौहादिमल भस्म	-1 माषा
रजतभस्म	- 3 रत्ती	उपरस (हिंगुलादि)	-1 माषा
ताम्रभस्म	- 2 रत्ती	कांस्यभस्म	-2 रत्ती
लौहभस्म	- 6 रत्ती	पित्तल भस्म	-2 रत्ती
अभ्रक भस्म	- 6 रत्ती	विष मात्रा	-1 यव (30 mg)
नाग भस्म	- 6 रत्ती	कुष्ठ में विष मात्रा	-1 रत्ती
वंग भस्म	- 6 रत्ती	हीरक भस्म	-2 यव (60 mg)
यशदभस्म	- 6 रत्ती	हरतालभस्म	-7 यव (200 mg)

शिशुओं में औषधियों की मात्राः-

प्रथमे मासि जातस्य शिशोर्भेषजरक्तिका।
1 माह = 1 रत्ती अवलेह्या तु कर्त्तव्या मधुक्षीरसिताघृतैः।।
1 वर्ष = 12 रत्ती एकैकां वर्द्धयेत् तावत् यावत् संवत्सरो भवेत्।।

(वै. प. प्र. 3/107)

अर्थात् एक महीने के शिशु को औषधि की मात्रा एक रत्ती मधु, दूध, मिश्री या घृत के साथ चटानी चाहिए। फिर प्रत्येक माह एक-एक रत्ती बढ़ाते हुए एक साल के शिशु को 12 रत्ती तक औषध चटानी चाहिए।

Scanned with CamScanner

तदूर्ध्वं माषवृद्धिः स्याद् यावदाषोऽशशाब्दिकः।
ततस्तु सप्ततिं यावत् कर्षमात्रां प्रयोजयेत्।।
एवमेव विभागोऽयं तदूर्ध्वं बालवत् क्रिया।।
(वै. प. प्र. 3/108)

अर्थात् एक वर्ष के पश्चात् एक-एक माषा प्रतिवर्ष बढ़ाते हुए 16वें वर्ष में 16 माषा (1 कर्ष) तक पहुँचाकर इसी मात्रा का सेवन करायें। इसके बाद 70 वर्ष तक एक कर्ष मात्रा का सेवन कराते हुए बाद की अवस्था में पुनः बालक जैसी मात्रा का सेवन कराना चाहिए।

रक्तिमारभ्य कर्षन्तु मानं बालगदे मतम्।
कर्षादौ तु जलश्रुत्या क्वाथ्यस्य कार्षिको मतः।।
(वै. प. प्र. 3/109)

अर्थात् शिशुरोगों में औषधि की मात्रा एक रत्ती से एक कर्ष मानी है। यदि क्वाथ प्रयुक्त करना हो तो क्वाथ्य द्रव्य एक पल लेकर नियमानुसार सोलह गुना जल में पकाकर अष्टमांश शेष रखें। फिर एक कर्ष मात्रा में सेवन करायें।

यस्तु स्यात् क्षीरपो बालः कषायं पातुमक्षमः।
तदा भिषक् कुमारस्य तस्य धात्रीश्च पाययेत्।।
(वै. प. प्र. 3/110)

अर्थात् क्षीरप बालक को दूध पिलाने वाली धात्री को एक कर्ष की मात्रा में क्वाथ पिलाना चाहिए।

आयुर्वेदीय ग्रन्थों में अनेक कल्पनाओं की सामान्य प्रयोग मात्रा बतायी है, जो निम्न है :-

क्र. सं.	कल्पना का नाम	शार्ङ्गधर संहिता	द्र.गु.वि.यादवजी
(i)	स्वरस	½ पल 1 पल (अनुकल्प)	½ पल 1 पल (अनुकल्प)
(ii)	कल्क	1 कर्ष	1 कर्ष
(iii)	चूर्ण	1 कर्ष	1 कर्ष
(iv)	क्वाथ	2 पल	1 पल
(vii)	घृत	1 पल(आभ्यन्तर)	-
(viii)	तैल	1 पल (आभ्यन्तर)	-
(ix)	अवलेह	1 पल	1 कर्ष

Scanned with CamScanner

(x)	वटी	1 कर्ष	1 कर्ष
(xi)	आसव अरिष्ट	1 पल	–
(xii)	क्षार	2 से 8 रत्ती.	–

अनुपान :–

निरुक्ति:–

"अनु–पश्चात् सह वा पीयते इति अनुपानम् ।।"

अर्थात् औषध एवं आहार के साथ अथवा उसके सेवन के पश्चात् जिस द्रव पदार्थ का पान किया जाता है, उसको अनुपान कहते हैं।

अनुपान परिभाषा:–

यत्किञ्चिदौषधं वैद्यैर्देयं रोगानुपानतः ।
तत्तद्गुणकरं ज्ञेयमनुपान बलादिहः ।। (यो. र. रसायन)

अर्थात् चिकित्सक द्वारा रोगोक्त अनुपान के साथ प्रयोग करने पर औषधियाँ अत्यधिक गुणवान् हो जाती है। अतः इसे अनुपान कहते हैं।

अनुपान प्रयोजन:–

यथा तैलं जले क्षिप्तं क्षणेनैव प्रसर्पति ।
अनुपान बलादङ्गे तथा सर्पति भेषजम् ।।
(शा. सं. म. ख. 6/5)

यथा जलगतं तैलं क्षणेनैव प्रसर्पति ।
तथा भैषज्यमङ्गेषु प्रसर्पत्यनुपानतः ।। (वै. प. प्र. 3/87)

अर्थात् जिस प्रकार जल के ऊपर तैल की बूँद डालने पर अतिशीघ्र फैल जाती है। उसी प्रकार औषधि का सेवन अनुपान के साथ करने पर शीघ्रता से शरीर में फैलकर बल प्रदान करती है।

वातापिर्भक्षितो येन त्वगस्त्येन द्विजोत्तम ।
अनुपानं कृतं तेन का कथा सर्वदेहिनाम् ।। (वै. प. प्र. 2/90)

अर्थात् हे द्विजोत्तम! जिस अगस्त्य मुनि ने वातापि नामक राक्षस का भक्षण करने के बाद पचाने के लिए अनुपान का सेवन किया था, तो साधारण पुरुष बिना अनुपान के भोजन को कैसे पचा सकता है। अर्थात् औषध एवं आहार द्रव्यों को पचाने के लिए अनुपान अति आवश्यक होता है।

Scanned with CamScanner

अनुपान की उपयोगिताः-

अनुपानं हितं युक्तं तर्पयत्याशु मानवम् ।
सुखं पचति चाहारमायुषे च बलाय च ।। (च. सू. 27/326)

अथानुपानकर्मगुणान् प्रवक्ष्यामः-अनुपानं तर्पयति, प्रीणयति, ऊर्जयति बृंहयति, पर्याप्तिमभिनिर्वर्तयति, भुक्तमवसादयति, अन्नसङ्घातं भिनत्ति, मार्दवमापादयति, क्लेदयति, जरयति, सुखपरिणामिताशुव्यवायितां चाहारस्योपजनयतीति ।। (च.सू.27/325)

यथोक्तेनानुपानेन सुखमन्नं प्रजीर्यति ।
रोचनं बृहणं वृष्यं दोषसंघातभेदनम् ।।
तर्पणं मार्दवकरं श्रमक्लमहरं सुखम् ।
दीपनं दोषशमनं पिपासाच्छेदनं परम् ।।
बल्यं वर्णकरं सम्यगनुपानं सदोच्यते ।
(सु. सू. 46/436-437½)

अनुपानं करोत्यूर्जां तृप्तिं व्याप्तिं दृढाङ्गताम् ।
अन्नसङ्घातशैथिल्यविक्लित्ति जारणानि च ।।
(अ. हृ. सू. 8/52)

अर्थात् प्राचीन आचार्यों के अनुसार सम्यक् रूप से अनुपान का सेवन करने से औषध एवं आहार का पाचन होकर मनुष्य तृप्त हो जाता है। जिससे बल एवं आयु की वृद्धि हो जाती है। अनुपान से तृप्ति, शारीरिक धातुओं का प्रीणन, ऊर्जा की प्राप्ति, बृंहण, शरीर रक्षक, खाये हुए अन्नादि पदार्थ को आमाशय से नीचे धकेलना, अन्नसंघात, भोजन में मृदुता, क्लेदन, पचाना, भोजन पचने के पश्चात् शीघ्र चारों तरफ फैलने योग्य बनाना, रोचन, वृष्य, श्रमक्लमहरता, सुखदायक, दोषशामक, दीपन, पिपासानाशक, वर्ण्य और अङ्गों को दृढ़ करने के कर्मों से अनुपान का सेवन करने से अत्यन्त लाभ होता है।

श्रेष्ठ अनुपानः-

यदाहारगुणैः पानं विपरीतं तदिष्यते ।
अन्नानुपानं धातूनां दृष्टं यन्न विरोधि च ।। (च. सू. 27/319)

अर्थात् जो द्रव पदार्थ औषध एवं आहार द्रव्यों के गुणों से विपरीत गुण वाला हो, किन्तु वह धातुओं का विरोधी नहीं हो, वह औषध एवं आहार द्रव्यों का उचित अनुपान होता है।

Scanned with CamScanner

वात -3 पल
पित्तरोग -2 पल
कफ -1 पल

अनुपान मात्राः—

चूर्णावलेहगुटिकाकल्कानामनुपानकम्।
वातपित्तकफातङ्के त्रिद्व्येकपलमाहरेत्।।

(शा. सं. म. ख. 6/4)

अर्थात् चूर्ण, अवलेह, गुटिका और कल्कों का अनुपान वातरोग में तीन पल, पित्त रोग में दो पल एवं कफ रोग में एक पल होना चाहिए।

दीप्ताग्नयोः महाकायाः स्नेहसात्म्या महाबलाः।
विसर्पोन्मादगुल्मार्त्ताः सर्पदंष्ट्राविषार्दिताः।।
ज्येष्ठां मात्रां पिबेयुस्ते पलान्यष्टौ विशेषतः।।

(वै. प. प्र. 3/99)

अर्थात् प्रदीप्त जाठराग्नि, वृहद् शरीर, स्नेह सात्म्य, अति बलशाली, विसर्प, उन्माद, गुल्म तथा सर्प विष से पीड़ित को अनुपान की ज्येष्ठ मात्रा विशेषतः आठ पल का सेवन करना चाहिए।

स्निग्धोष्णं मारुते शस्तं पित्ते मधुरशीतलम्।
कफेऽनुपानं रूक्षोष्णं क्षये मांसरसः परम्।।
उपवासाध्वभाष्यस्त्रीमारूतातपकर्मभिः।
क्लान्तानामनुपानार्थं पयः पथ्यं यथाऽमृतम्।।
सुरा कृशानां पुष्ट्यर्थमनुपानं विधीयते।
कार्श्यार्थं स्थूलदेहानामनुशस्तं मधूदकम्।।
अल्पाग्निनामनिद्राणां तन्द्राशोकभयक्लमैः।
मद्यमांसोचितानां च मद्यमेवानुशस्यते।।

(च. सू. 27/321-324)

अर्थात् वातज विकारों में स्निग्ध-उष्ण, पित्तज विकारों में मधुर-शीतल, कफज विकारों में रूक्ष-उष्ण और धातु क्षयज विकारों में मांसरस का अनुपान उत्तम होता है। उपवास, मार्ग चलना, अधिक बोलना, अति मैथुन, मारुत, धूप और अन्य अहितकर कर्मों से श्रान्त व्यक्तियों के लिए दूध का अनुपान अमृत के समान श्रेष्ठ होता है। कृश व्यक्तियों के लिए सुरा तथा स्थूल व्यक्तियों के लिए मधूदक (मधुमिश्रितजल) का अनुपान श्रेष्ठ होता है। मन्दाग्नि, अनिद्रा, तन्द्रा, शोक, भय और थकावट से पीड़ित तथा मद्य, मांससेवी व्यक्तियों के लिए मद्य का अनुपान श्रेष्ठ होता है।

Scanned with CamScanner

शीतोष्णतोयासवमद्ययूष फलाम्लधान्याम्लपयोरसानाम्।
यस्यानुपानं तु हितं भवेद्यत्तस्मै प्रदेयं त्विह मात्रया तत्॥
व्याधिं च कालं च विभाव्य धीरैर्द्रव्याणि भोज्यानि च तानि तानि।
सर्वानुपानेषु वरं वदन्ति मेध्यं यदम्भः शुचिभाजनस्थम्॥
लोकस्यजन्मप्रभृति प्रशस्तं तोयात्मकाः सर्वरसाश्च दृष्टाः।
संक्षेप एषोऽभिहितोऽनुपानेष्वतः परं विस्तरतोऽभिधास्ये॥
उष्णोदकानुपानं तु स्नेहानामथ शस्यते।
ऋते भल्लातकस्नेहात् स्नेहात्तौवरकात्तथा॥
अनुपानं वदन्त्येके तैले यूषाम्लकाञ्जिकम्।
शीतोदकं माक्षिकस्य पिष्टान्नस्य च सर्वशः॥
दधिपायसमद्यार्तिविषजुष्टे तथैव च।
केचित् पिष्टमयस्याहुरनुपानं सुखोदकम्॥
पयोमांसरसो वाऽपि शालिमुद्गादिभाजिनाम्।
युद्धाध्वातपसंतापविषमद्यरूजासु च॥
माषादेरनुपानं तु धान्याम्लं दधिमस्तु वा।
मद्यं मद्योचितानां तु सर्वमांसेषु पूजितम्॥
अमद्यपानामुदकं फलाम्लं वा प्रशस्यते।
क्षीरं घर्माध्वभाष्यस्त्रीक्लान्तानाममृतोपमम्॥
सुरा कृशानां स्थूलानामनुपानं मधूदकम्।
निरामयानां चित्रं तु भुक्तमध्ये प्रकीर्तितम्॥
स्निग्धोष्णं मारूते पथ्यं, कफे रूक्षोष्णमिष्यते।
अनुपानं हितं चापि पित्ते मधुरशीतलम्॥
हितं शोणितपित्तिभ्यः क्षीरमिक्षुरसस्तथा।
अर्कशेलुशिरीषाणामासवास्तु विषार्तिषु॥

(सु. सू. 46/419-430)

अर्थात् शीत जल, उष्ण जल, आसव, अरिष्ट, मद्य, यूष, फलाम्ल, धान्याम्ल, दूध, मधु, तक्र, मांसरस, औषधियों के स्वरस, क्वाथ, हिम, फाण्ट, अर्कादि का अनुपान औषध एवं आहार द्रव्यों के सेवन के पश्चात् मात्रापूर्वक लेने पर लाभकारी होता है। स्वच्छ एवं पवित्र पात्र में रखा हुआ वर्षा का जल (माहेन्द्र) सर्वश्रेष्ठ अनुपान होता है। जल एवं मधु सभी अनुपानों में हितकारी होते हैं। स्नेह पानाजीर्ण में उष्णोदक, तैलों के पानाजीर्ण में यूष, अम्लरस एवं काञ्जी, अधिक मात्रा में मधु एवं पिष्टान्न खाने

पर शीत जल, दही, दूध, मद्य, विषादि में सुखोष्ण जल और भल्लात एवं तुवरक के तैल में शीतल जल का अनुपान हितकारी होता है। शालि चावल, मुंग आदि के भोजन करने वालों के लिए दूध या मांसरस का अनुपान देना चाहिए। युद्ध, मार्गगमन, धूप, विष, मद्यजनित रोगों में धान्याम्ल या दधिमस्तु, मद्य में मांस, अमद्यपान में जल या फलाम्ल, श्रान्त, क्लान्त, अतिमैथुन में दूध अमृत सदृश हितकारी होता है। कृश व्यक्तियों के लिए सुरा और स्थूल व्यक्तियों के लिए मधूदक अनुपान में श्रेष्ठ होता है। वातज विकार में स्निग्धोष्ण, कफज विकार में रूक्षोष्ण और पित्तज विकार में मधुरशीत अनुपान हितकारी होता है। रक्तपित्त में दूध और इक्षुरस तथा विषजरोगों में अर्क, शैलु, शिरीषादि के आसव श्रेष्ठ अनुपान होते हैं।

अनुपानं हिमं वारि यवगोधूममयोर्हितम्।।
दध्नि मद्ये विषे क्षौद्रे कोष्णं पिष्टमयेषु च।
शाकमुद्गादिविकृतौ मस्तुतक्राम्लकाञ्जिकम्।।
सुराकृशानां पुष्ट्यर्थं स्थूलानान्तु मधूदकम्।
शोषे मांसरसो मद्यं मांसे स्वल्पे च पावके।।
व्याध्यौषधाध्वभाष्यस्त्रीलंघनातपकर्मभिः ।
क्षीणे वृद्धे च बाले च पयः पथ्यं यथाऽमृतम्।।

(अ. हृ. सू. 8/47-50)

अर्थात् जौ, गेहूँ सेवन के बाद शीतल जल,दही, दूध, मद्य, विष और मधु, पिष्टान्न खाने पर सुखोष्ण जल, शाक और मूंग की विकृति में मस्तु, तक्र, काञ्जी, कृश पुरुषों में सुरा, स्थौल्य में मधूदक, शोष में मांसरस, मद्य में मांस तथा रोग, औषधि, मार्गगमन, अधिक बोलना, लंघन, धूप सेवन, क्षीण, वृद्ध, बालक के लिए दूध अमृत के समान लाभकारी होता है। इस प्रकार जल, दूध, मधु अनुपान के लिए सर्वश्रेष्ठ हितकारी होते हैं।

कैराताम्बुदपर्पटं ज्वरगते तक्रं ग्रहण्यामथा-
तीसारेकुटजः कृमौ कृमिरिपुर्दुर्नामकेऽरूष्करम्।
पाण्डौ किट्टमथ क्षये गिरिजतु श्वासे तु भार्ग्यौषधं,
मेहे त्वामलरात्रिके तृषि जलं सन्तप्तहेमान्वितम्।।
शूले हिङ्गुकरञ्जमामपवने तैलं रूबोर्मूत्रयुक्,
श्रेष्ठा प्लीह्निकणा विषे शुकतरुः कासे तु कण्टालिका।
वातव्याधिषु गुग्गुलश्च लशुनः स्याद्रक्तपित्ते वृषो-
ऽपस्मारे तु वचा सवागतगरे हेमोदरे रेचनम्।।

Scanned with CamScanner

वातास्रे तु गुडूचिकाऽर्दितगदे माषेण्डरी मेदसि,
क्षौद्राम्भः प्रदरे तिरीटमरूचौ लुङ्गो व्रणेऽन्यःपुर।
शोके मद्यमथाम्लपित्तरुजि तु द्राक्षाऽथकृच्छ्रे वरी,
कूष्माण्डाम्बु दृगामये तु त्रिफलोन्मादेपुराणं घृतम्।।
कुष्ठे खदिरसारिवाऽथ तु पयो निद्राक्षये माहिषं,
श्वित्रे बाकुचीफलमजीर्णं रूजि तु स्वापो भये तोषणम्।
छर्दौ लाजमधूर्ध्वजत्रुविकृतौ नस्यं सतीक्ष्णौषधं,
शूले पार्श्वभये तु पुष्करजटा मूर्च्छासु शीतोविधिः।।
कार्श्ये मांसरसोऽश्मरीषु गिरिभिद् गुल्मेषु शिग्रुत्वचा
मोक्षोऽस्रस्य तु विद्रधौ जतुरसैर्हिध्मासु नस्यं हितम्।
दाहे शीतविधिर्भगन्दरगदे तूर्वीलताश्वा स्थिनि
घृष्टे रासभलोहितैः स्वरगदे मध्वन्वितं पौष्टकरम्।।

(यो.र.रसायन)

अर्थात् ज्वर में पित्तपापड़ा, सुगन्धबाला एवं चिरायता का स्वरस, क्वाथादि, ग्रहणी में तक्र, अतीसार में कुटज, कृमिरोग में विडङ्गचूर्ण, अर्श में भल्लातक एवं चित्रक, पाण्डु में मंडूर भस्म, क्षय में शिलाजतु, श्वास में शुण्ठी, कण्टकारी, प्रमेह में आमलकी का स्वरस, क्वाथ एवं हिम, तृष्णा में षडङ्गजल, शूल में घृतभृष्ट हींग एवं करञ्जबीज मिश्रण, आमवात में गोमूत्र व एरण्ड तैल मिश्रण, प्लीहारोग में पिप्पली चूर्ण, विष पीड़ित में शिरीष वृक्ष त्वक्फल चूर्ण, कास में कण्टकारी स्वरसादि, वातव्याधि में शुद्ध गुग्गुलु एवं लहसुन, रक्तपित्त में वासास्वरस, अपस्मार में वचा एवं ब्राह्मी स्वरस, गरदोष में स्वर्ण भस्म, उदररोग में विरेचन, वातरक्त में गुडूची स्वरस, अर्दित में माषेण्डरी (उड़दक्वाथ), मेदो रोग में मधु के साथ उष्ण जल, प्रदर में लोध्रत्वक् क्वाथ, अरुचि में मातुलुङ्ग निंबू स्वरस, व्रण में गुग्गुलु, शोक में मद्य, अम्लपित्त में द्राक्षा स्वरस, मूत्रकृच्छ्र में कूष्माण्ड स्वरस एवं शतावरी, नेत्ररोगों में त्रिफला क्वाथ, फाण्ट, हिम, उन्माद में पुराणघृत, कुष्ठ में खदिर या सारिवा क्वाथ, निद्रा क्षय में भैंस का दूध, श्वित्र में बाकुची, अजीर्ण में शयन, भय में आश्वासन, वमन में लाजमण्ड एवं मधु, ऊर्ध्वजत्रुगत रोगों में तीक्ष्ण औषधियों का नस्य, पार्श्वशूल में पुष्करमूल, मूर्च्छा में शीत द्रवों का अनुपान, कार्श्य में मांसरस, अश्मरी में पाषाण भेद, गुल्म में शिग्रुमूलत्वक्, विद्रधि में रक्तमोक्षण, हिक्का में नस्य, दाह में शीतल द्रव, भगन्दर में केचुएँ एवं कुत्ते की अस्थि को गर्दभ रक्त में पीसकर लेप और स्वरभेद में पुष्करमूल क्वाथ में मधु मिलाकर अनुपान का सेवन करना चाहिए।

Scanned with CamScanner

इस प्रकार रोगी एवं स्वस्थ पुरुष को आहार एवं औषध कल्पनाओं को सुगमता से पचाने हेतु अनुपान का शास्त्रोक्त विधियों से सेवन करने पर व्यक्तियों का शरीर स्वस्थ होकर बल एवं आयु की वृद्धि हो जाती है।

औषध सेवन काल (Posology) :-

औषधियों को सेवन कराने से पूर्व चिकित्सक को रोग, रोगी एवं औषध द्रव्य के बलाबल के आधार पर औषध सेवन काल का ज्ञान रखना अत्यन्त आवश्यक होता है। क्योंकि रोगी का रोग निवारण करने के लिए उचित समय पर औषध का प्रयोग करने पर ही लाभ मिलता है। महर्षि अग्निवेश ने औषध सेवन के दश काल का वर्णन किया है:-

> **रोग्यवेक्षो यथा प्रातर्निरन्नो बलवान् पिबेत्।**
> **भेषजं लघुपथ्यान्नैर्युक्तमद्यातु दुर्बलः ।।**
> **भैषज्य कालो भुक्तादौ मध्येपश्चान्मुहुर्मुहुः ।।**
> **सामुद्गं भक्तसंयुक्तं ग्रासग्रासान्तरे दशः ।।**
> **अपाने विगुणे पूर्वं समाने मध्य भोजनम्।**
> **व्याने तु प्रातरशितमुदाने भोजनोत्तरम्।।**
> **वायौ प्राणे प्रदुष्टे तु ग्रासग्रासान्तरिष्यते।**
> **श्वासकासपिपासासु त्ववचार्यं मुहुर्मुहुः ।।**
> **सामुद्गं हिक्किने देयं लघुनाऽन्नेन संयुतम्।**
> **संभोज्यं त्वौषधं भोज्यैर्विचित्रैररूचौ हितम्।।**
>
> (च. चि. 30/297-301)

1. बलवान रोगी में निरन्न प्रातःकाल
   दुर्बल रोगी को लघु तथा पथ्य अन्न में मिलाकर प्रातःकाल
2. अपानवायु विकार में भोजन के पूर्व
3. समानवायु विकार में भोजन के मध्य
4. व्यान वायु विकार में प्रातः भोजन के बाद
5. उदान वायु विकार में सायं भोजन के बाद
6. प्राण वायु विकार में ग्रास के साथ
7. प्राणवायु विकार में ग्रासान्तर सेवन
8. श्वास, कास पिपासा में बार-बार
9. हिक्का विकार में भोजन से पूर्व एवं भोजन के अन्त में अर्थात् सामुद्ग
10. अरुचि विकार में विविध प्रकार के विचित्र आहार द्रव्यों के साथ हितकर

Scanned with CamScanner

औषधियों का सेवन

आचार्य सुश्रुत ने भी औषध सेवन के दश कालों का निर्देश दिया है:-

अत ऊर्ध्वं दशौषधकालान् वक्ष्यामः। तत्राभक्तं प्राग्भक्तमधोभक्तं मध्येभक्तमन्तराभक्तं सभक्तं सामुद्गं मुहुर्मुहुर्ग्रासं ग्रासान्तरं चेति दशौषधकालाः॥

(सु. उ. 64/65)

1. अभक्त
2. प्राग्भक्त
3. अधोभक्त
4. मध्येभक्त
5. अन्तराभक्त
6. सभक्त
7. सामुद्ग
8. मुहुर्मुहु
9. सग्रास
10. ग्रासान्तर

इसके पश्चात् अष्टाङ्ग संग्रह में औषध सेवन के ग्यारह कालों का निर्देश किया है:-

न ह्यप्राप्तातीतकालमौषधं यौगिकं भवति, तस्य त्वेकादशधा ऽवचारणम्। तद्यथा:-अभक्तं प्राग्भक्तं मध्यभक्तमधोभक्तं सभक्तमन्तरभक्तं सामुद्गं मुहुर्मुहुः सग्रासं ग्रासान्तरं निशि च॥ (अ. सं. सू. 23/12)

1. अभक्त
2. प्राग्भक्त
3. मध्यभक्त
4. अधोभक्त
5. सभक्त
6. अन्तरभक्त
7. सामुद्ग
8. मुहुर्मुहु
9. सग्रास
10. ग्रासान्तर
11. निशा (रात्रि)

आचार्य शार्ङ्गधर मिश्र ने स्वरसादि के लिए एक विशेष काल प्रातःकाल का निर्देश करके पञ्चविध औषध सेवन काल का उल्लेख किया है:-

भैषज्यमभ्यवहरेत् प्रभाते प्रायशो बुधः।
कषायांश्च विशेषेण तत्र भेदस्तु दर्शितः॥

(शा. सं. पू. ख. 2/1)

अर्थात् बुद्धिमान रोगी को औषध सेवन काल के निर्देश के अभाव में स्वरस, कल्क, क्वाथ, हिम, फाण्ट को प्रातःकाल सेवन करना चाहिए।

ज्ञेयः पञ्चविधः कालो भैषज्यग्रहणे नृणाम्।
किञ्चित् सूर्योदये जाते तथा दिवसभोजने॥
सायन्तने भोजने च मुहुश्चापि तथा निशि।

(शा. सं. पू. ख. 2/2-2½)

1. सूर्योदय के समय
2. दिन के भोजन के समय
3. सायंकाल के भोजन के समय
4. पुनः पुनः औषध सेवन
5. रात्रि के समय

Scanned with CamScanner

1. अभक्तः-

तत्राभक्तं तु यत् केवलमेवौषधमुपयुज्यते।
वीर्याधिकं भवति भेषजमन्नहीनं हन्यात्तथाऽऽमयमसंशयमाशु चैव।
तद्वालवृद्धवनितामृदवस्तु पीत्वा ग्लानिं परां समुपयान्ति बलक्षयं च।।
(सु. उ. 64/66-67)

तत्राभक्तं नाम केवलमेवौषधम्। तन्निरन्नोपयोगादतिवीर्यं कफोद्रेके विमुक्तामाशयस्रोताः। प्रातर्बलवानुपयुञ्जीत।। (अ. सं. सू. 23/13)

प्रायः पित्तकफोद्रेके विरेकवमनार्थयोः।
लेखनार्थं च भैषज्यं प्रभाते तत्समाहरेत्।। (शा. सं. पू. ख. 2/3-4)
भैषज्यमभ्यवहरेत् प्रभाते प्रायशो बुधः।
कषायांश्च विशेषेण तत्रभेदस्तु दर्शितः।। (शा. सं. पू. ख. 2/1)

अर्थात् प्रातःकाल सूर्योदय के समय भूखे पेट औषध का सेवन करने को "अभक्त" काल कहते हैं। इस समय सेवन की गई औषध अधिक गुणकारी होती है। जो रोगों का शीघ्र नाश करने में सक्षम होती है, इसमें कोई संशय नहीं है। बालक, वृद्ध, स्त्री, सुकुमार व्यक्ति को इस काल में औषध सेवन कराने पर ग्लानि एवं बलक्षय करती है, अतः इनको कुछ लघु अन्न खिलाकर औषध सेवन कराना चाहिए। पित्त और कफ की अधिकता में तथा वमन, विरेचन एवं लेखन औषध का प्रातःकाल प्रयोग करना चाहिए। सभी प्रकार के कषायों का प्रातःकाल (अभक्त काल) में सेवन किया जाना चाहिए।

जो औषध पिछले दिन खाये हुए आहार के पचने पर लिया जावे और औषध के पाचन होने तक अन्न न खाया जाये, उसको अभक्त या अनन्न कहते हैं। यथाः-

यत्राहारे जीर्णे भेषजं भेषजे जीर्णे चाहारः तत् अनन्नम् अभक्तं नाम'- (हेमाद्रि)

2. प्राग्भक्तः-

प्राग्भक्तं नाम यत् प्राग्भक्तस्योपयुज्यते।।
शीघ्रं विपाकमुपयाति बलं न हिंस्यादन्नावृत्तं न च मुहुर्वदनान्निरेति।
प्राग्भक्तसेवितमथौषधमेतदेव दद्याच्च वृद्धशिशुभीरुकृशाङ्गनाभ्यः।।
(सु. उ. 64/68-69)

प्राग्भक्तं नाम यदनन्तरभक्तम्। तदपानानिल विकृतावधःकायस्य च बलाधानार्थं तद्गतेषु च व्याधिषु प्रशमनाय कृशीकरणं योज्यम्।।
(अ. ह. सू. 23/14)

Scanned with CamScanner

भैषज्यं विगुणोऽपाने भोजनाग्रे प्रशस्यते।
अरूचौ चित्रभौज्यैश्च मिश्रं रुचिरमाहरेत्।।
समानवाते विगुणे मन्देऽग्नावग्निदीपनम्।
दद्याद् भोजनमध्ये च भैषज्यं कुशलो भिषक्।।
व्यानकोपे च भैषज्यं भोजनान्ते समाहरेत्।
हिक्काऽऽक्षेपककम्पेषु पूर्वमन्ते च भोजनात्।।

(शा. सं. पू. ख. 2/5-7)

अर्थात् प्राग्भक्त औषधकाल में औषध खिलाकर बाद में अन्न सेवन कराया जाता है। अन्न खाने से पूर्व ली गई औषध का शीघ्र पाक होने से बल का क्षय नहीं करती है। अन्नादि के साथ उदर में मिश्रित होने से वमन होकर वापस नहीं निकलती है। वृद्ध, बालक, कायर, कृश एवं स्त्रियों को इस काल में औषध सेवन कराना चाहिए। अपानवायु विकार, अधःकाय (नाभि से नीचे के अवयव) में बलाधान और व्याधियों के प्रशमन के लिए तथा कृश काय (शरीर को पतला) बनाने हेतु प्राग्भक्त औषध सेवन कराया जाता है।

अपान वायु विकार में भोजन पूर्व, भोजन को रुचिकर बनाने के लिए पथ्य भोजन में मिलाकर, समान वायु और मन्दाग्नि में भोजन के बीच में, व्यान वायु विकार में भोजन के अन्त में और हिक्का, आक्षेपक आदि में भोजन के अन्तः में औषधियों का सेवन करना चाहिए।

3. अधोभक्तः-

अधोभक्तं नाम-यदधो भक्तस्येति।
पीतं यदन्नमुपयुज्य तदूर्ध्वकाये हन्याद्गदान् बहुविधांश्च बलं ददाति।।

(सु. उ. 64/70-72)

अधोभक्तं भक्तादनन्तरम्। यत्तु व्यानविकृतौ प्रातराशान्तमुदानविकृतौ पुनः सायमाशान्तं पूर्वकायस्य च बलाधानार्थं तद्गतेषु व्याधिषु च श्लैष्मिकेषु च प्रशमाय स्थूलीकरणं च।। (अ. सं. सू. 23/16)

उदाने कुपिते वाते स्वरभङ्गादिकारिणिः।
ग्रासे ग्रासान्तरे देयं भैषज्यं सान्ध्यभोजने।।
प्राणे प्रदुष्टे सान्ध्यस्य भुक्तस्यान्ते च दीयते।
औषधं प्रायशो धीरैः कालोऽयं स्यात् तृतीयकः।।

(शा. सं. पू. ख. 2/8-9)

Scanned with CamScanner

अर्थात् भोजन करने के तुरन्त बाद में औषध ग्रहण करने को "अधोभक्त" कहते हैं। यह नाभि के ऊपर के अङ्गों में होने वाले रोगों को दूर कर बल प्रदान करता है। व्यान वायु के विकारों में प्रातः भोजन के पश्चात् एवं उदान वायु के विकारों में सायं भोजन के पश्चात् औषधि दी जाती है। पूर्वकाय के रोगों एवं कफज रोगों का प्रशमन कर शरीर में बल प्रदान करता है। इस काल में औषध सेवन से कृशता दूर होकर शरीर स्थूल हो जाता है। स्वरभेद, कास, श्वास, हिक्का में सायंकाल भोजन के समय प्रत्येक ग्रास में औषध देनी चाहिए। प्राणवायु के विकार में सायं काल भोजन के अन्त में औषध देनी चाहिए।

4. मध्यभक्त:-

मध्ये भक्तं नाम यन्मध्ये भक्तस्य पीयते ।।
मध्ये तु पीतमपहन्त्यविसारिभावाद्ये मध्यदेहमभिभूय भवन्ति रोगाः ।।
(सु. उ. 64/71-72)

मध्यभक्तं मध्येभक्तस्य तत्समानानिलविकृतौ।
कोष्ठगतेषु च व्याधिषु पैत्तिकेषु च।। (अ. सं. सू. 23/15)

अर्थात् सर्वप्रथम आधा भोजन करके फिर औषध सेवन बाद में आधा भोजन करें। इस प्रकार से औषध सेवन काल को "मध्यभक्त" कहते हैं।

इस काल में औषध का सेवन समानवायु की विकृति, मध्यकाय के उदरगत (कोष्ठ) रोगों और पित्तजन्य रोगों में करना चाहिए।

5. अन्तराभक्त:-

अन्तराभक्तं नाम-यदन्तरा पीयते पूर्वापरयोर्भक्तयोः ।।
हृद्यं मनोबलकरं त्वथदीपनं च पथ्यं सदा भवति चान्तरभक्तं यत् ।।
(सु. उ. 64/73,75)

अन्तराभक्तं यत्पूर्वाह्नभक्ते जीर्णे मध्याह्ने भेषजमुपयुज्यते तस्मिंश्च जीर्णे पुनरपराह्णे भोजनम्। एतेन रात्रिर्व्याख्याता। तद्दीप्ताग्नेर्व्यानजेष्वामयेषु ।।
(अ. सं. सू. 23/18)

अर्थात् प्रातःकाल के भोजन के जीर्ण हो जाने पर दोपहर में औषध का प्रयोग किया जाता है। औषध का पाचन हो जाने पर पुनः सायंकाल भोजन किया जाता है। ठीक इसी तरह सायंकाल का भोजन जीर्ण होने पर रात्रि में औषध का प्रयोग किया जाता है। फिर औषध का पाचन होने पर पुनः प्रातःकाल भोजन का प्रयोग किया जाता है। तो वह "अन्तराभक्त काल" कहलाता है। इस काल में औषध का प्रयोग हृदय एवं मन के लिए बलदायक, दीपन और पथ्य का कार्य करती है। इस समय दीप्ताग्नि वाले व्यक्तियों एवं व्यानवायु के विकारों में औषधि का प्रयोग किया जाता है।

Scanned with CamScanner

6. सभक्तः–

सभक्तं नाम औषधेषु यत् साध्यते भक्तम् ।।
पथ्यं सभक्तमबलाबलयोर्हि नित्यं तद् द्वेषिणामपि तथा शिशुवृद्धयोश्च ।।
(सु. उ. 64/74-75)

सभक्तं यदन्नेन समं साधितं पश्चाद्वा समालोडितम् ।
तद्बालेषु सुकुमारेष्ववौषधद्वेषिष्वरूचौ सर्वाङ्गेषु च रोगेषु ।।
(अ. सं. सू. 23/17)

अर्थात् औषध को पके हुए अन्न या अन्न के साथ पकाकर दी जाय तब इस काल को "सभक्त" कहते हैं। इस काल में औषध का प्रयोग दुर्बल स्त्री, बालक, सुकुमार, वृद्ध तथा अरुचि एवं सर्वाङ्ग शरीर की व्याधियों में किया जाता है।

7. सामुद्गः–

सामुद्गं नाम यद्भक्तस्यादावन्ते च पीयते ।।
दोषे द्विधा प्रविसृते तु सामुद्गसंज्ञमाद्यन्तयोर्यदशनस्य निषेव्यते तु ।।
(सु. उ. 64/76-77)

सामुद्गं यदादावन्ते च भुक्तस्य । तत्तु लघ्वन्नपानयुक्तं पाननावनावलेह-चूर्णादि हिध्मायां कम्पाक्षेपयोरूर्ध्वाधः संश्रये च दोषे ।। (अ. सं. सू. 23/19)

अर्थात् भोजन के प्रारम्भ और अन्त में पाचन, नस्य, अवलेह, चूर्ण आदि औषध को लघु एवं स्वल्प अन्न के साथ देने पर उस काल को "सामुद्ग काल" कहते हैं। हिक्का, कम्प, आक्षेप तथा दोषों के ऊर्ध्वाधः भाग में फैले होने पर इस काल में औषध का प्रयोग किया जाता है।

सामुद्ग से तात्पर्य आवरण युक्त य सम्पुट भी है। जिस प्रकार शुक्तियाँ मोती को आवरण युक्त रखती है, उसी प्रकार औषधि को भोजन के मध्य रखकर देने को "सामुद्ग" कहते हैं।

8. मुहुर्मुहुः–

मुहुर्मुहुर्नाम–सभक्तमभक्त वा यदौषधं मुहुर्मुहुरुपयुज्यते ।।
श्वासे मुहुर्मुहुरति प्रसृते च कासे हिक्कावमीषु स वदन्त्युपयोज्यमेतत् ।।
(सु. उ. 64/78-79)

मुहुर्मुहुस्तु पुनः पुनर्भुक्ते यदभुक्ते वा ।
तच्छ्वासकासहिध्मातृट्छर्दिषुविषनिमित्तेषु च विकारेषु ।।
(अ. सं. सू. 23/20)

Scanned with CamScanner

मुहुर्मुहुश्च तृट्च्छर्दि हिक्काश्यासगरेषु च।
सान्नं च भेषजं दद्यादिति कालश्चतुर्थकः।। (शा. सं. पू. ख. 2/10)

अर्थात् जिस औषध को भोजन के लेने या नहीं लेने (भूखे पेट) पर बार-बार प्रयोग किया जाय, तो उस काल को "मुहुर्मुहु" कहते हैं। जो औषध पुनः पुनः थोड़ी-थोड़ी देर बाद दी जाती है, उसे "मुहुर्मुहु" औषध सेवन काल कहते हैं। इस काल में औषध को खाली पेट, भोजन के पूर्व, भोजन के साथ या भोजन के पश्चात् भी दे सकते हैं। इस काल में श्वास, कास, हिक्का, वमन, तृष्णा और विषजन्य विकारों में औषध का प्रयोग किया जाता है।

9. सग्रासः-

ग्रासं तु-यत्पिण्डव्यामिश्रम्।।
ग्रासेषु चूर्णमबलाग्निषु दीपनीयं वाजीकराण्यपि तु योजयितुं यतेत।।
(सु. उ. 64/80,82)

सग्रासं यद्ग्राससम्पृक्तम्। सग्रासं चूर्ण लेहवटकादिकमग्निदीपनं वाजीकरणानि चोपयुञ्जीत।। (अ. सं. सू. 23/21)

अर्थात् औषध को आवश्यकतानुसार सम्यक् मात्रा में प्रत्येक ग्रास या कुछ ग्रास के साथ पिण्ड बनाकर दिए जाने पर उस काल को "सग्रास" कहते हैं। इस काल में चूर्ण, अवलेह, वटकादि का प्रयोग अग्निदीपन, वाजीकरण के लिए किया जाता है।

10. ग्रासान्तरः-

ग्रासान्तरं तु यद् ग्रासान्तरेषु।।
ग्रासान्तरेषु वितरेद्वमनीयधूमान् श्वासादिषु प्रथितदृष्टगुणांश्च लेहान्।।
(सु. उ. 64/81-82)

ग्रासान्तरं यद् ग्रासयोर्ग्रासयोर्मध्ये द्वयमप्येतत्प्राणानिलविकृतौ।
ग्रासान्तरं हृद्रोगे वमनं धूमं च।। (अ. सं. सू. 23/21)

अर्थात् औषध को दो ग्रासों के मध्य में सेवन करने से इस काल को "ग्रासान्तर" कहते हैं। इस काल में वमनीयधूम, श्वास, कास में कथित अवलेह, हृदय रोग एवं प्राणवायु के विकारों में औषध का प्रयोग किया जाता है।

11. निशाः-

जत्रूर्ध्वामयेषु तु निशायाम्।। (अ. सं. सू. 23/21)
ऊर्ध्वजत्रुविकारेषु लेखने बृंहणे तथा।
पाचनं शमनं देयमन्नं भेषजं निशि।। (शा. स. पू. ख. 2/12)

चतुर्थ अध्याय

पंचविधकषाय कल्पना

किसी औद्भिद, जाङ्गम या पार्थिव द्रव्यों को स्वरस, कल्क, क्वाथ, चूर्ण, अवलेह आदि कल्पना किये बिना मूल रूप (प्राकृतिक अवस्था) में शरीर पर प्रयोग नहीं किया जा सकता है। जिन विधियों (चूर्ण, कल्क, स्वरस, क्वाथ, वटी, आसव, अरिष्ट आदि) द्वारा द्रव्यों को आहार एवं औषधार्थ प्रयोग किया जाता है, उन्हें कल्प या कल्पना कहते हैं।

कषाय कल्पना पाँच प्रकार की होती है-1. स्वरस, 2. कल्क, 3. क्वाथ, 4. हिम और 5. फाण्ट।

''पञ्चविधं कषायकल्पनमिति तद्यथा-स्वरसः, कल्कः, शृतः, शीतः, फाण्टश्चेति कषाय इति''। (च. सू. 4/7)

इन कषाय कल्पनाओं का उपयोग सर्वत्र समान रूप से नहीं होता है, क्योंकि ये कल्पनाएं यथापूर्व बलवान होती है। अतः इनका प्रयोग रोग एवं रोगी के बल के अनुसार होता है:-

तेषां यथापूर्वं बलाधिक्यम्, अतः कषायकल्पना व्याध्यातुर बलापेक्षिणी, न त्वेवं खलु सर्वाणि सर्वत्रोपयोगीनि भवन्ति। (च. सू. 4/8)

ये पाँच प्रकार की कल्पनाएं द्रव्यों की मौलिक कल्पनाएं हैं। इन मौलिक (प्राथमिक) पाँच कल्पनाओं से ही चूर्ण, वटी, अवलेह, स्नेह, आसव, अरिष्ट आदि द्वितीयक कल्पनाएं निर्मित होती है।

द्रव्यों के स्वरूप के अनुसार कल्प का प्रकार निर्भर करता है। यदि द्रव्य आर्द्रावस्था में है, तो उससे स्वरस अथवा क्वाथ किया जा सकता है। कल्पों के निर्माण में द्रव्य के वीर्य का भी विचार आवश्यक होता है। द्रव्य का वीर्य पार्थिवांश में अधिक हो तो उससे चूर्ण कल्पना करनी चाहिए। यदि द्रव्य का वीर्य पार्थिवांश और जलीयांश दोनों में स्थित हो तो उससे कल्क कल्पना करनी चाहिए। यदि द्रव्य का वीर्य जलीयांश में हो तो उससे स्वरस अथवा क्वाथ कल्पना करनी चाहिए। यदि द्रव्य का वीर्य वायव्य या तैजस अंश में हो अर्थात् सुगन्धित (उड़नशील तत्त्व) द्रव्य हो, तो उनसे क्वाथ

Scanned with CamScanner

कल्पना का निर्माण नहीं करना चाहिए। क्योंकि क्वाथ बनाते समय उनका वीर्य (उड़नशील या सुगन्धित तत्त्व) उड़ जाता है, अतः ऐसे द्रव्यों से कल्क, हिम, फाण्ट, चूर्ण, वटी आदि कल्पनाओं का निर्माण करना चाहिए। कई द्रव्यों के हानिकारक प्रभाव को दूर करने के लिए उनका क्षीरपाक किया जाता है। यथा :- अर्जुन, रसोन, भल्लातक एवं शुण्ठी आदि। अर्जुन का क्वाथ अरुचिकर होने तथा रसोन एवं भल्लातक की तीक्ष्णता को दूर करने के लिए क्षीरपाक किया जाता है।

कषाय की परिभाषा:-

कण्ठस्य कषणात् प्रायो रोगाणां वाऽपि कर्षणात् ।
कषायशब्दः प्राधान्यात् सर्वयोगेषु कल्प्यते ।।

(का. सं. खिल 3/29)

अर्थात् सेवन करते समय कण्ठ में लगने के कारण या कण्ठ के लिए अहितकर होने के कारण तथा रोगों का कर्षण करने के कारण सम्पूर्ण योगों (कल्पनाओं) में कषाय शब्द का प्रयोग होता है।

कषाय शब्द की निष्पत्तिः-कष् हिंसायाम् धातु से "कषते कण्ठम्" द्वारा कषाय शब्द बनता है, जिसका अर्थ होता है-मूल द्रव्य की हिंसा कर अर्थात् उसका स्वरूप नष्ट कर सेवन योग्य बनाना।

कषाय कल्पना का आविष्कारः-जब आदिम मानव ने अपनी क्षुधापूर्ति हेतु पेड़ पौधों के पत्र, पुष्प, फल, कन्द, मूलों को दाँतों से चबाकर खाया, तभी से कल्क कल्पना का आविष्कार हो गया। क्योंकि दाँतों या पत्थर द्वारा पिसा गया द्रव्य का स्वरूप (पिण्ड) कल्क कहलाता है। इस प्रकार कल्क कल्पना का आविष्कार हो गया। इसी प्रकार अनेक द्रव्यों को चबाकर उसका रस भी आचूषित करता था, जो स्वरस कल्पना का स्वरूप माना जाता है। इसके पश्चात् वेदों में अनेक कल्पनाओं का उल्लेख मिलता है, किन्तु इन कल्पनाओं की निर्माण विधि वेदों में नहीं मिलती है।

चरक संहिता में सर्वप्रथम पञ्चविधकषाय कल्पनाओं का वर्णन मिलता है।

"पञ्चविधं कषाय कल्पनमिति । तद्यथा-स्वरसः, कल्कः, शृतः, शीतः, फाण्टश्चेति।" (च. सू. 4/7)

सुश्रुत संहिता में क्षीर कल्पना को सम्मिलित कर षड्विध कषाय कल्पना का वर्णन किया है।

क्षीरं रसः कल्कमथः कषायः शृतश्च शीतश्च तथैव फाण्टम् ।
कल्पाः षडेते खलु भेषजानां यथोत्तरं ते लघवः प्रदिष्टाः ।।

(सु. सू. 44/91)

अर्थात क्षीर, रस, कल्क, शृत, शीत और फाण्ट ये छः कल्पनाएं होती हैं। ये उत्तरोत्तर लघु होती हैं।

काश्यप संहिता में पञ्चविध कषाय कल्पनाओं में चूर्ण और अभिषव (मद्य) कल्पना को शामिल कर सप्तविध कषाय कल्पना का वर्णन किया है।

चूर्ण शीतकषायश्च स्वरसोऽभिषवस्तथा ।
फाण्टः कल्कस्तथा क्वाथो यथावत्तं निबोध मे ।।

(का. सं. खि. 3/35)

अर्थात् चूर्ण, शीत, स्वरस, अभिषव (मद्य), फाण्ट, कल्क और क्वाथ ये सप्तविध कल्पना है।

किन्तु चरकसंहिता में वर्णित पञ्चविधकषाय कल्पना ही प्रारम्भिक एवं मौलिक कल्पनाएं है, जिसमें सभी कल्पनाएं समाविष्ट हो जाती है।

पञ्चकषाय योनियाँ:-पञ्चविध कषाय कल्पना लवण रस को छोड़कर मधुर, अम्ल, कटु, तिक्त एवं कषाय रस वाले द्रव्यों से निर्माण की जा सकती है। अतः इन्हें पंचकषाय योनि कहते हैं। यथा:- 1.मधुरकषाय योनि, 2. अम्लकषाय योनि, 3.कटुकषाय योनि, 4. तिक्तकषाय योनि और 5. कषायकषाय योनि

"पञ्चकषाययोनय इति मधुरकषायः, अम्लकषायः, कटुकषायः, तिक्तकषायः, कषायकषायश्चेति तन्त्रे संज्ञा" । (च. सू. 4/6)

लवण की कोई भी कल्पना नहीं बन सकती है, इसलिए उसको लवणकषाय की संज्ञा नहीं दी गई है। क्योंकि इससे स्वरस नहीं निकल सकता है, क्योंकि लवण हमेशा शुष्क ही प्राप्त होता है, जल मिलाने पर पूरा लवण जल में घुल जाता है। इससे कल्क, क्वाथ, हिम और फाण्ट आदि कल्पना भी नहीं बन सकती है। कल्क शुष्क द्रव्य में जल मिलाकर पीसने से बनता है, जबकि लवण में जल मिलाने पर द्रव रूप हो जाता है। क्वाथ, हिम और फाण्ट कल्पना में द्रव्य का सारभाग जल में लाने तथा अवशिष्ट किट्टभाग फेंक देने के लिए की जाती है, परन्तु लवण पूरा जल में घुल जाता है और उसका कुछ भी अंश फेंका नहीं जाता है। यद्यपि लवण से चूर्ण कल्पना (कल्क भेद) की जा सकती है, किन्तु लवण से चूर्ण बनाने पर उसके गुणों में कोई अन्तर नहीं आता है, जबकि कषाय कल्पना गुणान्तराधान (गुणवर्धन एवं गुण परिवर्तन) हेतु की जाती है। इस प्रकार लवण से पाँचों कषाय कल्पनाएं निर्मित नहीं होने से उसकी कषाय संज्ञा नहीं कही गई है।

(पञ्चकषाययोनि-च. सू. 4/6की चक्रपाणि टीका एवं अ. ह. कल्प 6/8 की अरुणदत्त टीका का हिन्दी अर्थ)

Scanned with CamScanner

स्वरस कल्पना :-

यह कल्पना पंचविधकषाय कल्पना के अन्तर्गत प्रथम कल्पना है। स्वरस को हिन्दी में रस, अरबी में असीर, फारसी में अफशुरदा और अंग्रेजी में Expressed juice कहते हैं। शास्त्र में प्रायः उन औषधियों का स्वरस लेने का विधान है, जो औषधियां सदा ताजी ही मिल सकती हैं, जिनमें आर्द्रावस्था में सारभाग अधिक रहता है और जिनका सारभाग उनके द्रवांश में अधिक पाया जाता है। यह गुरु और बलवान कल्पना है।

परिभाषा :-

"**यन्त्रनिष्पीडिताद् द्रव्याद्रसः स्वरस उच्यते**"। (च. सू. 4/7)

अर्थात् द्रव्य को यन्त्र में निष्पीडन (दबाकर) कर निचोड़ने से जो रस निकलता है, उसे स्वरस कहते हैं।

आहतात्तत्क्षणाकृष्टाद् द्रव्यात्क्षुण्णात् समुद्धरेत्।
वस्त्रनिष्पीडितो यः स रसः स्वरस उच्यते॥ (शा. म. म. ख. 1/2)

अर्थात् तुरन्त उखाड़ कर लाई हुई औषधि को कूटकर कपड़े से निष्पीडन (दबाकर) कर निचोड़ने से जो रस निकलता है, उसको स्वरस कहते हैं।

भावप्रकाशकार ने आहतात् के स्थान पर 'अहतात्' शब्द का प्रयोग कर शेष परिभाषा यथावत् दी है।

अहतात्तत्क्षणाकृष्टाद् द्रव्यात्क्षुण्णात्समुद्धरेत्।
वस्त्रनिष्पीडितो यस्तु स्वरसो रस उच्यते॥

(भा. प्र. पू. ख. परि. 2/2)

यहाँ पर अहतात का अर्थ "शीताग्निकीटाभिरनुपहतात्" अर्थात् कीट, शीत, ऊष्मा आदि से अनुपहत (खराब नहीं हुई) वनस्पति है। अर्थात कीटादि से अनुपहत (खराब नहीं हुई) और तुरन्त उखाड़ कर लाई गई वनस्पति को कूटकर और वस्त्र से निचोड़कर निकाला गया रस स्वरस कहलाता है।

मृदु द्रव्यों का रस हाथ से मसलकर या वस्त्र द्वारा निचोड़कर निकालते हैं, जबकि कठिन द्रव्यों का स्वरस यन्त्र द्वारा निकालते हैं।

उपरोक्त विधि से ताजा तथा हरी औषधियों से ही स्वरस प्राप्त किया जा सकता है। हरी ताजी वनस्पति के अभाव में स्वरस निकालने की विधि निम्न प्रकार है, जिसे स्वरस के अभाव में प्रयोग कर सकते हैं-

चूर्णानामाढकमाढकमुदकस्याहोरात्रस्थितं मृदितपूतं स्वरसवत् प्रयोज्यम्।
(स्वरसानामलाभे त्वय स्वरसविधिः।) (च. चि. 1/2/12)

अर्थात् यदि आर्द्रद्रव्य का स्वरस न मिले तो शुष्क द्रव्य का चूर्ण (एक आढक = 3.072 kg) का उसमें समानभाग (एक आढक) जल में डालकर मिट्टी के पात्र में 24 घंटे के लिए रख दें। दूसरे दिन हाथ से मसलकर कपड़े से छानकर उसको स्वरस के समान प्रयोग करना चाहिए।

कुडवं चूर्णितं द्रव्यं क्षिप्तं च द्विगुणे जले।
अहोरात्रस्थितं तस्माद् भवेद्वा रस उत्तमः॥

(शा. सं. म. ख. 1/3)

अर्थात् शुष्क द्रव्य के एक कुडव (4 पल) चूर्ण को द्विगुण जल में डालकर अहोरात्र (24 घंटे) भिगोकर रखने व मसलकर वस्त्र से छान लेने से उत्तम रस प्राप्त होता है।

इस विधि से स्वरस निर्माण हेतु 24 घंटे की आवश्यकता होती है। यदि आर्द्रद्रव्य उपलब्ध नहीं हो और 24 घंटे ठहरना सम्भव नहीं हो तो स्वरस निर्माण निम्न प्रकार से किया जा सकता है।

आदाय शुष्कद्रव्यं वा स्वरसानामसम्भवे।
जलेऽष्टगुणिते साध्यं पादशेषं च गृह्यते॥

(शा. म. म. ख. 1/4)

अर्थात् शुष्कद्रव्य को यवकुट करके अष्टगुण जल में डालकर उबालें, जब जल चतुर्थांश शेष रह जाये तो वस्त्र से छान लें। इसे भी स्वरस के अभाव में प्रयोग किया जाता है।

पुटपक्व स्वरस :- कुछ ऐसे भी द्रव्य हैं, जिनके आर्द्र एवं ताजा होने पर भी कूटने पीसने से स्वरस नहीं निकलता है या कम निकलता है, जैसे- निम्बपत्र, वासापत्र, बिल्वपत्र, कुटज पत्र आदि। इन द्रव्यों से स्वरस निकालने के लिए आचार्यों ने पुटपाक विधि का उल्लेख किया है।

द्रव्यमार्द्रं शिलापिष्टं शुष्कं वा सजलं ततः।
गोलं विधाय वृक्षाणां पत्रैरावेष्टयेत दृढम्॥
सूत्रेण बध्वा गोधूमपिष्टेन परिवेष्टयेत।
ततः आर्द्रमृदालिप्त्वा गोमयाग्नौ प्रतापयेत्॥
अङ्गारवर्णां च मृदं दृष्ट्वा पिण्डं समुद्धरेत्।
ततो रसं वस्त्रपूतं पुटपाकं प्रदापयेत्॥

(इ. पु. चि. 2/11-14)

अर्थात् यदि द्रव्य आर्द्र हो तो उसको शिला पर पीसकर कल्क (पिण्ड जैसा गोला) बनाना चाहिए, यदि शुष्क द्रव्य है तो कपड़छान (महीन) चूर्ण कर उसमें थोड़ा जल मिलाकर पिण्ड जैसा गोला बना लेना चाहिए। अब उस गोल पिण्ड (कल्क) पर वटपत्र, गम्भारी पत्र या जम्बूपत्रादि लपेटकर धागे से बाँध देना चाहिए। फिर उस पर गोधूम (गेहूँ) के गुँधे हुए आटे का एक अंगुल मोटा लेप करे, फिर उस पर गीली चिकनी मिट्टी (मुल्तानी मिट्टी) का दो अंगुल मोटा लेप करना चाहिए। कुछ देर सुखाने के बाद वन्योपल (गोमयाग्नि) की अग्नि में लालवर्ण (अंगारवर्ण) होने तक पाक करें। तत्पश्चात् तुरन्त उस गोले को अग्नि से निकालकर मिट्टी, आटे एवं पत्र आदि को हटाकर गर्म कल्क को वस्त्र से निचोड़ने से स्वरस निकल आता है। पुट में (वन्योपल से) पकाये जाने पर ही स्वरस निकलता है, इसलिए इसे पुटपाक विधि कहते हैं।

इस विधि से निम्बपत्र, वासापत्र, बिल्व पत्र, कुटज पत्र, श्योनाक पत्र आदि का स्वरस प्राप्त किया जाता है।

स्वरस की मात्रा:–स्वरस गुरु एवं बलवान होने से ½ पल (24 ग्राम) की मात्रा में प्रयोग करना चाहिए। शुष्क द्रव्यों से निष्कासित रस एवं अग्निसिद्धरस (क्वाथ एवं पुटपाक विधि से निर्मित रस) एक पल (48 ग्राम) की मात्रा में प्रयोग करना चाहिए।

स्वरसस्य गुरुत्वाच्च पलमर्धं प्रयोजयेत्।
निशोषितं चाग्निसिद्धं पलमात्रं रसं पिबेत्।।

(शा. सं. म. ख. 1/5)

यह मात्रा ½ पल (24 ग्राम) मृदुवीर्य द्रव्यों की है, मध्यवीर्य द्रव्यों के स्वरस की मात्रा एक कर्ष (12 ग्राम) और तीक्ष्णवीर्य द्रव्यों का स्वरस ½ (6 ग्राम) कर्ष की मात्रा में प्रयोग करना चाहिए।

स्वरस में प्रक्षेप द्रव्यों का मान–स्वरस के स्वाद में परिवर्तन करने के लिए अर्थात् स्वादिष्ट बनाने, स्वरस को अधिक प्रभावकारी बनाने एवं शीघ्र कार्यकारी बनाने के लिए प्रक्षेप द्रव्य मिलाये जाते हैं।

स्वरस में मधु, शर्करा, गुड, क्षार, जीरक, लवण, घृत, तैल एवं चूर्ण आदि डालने हो तो एक कोल (6 ग्राम) की मात्रा में मिलाना चाहिए।

मधु श्वेता गुडं क्षारान् जीरकं लवणं तथा।
घृतं तैलं च चूर्णादीन् कोलमात्रं रसे क्षिपेत्।।

(शा. सं. म. ख. 1/6)

पुटपाक विधि से निर्मित स्वरस में मधु एक कर्ष मिलाना चाहिए।

पलमात्रं रसो ग्राह्यः कर्षमात्रं मधु क्षिपेत्।

(शा. सं. म. ख. 1/27)

भादवजी त्रिकमजी ने द्रव्यगुण विज्ञान परिभाषा खण्ड में लवण, क्षार और चूर्ण रोग एवं रोगी का बल देखकर उचित मात्रा में डालने का निर्देश किया है।

स्वरस का उपयोग :- 1. स्वरस गुरु एवं बलवान होने से रोग तथा रोगी के बलवान होने पर प्रयोग किया जाता है।

2. औषध के गुणों में वृद्धि के लिए चूर्ण में उसी द्रव्य के स्वरस की भावना दी जाती है। यथाः-आमलकी रसायन ।

3. औषधियों के दोषों का निवारण करने के लिए स्वरस की भावना दी जाती है। जैसेः-अश्वकंचुकी रस में जयपाल की विषाक्तता दूर करने के लिए भृंगराज स्वरस की भावना दी जाती है।

4. धातुओं का शोधन और भस्म निर्माण करने के लिए वनस्पतियों के स्वरस की भावना दी जाती है।

5. कई औषधियों तथा रसौषधियों के अनुपान के रूप में स्वरस का प्रयोग किया जाता है।

6. निरीन्द्रिय द्रव्यों में सेन्द्रियता उत्पन्न करने के लिए वानस्पतिक द्रव्यों के रसों की भावना दी जाती है।

आर्द्रकस्वरसः-

आर्द्रकस्वरसः क्षौद्रयुक्तो वृषणवातनुत्।
श्वासकासरुचीर्हन्ति प्रतिश्यायं व्यपोहति ।।

(शा. सं. म. ख. 1/13)

अर्थात् आर्द्रक का स्वरस मधु (शहद) मिलाकर पीने से वृषणगत वात, श्वास, कास, अरुचि और प्रतिश्याय को नष्ट करता है।

तुलसी स्वरसः-

पीतो मरिचचूर्णेन तुलसीपत्रजो रसः।
द्रोणपुष्पीरसो वापि निहन्ति विषमज्वरान् ।।

(शा. सं. म. ख. 1/10)

अर्थात् तुलसीपत्र का स्वरस या द्रोणपुष्पी का स्वरस मरिच चूर्ण मिलाकर पीने से विषमज्वरों को नष्ट करता है।

Scanned with CamScanner

कुमारी स्वरस:-

घटक द्रव्य :- 1. घृतकुमारी पत्र-100 ग्राम

निर्माण विधि:- सर्वप्रथम घृतकुमारी पत्र के दोनों तरफ लगे हुए कंटकित दन्तुर चाकू से हटाते हैं, फिर हरिताभ बाह्य आवरण हटाकर, उसके भीतर स्थित घृत के समान पिच्छिल मज्जा को काँच पात्र में उसी रूप में रखते हैं या महीन वस्त्र में छानकर रखते हैं।

मात्रा:- आभ्यन्तर प्रयोग-10 से 20 मिली.

बाह्य प्रयोग-यथावश्यक

उपयोग:- 1. इसके स्वरस का अग्निमांद्य, उदररोग, गुल्म, प्लीहा-यकृत वृद्धि, उदरशूल, विबन्ध तथा कृमिरोग में प्रयोग करते हैं।

2. अग्निदग्ध में इसका बाह्यप्रयोग हरिद्रा के साथ करते हैं।

3. अनेक रसद्रव्यों के भस्म निर्माण में इसके स्वरस की भावना दी जाती है। जैसे- शंख, शुक्ति, वराटिका आदि।

4. इसके स्वरस से कुमार्यासव का निर्माण किया जाता है।

5. इसके स्वरस को मन्दाग्नि तथा धूप में सुखाकर एलुआ (मुसब्बर) बनाया जाता है।

6. इससे आयुर्वेदीय शैम्पू, जैल आदि बनाये जाते हैं।

वासा पुटपाक स्वरस:-

पिष्टानां वृषपत्राणां पुटपाकरसो हिम:।
मधुयुक्तो जयेद् रक्तपित्तकासज्वरक्षयान्॥

(शा. सं. म. ख.1/38)

अर्थात् पुटपाकविधि से निर्मित वासापत्र स्वरस मधु मिलाकर पीने से रक्तपित्त, कास, ज्वर और क्षय को जीतता है।

कल्क कल्पना:-

यह पंचविधकषाय कल्पना के अन्तर्गत दूसरी कल्पना है। पत्थर की शिला पर बारीक पीसे हुए चटनी या लुगदी जैसे औषधद्रव्य को कल्क कहते हैं। स्वरस व कल्क में यह अन्तर है कि स्वरस में द्रव्य का केवल तरल सारभाग ही लिया जाता है और काष्ठभाग फेंक दिया जाता है। परन्तु कल्क में सारभाग और काष्ठभाग दोनों लिये जाते हैं, इसलिए स्वरस की अपेक्षा कल्क लघु होता है। कल्क कल्पना प्राय: पार्थिव द्रव्यों की ही करनी चाहिए तथा जिन द्रव्यों का वीर्य (सारभाग) द्रवांश और काष्ठभाग दोनों में हो। जैसे-रसोन, निम्बपत्र, शुण्ठी आदि।

Scanned with CamScanner

परिभाषा:-

य पिण्डो रसपिष्टानां स कल्कः प्रकीर्तितः । (च. सू. 4/7)

अर्थात् द्रव्य को रस सहित पीसकर पिण्ड बना लेना कल्क कहलाता है।

उपलदशनादिपिष्टस्तु कल्कः । (अ. सं. क. 8/10)

अर्थात् प्रस्तर शिला या दाँत आदि से महीन पीसे हुए द्रव्य को कल्क कहते हैं।

द्रव्यमार्द्रं शिलापिष्टं शुष्कं वा सजलं भवेत् ।
प्रक्षेपावापकल्कास्ते तन्मानं कर्षसंमितम् ।।
(शा. सं. म. ख. 5/1)

अर्थात् आर्द्रद्रव्य को शिला पर पीसकर या शुष्क द्रव्य के चूर्ण में जल मिलाकर शिला पर पीसकर जो पिण्ड, चटनी या लुगदी बनाई जाती है, उसे कल्क कहते हैं। प्रक्षेप और आवाप कल्क के पर्याय है। इसकी मात्रा एक कर्ष (12 ग्राम) है।

जिस चटनी का सीधे भक्षण किया जाता है, उसे कल्क कहते हैं। स्नेहमूर्च्छन एवं स्नेहपाक (तैलपाक, घृतपाक), आसव अरिष्ट निर्माण में द्रव्य की चटनी या पिण्ड का प्रयोग किया जाता है, उसे कल्क, प्रक्षेप और आवाप तीनों नाम से कहा जाता है।

कल्क की मात्रा:-कल्क का प्रयोग एक कर्ष (12 ग्राम) की मात्रा में करना चाहिए।

प्रक्षेप द्रव्य:-

कल्के मधु घृतं तैलं देयं द्विगुण मात्रया ।
सिता गुडौ समौ दद्यात् द्रवादेयाश्चतुर्गुणाः ।।
(शा. सं. म. ख. 5/2)

अर्थात् यदि कल्क में मधु, घृत, तैल मिलाना हो तो कल्क से द्विगुण मात्रा में मिलाना चाहिए। यदि शर्करा, गुड मिलाना हो तो समान भाग तथा कोई द्रव मिलाना हो तो चतुर्गुण मिलाना चाहिए।

कल्क का उपयोग:-

1. कल्क औषध रूप में खाया जाता है।
2. स्नेहपाक और स्नेहमूर्च्छना में कल्क डालकर भर्जन किया जाता है।
3. प्रलेप एवं प्रदेह के रूप में कल्क का प्रयोग किया जाता है।
4. व्रणों को शुद्ध करने एवं शोथ को दूर करने के लिए कल्क का प्रयोग होता है।
5. प्रमथ्या निर्माण कल्क डालकर किया जाता है।

निम्बकल्क:-

लेपान्निम्बदलैः कल्कोव्रणशोधनरोपणः।
भक्षणाच्छर्दिकुष्ठानि पित्तश्लेष्मकृमीञ्जयेत् ।।

(शा. सं. म. ख. 5/5)

अर्थात् निम्बपत्र का कल्क लगाने से व्रण का शोधन एवं रोपण करता है। इसके सेवन से वमन, कुष्ठ, पित्तविकार, कफविकार और कृमि नष्ट होते है।

रसोनकल्क:-

शुद्धः कल्को रसोनस्य तिलतैलेन मिश्रितः।
वातरोगाञ्जयेत् तीव्रान् विषमज्वरनाशनः ।।

(शा. सं. म. ख. 5/7)

अर्थात् शुद्ध (छिलका निकला हुआ) रसोन का कल्क तिलतैल मिलाकर खाने से भीषण वातरोग (अपतन्त्रक, पक्षाघात, अर्दित आदि) तथा विषम ज्वरों को नष्ट करता है।

रसोनकल्क का उपयोग पारदशोधन में भी किया जाता है।

क्वाथ कल्पना :-

यह पंचविधकषाय कल्पना के अन्तर्गत तृतीय कल्पना है। शुष्क अथवा आर्द्रद्रव्य को यवकुट (यव के बराबर टुकड़े) करके जल के साथ उबालकर छानने के बाद जो द्रव प्राप्त होता है, उसे क्वाथ, कषाय, शृत, निर्यूह कहते हैं। क्वाथ को हिन्दी में काढ़ा और अंग्रेजी में Decoction कहते हैं।

परिभाषा:-

वह्नौ तु क्वथितं द्रव्यं शृतमाहुश्चिकित्सकाः ।। (च. सू. 4/7)

अर्थात् द्रव्य को जल के साथ अग्नि पर उबालकर जो द्रव प्राप्त होता है, उसे शृत (क्वाथ) कहते हैं।

पानीयं षोडशगुणं क्षुण्णे द्रव्यपले क्षिपेत्।
मृत्पात्रे क्वाथयेद् ग्राह्यमष्टमांशावशेषितम् ।।
तज्जलं पाययेद्धीमान् कोष्णं मृद्वग्निसाधितम्।
शृतः क्वाथः कषायश्च निर्यूहः स निगद्यते ।।

(शा. सं. म. ख. 2/1-2)

अर्थात् यवकुट किये हुए एक पल द्रव्य में सोलह गुना (16 पल) पानी डालकर मन्द अग्नि पर पाक करे, अष्टमांश शेष रहने पर उतारकर छान ले। तत्पश्चात

Scanned with CamScanner

बुद्धिमान चिकित्सक इस कोष्ण (गुनगुने) क्वाथ को पिलावे। इस परिपक्व जल को शृत, क्वाथ, कषाय और निर्यूह कहते हैं।

तत्रान्यतमपरिमाणमम्मितानां यथायोगं त्वक्पत्रफलमूलादीनां आतपपरिशोषितानां छेद्यानि खण्डशश्छेदयित्वा, भेद्यान्यणुशो भेदयित्वा, अवकुट्य, अष्टगुणेन षोडशगुणेन वाऽम्भसाऽभिषिच्य, स्थाल्यां चतुर्भागावशिष्टं क्वाथयित्वाऽपहरेदित्येष कषायकल्पः, अथवा तत्रोदक-द्विद्रोणं त्वक्-पत्र-फल-मूलादीनां तुलामवाप्य चतुर्भागावशिष्टं निष्क्वाथ्य अपहरेदित्येष कषायकल्पः ॥

(सु. चि. 31/8)

अर्थात् औषध द्रव्य के त्वक्, पत्र, फल, मूल आदि जिस अंग का क्वाथ बनाना हो उसको धूप में अच्छी तरह सुखाकर छेदन करने (काटने) योग्य को काटकर, भेदन करने (तोड़ने) योग्य को तोड़कर, आर्द्र द्रव्य हो तो जल से धोकर, अष्टगुण या षोडशगुण जल मिलाकर स्थाली (पात्र) में डालकर अग्नि पर चढ़ाकर चतुर्थांशावशेष रहने तक क्वाथ करें अथवा एक तुला (4.800 कि.ग्रा.) द्रव्य (त्वक्, पत्र, फल, मूल आदि) को 2 द्रोण (24.576 लीटर) जल में डालकर चतुर्थांश शेष रहने तक उबालकर और छान प्रयोग करें।

आचार्य वृद्धवाग्भट्ट ने भी सुश्रुत के समान ही क्वाथनिर्माण की विधि बनायी है। उन्होंने जल की मात्रा औषध द्रव्य के अधिक या अल्प जलग्राहिता (जल ग्रहण करने की क्षमता) के आधार तथा औषधि के पूर्ण सार के आने के लिए आवश्यक जल डालकर क्वाथनिर्माण करने का निर्णय वैद्य के विवेक पर छोड़ दिया है:-

तत्र भेद्यान्यौषधान्यणुशो भेदयित्वा, छेद्यानि छेदयित्वा प्रक्षाल्योदकेन, शुचौरूक्षायामधः प्रलिप्तायां ताम्रायोमृन्मयान्यतमायां स्थाल्यां समावाप्य, बह्वल्पपानीयग्राहितामौषधानामाकलय्य, यावता युक्तरसता स्यात्तावदुदकमासेचयेच्छोषयेच्च। अथाग्नावधिश्रित्य महत्यासने सुखोपविष्टः सर्वतः सततमवलोकयन् दर्व्याऽवघट्टयन् मृदुना परितः समुपगच्छताऽनलेन साधयेत्। अवतार्य च परिस्रुतं यथार्हस्पर्शं प्रयुञ्जीत।(अ. स. क. 8/34-36)

आचार्य वाग्भट्ट ने इसी अध्याय में क्वाथ निर्माणार्थ 8 गुना जल डालकर चतुर्थांश शेष रहने तक पाक करने का निर्देश दिया है:-

निर्यूहे भेषजपलमुदकार्द्धप्रस्थेऽधिश्रित्य पादशेषितमवतारयेत्।

(अ. सं. क. 8/46)

क्वाथ निर्माण हेतु जल की मात्रा:- आचार्य शार्ङ्गधर ने सोलह गुना जल डालकर अष्टमांश शेष रखने का सामान्य नियम बताया है। क्वाथ निर्माणार्थ सामान्य

सिद्धान्त यह होना चाहिए कि क्वाथ के लिए उतना ही जल डालना चाहिए तथा उतनी ही देर पकाना चाहिए, जितने में औषध द्रव्य का सम्पूर्ण सार भाग जल में आ जाये। तथापि आचार्यों ने द्रव्य के संघात (कठिनता-मृदुता) एवं द्रव्य की मात्रा के अनुसार जल का परिमाण बताया है।

1. द्रव्य संघात के अनुसार जल की मात्राः-

मृदौ चतुर्गुणं देयं मध्यमेऽष्टगुणं तथा।
द्रव्ये तु कठिने देयं बुधैः षोडशिकं जलम्॥

(द्र. गु. वि. उ. 2/24-25)

अर्थात् मृदुद्रव्य के लिए चार गुना, मध्यम द्रव्य के लिए आठ गुना तथा कठिन द्रव्य के लिए सोलह गुना जल डालना चाहिए। प्रायः क्वाथों में मृदु, मध्य तथा कठिन सभी संघात के द्रव्य मिश्रित होते हैं, अतः यदि जल की मात्रा निर्दिष्ट न हो तो मध्यम मार्ग अपनाकर आठ गुना जल डालकर क्वाथ निर्माण करना चाहिए।

किन्तु यह नियम सर्वत्र लागू नहीं होता है। द्रव्यों की न्यून या अधिक मात्रा होने पर यह सिद्धान्त बदल जाता है। अतः द्रव्य की मात्रानुसार जल का परिमाण भी आचार्यों ने बताया है।

2. द्रव्य की मात्रानुसार जल की मात्राः-

कर्षादितः पलं यावत् क्षिपेत् षोडशिकं जलम्।
तदूर्ध्वं कुडवं यावत्तोयमष्टगुणं भवेत्॥
तदूर्ध्वं प्रक्षिपेन्नीरं खारीं यावच्चतुर्गुणम्॥

(अ. स. क. 8 एवं द्र. गु. वि. उ. 2/25-26)

अर्थात् एक कर्ष (12 ग्राम) से एक पल (48 ग्राम) तक द्रव्य का क्वाथ बनाना हो तो जल सोलह गुना डालना चाहिए। एक पल से ऊपर एक कुडव (192 ग्राम) तक द्रव्य का क्वाथ बनाना हो तो आठ गुना जल डालना चाहिए। एक कुडव से खारी (188.416 कि.ग्रा. या 4096 पल) तक का क्वाथ बनाना हो तो जल चार गुना डालना चाहिए।

द्रव्य की मात्रा कम होने पर जल अधिक लेने का कारण यह है कि द्रव्य का सारभाग जल में सम्यक् रूप से आ जाये। कम जल लेने से जल शीघ्र ही सूख जाता है और द्रव्य का सारभाग क्वाथ में नहीं आ पाता है।

आचार्य शार्ङ्गधर ने जल को अष्टमांश शेष रखने का निर्देश किया है जबकि अन्य आचार्यों ने जल चतुर्थांश शेष रखने का निर्देश किया है:-

Scanned with CamScanner

कर्षादौ तु पलं यावद्दद्यात् षोडशिकं जलम्।
ततस्तु कुडवं यावत्तोयमष्टगुणं भवेत्।।
क्वाथ्यद्रव्यजले कुर्यात् प्रस्थार्धं पादशेषितम्।।

(च. द. ज्वर /63)

द्रव्यमापोस्थितं कृत्वा कर्षादिकपलान्ततः।
जले षोडशिके पक्त्वा क्वाथः स्यात् पादशेषिते।।

(गंगाधर)

क्वाथ का लघु पाक रखना होतो चतुर्थांश रखना चाहिए तथा पूर्णपाक करना हो तो अष्टमांश शेष रखना चाहिए।

क्वाथ के प्रकारः-

पाचनो दीपनीयश्च शोधनः शमनस्तथा।
तर्पणः क्लेदनः शोषी क्वाथः सप्तविधोस्मृतः।।
पाचनः पचते दोषान्दीपनेदीप्यतेऽनलम्।
शोधनो मलशोधी स्याच्छमनः शमते गदान्।।
तर्पणस्तर्प्यते धातून् क्लेदी हृत्क्लेदकारकः।
विशोषी शोषमादत्ते तस्मात्क्वाथान्परीक्षयेत्।।

(टोडरानन्द/153-155)

अर्थात् क्वाथ सात प्रकार के हैं-1.पाचन 2. दीपनीय 3. शोधन 4. शमन 5. तर्पण 6. क्लेदन और 7. शोषी

पाचन और शोधन क्वाथ के लिए जल चतुर्थांश शेष रखा जाता है तथा अन्य क्वाथों में अष्टमांश शेष रखा जाता है।

"पाचनः शोधनीयश्च पादशेषः प्रशस्यते।"

हारीत संहिता के अनुसार पाचन क्वाथ में जल अर्धशेष ($\frac{1}{2}$), शोधन क्वाथ में द्वादशांश ($\frac{1}{12}$), क्लेदन में चतुर्थांश ($\frac{1}{4}$), शमन में अष्टमांश ($\frac{1}{8}$), दीपनीय में दशांश ($\frac{1}{10}$), तर्पण में समांश (केवल क्वथन करते हैं), विशोषी में षोडशांश ($\frac{1}{16}$) अवशेष रखते हैं। यथाः-

पाचनेऽर्द्धविशोषी स्याच्छोधनो द्वादशांशक
क्लेदनश्चतुरंशश्च शमनोऽष्टयशोषितः।

Scanned with CamScanner

दीपनीयो दशांशस्तु तर्पणश्च समांशकः।
विशोषी षोडशांशश्च क्वाथभेदाः प्रकीर्तिताः।।

(हा. सं. 3/1)

क्वाथ चूर्णः-क्वाथ निर्माण हेतु द्रव्यों का यवकुट चूर्ण (Coarse Powder) किया जाता है, इसे क्वाथ चूर्ण या कषाय चूर्ण कहा जाता है। यद्यपि शास्त्रों में "छेद्यानि छेदयित्वा, भेद्यानि अणुशो भेदयित्वा" आदि शब्द क्वाथ चूर्ण निर्माण हेतु निर्दिष्ट है। इसका तात्पर्य द्रव्य के छोटे-छोटे टुकड़े करना है, जो मोटे यव के बराबर होने चाहिए। इसलिए वर्तमान में क्वाथ चूर्ण के लिए यवकुट चूर्ण का प्रयोग होता है। क्वाथ चूर्ण का प्रयोग क्वाथ (Decoction) निर्माण के लिए किया जाता है।

क्वाथ की मात्राः-

आहाररसपाके च सञ्जाते द्विपलोन्मितम्।
वृद्धवैद्योपदेशेन पिबेत्क्वाथं सुपाचितम्।।

(शा. सं. म. ख. 2/3)

अर्थात् आहार के रस के पाक हो जाने पर क्वाथ 2 पल (96 मि.ली.) की मात्रा में पीना चाहिए।

आचार्य यादवजी त्रिकमजी ने क्वाथ की मध्यम मात्रा एक पल (4 तोला) बताई है।

क्वाथस्य मध्यमा मात्रा पलमाना प्रकीर्तिता। (द्र. गु. वि. उ. 2/26)

क्वाथ में प्रक्षेप की मात्राः-

क्वाथे क्षिपेत् सितामंशैश्चतुर्थाष्टमषोडशैः।
वातपित्तकफातङ्के विपरीतं मधुस्मृतम्।।
जीरकं गुग्गुलु क्षारं लवणं च शिलाजतु।
हिङ्गु त्रिकटुकं चैव क्वाथे शाणोन्मितं क्षिपेत्।।
क्षीरं घृतं गुडं तैलं मूत्रं चान्यद् द्रवं तथा।
कल्कं चूर्णादिकं क्वाथे निक्षिपेत् कर्षसम्मितम्।।

(शा. सं. म. ख. 2/4-6)

अर्थात् क्वाथ में शर्करा डालनी हो तो वातजरोगों में क्वाथ से चतुर्थांश, पित्तजरोगों में अष्टमांश तथा कफज रोगों में षोडशांश डालनी चाहिए। मधु की मात्रा शर्करा से विपरीत होती है अर्थात् मधु की मात्रा वातजरोगों में षोडशांश, पित्तजरोगों में अष्टमांश तथा कफज रोगों में चतुर्थांश डालनी चाहिए।

Scanned with CamScanner

यदि क्वाथ में जीरक, गुग्गुलु, क्षार, लवण, शिलाजतु, हींग, त्रिकटु चूर्ण डालना हो तो एक शाण (3 ग्राम) की मात्रा में मिलाना चाहिए।

क्वाथ में दुग्ध, घृत, गुड, तैल, मूत्र या अन्य द्रव तथा कल्क, चूर्णादि का प्रक्षेप मिलाना हो तो एक कर्ष (12 ग्राम) मिलाना चाहिए।

क्वाथ निर्माण में सावधानियाँ :-

1. क्वाथ द्रव्यों का यवकुट चूर्ण (Coarse Powder) बनाना चाहिए। क्वाथ चूर्ण सूक्ष्म चूर्ण (Fine Powder) नहीं होना चाहिए। क्योंकि सूक्ष्म चूर्ण से बनाया हुआ क्वाथ स्वच्छ द्रव के रूप में नहीं होगा, उसमें जल में अघुलनशील तत्त्व भी छनकर आ जाते है।

2. सम्यक् पाकोपरान्त क्वाथ को वस्त्र से छान लेना चाहिए।

3. क्वाथ पकाते समय पात्र के मुख पर ढक्कन नहीं लगाना चाहिए, क्योंकि पात्र का मुँह ढ़ँक देने से क्वाथ दुर्जर (दुःख से पचने वाला) हो जाता है। यथाः-

अपिधानमुखे पात्रे जलं दुर्जरतां व्रजेत्।
तस्मादावरणं त्यक्त्वा क्वाथादींश्च विपाचयेत्।।
(शा. सं. म. ख. 2/7)

4. क्वाथ निर्माण मन्दाग्नि पर करना चाहिए। क्वाथ का बार-बार पाक नहीं करना चाहिए। पुनः पाक किया, दुर्गन्धित और गाढ़ा क्वाथ का प्रयोग नहीं करना चाहिए।

5. सुगन्धित एवं उड़नशील तत्त्व (Volatile oil) युक्त द्रव्यों की क्वाथ कल्पना नहीं करनी चाहिए, क्योंकि उनके उड़नशील तत्त्व या सुगन्ध क्वाथ करते समय उड़ जाते हैं। यथाः-गुलाब, श्वेतचन्दन, सौंफ, लौंग आदि द्रव्यों के क्वाथ नहीं बनाने चाहिए। ऐसे द्रव्यों से चूर्ण, कल्क, हिम, फाण्ट, अर्क आदि अन्य कल्पनाओं का निर्माण करना चाहिए।

क्वाथ के उपयोग :-

1. क्वाथ का प्रयोग औषध के अनुपान के रूप में होता है।

2. चरक के अनुसार क्वाथ का उपयोग स्नेहकल्पना, सेक, पान, व्रणशोधन, आश्च्योतन, गण्डूष, निरुहवस्ति के निर्माण में होता है। अन्य आचार्यों के अनुसार क्वाथ का उपयोग अरिष्ट निर्माण, अवलेह निर्माण में भी होता है।

3. औषध योग निर्माण में भावना देने हेतु क्वाथ का उपयोग होता है।

4. घन (Extract) निर्माण भी क्वाथ से किया जाता है।

Scanned with CamScanner

पुनि पटोल शहर गुडुची कुटकी लेते गई

पुनर्नवाष्टक क्वाथ (पुनर्नवादि क्वाथ) :-

Imp

पुनर्नवाभयानिम्बदार्वीतिक्तापटोलकैः ।
गुडूचीनागरयुतैः क्वाथो गोमूत्र संयुतः ।
पाण्डुकासोदरश्वासशूलसर्वाङ्गशोथहा ।।

(शा. सं. म. ख. 2/76-77)

अर्थात् पुनर्नवा, हरीतकी, निम्ब, दारुहरिद्रा, कटुकी, पटोलपत्र, गुडूची और शुण्ठी का क्वाथ गोमूत्र मिलाकर पीने से पाण्डु, कास, उदररोग, श्वास, शूल तथा सर्वाङ्गशोथ को नष्ट करता है।

रास्नासप्तक क्वाथ:-

रास्ना गोक्षुरकैरण्डदेवदारू पुनर्नवा।
गुडूच्यारग्वधश्चैव क्वाथमेषां विपाचयेत्।
शुण्ठीचूर्णेन संयुक्तं पिबेज्जङ्घाकटिग्रहे।
पार्श्वपृष्ठोरूपीडायामामवाते सुदुस्तरे ।।

(शा. सं. म. ख. 2/86-87)

अर्थात् रास्ना, गोक्षुर, एरण्ड, देवदारू, पुनर्नवा, गुडूची, आरग्वध का यथाविधि निर्मित क्वाथ शुण्ठी चूर्ण मिलाकर पीने से जंघाग्रह, कटिग्रह, पार्श्वपीड़ा, पृष्ठपीड़ा, उरूपीड़ा तथा दुःसाध्य आमवात को नष्ट करता है।

कुलत्थ क्वाथ :-

कुडवकुलत्थक्वथितं पाथः कोष्णं विशिष्य निष्पीतम्।
शीतज्वरं विजयते रेकं वा वान्तिमुद्राव्य।।

घटक द्रव्य :-

(सि. भे. म. मा. 4/26)

1. कुलत्थ बीज - 1 कुडव (192 ग्राम) 2. जल - 3.072 लीटर

निर्माण विधि :- सर्वप्रथम कुलत्थ बीज के सूक्ष्म टुकड़े करके 16 गुना (3.072 लीटर) जल मिलाकर अष्टमांश जल शेष रहने तक पकाते हैं। फिर उसे स्वच्छ वस्त्र से छान लेते हैं।

मात्रा :- 1 से 2 पल

उपयोग:- विरेचन या वमन होने से उत्पन्न शीत ज्वर का नाशक है। कृमिरोग, मूत्ररोग, अश्मरी, आर्तवरोग में उपयोगी है। धातुओं के सामान्य शोधन में कुलत्थक्वाथ का प्रयोग होता है।

आयुर्वेदीय ग्रन्थों में कुलत्थ का यूष के रूप में अधिक प्रयोग मिलता है।

Scanned with CamScanner

हिम कल्पना :-

यह पञ्चविधकषाय कल्पना के अन्तर्गत चतुर्थ कल्पना है। यवकुट द्रव्य को रातभर शीतल जल में भिगोकर प्रातःकाल मसलकर छान लेने पर प्राप्त द्रव को हिम या शीत कल्पना कहते हैं। शीतवीर्य एवं सुगन्धित द्रव्यों को क्वाथ करने पर उनमें उष्णवीर्यता आ जाती है, उनके सुगन्धित एवं उड़नशील तत्त्व उड़ जाते हैं, अतः ऐसे द्रव्यों का सारभाग प्राप्त करने के लिए हिम या शीत कल्पना उपयोगी है। हिम कल्पना पीने के लिए तथा शार्कर आदि अन्य कल्पनाओं के निर्माणार्थ भी बनायी जाती है।

परिभाषा:-

क्षुण्णं द्रव्यपलं सम्यक् षड्भिर्नीरपलैः प्लुतम्।
निशोषितं हिमः स स्यात् तथा शीतकषायकः ।।

(शा. सं. म. ख. 4/1)

अर्थात् 1 पल द्रव्य को भली-भांति कूट पीसकर 6 पल जल में रात्रिभर भिगोकर प्रातःकाल मसलकर छान लेने से हिम (शीतकषाय) कल्पना बनती है।

द्रव्यादापोथितात्तोये प्रतप्ते निशिसंस्थितात्।
कषायो योऽभिनिर्याति स शीतः समुदाहृतः ।।

(च. सू. 4/7)

अर्थात् औषध द्रव्य को कूटकर गरम जल में रात्रिभर भिगोकर प्रातःकाल मसलकर छान लेने से शीत कल्पना बनती है।

"प्रतप्ते निशिसंस्थितात्" के स्थान पर "**तत्पुनर्निशिसंस्थितात्**" ऐसा पाठ भेद भी मिलता है, जिसका अर्थ शीतल जल में भिगोकर रात्रिभर रखना है।

सम्भवतः पानी को गरम करके उसमें गुनगुना रहने पर द्रव्य को मिलाने से द्रव्य का सारभाग जल में सम्यक् रूप से आ जाता होगा, इसलिए आचार्य चरक ने प्रतप्त जल में भिगोने का निर्देश किया है।

आचार्य यादवजी ने भी 6 गुना शीतल जल में भिगोकर रखने का निर्देश किया है:-

द्रव्यमर्धपलं क्षुण्णं त्रिभिर्नीरपलैः प्लुतम्।
निशोषितं हिम स स्यात्तस्य मात्रा पलोन्मिता ।।

(द्र. गु. वि. उ. 2/45)

मात्रा:-

तन्मानं फाण्टवज्ज्ञेयं सर्वत्रैवैष निश्चयः।

(शा. सं. म. ख. 4/2)

Scanned with CamScanner

हिम कल्पना की मात्रा फाण्ट के समान 2 पल (96 मि.ली.) मानी है। आचार्य यादवजी त्रिकमजी के अनुसार हिम की मात्रा एक पल है।

प्रक्षेपद्रव्य की मात्रा:–हिम में प्रक्षेप द्रव्य की मात्रा क्वाथ एवं फाण्ट के समान ही डालनी चाहिए।

तन्मानं फाण्टवज्ज्ञेयं सर्वत्रैवैष निश्चय:।

(शा. सं. म. ख. 4/2)

सितामधुगुडादीश्च क्वाथवत् प्रक्षिपेद्भिषक्।।

(द्र. गु. वि. यादवजी 2/46)

धान्यक हिम:–

प्रात: सशर्कर: पेयो हिमोधान्यकसम्भव:।
अन्तर्दाहं तथा तृष्णां जयेत् स्रोतोविशोधन:।।

(शा. सं. म. ख. 4/7)

अर्थात् धान्यक हिम शर्करा के साथ मिलाकर प्रात:काल पीने से अन्तर्दाह एवं तृष्णा का शमन करता है तथा स्रोतो का शोधन करता है।

सारिवादि हिम:–

1. सारिवा, 2. वृहद् सारिवा (उशबा) 3. चोपचीनी, 4. मंजिष्ठा, 5. गुडूची, 6. यवासा, 7. रक्तचन्दन, 8. गुलबनप्सा, 9. उशीर, 10. मुण्डी, 11. चिरायता, 12. कमलपुष्प, 13. गुलाबपुष्प, 14. द्रोणपुष्पी 15. पद्मकाष्ठ 16. शंखपुष्पी प्रत्येक द्रव्य 3–3 ग्राम (कुल 48 ग्राम) के यवकुट चूर्ण को 6 पल जल में रात्रिभर भिगोकर सुबह मसलकर छान लें। यह सारिवादि हिम है। (सि. यो. सं. 21/पृ.118)

मात्रा :– 2 पल

अनुपान :– शर्करा

प्रयोग :– रक्तविकार, पित्तजव्याधि, पाण्डु, कण्डु, हस्तपाददाह, अम्लपित्त, पुराणज्वर।

पित्तप्रमाथि हिम :–

माषान् द्वादश मार्कण्ड्या पिण्डखर्जूरषोडशी।
शाणिकामरूणा सायं जले क्षिप्त्वोपरि न्यसेत्।
प्रातर्निष्कम्पमासाद्य तदम्बु परिशीलयेत्।
पाण्डु पित्तास कण्डूति ज्वरघ्नं मूत्ररेकत:।।

(सि. भे. म. मा. पाण्डुचिकि. 4/288-289)

Scanned with CamScanner

अर्थात् सनाय का चूर्ण-12 ग्राम, पिण्डखर्जूर-16 नग तथा मंजिष्ठा चूर्ण-4 ग्राम को मिलाकर 250 ग्राम जल में भिगोकर सायंकाल छत पर रख दें। प्रातःकाल पानी को हिलाये बिना नितार ले। इसमें 60 ग्राम शर्करा भी मिला सकते हैं। यह जल रोगी को पिलाने से मल एवं मूत्र का रेचन होकर स्वास्थ्य लाभ होता है। यह प्रयोग पाण्डु, रक्तपित्त, कण्डू तथा ज्वर आदि रोगों का प्रशामक है। यह हिम कामला (Jaundice) रोग में अत्यधिक लाभदायक है।

फाण्ट कल्पना:-

यह पंचविधकषाय कल्पना के अन्तर्गत पञ्चम एवं अन्तिम कल्पना है। इस कल्पना में औषध द्रव्य को कूटकर उष्ण जल में भिगोया जाता है। इससे औषध का सारभाग (गुण) उष्ण जल के कारण जल्दी आ जाता है, साथ ही जिन औषध द्रव्यों के गुण हिमकल्पना में सम्पूर्ण रूप से नहीं आ पाते हैं और क्वाथ कल्पना में नष्ट होने का भय रहता है। इस प्रकार के द्रव्यों के लिए यह कल्पना उत्तम है। उदाहरण के लिए अमलतास का गूदा (फल मज्जा) उष्ण जल में घोलकर देने से अधिक लाभ करता है।

परिभाषा:-

क्षिप्त्वोष्णतोये मृदितं तत् फाण्टमभिधीयते।।

(च. सू. 4/7)

अर्थात् औषध द्रव्य को यवकुट करके उष्ण जल में मिलाकर एवं हाथ से मसलकर वस्त्र से छान लेने से प्राप्त द्रव को फाण्ट कहते हैं।

क्षुण्णे द्रव्यपले सम्यक् जलमुष्णं विनिक्षिपेत्।
मृत्पात्रे कुडवोन्मानं ततस्तु स्रावयेत्पटात्।।
स स्याच्चूर्णद्रवः फाण्टस्तन्मानं द्विपलोन्मितम्।

(शा. सं. म. ख. 3/1-2)

अर्थात् मिट्टी के पात्र में एक पल (48 ग्राम) औषध द्रव्य के यवकुट चूर्ण तथा 1 कुडव (192 ग्राम) उबलता हुआ उष्ण जल मिलाकर उस पात्र को ढ़क दें। जब जल कुछ गुनगुना रह जाये तब उसको हाथ से मसलकर वस्त्र से छान ले। इस प्रकार प्राप्त द्रव को फाण्ट और चूर्णद्रव कहते हैं।

मात्रा :- 2 पल (96 मि.ली.)

प्रक्षेप द्रव्य:-फाण्ट में मिश्री, मधु या गुड आदि प्रक्षेप द्रव्य मिलाने हो तो क्वाथ कल्पना के अन्तर्गत कहे गये नियम के अनुसार मिलाने चाहिए।

सितामधुगुडादींश्च क्वाथवत्तत्र निक्षिपेत्।।

(शा. सं. म. ख. 3/2)

विमर्श:–आजकल बहुप्रचलित चाय एक प्रकार का फाण्ट ही है, किन्तु इसे उपरोक्त विधि से बनाने पर ही फाण्ट कहा जा सकता है। परन्तु अधिकांश लोग चाय की पत्ती, चीनी, दूध डालकर उबालकर चाय बनाते हैं, जो क्वाथ विधि के समान है।

पञ्चकोल फाण्ट :–

पिप्पली पिप्पलीमूलं चव्यचित्रकनागरैः।
पञ्चभिः कोलमात्रं यत्पञ्चकोलं तदुच्यते ।।

(भा. प्र. हरीतक्यादि वर्ग/74)

अर्थात् पिप्पली, पिप्पलीमूल, चव्य, चित्रकमूल एवं शुण्ठी का 1-1 कोल (6-6 ग्राम) यवकुट चूर्ण को 10 तोला (120 मि.ली.) उबलते जल में डालकर पात्र को ढ़क दे तथा कुछ ठण्डा होने पर इसे छानकर प्रयोग करें। यह कफज्वर, वातज्वर एवं प्रतिश्याय आदि रोगनाशक है तथा दीपन, पाचन गुणों से युक्त है।

यष्टिमधु फाण्ट:–

ग्रन्थों में यष्टिमधु (मुलेठी) फाण्ट का वर्णन नहीं मिलता है, क्योंकि चूर्ण और क्वाथ के रूप में यह अधिक उपयोगी है।

इसलिए आवश्यक होने पर फाण्ट निर्माण की सामान्य विधि के अनुसार यष्टिमधु फाण्ट का निर्माण करके प्रयोग किया जा सकता है।

घटक द्रव्य :–

1. यष्टिमधु (मुलेठी)	–	100 ग्राम
2. जल	–	400 मिली.

निर्माण विधि :– सर्वप्रथम यष्टिमधु को यवकुट करते हैं। फिर चार गुना जल को क्वथित करके, उसमें यवकुट यष्टिमधु को डालकर पात्र को ढ़क देते हैं। थोड़ा शीतल होने पर यष्टिमधु को मसलकर छान लेते हैं।

मात्रा :– 1 से 2 पल

उपयोग :– दाहशामक, पित्तशामक, केश्य, वेदनास्थापन, शोणितस्थापन, कण्डूघ्न, चक्षुष्य, बल्य एवं मेध्य रसायन है।

प्रमथ्या :–

यह क्वाथ कल्पना का ही एक प्रकार है। द्रव्य का कल्क बनाकर क्वाथ करने से प्रमथ्या बनती है। यह दीपन पाचन कषाय विशेष है, जिसका प्रयोग दोषों की मध्यमावस्था में किया जाता है।

Scanned with CamScanner

परिभाषा:-

प्रमथ्या प्रोच्यते द्रव्यपलात् कल्कीकृताच्छृतात्।
तोयेऽष्टगुणिते तस्याः पानमाहुः पलद्वयम्।।

(शा. सं. म. ख. 2/150)

अर्थात् 1 पल औषध द्रव्य के चूर्ण का कल्क बनाकर 8 गुना (8 पल = 384 मि.ली.) जल में पकाकर, चतुर्थांश (2 पल) शेष रहने पर छान लेना चाहिए, इसे प्रमथ्या कहते हैं।

मात्रा:-इसकी मात्रा 2 पल (96 मि.ली.) है।

प्रमथ्यां मध्यदोषाणां दद्याद्दीपनपाचनीम्। (च. चि. 19/19)

अर्थात् मध्यम रूप से बढ़े हुए दोषों में दीपन पाचन औषधों से युक्त क्वाथ देते हैं, उसे प्रमथ्या कहते हैं। इस पर टीकाकार आचार्य चक्रपाणि ने कहा है कि वैद्यक शास्त्र में वृद्धवैद्य परम्परा से 'प्रमथ्या' दीपन-पाचन कषाय शब्द के लिए प्रयुक्त होता है:-

"प्रमथ्यामिति पाचनदीपनीयं कषायं, प्रमथ्याशब्दो हि वृद्धपरम्परया दीपनपाचनकषाये वैद्यकशास्त्रे परिभाषितः श्रूयते।"

(च. चि. 19/19 की चक्रपाणि टीका)

मध्यदोषस्तु विशोषयन् मागधी-नागर-वचा-भूतीक-धनिका-हरीतकीनां क्वाथं पिबेत्। जल-जलद-बिल्वपेशिका-शुण्ठी-धान्यकानां वा। उभयमपि चैतत् प्रमथ्याख्यम्। (अ. सं. चि. 11/4)

अर्थात् अष्टांग संग्रह में अतिसार चिकित्सा क्रम में बताया है कि मध्यदोष वाले अतिसार के रोगी को लंघन कराकर पिप्पली, शुण्ठी, वचा, अजवायन, धनियाँ और हरीतकी का क्वाथ या नागरमोथा, उशीर, बिल्वगिरि, शुण्ठी और धनियाँ का क्वाथ पिलावें। इन दोनों क्वाथों को प्रमथ्या कहते हैं।

पिबेत् प्रक्वथितास्तोये मध्यदोषो विशोषयन्। (अ. हृ. चि. 9/5)

प्रकर्षेण क्वथिताः प्रमथ्यारूपेण शृताः, प्रक्वथिताः इत्यस्यार्थस्य प्रतिपादनार्थं प्रशब्दोपकारि। प्रमथ्यायाश्च तन्त्रान्तरे लक्षणमुक्तम्। यथा:-

शृतः कषायो निर्यूहः क्वाथो यूषोऽकृतश्च सः।
कृतयूषः प्रमथ्या च द्रव्यात्कल्कीकृतात्छृतः।। इति।

तदेवं द्रव्यं कल्कीकृत्य पिष्ट्वा यत्क्रियते स कृतयूषो भण्यते। स एव च प्रमथ्याशब्दवाच्यः। (अ. हृ. चि. 9/5 पर अरुणदत्त टीका)

अर्थात् मध्यदोषो में प्रक्वथिततोय (प्रमथ्या) को पिलाना चाहिए।

Scanned with CamScanner

क्वाथ में औषध द्रव्य को जल में डालकर उबाला जाता है, प्रमथ्या में प्रकर्षण (विशिष्ट) क्वथन किया जाता है, यह इस शब्द के 'प्र' उपसर्ग से संकेतित है।

क्वाथ अकृतयूष है और प्रमथ्या कृतयूष है। औषध द्रव्य को कल्क बनाकर पीसकर जो बनाया जाता है, वह कृतयूष कहा जाता है। इसी को प्रमथ्या कहते हैं।

आचार्य शार्ङ्गधर ने प्रमथ्या की परिभाषा अपने पूर्ववर्ती आचार्यों के विचार (विशेष रूप से अरुणदत्त की व्याख्या) के आधार पर बनायी है। किन्तु यहाँ पर इसकी मात्रा 2 पल बतायी है, जो अधिक प्रतीत होती है। औषध को कल्क बनाकर उसका पुनः क्वाथ बनाने में औषध का सारभाग उस क्वाथ में अधिक आ जायेगा तथा औषधि तीक्ष्ण हो जायेगी। अतः वर्तमान में इसकी मात्रा 2 से 4 तोला की होनी चाहिए।

क्वाथ एवं प्रमथ्या में अन्तर:-

1. क्वाथ के निर्माण में औषध द्रव्य को यवकुट करके षोडश गुण जल में पकाकर अष्टमांश शेष रखते हैं जबकि प्रमथ्या में कल्क बनाकर अष्टगुण जल में पकाकर चतुर्थांश शेष रखते हैं।

2. क्वाथ में औषध द्रव्य का क्वथन (उबालना) किया जाता है, जबकि प्रमथ्या में प्रकर्षण क्वथन किया जाता है।

3. क्वाथ अकृतयूष है, जबकि प्रमथ्या को कृतयूष कहा गया है।

4. क्वाथ का प्रयोग दोषों की सभी अवस्था में तथा संशोधन, संशमन, दीपन, पाचन आदि विभिन्न प्रयोजनों से किया जाता है, जबकि प्रमथ्या का प्रयोग दोषों की मध्यम अवस्था तथा दीपन, पाचन कषाय के रूप में किया जाता है। अर्थात् क्वाथ एक मुख्य औषध कल्पना है और प्रमथ्या एक पथ्य कल्पना है।

मुस्तादि प्रमथ्या:-

मुस्तकेन्द्रयवैः सिद्धा प्रमथ्या द्विपलोन्मिता।
सुशीता मधुसंयुक्ता रक्तातीसारनाशिनी ।।

(शा. सं. म. ख. 2/151)

अर्थात् नागरमोथा एवं इन्द्रयव से निर्मित प्रमथ्या 2 पल की मात्रा में मधु मिलाकर पीने से रक्तातिसार को नष्ट करती है।

औषध सिद्धपानीय:-

क्षुण्णं द्रव्यपलं साध्यं चतुःषष्टिपले जले।
अर्धशिष्टं च तद्देयं पाने भक्तादिसंविधौ ।।

(शा. सं. म. ख. 2/157)

Scanned with CamScanner

अर्थात् 1 पल (48 ग्राम) औषध द्रव्य को यवकुट चूर्ण कर 64 पल (3.072 लीटर) जल में मन्दाग्नि पर पाक करें। अर्धावशेष (32 पल) जल रहने पर स्वच्छ वस्त्र से छान ले। यह औषधसिद्धपानीय कल्पना है।

प्रयोग :– यह जल पीने तथा भात, पेया, यूष, यवागू आदि पथ्य कल्पना के निर्माण में प्रयोग किया जाता है। षडङ्गपानीय इस कल्पना का उदाहरण है।

षडङ्गपानीय:–

मुस्तपर्पटकोशीरचन्दनोदीच्यनागरैः ।
शृतशीतं जलं दद्यात् पिपासाज्वरशान्तये ।।

PORN SRS[2]

(च. चि. 3/145)

अर्थात् नागरमोथा, पर्पट, उशीर, रक्तचन्दन, सुगन्धबाला, शुण्ठी इन छः द्रव्यों के 1 कर्ष यवकुट चूर्ण को 64 कर्ष जल में डालकर अर्धशेष (32 कर्ष) रहने तक उबालकर छान ले। यह षडङ्गपानीय है।

उपयोग:– ज्वर तथा ज्वरजन्य पिपासा, दाह के शमनार्थ शीतल करके थोड़ा-थोड़ा (4 से 8 तोला) दिन में 4 से 6 बार पिलावें।

उष्णोदक:–

अष्टमेनांशशेषेण चतुर्थेनार्धकेन वा ।
अथवा क्वथनेनैव सिद्धमुष्णोदकं वदेत् ।।

(शा. सं. म. ख. 2/159)

अर्थात् जल को अग्नि पर उबालकर अष्टमांश, चतुर्थांश, अर्धांश शेष रहने अथवा क्वथित (अच्छी प्रकार उबाल लेना) होने पर उतार लेना चाहिए, इसे उष्णोदक (सिद्ध उष्णोदक) कहते हैं। शार्ङ्गधर संहिता के टीकाकार आढमल्ल ने क्वथन का अर्थ त्रिपादशेष किया है।

क्वाथ्यमानन्तु यत्तोयं निष्फेनं निर्मलीकृतम् ।
भवत्यर्धावशिष्टं च तदुष्णोदकमुच्यते ।।

(वै. प. प्र. 3/104)

अर्थात् जल को फेनरहित, निर्मल और अर्धांश शेष रहने तक पकाना चाहिए, इसे उष्णोदक कहते हैं।

उष्णोदक के गुण:–

श्लेष्मामवातमेदोघ्नं बस्तिशोधनदीपनम् ।
कासश्वासज्वरहरं पीतमुष्णोदकं निशि ।।

(शा. सं. म. ख. 2/160)

Scanned with CamScanner

अर्थात् रात्रि के समय उष्णोदक पीने से कफ, आमवात, मेदोरोग, कास, श्वास, ज्वर को नष्ट करता है, बस्ति का शोधन करता है और अग्निदीपन है।

तत्पादहीनं वातघ्नमर्धहीनन्तु पित्तजित्।
त्रिपादहीनं श्लेष्मघ्नं ग्राह्यग्निप्रदं लघु।। (म. वि.)

अर्थात् एक पादहीन जल वातनाशक, अर्धहीन जल पित्तनाशक तथा त्रिपादहीन जल कफघ्न, दीपन और लघु होता है।

पादावशेषं सलिलं ग्रीष्मे शरदि शस्यते।
हेमन्ते शिशिरे वर्षास्वर्धहीनं प्रशस्यते।।
शृतशीतं सदा पथ्यं लघुनीरे त्रिदोषनुत्। (म. वि.)

अर्थात् एक पादशेष जल का ग्रीष्म और शरद ऋतु में, अर्धहीन जल का हेमन्त, शिशिर और वर्षा ऋतु में सेवन करना चाहिए। शृतशीत जल सदा पथ्य, लघु और त्रिदोषशामक होता है।

तण्डुलोदक:-

कण्डितं तण्डुलपलं जलेऽष्टगुणिते क्षिपेत्।
भावयित्वा जलं ग्राह्यं देयं सर्वत्र कर्मसु।।

(शा. सं. म. ख. 1/32)

अर्थात् एक पल निस्तुष एवं कुटे हुए चावल को 8 गुना जल में डालकर उसे 6 घंटे पश्चात् मसलकर छान ले। इसे तण्डुलोदक (तण्डुल जल) कहते हैं।

प्रयोग:-इसका प्रयोग श्वेतप्रदर, रक्तप्रदर आदि में प्रयुक्त औषध के अनुपान के रूप में करते हैं। यथा-पुष्यानुग चूर्ण का प्रयोग तण्डुलोदक के अनुपान के साथ करते हैं।

मात्रा:-4 से 8 तोला

विमर्श:-कुछ आचार्य चतुर्गुण जल और कुछ षड्गुण जल में भिगोने का निर्देश करते हैं। शार्ङ्गधर संहिता में इसका वर्णन स्वरस कल्पना के अन्तर्गत किया गया है। कुछ विद्वान् इसे शीत कल्पना के अन्तर्गत रखते हैं।

लाक्षारस:-

प्रथम विधि:-

षड्गुणेनाम्भसा लाक्षां दोलायन्त्रे विपाचयेत्।
त्रिसप्तधा परिस्राव्या लाक्षारसमिमं विदुः।।

(द्र. गु. वि. उ. 2/30)

Scanned with CamScanner

अर्थात् एक पल लाक्षा (पीपल की लाख) को साफ कर एवं अपद्रव्यों (मिट्टी, लकड़ी, कंकड़ आदि) को पृथक् कर लें, तत्पश्चात् साफ एवं मोटे कपड़े में बाँधकर दोलायन्त्र में षड्गुण जल (6 पल) भरकर मन्दाग्नि पर पाक करें। जब जल चतुर्थांश शेष रह जाये तो उतारकर वस्त्र से 21 बार छानने के बाद प्राप्त द्रव को लाक्षारस कहते हैं।

द्वितीय विधिः-

दशांशं लोध्रमादाय तद्दशांशा च सर्जिकाम्।
किंचिच्च बदरीपत्रं वारि षोडशधा स्मृतम्।।
वस्त्रपूतो रसो ग्राह्यो लाक्षायाः पादशेषितः।। (यो. र. पूर्वार्द्ध)

अर्थात् लाक्षा-10 ग्राम, लोध्रत्वक् चूर्ण-1 ग्राम, स्वर्जिक्षार-100 मि.ग्रा. और किंचित् बदरीपत्र कल्क को वस्त्र की पोट्टली में बाँधकर 16 गुना जल (160 मि.ली.) में डालकर मन्दाग्नि पर दोलायन्त्र विधि से पकाये। चतुर्थांशावशेष (40 मि.ली.) शेष रहने पर वस्त्र से छान लें। बीच-बीच में चिमटे से वस्त्र की पोट्टली को दबाते रहे, जिससे लाक्षा का रस जल में आता रहे।

मात्रा :- एक पल

प्रयोग :- उरः क्षत एवं अस्थिभग्न आदि में सन्धानार्थ। लाक्षादि तैल निर्माण लाक्षारस से किया जाता है।

मन्थः-

द्रव्य को शीतल जल में डालकर और मन्थन कर (मथकर) छान लिया जाता है। इसलिए मन्थ को हिम कल्पना में समाविष्ट करना चाहिए, किन्तु शार्ङ्गधर संहिता में इसे फाण्ट का भेद माना हैः-

''मन्थोऽपि फाण्टभेदः स्यात्''। (शा. सं. म. ख. 3/9)

परिभाषाः-

जलेचतुष्पले शीते क्षुण्णं द्रव्यपलं क्षिपेत्।
मृत्पात्रे मन्थयेत्सम्यक् तस्माच्च द्विपलं पिबेत्।।
(शा. सं. म. ख. 3/10)

अर्थात् 1 पल द्रव्य के चूर्ण को 4 पल शीतल जल में डालकर मथकर वस्त्र से छान ले, इसे मन्थ कहते हैं। इसकी मात्रा 2 पल है।

चरक संहिता एवं सुश्रुत संहिता में मन्थ को सत्तू प्रधान कल्पना माना है। चरक संहिता में शुण्ठी, मरिच, पिप्पली, हरीतकी, विभीतकी, आमलकी, शहद, विडङ्ग, अजमोदा का 1-1 माशा चूर्ण तथा इनके बराबर चना और जौ का सत्तू और

Scanned with CamScanner

तिल तैल 1 तोला मिलाकर अगरुक्वाथ में द्रवित कर सम्यक् रूप से मथ लें। इसे त्र्यूषणादिमन्थ कहा है। यह सन्तर्पणजन्य रोगों का शमन करता है :-

त्र्यूषणं त्रिफला क्षौद्रं क्रिमिघ्नमजमोदकः।
मन्थोऽयं सक्तवस्तैलं हितो लोहोदकाप्लुतः॥

(च. सू. 23/18)

मन्थः खर्जूरमृद्वीकावृक्षाम्लाम्लीकदाडिमैः।
परूषकैः सामलकैर्युक्तो मद्यविकारनुत्॥ (च. सू. 23/38)

खजूर, मुनक्का, वृक्षाम्ल, इमली, अनारदाना, फालसा और आमलकी से निर्मित मन्थ मद्य के विकारों का नाश करता है। इसे खर्जूरादि मन्थ कहा है।

अपि चः- स्वादुरम्लो जलकृतः सस्नेहो रूक्ष एव वा।
सद्य सन्तर्पणो मन्थः स्थैर्यवर्णबलप्रदः॥

(च. सू. 23/39)

मधुर या अम्ल, स्नेहयुक्त या रूक्ष पानी में घोला हुआ मन्थ तत्काल सन्तर्पणकारक, शरीर में स्थिरता, वर्ण और बलकारक है।

सुश्रुत संहिता में चना या जौ के सत्तू में थोड़ा घी मिलाकर हाथ से अच्छी तरह मसलकर उसमें चतुर्गुण शीतल जल डालकर सम्यक् रूपेण मथ लेने को मन्थ कहा है। यह मन्थ न अधिक पतला हो और न अधिक गाढ़ा हो। मन्थ में शर्करा, शहद, गुड आदि मिलाना हो तो पीने वाले की रुचि के अनुसार मिलाना चाहिए।

चरक संहिता में मन्थ के दो प्रकार बताये है :-

1. सन्तर्पण मन्थ 2. अपतर्पण मन्थ।

मन्थ की मात्रा :- 2 पल (96 मि.ली)

मन्थ के गुण :-

मन्थः सद्योबलकरः पिपासा श्रमनाशनः।
साम्लस्नेहगुडो मूत्रकृच्छ्रोदावर्तनाशनः॥
शर्करेक्षुरसद्राक्षायुक्तः पित्तविकारनुत्।
द्राक्षामधूकसंयुक्तः कफरोगनिबर्हणः॥
वर्गत्रयेणोपहितो मलदोषानुलोमनः॥

(सु.सू.46/391-392)

अर्थात् मन्थ तुरन्त बलकारक तथा तृषा एवं श्रमनाशक है। अम्ल, स्नेह एवं गुड युक्त मन्थ मूत्रकृच्छ्र एवं उदावर्तनाशक है। शर्करा, इक्षुरस एवं द्राक्षा युक्त मन्थ

Scanned with CamScanner

पित्तविकारनाशक है। द्राक्षा एवं मधूकपुष्प युक्त मन्थ कफरोग नाशक है। तीनों वर्गों से युक्त मन्थ मल तथा दोषों का अनुलोमन करता है।

खर्जूरादि मन्थ:-

खर्जूरदाडिमीद्राक्षातिन्तिडीकाम्लिकामलैः।
सपरूषैः कृतो मन्थः सर्वमद्यविकारनुत्।।

(शा. सं. म. ख. 3/11)

अर्थात् पिण्डखजूर, दाडिमबीज, मुनक्का, इमलीफलमज्जा, वाृक्षाम्लपत्र, आमलकी एवं फालसा का फल प्रत्येक द्रव्य 1-1 तोला लेकर कूट पीसकर चतुर्गुण अर्थात् 28 तोला शीतल जल में भिगो दे। 1-2 घण्टे पश्चात् मथानी से अच्छी तरह मथकर वस्त्र से छान ले। इसे खर्जूरादि मन्थ कहते हैं।

उपयोग:-मदात्यय से पीड़ित व्यक्ति को 2 पल की मात्रा में पिलायें। चार-चार घण्टे पर पिलाने पर अधिक लाभ करता है।

पानक:-

फलमम्लं जलं स्विन्नं शीताम्बुपरिमर्दितम्।
सितामरिच सन्मिश्रं पूतं स्यात् पानकं वरम्।।

(द्र. गु. वि. उ. 2/49)

फलमम्लनम्लं वा शीताम्बु परिमर्दितम्।
सितामरिच संयुक्तं पूतं स्यात् पानकं वरम्।।

अर्थात् अम्ल या अनम्ल फलों यथा आम, फालसा, इमली, अनार, द्राक्षा, खरबूजा, आलुबुखारा आदि के अपक्व, अर्धपक्व या पूर्ण पक्व फलों को अग्नि में भूनकर या जल में स्विन्न कर 16 गुना शीतल जल में हाथ से मसलकर स्वच्छ वस्त्र से छान लें। फिर उसमें पीने वाले के रुचि के अनुसार शर्करा, मिश्री, मरिच, इलायची आदि का चूर्ण मिलावें। इसको पानक कहते हैं।

पानक शीतल जल में फलों को मिलाकर बनाया जाता है, इसलिए इसे हिम कल्पना के अन्तर्गत रखा जाता है।

चिञ्चापानक (अनुभूत)

घटक द्रव्य :-

1. सुपक्व इमली फल - 50 ग्राम
2. जल - 200 ग्राम
3. चीनी - 100 ग्राम
4. सौवर्चल लवण - 5 ग्राम
5. जीरक चूर्ण(भुना हुआ) - 5 ग्राम
6. मरिच चूर्ण - 2 ग्राम

Scanned with CamScanner

निर्माण विधि :- विधि सर्वप्रथम एक पात्र में इमली और जल मिलाकर रात्रि में रख दें और सुबह हाथ से मसलकर छान लें और चीनी मिलाकर चम्मच से खूब चलावें, जब चीनी घुल जाये तो लवण, जीरा, मरिच चूर्ण मिलाकर इसे पीने के उपयोग में लें।

मात्रा :- 50 मि.ली.

अनुपान:- जल और चीनी मिलाकर

उपयोग :- दीपन, पाचन, ग्राही है। अग्निमांद्य, ग्रहणी, अरुचि, वमन, तृष्णा, दाह आदि में लाभप्रद है।

चन्दन पानक (अनुभूत)

घटक द्रव्य :-

1. श्वेत चन्दन - 50 ग्राम
2. जल -200 मि. ली.
3. चीनी - 125 ग्राम या यथावश्यक
4. निम्बुरस -10 मि. ग्रा.

निर्माण विधि:- सर्वप्रथम श्वेतचन्दन का चूर्ण करके, उसमें जल मिलाकर स्टील के भगौने में रात्रि भर रख दें। प्रातःकाल उसे हाथ से मसलकर कपड़े से छान लें। फिर उस छने हुए हिम में चीनी मिलाकर मन्दाग्नि पर पाक करें। जब कुछ गाढ़ी हो जावे तो उतार कर पुनः कपड़े से छान लें, फिर नींबू रस मिला दें।

मात्रा:- 2-4 चम्मच (10 से 20 मि. ली.)

अनुपान:-जल के साथ अथवा इच्छानुसार केवल पानक ही लिया जा सकता है।

उपयोग:- दाह, तृष्णा, मूत्रकृच्छ, मूत्राघात, ज्वर आदि में।

आम्रशलाटु पानक (कैरी की छाछ) :-

आम्रशलाटुभटित्रं जलैर्द्रवीकृत्य जीरपटुमरिचैः।
प्रतिसार्य मात्रया पुन्रातपदग्धः सुखाय पिबेत्॥
(सि. भे. म. मा. 4/38)

घटक द्रव्य :-

1. कच्चा आम (कैरी) - 100 ग्राम
2. जीरक - 10 ग्राम
3. सौवर्चललवण - 5 ग्राम
4. मरिच - 5 ग्राम
5. शर्करा - 50 ग्राम या आवश्यकतानुसार

निर्माण विधि:-एक कच्चा आम (कैरी) को अग्नि में भूनकर या जल में स्विन्न कर, ऊपर का छिलका हटाकर, अन्दर के कल्क (गूदा) को शीतल जल में मथें। कल्क का सारभाग जल में आ जाने पर गुठली को निकालकर फेंक दें। फिर इसे वस्त्र

से छान लें। फिर यथारुचि भ्रष्टजीरक चूर्ण, सौवर्चल लवण (कालानमक), शर्करा आदि डालकर पिलावें।

मात्राः–250 मि.ली.

प्रयोगः–अंशुघात (लू लगना) की उत्तम औषध है।

विमर्शः–राजस्थान में अपक्व आम को "कैरी" कहते हैं। यहाँ पर ग्रीष्म ऋतु में लू से बचने के लिए आम्रशलाटुपानक (कैरी की छाछ) अत्यधिक प्रचलित है।

अर्कः–

जिन द्रव्यों का वीर्य (कार्यकारी तत्त्व) उनके सुगंधित एवं उड़नशील तत्त्वों में होता है, उनका क्वाथ बनाने पर उनका कार्मुक अंश (सुगंधित एवं उड़नशील तत्त्व-Volatile oils) वाष्प के साथ उड़ जाने के कारण क्वाथ में उनके गुण नहीं आते हैं, अतः आयुर्वेद में ऐसे द्रव्यों का स्वरस, कल्क, चूर्ण, हिम और फाण्ट बनाकर देने का विधान है। किन्तु यूनानी चिकित्सा पद्धति में उनसे अर्क निकालने का विधान है। यह कल्पना अच्छी है, क्योंकि आयुर्वेद में जो स्वरस, कल्क, चूर्ण, हिम और फाण्ट आदि कल्पनाएँ हैं, वे टिकाऊ नहीं है तथा उनके वर्ण एवं स्वाद भी ठीक नहीं है। परन्तु अर्क दीर्घकाल तक टिकाऊ हैं। इसके वर्ण भी आकर्षक है तथा स्वाद भी रुचिकर है। गुलाब, केवड़ा, वेदमुश्क आदि सुगन्धि पुष्प वाले द्रव्यों तथा खस, सौंफ, चन्दन, पौदीना, यवानी, अजमोदा, अनन्तमूल आदि सुगन्धित तैल युक्त द्रव्यों का अर्क बनाया जाता है। अर्क को Distilled water or sterilised water or aqua (आसुत जल) कहा जाता है।

निर्माण विधिः–ताजे हरे सुगन्धित द्रव्य को यवकुट कर अथवा शुष्क द्रव्य हो तो यवकुट चूर्ण करके दश गुना जल में रात्रि में भिगो दें और प्रातःकाल अर्कयन्त्र (भभका यन्त्र-Distillation apparatus) में डालकर यन्त्र के पात्रों की संधि को कपड़मिट्टी द्वारा सन्धिबन्धन कर दें। तब भभका यन्त्र को चूल्हे पर चढ़ा दे। भभके के ऊपरी पात्र में बने आलवाल में शीतल जल भर दे और यन्त्र की नली के नीचे काँच की बोतल रखें। आलवाल में भरे जल के गर्म हो जाने पर निकालकर शीतल जल भरते रहें। औषध द्रव्य का सुगन्धि तैल एवं उड़नशील कार्यकारी तत्त्व (कार्मुक अंश) वाष्पीभूत होकर ऊपर उठता है और आलवाल में भरे हुए शीतल जल के कारण ठण्डा होकर द्रवीभूत होता है और नली द्वारा बूँद-बूँद निकलकर काँच की शीशी में इकट्ठा होता रहता है। जब एक शीशी भर जाये तो दूसरी शीशी लगा दें। अंत में स्वच्छ बारीक वस्त्र से छानकर बोतलों में भरकर कार्क लगाकर पैक कर दें।

सावधानियाँ- 1. भभका का पात्र ताम्र निर्मित एवं अन्दर से कलई किया हुआ होना चाहिए, अन्यथा अर्क में धातुजन्य रासायनिक विकृति या अवगुण आ सकता है।

2. अर्क निकालते समय तीव्राग्नि का प्रयोग न करें, अन्यथा पात्र स्थित जल उबलकर क्वाथ जैसा ही अर्क निकलेगा। अग्नि की अधिकता से जल शीघ्र ही सूख जाता है और अर्क वाले द्रव्य को जला देती है। परिणामतः जो भी अर्क निकलेगा, वह जला हुआ स्वाद एवं गन्ध वाला होगा।

3. अर्क हेतु द्रव्य के साथ जितना जल डाला गया है, उसका आधा या तीन चौथाई अर्क निकालना चाहिए। इसके बाद अर्क में जला हुआ भाग आने लगता है।

4. यदि किसी अर्क में दुर्गन्ध आती हो तो उसे हींग, जीरक, मेथी, राई का चूर्ण, घी में मिलाकर नई हाण्डी में रखकर कई बार धूप देने से अर्क की दुर्गन्ध दूर होकर सुगन्ध उत्पन्न हो जाती है और अर्क जाठराग्नि का वर्धक भी हो जाता है।

5. अर्कों में गन्धक की धूप देने से अर्क श्रेष्ठ हो जाते हैं।

अर्कप्रकाश में अर्कनिष्कासन हेतु द्रव्यों को पाँच वर्गों में विभाजित किया है:- 1. अत्यन्त कठिन 2. कठिन 3. आर्द्र 4. पल्लव 5. द्रव द्रव्य। अत्यन्त कठिन द्रव्य में दोगुना जल निक्षेपणार्थ तथा अर्कनिष्कासनार्थ समभाग जल (कुल मिलाकर तीन गुना) मिलाकर अर्क निकालने का निर्देश किया है। कठिन द्रव्यों (अजवायन, जीरक, त्रिकटु, भूनिम्ब आदि) का अर्क निष्कासन हेतु दुगुना जल डालकर, आर्द्र द्रव्य में 20 वाँ भाग जल डालकर, पत्रों का अर्क हेतु सौवाँ भाग जल मिलाकर अर्क निकालना चाहिए। इसी प्रकार तीक्ष्ण सदुग्ध द्रव्यों में दश गुना, मृदु सदुग्ध द्रव्यों में चार गुना, उदुम्बर, आम आदि काष्ठ का अर्क निष्कासन हेतु अस्सीवाँ भाग, पुष्पों का अर्क हेतु सोलवाँ भाग, कट्फल, सरल आदि काष्ठ का अर्क हेतु चालीसवाँ भाग जल मिलाकर अर्क निकालना चाहिए। मृदुपाकी फल (आम आदि) एवं अधिक पके हुए सरस फलों का अर्क बिना जल मिलाये हुए निकालना चाहिए।

A. P. C. द्वारा स्वीकृत R. R. L. जम्मू के प्राप्त परिणाम के अनुसार अर्कनिष्कासनार्थ जल की मात्रा और निष्कासित अर्क की मात्रा द्रव्यों के अनुसार पृथक्-पृथक् बतायी है। (A. F. I. Part-Ist & IInd , IInd revised english edition)

अर्क निष्कासन हेतु अग्नियों के प्रकार भेदः-

अर्कनिष्कासनार्थाय क्रमाद्देयाः षडग्नयः।
धूमाग्निश्चैव मन्दाग्निर्दीपाग्निर्मध्यमस्तथा।।
खराग्निश्च भटाग्निश्च तेषां वक्ष्यामि लक्षणम्।
विज्वलो यो धूमशिखो धूमाग्निः स उदाहृतः।।
द्वाभ्यां तस्य चतुर्थाभ्यां योऽग्निर्दीपाग्निरुच्यते।
चतुरंशेन तेनैव मन्दाग्निः स प्रकीर्तितः।।
आर्द्रीकृताभ्यां द्वाभ्यां तु मध्यमाग्निरूदाहृतः।
अर्द्धस्तैः पञ्चभिः प्रोक्तः खराग्निः सर्वकर्मसु।।
मस्तकावधि पात्रस्य चतुर्दिक्षु क्रमेण च।
प्रसरन्ति यदा ज्वालाः स भटाग्निरूदीरित।।

(अ.प्र.1/80-84)

अर्थात् अर्क निकालने के लिए क्रमशः छः प्रकार की अग्नि का प्रयोग करना चाहिए। 1. धूमाग्नि 2. मन्दाग्नि 3. दीपाग्नि 4. मध्यमाग्नि 5. खराग्नि और 6. भटाग्नि।

1. **धूमाग्निः**-जिस अग्नि में बिना ज्वाला बहुत ऊँचाई तक धुँआ उड़े, उसे धूमाग्नि कहते हैं।

2. **दीपाग्निः**-पूर्वोक्त धूमाग्नि को दुगुना या चौगुना करने से दीपक के समान ज्वाला निकलती है, उसे दीपाग्नि कहते हैं।

3. **मन्दाग्निः**-दीपाग्नि को चौगुना जलाने पर मन्दाग्नि कहलाती है।

4. **मध्यमाग्निः**-दीपाग्नि तथा मन्दाग्नि के मध्य की अग्नि को मध्यमाग्नि कहते हैं।

5. **खराग्निः**-मध्यमाग्नि से पाँच गुना अधिक अग्नि को खराग्नि कहते हैं। इस अग्नि का प्रयोग सभी कार्यों में होता है।

6. **भटाग्निः**-जिस अग्नि की ज्वाला पात्र के चारों तरफ मस्तकपर्यन्त फैलती हुई दिखाई दे, उसे भटाग्नि कहते हैं।

यवान्यर्क :- (A.F.I. Part Ist, IInd Revised English edition)

घटक द्रव्यः-

1. यवानी (फ.) - 1 भाग
2. निषेकार्थ जल - 2 भाग
3. अर्क निर्माणार्थ जल - 4 भाग

मात्राः-10 से 25 मि.ली.

गुणः-पाचक, जाठराग्निदीपक और रुचिकारक है, त्रिक्शूल (कटिशूल) को दूर करता है।

यवान्याः पाचनो रूच्यो दीपनस्त्रिकशूलहृत्। (अ.प्र.3/7)

गुलाब अर्कः-(वृद्ध वैद्य परम्परा)

घटक द्रव्य :-

1. गुलाब पुष्प - 1 भाग 2. जल - 10 भाग

मात्राः- 10 से 25 मि.ली. (आभ्यन्तर प्रयोग), बाह्यप्रयोग हेतु यथावश्यक

गुणः- गुलाब का अर्क सर, शीत और कषाय रस युक्त होता है। श्रम, दाह, वमन, तृषा, पित्तरोग और मुखरोग नाशक है।

तरूण्यर्कः सरः शीतस्तुवरः श्रमदाहहृत्।
वान्ति तृट् पित्तरोगघ्नो मुखरोग विनाशनः ।। (अ.प्र.3/98)

मिश्रेयार्कः- (A.F.I. Part Ist, IInd Revised English edition)

घटक द्रव्य :-

1. मिश्रेया (सोया) - 1 कि. ग्रा. 2. जल - 7 लीटर
3. निष्कासित अर्क की मात्रा - 5 लीटर

मात्राः-10 से 25 मि.ली.

गुणः-मन्दाग्नि, योनिशूल तथा कृमिरोगों को नष्ट करता है।

मिश्रेयाया वह्निमान्द्ययोनिशूलकृमीन् हरेत्। (अ. प्र. 3/11)

चूर्ण (Powder) :-

चूर्ण कल्पना कल्क कल्पना के अन्तर्गत आती है। शुष्क द्रव्य को बिना द्रव मिलाये ही बारीक पीस लेने पर चूर्ण बन जाता है, जबकि कल्क में द्रव डालकर पीसा जाता है। चूर्ण भी एक प्रकार का शुष्क कल्क ही है।

परिभाषा:-

अत्यन्तशुष्कं यद् द्रव्यं सुपिष्टं वस्त्रगालितम्।
तत्स्याच्चूर्ण रजः क्षोदस्तन्मात्रा कर्षसम्मिता।।

(शा. सं. म. ख. 6/1)

अर्थात् अत्यन्त शुष्क द्रव्य को अच्छी तरह पीसकर वस्त्र से छान लेने पर चूर्ण बनता है। इसके पर्याय रजः और क्षोद है। इसकी मात्रा 1 कर्ष (12 ग्राम) होती है।

शुष्कपिष्टः सूक्ष्मतान्तववस्त्रच्युतश्चूर्णः। तस्य समस्तद्रव्यापरित्यागा दाप्लुतोपयोगाच्च कल्कादभेदः ।। (अ. सं. क. 8/10)

अर्थात् अत्यन्त शुष्क द्रव्य को प्रस्तर शिला अथवा उदूखल (इमामदस्ता) में डालकर भली भाँति बारीक पीसकर महीन वस्त्र से छान लेते हैं, इसे चूर्ण कहते हैं। कल्क के समान ही चूर्ण बनाने में भी द्रव्य का समस्त भाग लिया जाता है तथा चूर्ण को द्रव पदार्थ में मिलाकर सेवन किया जाता है। अतः चूर्ण को कल्क का भेद माना है।

निर्माण विधिः–शुष्क द्रव्य को सर्वप्रथम उदूखल यन्त्र (इमामदस्ता) में डालकर एवं कूटपीसकर बारीक वस्त्र से छान लेते हैं। मृदु द्रव्यों का चूर्ण पत्थर की शिला या खरल में पीसकर बनाया जाता है, किन्तु कठिन द्रव्यों को इमामदस्ते में कूटकर ही चूर्ण बनाया जा सकता है।

वर्तमान में डिसिन्टीग्रेटर (Disintegrator) पल्वराइजर (Pulvriser), माइक्रोपल्वराइजर (Micro Pulvriser) आदि मशीनों से शीघ्रता से एवं अधिक मात्रा में चूर्ण बनाया जाता है। इन यन्त्रों में विभिन्न नम्बर की चालनियाँ (Sieves) लगायी जाती हैं। कम मात्रा में चूर्ण ग्राइण्डिंग मशीन (Grinding Machine) द्वारा बनाया जाता है।

चूर्ण की मात्राः– शार्ङ्गधर संहिता में चूर्ण की मात्रा 1 कर्ष (12 ग्राम) बताई है। यह मात्रा मृदुवीर्य औषधद्रव्य की है। मध्यवीर्य औषधद्रव्य के चूर्ण की मात्रा ½ कर्ष (6 ग्राम) तथा तीक्ष्णवीर्य औषध द्रव्य के चूर्ण की मात्रा ¼ कर्ष (3 ग्राम) होनी चाहिए। गूढ़ार्थदीपिका के मतानुसार बलवान रोगी के लिए 1 कर्ष, अल्पबल में 1 टंक (¼ कर्ष), मध्यबल में 2 टंक (½ कर्ष) चूर्ण की भक्षण मात्रा है।

तन्मात्रा भक्षणमात्रा कर्षसंमिताबलवांश्चेत्, अल्पबले एकटङ्कात् वर्धितव्या। (शा. सं. म. ख. 6/1 की गूढार्थ दीपिका टीका)

आचार्य यादवजी ने द्रव्यगुणविज्ञान उत्तरार्द्ध के परिभाषाखण्ड में चूर्ण की मात्रा 1 कोल (6 ग्राम) बताई है, यह मात्रा मृदुवीर्य औषध द्रव्य के चूर्ण के लिए है। मध्यवीर्य द्रव्य के चूर्ण की मात्रा पाव तोला = ¼ तोला (3 ग्राम) तथा तीक्ष्ण वीर्य द्रव्य के चूर्ण की मात्रा 2 अठन्नी = 12 रत्ती (1½ ग्राम) बताई है।

आजकल चूर्ण की सामान्य मात्रा 3 से 6 ग्राम प्रचलित है।

प्रक्षेप द्रव्यः–

चूर्णे गुडः समो देयः शर्करा द्विगुणा भवेत्।
चूर्णेषु भर्जितं हिङ्गु देयं नोत्क्लेदकृद्भवेत्॥
लिहेच्चूर्णं द्रवैः सर्वैर्घृताद्यैर्द्विगुणोन्मितैः।
पिबेच्चतुर्गुणैरेव चूर्णमालोडितं द्रवैः॥
(शा. सं. म. ख. 6/2-3)

यदि चूर्ण में गुड़ मिलाना हो तो समभाग, शर्करा मिलानी हो तो द्विगुण मात्रा में मिलानी चाहिए। चूर्ण में हींग मिलानी हो तो भर्जित (घृत भर्जित) करके डालनी चाहिए, जिससे वह उत्क्लेद (जी मिचलाना) नहीं करे।

चूर्ण को चाटने के लिए घृत, तैल या शहद मिलाना हो तो द्विगुण मात्रा में मिलाना चाहिए और जहाँ चूर्ण में द्रव (जल, दुग्ध, तक्र, गोमूत्र आदि) को मिलाकर पीने को कहा गया हो वहाँ पर चतुर्गुण द्रव लेना चाहिए।

चुर्णादि का अनुपान की मात्राः-

चूर्णावलेहगुटिकाकल्कानामनुपानकम्।
वातपित्तकफातङ्के त्रिद्वयेकपलमाहरेत्।।

(शा. सं. म. ख. 6/4)

अर्थात् चूर्ण, अवलेह, गुटिका, कल्क का अनुपान वात, पित्त और कफ के रोगों में क्रमशः 3 पल, 2 पल और 1 पल लेना चाहिए।

अनुपान का महत्त्वः-

यथा तैलं जले क्षिप्तं क्षणेनैव प्रसर्पति।
अनुपानबलादङ्गे तथा सर्पति भेषजम्।।

(शा. सं. म. ख. 6/5)

अर्थात् जिस प्रकार जल में तैलबिन्दु डालने पर फैल जाता है, उसी प्रकार अनुपान के बल से औषध द्रव्य शरीर में व्याप्त हो जाती है। औषध सेवन के साथ-साथ या पश्चात् जो द्रव पदार्थ चाटे या पीये जाते हैं, उन्हें अनुपान कहते हैं।

चूर्ण में भावना परिमाणः-

द्रवेण यावता सम्यक् चूर्ण सर्वं प्लुतं भवेत्।
भावनायाः प्रमाणं तु चूर्ण प्रोक्तं भिषग्वरैः।।

(शा. सं. म. ख. 6/6)

अर्थात् जितने द्रव से समस्त चूर्ण अच्छी तरह डूब (प्लुत) जाये, उतनी ही मात्रा में भावना द्रव डालना चाहिए।

चूर्ण के प्रकार–चूर्ण दो प्रकार के होते हैं:-

1. **साधारण चूर्ण या एकौषध चूर्ण (Simple Powder) :-** यह चूर्ण एकल औषधि से बनाया जाता है।

2. **मिश्र चूर्ण (Compound Powder) :-** मिश्र चूर्ण दो या दो से अधिक द्रव्यों से बनाया जाता है।

सूक्ष्मता (Fineness) के आधार पर चूर्ण निम्न प्रकार के होते हैं:-

(i) **Coarse Powder :-** जो चूर्ण 10 नम्बर की चलनी (Sieve) से पूरा निकल जाता है, किन्तु 44 नम्बर की चलनी (Sieve) से 40% से अधिक नहीं निकले, उसे Coarse Powder कहते हैं।

(ii) **Moderately coarse powder :-**जो चूर्ण 22 नम्बर की चलनी से पूरा निकल जाता है, किन्तु 60 नम्बर की चलनी से 40% से अधिक नहीं निकले, उसे Moderately coarse powder कहते हैं।

(iii) **Moderately fine powder :-** जो चूर्ण 44 नम्बर की चलनी से पूरा निकल जाता है, किन्तु 85 नम्बर की चलनी से 40% से अधिक नहीं निकले, उसे Moderately fine powder कहते हैं।

(iv) **Fine Powder :-** जो चूर्ण 85 नम्बर की चलनी से पूरा निकल जाता है, उसे Fine powder कहते हैं।

(v) **Very fine powder :-** जो चूर्ण 120 नम्बर की चलनी से पूरा निकल जाता है, उसे Very fine powder कहते हैं।

इनमें से Coarse powder, Moderately coarse powder, & Moderately fine powder क्वाथ चूर्ण के लिए प्रयुक्त किये जा सकते हैं। Fine powder को आभ्यन्तर प्रयोग हेतु प्रयुक्त किया जाता है। जबकि Very fine powder को dusting powder, Tooth powder और Insufflation हेतु प्रयुक्त किया जाता है।

चूर्ण निर्माण करते समय सावधानियाँ:-

1. चूर्ण निर्माण हेतु द्रव्य अत्यन्त शुष्क लेना चाहिए। यदि द्रव्य में आर्द्रता होगी तो द्रव्य अच्छी प्रकार से कूटा नहीं जा सकता है।
2. कूटे हुए चूर्ण को महीन वस्त्र या 85 नम्बर की चलनी द्वारा छानना चाहिए।
3. दो या दो अधिक द्रव्यों का चूर्ण पृथक्-पृथक् बनाना चाहिए और बाद में सब को एक पात्र में अच्छी तरह मिलाकर (Uniform mixing) सुरक्षित रखना चाहिए।
4. चूर्ण निर्माण से पूर्व द्रव्य का परीक्षण करना चाहिए। कृमि आदि से दूषित द्रव्य का प्रयोग नहीं करना चाहिए।
5. कूटते समय चूर्ण में धूल, कंकड़ अथवा पानी नहीं पड़ने देना चाहिए।
6. चूर्ण निर्माण के समय गीले हाथ नहीं लगाने चाहिए।

7. चूर्ण निर्माण कर्त्ता को अपने नाक तथा मुख पर बारीक वस्त्र (Mask) बाँध लेना चाहिए। ऐसा उस समय अति आवश्यक है जब कट्फल आदि का चूर्ण बनाया जाता है।

8. चूर्ण निर्माण में प्रयुक्त होने वाले उपकरणों को स्वच्छ करके प्रयोग करना चाहिए।

9. वर्षा के दिनों में चूर्णों का निर्माण नहीं करना चाहिए, क्योंकि वायु में आर्द्रता होने के कारण चूर्ण खराब हो जाते हैं।

10. जिन चूर्णों को स्वरस आदि द्रव पदार्थ की भावना दी जाती है, उन्हें अच्छी तरह शुष्क करके रखना चाहिए।

11. चूर्ण को खुला नहीं रखना चाहिए, क्योंकि ऐसा करने पर वायु की आर्द्रता के कारण चूर्ण में भी आर्द्रता आ जाती है और चूर्ण निर्वीर्य हो जाता है। विशेषतः लवण एवं क्षारयुक्त चूर्णों को Airtight Packing करके रखना चाहिए।

12. क्षार एवं लवण वाले चूर्णों को लोहपात्र में नहीं रखना चाहिए।

सितोपलादि चूर्ण :-

सितोपलां तुगाक्षीरीं पिप्पलीं बहुलां त्वचम्।
अन्त्यादूर्ध्वं द्विगुणितं लेहयेन्मधुसर्पिषा।।
चूर्णितं प्राशयेद्वा तच्छवासकासकफातुरम्।
सुप्तजिह्वारोचकिनमल्पाग्नि पार्श्वशूलिनम्।।

(च. चि. 8/103-104)

घटक द्रव्य:-

1. मिश्री - 16 भाग
2. वंशलोचन - 8 भाग
3. पिप्पली - 4 भाग
4. सूक्ष्मैला - 2 भाग
5. दालचीनी - 1 भाग

निर्माण विधि :- उपरोक्त सभी द्रव्यों को पृथक्-पृथक् इमामदस्ते में कूटकर वस्त्रपूत सूक्ष्म चूर्ण करें और फिर सभी को अच्छी तरह मिलाकर काँच के जार में सुरक्षित रखें।

मात्रा:- 3 से 6 ग्राम

अनुपान :- मधु और घृत

मुख्य उपयोग :- कास, श्वास, प्रतिश्याय, पार्श्वशूल, राजयक्ष्मा, ज्वर, अग्निमान्द्य, अरुचि।

हिंग्वष्टक चूर्ण :-

त्रिकटुकमजमोदा सैन्धवं जीरके द्वे,
समधरणधृतानामष्टमो हिङ्गुभागः।
प्रथमकवलभुक्तं सर्पिषश्चूर्णमेत
ज्जनयति जठराग्निं वातरोगांश्च हन्ति।।

(भै. र. अग्निमांद्य-59)

घटक द्रव्य :-

1. शुण्ठी	- 1 भाग	2. मरिच	- 1 भाग
3. पिप्पली	- 1 भाग	4. अजमोदा	- 1 भाग
5. सैन्धवलवण	- 1 भाग	6. श्वेतजीरक	- 1 भाग
7. कृष्णजीरक	- 1 भाग	8. शुद्ध हींग	- 1 भाग

निर्माण विधि :- उपरोक्त सभी द्रव्यों का पृथक्-पृथक् सूक्ष्म चूर्ण करें। फिर सभी को अच्छी तरह मिलाकर काँच के जार में सुरक्षित रखें।

मात्रा :- 1 से 4 ग्राम

अनुपान एवं प्रयोग काल :- प्रथम ग्रास में घृत के साथ। इसके अतिरिक्त उष्ण जल, तक्र आदि से भी प्रयोग किया जा सकता है।

उपयोग :- जठराग्निप्रदीपक, वातरोगनाशक, प्रवाहिका, गुल्म, उदावर्त, आनाह, अग्निमांद्य, उदरशूल, अरुचि, वातगुल्म आदि रोगों का नाश करता है।

विमर्श-1. शु. हींग की मात्रा भै.र. के मूल श्लोक एवं उसके हिन्दी अर्थ के अनुसार समभाग अर्थात् 1 भाग मिलानी चाहिए। इस मत का अनुसरण भारतीय आयुर्वेद योग संग्रह-(A.F.I.), र.त.सा. एवं सि.प्र.सं., डॉ. अवधबिहारी अग्निहोत्री की भैषज्य कल्पना विज्ञान, प्रोफे. भजनदास स्वामी की रसदर्पण-द्वितीय भाग में किया है।

दूसरे मत के अनुसार शु.हींग की मात्रा अष्टमांश ($\frac{1}{8}$ भाग) डालनी चाहिए। इस मत का अनुसरण आ.सा.सं., प्रोफे. सिद्धिनन्दन मिश्र, डॉ. एस. के खाण्डल, डॉ. के आर.सी. रेड्डी की भैषज्य कल्पना विज्ञान में किया है। यह विचार भारत भैषज्य रत्नाकर की हिन्दी टीका में भी दिया है। इन आचार्यों के अनुसार शु.हींग समभाग लेने पर चूर्ण उत्क्लेदकर हो जाता है।

2. एक सिद्धान्त के अनुसार अजमोदा के स्थान पर यवानी (अजवायन) ग्रहण करनी चाहिए:-

अन्तः सम्मार्जने ज्ञेया ह्यजमोदा यमानिका।
बहि सम्मार्जने चैव विज्ञातव्याऽजमोदिका।।

(वै. प. प्र. 1/129)

अर्थात् अन्तः परिमार्जन (आभ्यन्तर प्रयोग) हेतु अजमोदा शब्द से अजवायन का ग्रहण करना चाहिए तथा बहिःपरिमार्जन (लेपादि) के लिए अजमोदा शब्द से अजमोदा का ग्रहण करना चाहिए।

हिंगु शोधन :-

रामठं समशुद्धाज्यसंयुतं दर्विकागतम्।
विपक्वमग्नितापेन शुद्धियात्यानुत्तमाम्।।

(र. त. 24/578)

घटक द्रव्य :-

1. हिंगु (नि.) - 1 भाग
2. गोघृत - यथावश्यक

विधि :- हिंगु को घी के साथ एक कढ़ाही में डालकर तक तक भर्जन किया जात है, जब तक वह भुरभुरा नहीं हो जाता।

मुख्य उपयोग :- अग्निमांद्य, विबन्ध, आध्माननाशक है।

प्रमुख योग :- हिंग्वष्टक चूर्ण, रजः प्रवर्तिनी वटी।

अविपत्तिकर चूर्ण :-

त्रिकटु त्रिफला मुस्तं विडञ्चैव विडङ्गकम्।
एलापत्रञ्च चूर्णानि समभागानि कारयेत्।।
सर्वमेकीकृतं यावल्लवङ्गम् तत्समं भवेत्।
सर्वचूर्णं द्विगुणितं त्रिवृच्चूर्णं प्रदापयेत्।।
सर्वमेकीकृतं यावत्तावच्छर्करयान्वितम्।

(भै. र. अम्लपित्त 24-25 ½)

घटक द्रव्य:-

1. शुण्ठी - 1 भाग
2. मरिच - 1 भाग
3. पिप्पली - 1 भाग
4. हरीतकी - 1 भाग
5. बिभीतकी - 1 भाग
6. आमलकी - 1 भाग
7. नागरमोथा - 1 भाग
8. विड लवण - 1 भाग
9. विडङ्ग - 1 भाग
10. सूक्ष्मैला - 1 भाग
11. तेजपत्र - 1 भाग
12. लवङ्ग - 11 भाग
13. त्रिवृत मूल - 44 भाग
14. शर्करा - 66 भाग

निर्माण विधि :- सर्वप्रथम सभी द्रव्यों को पृथक्-पृथक् इमामदस्ते में कूटपीसकर सूक्ष्म चूर्ण का निर्माण करें। फिर सभी द्रव्यों के चूर्णों को अच्छी तरह मिलाकर काँच के जार में सुरक्षित रखें।

मात्रा :- 3-6 ग्राम

अनुपान:-मधु, जल, दुग्ध

मुख्य उपयोग :- अम्लपित्त, अग्निमान्द्य, विबन्ध, अर्श।

रसक्रिया-फाणित, अवलेह-प्राश:-

क्वाथ, स्वरस, हिम आदि को पुनः पकाकर गाढ़ा (घन) कर लेने को रसक्रिया, अवलेह और लेह कहते हैं।

क्वाथादीनां पुनः पाकाद् घनत्वं सा रसक्रिया।
सोऽवलेहश्च लेहः स्यात्तन्मात्रा स्यात्पलोन्मिता।।

(शा. सं. म. ख. 8/1)

रसक्रिया-फाणित-अवलेह-प्राश-घन एक ही कल्पना के अवस्थानुसार सूक्ष्म भेद है।

आचार्य शार्ङ्गधर ने रसक्रिया के अवलेह और लेह दो पर्याय बताये हैं। जो चाटने योग्य हो, उसे लेह या अवलेह कहते हैं। प्राशन क्रिया की जाने से प्राश कहते हैं।

रसक्रिया को फाणित (राव) जैसा बनाया जाता है। अतः जो रसक्रिया राव या फाणित के समान मृदु हो, उसको फाणित कहते हैं तथा जो रसक्रिया उससे थोड़ी गाढ़ी चाटने योग्य बनती है, उसे अवलेह या लेह और उससे भी अधिक गाढ़ी गोली (वटी) बनने योग्य रसक्रिया को घन कहते हैं। घन बनाने के लिए रसक्रिया को अवलेह जैसा बन जाने पर अग्नि से नीचे उतारकर तथा थाली में फैलाकर व धूप में सुखाकर गोली (वटी) बनने योग्य होने पर गोली बना लेनी चाहिए।

सुश्रुत संहिता की शोधनी रसक्रिया पर आचार्य डल्हण ने टीका की है:-

सालसारादिसारेषु पटोलत्रिफलासु च।
रसक्रिया विधातव्या शोधनी शोधनेषु च।। (सु. सू. 37/20)

डल्हण- रसक्रिया फाणिताकृतिः 'काकवी' इति लोके। रसक्रिया कल्पना चेयम्। द्रव्यापेक्षयाऽष्टगुणं षोडशगुणं वा जलं दत्त्वा-ऽष्टभागावशेषः षोडशभागावशेषो वा क्वाथः कार्यः। ततः पूतं कषायं पुनस्तावत् पचेद्यावत् फाणिताकृतिः।(सु.सू.37/20 की डल्हण टीका)

अर्थात् रसक्रिया फाणित (राव) जैसी ढीली (पतली) होती है, लोक में इसे काकवी कहते हैं। द्रव्य के आठ गुना या सोलह गुना जल डालकर अष्टमांश या

षोडशांश जल शेष रहने पर छानकर पुनः पकाकर फाणित (राव) जैसी होने तक पका लेना चाहिए। इसे रसक्रिया कहते हैं।

साधारणतया रसक्रिया को पूर्ण रूप से शुष्क बना कर रखते हैं जिससे वह शीघ्र विकृत नहीं होती है। अतः रसक्रिया के भी दो भेद हो जाते हैं-1. आर्द्रघन (फाणिताकृति) 2. पूर्णघन (शुष्क घन रसक्रिया)। गुडूची घनवटी (संशमनी वटी), दार्वीरसक्रिया (रसाञ्जन), कुटजघन वटी पूर्णतया शुष्क रूप में बनायी जाती है।

मात्राः-शार्ङ्गधर संहिता में रसक्रिया, अवलेह (लेह) की मात्रा 1 पल (48 ग्राम) बताई है।

"**तन्मात्रास्यात्पलोन्मिता।**" (शा. सं. म. ख. 8/1)

आचार्य यादवजी ने 1 कर्ष (12 ग्राम) बताई है।

"**तन्मात्रा कर्षसम्मिता।।**" (द्र. वि. उ. 2/60)

प्रक्षेपद्रव्य मात्रा :- अवलेह एवं रसक्रिया में प्रक्षेप द्रव्य की मात्रा समान बताई है।

सिता चतुर्गुण कार्या चूर्णाच्च द्विगुणो गुडः।
द्रवं चतुर्गुणं दद्यादिति सर्वत्र निश्चयः।।

(शा. सं. म. ख. 8/2)

अर्थात् शर्करा चूर्ण से चार गुना, गुड दुगुना और द्रव चतुर्गुण लेना चाहिए।

आयुर्वेदीय ग्रन्थों में रसाञ्जन (दार्वी रसक्रिया) गुडूची घन (गुडूची रसक्रिया), कुटजघन (कुटजरसक्रिया), मुसव्वर (एलुआ), खदिरसार (कत्था) आदि रसक्रिया मुख्य रूप से वर्णित है।

रसाञ्जनः-

आयुर्वेद में रसाञ्जन निर्माण की दो विधियाँ प्राप्त होती है। सर्वप्रथम दारुहरिद्रा काष्ठ के यवकुट चूर्ण को 16 गुने जल में रात्रिपर्यन्त भिगोकर मध्यमाग्नि द्वारा क्वाथ बनाते हैं। षोडशांशावशेष द्रव रहने पर क्वाथ को स्वच्छ वस्त्र से छान लेते हैं। तत्पश्चात् क्वाथ के समान गोदुग्ध मिलाकर मन्दाग्नि पर गाढ़ा होने तक पाक करते हैं। फिर उसे थाली में फैलाकर धूप में सूखा लेते हैं। यही रसाञ्जन है। इसे दार्वीरसक्रिया भी कहते हैं।

दार्वीक्वाथसमं क्षीरं पादं पक्त्वा यदा घनम्।
तदा रसाञ्जनं ख्यातं तन्नेत्रयोः परमं हितम्।।

(भा. प्र. हरी./204)

आयुर्वेद प्रकाश में दारूहरिद्रा के क्वाथ में चतुर्थांश अजादुग्ध मिलाकर रसाञ्जन निर्माण करने का वर्णन मिलता है। यथा :-

दार्वीक्वाथमजाक्षीरं पादं पक्वं यदा घनम्।
तदा रसाञ्जनं ख्यातं नेत्रयोः परमं हितम्।।

(आ. प्र. 3/234)

विमर्श :- गोदुग्ध समान भाग एवं अजादुग्ध चतुर्थांश डालकर दोनों ही विधियों से निर्मित रसाञ्जन उपयोगी है, किन्तु अजादुग्ध से बना रसाञ्जन लेखन, नेत्र्य आदि गुणों के कारण नेत्र के लिए अधिक लाभकारी होता है।

आजकल बाजार में बिना दुग्ध से निर्मित कृष्णवर्ण एवं अपद्रव्य मिश्रित रसाञ्जन उपलब्ध होता है। इसको प्रयोग करने से पूर्व चार गुना उष्ण जल में घोलकर एवं छानकर फिर उसे दुग्ध के साथ मिलाकर एवं वस्त्र से छानकर पका लेना चाहिए।

गुण :- रसाञ्जन रस में तिक्त, कटु एवं उष्णवीर्य है। यह श्लेष्म, विष एवं नेत्र रोगनाशक है। यह रसायन, छेदन एवं व्रणदोषहर्ता है।

रसाञ्जनं कटु श्लेष्मविषनेत्रविकारनुत्।
उष्णं रसायनं तिक्तं छेदनं व्रणदोषकृत्।। (भा. प्र. हरी./205)

रसाञ्जन रक्तातिसार, रक्तप्रदर, रक्तार्श, पित्तविकार, यकृतरोग, शोथ एवं कामला में लाभदायक है।

गुडूचीघन (गुडूची रसक्रिया-संशमनी वटी) :-

ताजी हरी एवं अंगुली जितनी मोटी गुडूची को पानी से धोकर एवं छोटे-छोटे टुकड़े करके उदूखल यन्त्र (इमामदस्ता) में कूट लेते हैं। फिर इसे चतुर्गुण जल में रात्रिपर्यन्त भिगोकर दूसरे दिन अग्नि पर रखकर क्वाथ करते हैं। चतुर्थांश जल शेष रहने पर छानकर, पुनः अग्नि पर रखकर पाक करते हैं। पाक करने पर जब क्वाथ गाढ़ा होने लगे तो उसे बार-बार कड़छुल (दर्वी) से चलाते रहते हैं। पुनः धूप में सुखा लेते हैं या गोली बनाकर सुखा लेते हैं। आचार्य यादवजी ने इसे 'संशमनी वटी' कहा है। इसे गुडूचीघन वटी भी कहते हैं। इसका प्रयोग ज्वर, जीर्णज्वर, वातरक्त आदि रोगों में लाभकारी है। तथा अन्य जीर्ण व्याधियों के शमनार्थ सहायक औषधि के रूप में दिया जाता है।

मात्रा :- 500 मि. ग्रा. तक।

कुटजघन (कुटज रसक्रिया) :-

कुटजस्य पलं ग्राह्यमष्टभागजले शृतम्।
तत्रैव विपचेद् भूयो दाडिमोदकसंयुतम्।।

यावच्चैव लसीकाभं श्रृतं तदुपकल्पयेत्।
तस्यार्द्धकर्षं तक्रेण पिबेद्रक्तातिसारवान्।।
अवश्यमरणीयोऽपि मृत्योर्याति न गोचरम्।
क्वाथतुल्यं दाडिमाम्बु भागानुक्तौ समं यतः।।

(च. द. 3/73-75)

अर्थात् कुटज की छाल 1 पल को यवकुट् करके आठ गुना जल में क्वाथ करने के बाद छान ले, फिर उसमें क्वाथ के समान मात्रा में दाडिम स्वरस मिलाकर अर्धघन (मधु-सदृश) गाढ़ा करके काँच पात्र में सुरक्षित रख लें।

मात्रा :- ½ तोला की मात्रा में तक्र के साथ

अनुपान :- दाडिमस्वरस

उपयोग :- रक्तातिसार

फाणित :-

फाणित कल्पना रसक्रिया ही होती है, जिसे लौकिक भाषा में 'काकवी' कहा जाता है:-

रसक्रिया फाणिताकृतिः 'काकवी' इति लोके।

(सु. सू. 37/20 की डल्हण टीका)

इक्षु का रस पकाने पर जब कुछ गाढ़ा तथा अधिक पतला स्वरूप का बन जाता है, तो उसे फाणित (राब) कहते हैं। डल्हण ने इसे क्षुद्रगुड कहा है।

इक्षो रसस्तु यः पक्वः किञ्चिद्गाढ़ो बहुद्रवः।
स एवेक्षुविकारेषु ख्यातः फाणितसंज्ञया।।

(भा. प्र. इक्षुवर्ग/24)

निर्माण विधि :- इक्षुरस को स्वच्छ वस्त्र से छानकर, मन्दाग्नि से पाक करने पर जब इक्षुरस मधु के समान गाढ़ा हो जाय तो उसे मृत्पात्र या काँच के जार में रखें। यह फाणित है। यह इक्षुविकार अर्थात् इक्षु से निर्मित द्रव्य है।

फाणित को कड़छुल से ऊपर उठाया जाता है तो वह तार की तरह बँधकर नहीं उठता है। जब अधिक देर तक गाढ़ा करके कड़छुल से उठाने पर तार के समान बाँधकर उठता है, वह अवलेह कहलाता है। अतः क्वाथ की उत्तरावस्था तथा अवलेह की पूर्वावस्था फाणित कहलाती है।

गुण :- सुश्रुत संहिता में फाणित को गुरु, मधुर, अभिष्यन्दी, बृंहण, अवृष्य और त्रिदोषकारक बताया है:-

फाणितं गुरु मधुरमभिष्यन्दि बृंहणमवृष्यं त्रिदोषकृच्च।

(सु. सू. 45/159)

भावप्रकाश के अनुसार फाणित गुरु, अभिष्यन्दी, बृंहण, कफ एवं शुक्र वृद्धिकर, वातपित्त शामक, श्रमनाशक तथा मूत्र एवं वस्ति को शुद्ध करने वाला है।

फाणितं गुर्वभिष्यंदि बृहणं कफशुक्रकृत्।
वातपित्तश्रमान् हन्ति मूत्रवस्ति विशोधनम्।।

(भा. प्र. इक्षुवर्ग/25)

सुश्रुत के अनुसार फाणित अवृष्य एवं त्रिदोषकारक है जबकि भावप्रकाश के अनुसार शुक्रकारक और वातपित्तनाशक है।

फाणित कल्पना औषध द्रव्यों के स्वरस एवं क्वाथ से भी बनायी जा सकती है, किन्तु इसमें कुछ मात्रा शर्करा मिलानी आवश्यक है, अन्यथा शीघ्र ही विकृत हो जाता है।

अवलेह (लेह) :-

'लिह् आस्वादने' धातु से लेह बना है, जिसका अर्थ है ऐसा भोजन पदार्थ जिसे चाट कर खाया जाये। औषध द्रव्य के क्वाथ, स्वरस आदि को और भी पकाने पर जब गाढ़ा चाटने योग्य हो जाये तो उसे अवलेह कहते हैं।

क्वाथादीनां पुनः पाकाद् घनत्वं सा रसक्रिया।
सोऽवलेहश्च लेहः स्यात् तन्मात्रा स्यात्पलोन्मिता।।

(शा. सं. म. ख. 8/1)

अवलेह दो प्रकार को बनाया जाता है:-

1. **प्रथम प्रकार**:-स्वरस या क्वाथादि को अग्नि पर पुनः पकाकर गाढ़ा कर लिया जाता है और बाद में उसमें चूर्णादि का प्रक्षेप मिलाकर अवलेह तैयार कर लिया जाता है। इसमें शर्करा, गुडादि पदार्थ मिलाना आवश्यक नहीं है। इस विधि से निर्मित अवलेह शीघ्र विकृत हो जाता है। यथा :- कुटजावलेह।

2. **द्वितीय प्रकार**:- स्वरस या क्वाथादि में शर्करा, गुड, मिश्री आदि मिलाकर अग्नि पर पाक करते हैं और 2 तार की चाशनी तैयार हो जाने पर चूल्हे से नीचे उतारकर चूर्णादि का प्रक्षेप मिलाकर तैयार कर लिया जाता है। इनमें पाक के समय किसी-किसी में गोघृत भी प्रयुक्त होता है। यथा:-वासावलेह।

इसके अतिरिक्त च्यवनप्राश, ब्राह्मरसायन, कूष्माण्डावलेह आदि की निर्माण विधि भिन्न है। इनमें आमलकी, हरीतकी, कूष्माण्ड आदि के फलमज्जा (गूदा) को

गोघृत, तिलतैल या यमक में भर्जन करते हैं और क्वाथ आदि में शर्करा आदि मिलाकर चासनी बनाकर पूर्वोक्त विधि से अवलेह बनाया जाता है।

प्रक्षेप मात्रा :-

सिता चतुर्गुणा कार्या चूर्णाश्च द्विगुणो गुडः।
द्रवं चतुर्गुणं दद्यादिति सर्वत्र निश्चयः।।

(शा. सं. म. ख. 8/2)

अर्थात् जिस चूर्ण का अवलेह बनाना हो उससे शर्करा चार गुना, गुड दो गुना तथा द्रव चतुर्गुण डालना चाहिए।

अवलेह की परीक्षाः-

सुपक्वे तन्तुमत्त्वं स्यादवलेहोऽप्सु मज्जति।
खरत्वं पीडिते मुद्रागन्धवर्णरसोद्भवः।।

(शा. सं. म. ख. 8/3)

अर्थात् अवलेह सम्यक् निर्मित हो जाने के निम्न लक्षण होते हैं:-

1. **तन्तुमत्त्वं** :- अवलेह को दर्वी (करछुल) से उठाने पर तार (तन्तु) बँधकर उठता है।

2. **अप्सु मज्जनं (जले निमज्जन)** :- जल में डालने पर डूबकर एक स्थान पर बैठ जाता है फैलता नहीं है।

3. खरत्व :- अंगुलियों से दबाने पर खरत्व (कड़ापन) का अनुभव होता है। **कुछ आचार्य खरत्व के स्थान पर स्थिरत्व लक्षण मानते हैं, जिसका अर्थ होता है कि रिक्त पात्र में अवलेह डालने पर स्थिर रहता है, फैलता नहीं है।**

4. अंगुली मुद्रा :- अवलेह को अंगुली से दबाने पर अंगुली की आकृति बन जाती है, अधिक गाढ़ा अवलेह हो तो रेखायें (मुद्रा) भी अंकित हो जाती है।

आचार्य आढ़मल्ल ने मुद्रा का अर्थ निम्न प्रकार किया है:-

''पीडिते मुद्रेति तस्मिन्नङ्गुल्यादिपीडिते सति मुद्रादीनामुद्भवो भवति, मुद्राऽत्र निम्नता। यदुक्तं ''पीडिते तु यदाङ्गुल्या निम्नता तत्र जायते'' इति''।

5. गन्धवर्णरसोद्भव :- जिस द्रव्यों का अवलेह बनाया जाता है, उनके गन्ध, वर्ण और रस अवलेह में आ जाते हैं।

अवलेह में चूर्ण प्रक्षेप मिलाने का समयः-

प्रायो न पाकश्चूर्णानां भूरि चूर्णस्य तेन हि।
चासन्नपाके प्रक्षेपः स्वल्पस्य पाकमागते।।

(द्र. गु. वि. उ. 2/58)

आयुर्वेद में चूर्ण का प्रायः अग्नि पर पाक नहीं किया जाता है। इसलिए चाशनी में अधिक चूर्ण मिलाना हो तो पाक करीब करीब हो जाने पर चूल्हे से नीचे उतारकर, थोड़ा-थोड़ा चूर्ण मिलाना चाहिए और दर्वी से चलाते रहना चाहिए। यदि कम चूर्ण मिलाना हो तो चासनी थोड़ी ठण्डी होने पर ही मिलाना चाहिए। चूर्ण डालते समय चाशनी में द्रवांश इतना रहना चाहिए कि जिससे सारा चूर्ण उसमें समा सके।

अवलेह में शहद मिलाना हो तो ठण्डा होने पर मिलावे। यदि अवलेह केवल शहद से बनाना हो तो शहद को मिट्टी के पात्र में रखकर मन्दाग्नि पर इतना सा गर्म करें कि शहद पतला हो जाय। तत्पश्चात् शहद को स्वच्छ वस्त्र से छानकर उसमें चूर्ण मिलावें।

अवलेह की मात्रा :- आचार्य शार्ङ्गधर ने अवलेह की मात्रा 1 पल (48 ग्राम) बताई है :-

तन्मात्रा स्यात्पलोन्मिता। (शा.सं.म.ख.8/1)

आचार्य यादवजी ने अवलेह की मध्यम मात्रा 1 कर्ष (12 ग्राम) बताई है :-

तन्मात्रा कर्षसंमिता। (द्र. गु. वि. उ. 2/54)

लेहस्य मध्यमा मात्रा कर्षमाना प्रकीर्तिता।

(द्र. गु. वि. उ. 2/59)

वर्तमान में व्यक्ति की पाचनशक्ति को दृष्टिगत रखते हुए अवलेह की सामान्य मात्रा 12 से 24 ग्राम (1 से 2 तोला) उचित है।

जहाँ अवलेह का प्राशन के रूप उपयोग हो तो 1 पल (48 ग्राम) तक की मात्रा में देना चाहिए।

अनुपान :- अवलेह का प्रयोग दुग्ध, इक्षुरस, यूष, पञ्चमूल कषाय, वासाक्वाथ तथा रोगानुसार योग्य अनुपान से करना चाहिए :-

दुग्धमिक्षुरसो यूषः पञ्चमूलीकषायजम्।
वासाक्वाथो यथायोग्यमनुपानं प्रशस्यते।।

(शा. सं. म. ख. 8/4)

आचार्य यादवजी ने इनके अतिरिक्त जल, फलों के रस को भी अनुपान बताया है :-

दुग्धं यूषः कषायश्च जलं फलरसस्तथा।
लेहानामनुपानार्थं यथाव्याधि प्रशस्यते।।

(द्र. गु. वि. उ. 2/60)

यूनानी चिकित्सा में घटक द्रव्य, स्वरूप, कर्म आदि के अनुसार अवलेह के पृथक्-पृथक् नाम है :-

1. **माजून(मअजून)**:-औषध द्रव्यों के सूक्ष्म चूर्ण को शहद की चाशनी में मिलाने से माजून बनता है।

2. **लऊकः**-जो अवलेह गले की शुष्कता को दूर करके कफ को निष्कासित करता है, उसे लऊक कहते हैं। लऊक की चाशनी शर्बत से गाढ़ी तथा माजून से पतली रखी जाती है। यथा :- लऊक सपिस्ता।

3. **जवारिशः**-पाचन शक्ति बढ़ाने वाले अवलेह का नाम जवारिश है। यथा-जवारिस जालीनूस।

4. **खमीरा (खमीरह)** :- औषध द्रव्यों के क्वाथ में शर्करा मिश्रित करके व पाक कर चाटने योग्य गाढ़ा कर लिया जाता है, उसे खमीरा कहते हैं। यथा-खमीरा गावजुबान।

5. **लबूबः**- बादाम, पिस्ता आदि शुष्क मेवों की गिरी (मज्जा) से निर्मित शक्तिवर्धक अवलेह को लबूब कहते हैं यथा :- लबूब कबीर।

6. **नोशदारूः**- प्रायः आमलकी से निर्मित पाचक अवलेह को नोशदारू कहते हैं।

7. **अतरीफलः**- अन्य औषधों के साथ अधिक मात्रा में त्रिफला मिलाकर बनाये हुए अवलेह को अतरीफल कहते हैं। यथा :- अतरीफल कश्नीजी।

8. **वरशाशाः**- इसमें मुख्य घटक अहिफेन होता है। यह तुरन्त आराम देने वाली, धातुपतन में लाभकारी तथा स्तम्भन के रूप में प्रयोग होती है।

9. **तिरियाकः**- सर्पदंश आदि तथा सभी प्रकार के विषों में शीघ्र कार्यकारी औषध को तिरियाक कहते हैं।

उपरोक्त सभी अवलेह के भेदों की मिलित संज्ञा भी "माजून" है।

च्यवनप्राशावलेह :-

बिल्वोऽग्निमन्थः श्योनाकः काश्मर्य पाटलिर्बला।
पर्ण्यश्चतस्रः पिप्पल्यः श्वदंष्ट्रा बृहतीद्वयम्॥
शृङ्गी तामलकी द्राक्षा जीवन्ती पुष्करागुरु।
अभया चामृता ऋद्धिर्जीवकर्षभकौ शटी॥
मुस्तं पुनर्नवा मेदा सैला चन्दनमुत्पलम्।
विदारी वृषमूलानि काकोली काकनासिका॥
एषां पलोन्मितान् भागाञ्छतान्यामलकस्य च।
पञ्च दद्यात्तदैकध्यं जलद्रोणे विपाचयेत्॥

ज्ञात्वा गतरसान्येतान्यौषधान्यथ तं रसम्।
तच्चामलकमुद्धृत्य निष्कुलं तैलसर्पिषोः।।
पलद्वादशके भृष्ट्वा दत्त्वा चार्धतुलां भिषक्।
मत्स्यण्डिकायाः पूताया लेहवत्साधु साधयेत्।।
षट्पलं मधुनश्चात्र सिद्धशीते प्रदापयेत्।
चतुष्पलं तुगाक्षीर्याः पिप्पलीद्विपलं तथा।।
पलमेकं निदध्याच्च त्वगेलापत्रकेशरात्।
इत्ययं च्यवनप्राशः परमुक्तो रसायनः।।

(च. चि. 1-1/62-69)

घटक द्रव्य :-

1. बिल्व-48 ग्राम	2. अग्निमन्थ-48 ग्राम	3. श्योनाक-48 ग्राम
4. गम्भारी -48 ग्राम	5. पाटला-48 ग्राम	6. बला-48 ग्राम
7. शालिपर्णी-48 ग्राम	8. पृश्निपर्णी-48 ग्राम	9. मुद्गपर्णी-48 ग्राम
10. माषपर्णी-48 ग्राम	11. पिप्पली-48 ग्राम	12. गोक्षुर-48 ग्राम
13. बृहती-48 ग्राम	14. कण्टकारी-48 ग्राम	15. कर्कटशृङ्गी-48 ग्राम
16. तामलकी-48 ग्राम	17. द्राक्षा-48 ग्राम	18. जीवन्ती-48 ग्राम
19. पुष्कर-48 ग्राम	20. अगुरु-48 ग्राम	21. हरीतकी-48 ग्राम
22. गुडूची-48 ग्राम	23. ऋद्धि-48 ग्राम	24. जीवक-48 ग्राम
25. ऋषभक-48 ग्राम	26. शटी-48 ग्राम	27. मुस्ता-48 ग्राम
28. पुनर्नवा-48 ग्राम	29. मेदा-48 ग्राम	30. सूक्ष्मैला-48 ग्राम
31. श्वेत चन्दन-48 ग्राम	32. उत्पल-48 ग्राम	33. विदारीकन्द-48 ग्राम
34. वासामूल-48 ग्राम	35. काकोली-48 ग्राम	36. काकनासिका-48 ग्राम
37. आमलकी-500 नग	38. क्वाथार्थ जल-12.288 लीटर अवशिष्ट-3.072 लीटर	
39. गोघृत-288 ग्राम	40. तिलतैल-288 ग्राम	41. शर्करा-2.400 कि. ग्रा.
42. मधु-288 ग्राम	43. वंशलोचन-192 ग्राम	44. पिप्पली-96 ग्राम
45. त्वक्-48 ग्राम	46. सूक्ष्मैला-48 ग्राम	47. तेजपत्र-48 ग्राम
48. नागकेशर-48 ग्राम		

निर्माण विधि :- सुपक्व ताज़े 500 नग आँवले लेकर उनको एक कपडे की पोट्टली में बाँध लेते है। क्रम संख्या-1 से 36 तक के सभी घटक द्रव्यों को इमामदस्ते

में डालकर यवकुट चूर्ण बनाकर एक पात्र में रख देते है। इस पात्र में एक द्रोण पानी भर दिया जाता है और आँवलों की पोट्टली पात्र में डुबोकर उसे एक चौथाई अवशेष रहने तक उबाला जाता है। फिर आँवलों की पोट्टली को अलग करके क्वाथ को छानकर अलग रख लेते है।

उबले हुए आँवलों से बीजों को निकालकर गूदे की पिष्टी बनाकर उसको कपडा या छननी से चौडे पात्र में छान लिया जाता है। फिर रेशे निकल जाने के बाद गूदे को घृत और तैल से हल्का भूनकर नमी दूर कर लेते है। क्वाथ में शर्करा मिलाकर लेहपाक की अवस्था तक इसे उबालते हैं और उसी समय भर्जित पिष्टी मिलाकर उसे पुनः गर्म करते है, फिर पात्र को अग्नि से नीचे उतार लेते हैं, थोड़ा ठण्डा होने पर उसमें प्रक्षेप द्रव्य क्र. सं. 43 से 48 तक के सूक्ष्म चूर्ण को अच्छी तरह मिलाते है, फिर अवलेह ठण्डा होने पर मधु मिलाकर सुरक्षित पात्र में रख देते हैं।

विमर्श :- व्यवहार में 500 नग आमलकी को वजन में 6 कि. ग्रा. ग्रहण करते है तथा शर्करा (मत्स्यण्डिका) सार्द्धतुला (7.200 कि. ग्रा.) लेकर च्यवनप्राशावलेह का निर्माण करते है।

मात्रा :- 12 से 24 ग्राम

चरक संहिता के अनुसार इसकी मात्रा इतनी खिलानी चाहिए, जिस भोजन की मात्रा में कमी नहीं है।

अनुपान :- क्षीर

मुख्य उपयोग :- कास, श्वास, स्वरभेद, क्षतक्षीण, हृदयरोग, क्षय, रसायन आदि।

वासावलेह :-

वासकस्वरसप्रस्थे सितामष्टपलोन्मिताम्।
सर्पिषो द्विपलं दत्त्वा पिप्पलीद्विपलं तथा।।
पचेल्लेहत्वमायाते शीते मधु पलाष्टकम्।।

(भै. र. राजयक्ष्मा 82-82½)

घटक द्रव्य :-

1. वासा स्वरस - 768 ग्राम
2. शर्करा - 384 ग्राम
3. गोघृत - 96 ग्राम
4. पिप्पली - 96 ग्राम
5. मधु - 384 ग्राम

निर्माण विधि :- सर्वप्रथम वासा स्वरस और शर्करा मिलाकर चासनी करें। जब चासनी हो जायें तो पिप्पली चूर्ण और घृत मिलाकर पात्र को नीचे उतारें। जब अवलेह ठण्डा हो जाये तब मधु मिश्रित कर किसी पात्र में सुरक्षित रखें।

मात्रा :- 6 से 12 ग्राम

अनुपान :- क्षीर, जल

मुख्य उपयोग :- कास, श्वास, ज्वर, रक्तपित्त, राजयक्ष्मा, पार्श्वशूल।

व्याघ्री हरीतकी :-

समूलपुष्पच्छदकण्टकार्यास्तुलां जलद्रोणपरिप्लुताञ्च।
हरीतकी नाञ्च शतं निदध्यादथात्रपक्त्वा चरणावशेषम्।।
गुडस्य दत्त्वा शतमेतदग्नौ विपक्वमुत्तार्य ततः सुशीते।
कटुत्रिकञ्च द्विपलप्रमाणं पलानि षट् पुष्परसस्य चात्र।।
क्षिपेच्चतुर्जातपलं यथाग्नि प्रयुज्यमानो विधिनावलेहः।
वातात्मकं पित्तकफोद्भवञ्चद्विदोषकासानपि च त्रिदोषम्।।
क्षयोद्भवञ्च क्षतजञ्च हन्यात्तत्पीनसं श्वास स्वरक्षयञ्च।
यक्ष्माणमेकादशमुग्ररुपं भृगुपदिष्टं हि रसायनं स्यात्।।

(भै. र. कास/43-46)

घटक द्रव्य :-

1. कण्टकारी - 4.800 कि. ग्रा.
2. क्वाथार्थजल-12.288 लीटर
   अवशिष्ट -3.072 लीटर
3. हरीतकी - 100 नग
4. गुड -4.800 कि.ग्रा.

प्रक्षेप द्रव्यः-

5. शुण्ठी - 96 ग्राम
6. मरिच -96 ग्राम
7. पिप्पली - 96 ग्राम
8. दालचीनी -48 ग्राम
9. सूक्ष्मैला - 48 ग्राम
10. तेजपत्र -48 ग्राम
11. नागकेशर - 48 ग्राम
12. मधु -288 ग्राम

निर्माण विधि :- सर्वप्रथम 100 नग हरीतकी को पोट्टली में बाँधकर यवकुट कण्टकारी पञ्चाङ्ग एवं जल के साथ डालकर चतुर्थांश शेष क्वाथ बनाया जाता है। फिर हरीतकी को अलग निकाल कर क्वाथ छान लेवें। फिर उसी क्वाथ में गुड

डालकर अग्नि पर पकाकर दो तार की चासनी हो जाने पर पोट्टली खोलकर सम्पूर्ण सिद्ध हरीतकी डाल दें। फिर पात्र को चूल्हे से नीचे उतारकर प्रक्षेप द्रव्य डालकर भली भाँति मिलायें। ठण्डा होने पर मधु मिलाकर किसी पात्र में सुरक्षित रखें।

मात्रा :– 6 से 12 ग्राम

अनुपान :– उष्ण जल या गोदुग्ध

मुख्य उपयोग :– कास, श्वास, प्रतिश्याय, स्वरक्षय, राजयक्ष्मा।

मणिभद्रावलेह :–

विडंगसारामलकाभयानां पलत्रयं त्रीणि पलानि कुम्भात्।
गुडस्य च द्वादश मासमेष जितात्मनां हन्त्युपयुज्यमानः।।

(अ. हृ. चि. 19/31)

घटक द्रव्य :–

1. विडङ्गसार	- 48 ग्राम	2. आमलकी	- 48 ग्राम
3. हरीतकी	- 48 ग्राम	4. त्रिवृत् मूल	- 144 ग्राम
5. गुड	- 576 ग्राम		

निर्माण विधि :– सर्वप्रथम गुड को पानी में घोलकर उबालते हुए लेह बनाकर उसमें शेष द्रव्यों के सूक्ष्म चूर्ण को मिलाकर अच्छी प्रकार से मिश्रित किया जाता है। इस प्रकार मणिभद्रावलेह या मणिभद्रगुड का निर्माण किया जाता है।

मात्रा :– 6 ग्राम

अनुपान :– जल, क्षीर

मुख्य उपयोग :– कुष्ठ, श्वित्र, उदररोग, प्लीहारोग, कृमिरोग, ग्रन्थिपीडा, अर्श, श्वास, कास, प्रमेह, गुल्म।

हरिद्राखण्ड :–

हरिद्रायाः पलान्यष्टौ षट्पलं हविषस्तथा।
क्षीराढकेन संयुक्तं खण्डस्यार्द्धशतं तथा।
पचेन्मृद्वग्निना वैद्यो भाजने मृण्मये दृढे।
त्रिकटुश्च त्रिजातं च कृमिघ्नं त्रिवृता तथा।।
त्रिफला केशरं मुस्तं लौहं प्रतिपलं पलम्।
संचूर्ण्य प्रक्षिपेत्तत्रतोलकार्द्धन्तु भक्षयेत्।।

(भै. र. शीतपित्त उदर्द 12-14)

घटक द्रव्य :-

1. आर्द्र हरिद्रा	- 384 ग्राम	2. गोघृत	- 288 ग्राम
3. गोदुग्ध	- 3.072 लीटर	4. शर्करा	- 2.400 क्रि. ग्रा.
5. शुण्ठी	- 48 ग्राम	6. मरिच	- 48 ग्राम
7. पिप्पली	- 48 ग्राम	8. दालचीनी	- 48 ग्राम
9. सूक्ष्मैला	- 48 ग्राम	10. तेजपत्र	- 48 ग्राम
11. विडंग	- 48 ग्राम	12. त्रिवृत	- 48 ग्राम
13. हरीतकी	- 48 ग्राम	14. बिभीतकी	- 48 ग्राम
15. आमलकी	- 48 ग्राम	16. नागकेशर	- 48 ग्राम
17. मुस्ता	- 48 ग्राम	18. लौहभस्म	- 48 ग्राम

निर्माण विधि :- सर्वप्रथम आर्द्र हरिद्रा को भली भाँति साफ कर छिलका निकालकर सिलबट्टे पर पीसकर महीन कल्क बनायें। तत्पश्चात् स्टील के भगोने में उपरोक्त घी डालकर मध्यमाग्नि पर पकायें। फिर गोदुग्ध में पकायें। जब कल्क घी छोड़ने लगे तो उतारकर किसी पात्र में रखें और भगोने को साफ कर शर्करा और जल मिलाकर चासनी तैयार करें। खूब कड़ी चासनी हो जाने पर अग्नि से नीचे उतारकर भर्जित हरिद्रा डालकर अच्छी तरह मिलावें। फिर उसमें प्रक्षेप द्रव्यों का सूक्ष्म चूर्ण शीघ्र मिलाकर मोटी चलनी से छान लें और सुखाकर काँचपात्र में रखें।

मात्रा :- 6 ग्राम

अनुपान :- जल, दुग्ध

मुख्य उपयोग :- कण्डू, विस्फोट, दद्रु, शीतपित्त, उदर्द, कोठ।

नारिकेल खण्ड :-

कुडवमितमिह स्यान्नारिकेलं सुपिष्टं
पलपरिमितसर्पिः पाचितं खण्डतुल्यम्।
निजपयसि तदेतत् प्रस्थमात्रे विपक्वं
गुडवदथ सुशीते शाणभागान् क्षिपेच्च।।
धान्यकपिप्पलीपयोदतुगाद्विजीरान्
शाणं त्रिजातमिभकेशरवद्विचूर्ण्य।

(भै. र. शूल 168-168½)

घटक द्रव्य :-

1. नारिकेल गिरी	- 192 ग्राम	2. घृत	- 48 ग्राम
3. शर्करा	- 192 ग्राम	4. नारिकेल जल	- 768 मि. ली.

5. धान्यक	- 3 ग्राम	6. पिप्पली	- 3 ग्राम
7. मुस्ता	- 3 ग्राम	8. वंशलोचन	- 3 ग्राम
9. श्वेतजीरक	- 3 ग्राम	10. कृष्णजीरक	- 3 ग्राम
11. दालचीनी	- 3 ग्राम	12. सूक्ष्मैला	- 3 ग्राम
13. तेजपत्र	- 3 ग्राम	14. नागकेशर	- 3 ग्राम

निर्माण विधि :- सर्वप्रथम नारिकेल गिरी को पीसकर कल्क बनायें और भूरा होने तक घी में पकायें। फिर शर्करा, नारियल पानी भर्जित नारिकेल के साथ मिलाकर और पकाकर लेहपाक करें। जब चासनी कड़ी हो जाये तब शेष द्रव्यों का सूक्ष्म चूर्ण उसमें अच्छी तरह से मिश्रित करके किसी पात्र में सुरक्षित रखें।

मात्राः- 6 से 12 ग्राम

अनुपान :- जल

मुख्य उपयोग :- अरुचि, वमन, उदरशूल, अम्लपित्त, रक्तपित्त, क्षत, क्षय।

सौभाग्यशुण्ठीपाक :

कशेरुशृंगाटवराटमुस्तं द्विजीरकं जातिफलं सकोषम्।
लवंग शैलेयसनागपुष्पं पत्रं वराङ्गं शटि धातकी च।।
एला शताह्वा धनिकेभपिप्पली सपिप्पली सोषणका शतावरी।
प्रत्येकमेषामिह कर्षयुग्मं लौहं तथाभ्रं पलभागयुक्तम्।।
महौषधाच्चूर्णपलानि चाष्टौ पलानि त्रिंशत्सितशर्करायाः।
पलानि चाष्टावपि सर्पिषश्च प्रस्थद्वयं क्षीरमिहं प्रयुक्तम्।।

(भै. र. स्त्रीरोग/396-398)

घटक द्रव्य :-

1. कशेरु	- 24 ग्राम	2. शृंगाटक	- 24 ग्राम
3. कमलगट्टा	- 24 ग्राम	4. मुस्ता	- 24 ग्राम
5. श्वेत जीरक	- 24 ग्राम	6. कृष्ण जीरक	- 24 ग्राम
7. जायफल	- 24 ग्राम	8. जावित्री	- 24 ग्राम
9. लवंग	- 24 ग्राम	10. शैलेय	- 24 ग्राम
11. नागकेशर	- 24 ग्राम	12. तेजपत्र	- 24 ग्राम
13. दालचीनी	- 24 ग्राम	14. शटी	- 24 ग्राम
15. धातकी	- 24 ग्राम	16. सूक्ष्मैला	- 24 ग्राम
17. शताह्वा	- 24 ग्राम	18. धान्यक	- 24 ग्राम

19. गजपिप्पली	- 24 ग्राम	20. पिप्पली	- 24 ग्राम
21. मरिच	- 24 ग्राम	22. शतावरी	- 24 ग्राम
23. लौहभस्म	- 48 ग्राम	24. अभ्रकभस्म	- 48 ग्राम
25. शुण्ठी	- 384 ग्राम	26. शर्करा	- 1.440 कि. ग्रा.
27. गोघृत	- 384 ग्राम	28. गोदुग्ध	- 1.536 लीटर

निर्माण विधि :- सर्वप्रथम गोदुग्ध में शुण्ठी का सूक्ष्म चूर्ण डालकर खोवा बनावें। इसके बाद शुण्ठी युक्त खोवा को गोघृत में भर्जन करें। फिर शर्करा की चासनी बनाकर उसमें उपरोक्त भर्जित खोवा एवं शेष समस्त द्रव्यों के सूक्ष्म चूर्ण को अच्छी तरह से मिलाकर किसी पात्र में सुरक्षित रखें। इसके 1-1 कर्ष के मोदक भी बनाकर रखते है।

मात्रा :- 12 ग्राम

अनुपान :- जल, गोदुग्ध

मुख्य उपयोग :- सूतिकारोग, अग्निमान्द्य, अतिसार, ग्रहणी, आमवात, ज्वर, कास।

गुडपाक :-

गुडपाक कल्पना विशेषतः भगन्दर व अर्शरोगों की चिकित्सा हेतु प्रयोग की जाती है। औषध द्रव्यों के क्वाथ या जल में गुड की चाशनी बनाकर, उसमें औषध द्रव्यों का चूर्ण मिलाकर गुडपाक कल्पना बनाई जाती है।

निर्माण विधि :- सर्वप्रथम गुड के छोटे-छोटे टुकड़े करके गुड से चतर्थांश क्वाथ या जल में मिलाकर गर्म करते हैं। गुड़ के पूर्ण रूप से घुल जाने पर वस्त्र से छानकर पुनः पाक करते हैं। और गुडपाक के लक्षण उत्पन्न हो जाने पर नीचे उतारकर प्रक्षेपद्रव्यों का चूर्ण डालकर कडछुल से अच्छी तरह मिला देते हैं, तत्पश्चात् घृतभावित पात्र में रख देते हैं। यथाः-बाहुशाल गुड, दशमूल गुड।

गुडपाक के समान ही गुग्गुलु पाक के लक्षण होते हैं। किन्तु गुग्गुलु पाक में गन्ध और वर्ण पृथक् होती है।

गुडपाक के लक्षणः-

यदा दर्वीप्रलेपः स्यात् यदा वा तन्तुली भवेत्।
तोयपूर्णे च पात्रे तु क्षिप्तो न प्लवते गुडः ।।
क्षिप्तस्तु निश्चलस्तिष्ठेत् पतितस्तु न शीर्यति।
एष पाको गुडादीनां सर्वेषां परिकीर्तितः।

सुखमर्दः सुखस्पर्शी गन्धवर्णरसान्वितः।
पीडितो भजते मुद्रां गुडः पाकमुपागतः।।
गुडवत् गुग्गुलोः पाक रसगन्धविशेषतः।

(वै. प. प्र. 2/52-54)

अर्थात् जब गुड दर्वी (करछुल) से लिपटने लगता है अथवा जब उसमें तन्तु (तार) छूटने लगते है। जलपूर्ण पात्र में डालने पर निश्चल बैठ जाये, (फैलना और तैरना नहीं चाहिए)। स्पर्श व मर्दन करने पर सुखानुभूति हो अर्थात् स्निग्ध और मृदु होने के कारण हाथ से सुखपूर्वक मसला जाता है। उसमें औषध द्रव्यों के सुगन्ध, वर्ण और रस उत्पन्न हो जाते है। अंगुलियों से दबाने पर अंगुलियों की रेखायें छप जाती है। ये सब गुडपाक के लक्षण है।

शार्करः-

सामान्य भाषा में इसे शर्बत (Syrup) कहते हैं। गुलाब पुष्प, केवड़ा पुष्प, चन्दन, बनफशा, सौंफ आदि सुगंधित द्रव्यों की शार्कर कल्पना की जाती है। फालसा (परूषक), अनार, नींबू आदि फलों के रस से भी शार्कर बनाये जाते हैं।

परिभाषाः-

हिमे फाण्टे शृतेऽर्के वा शर्करां द्विगुणां क्षिपेत्।
मन्देऽग्नौ साधितं पूतं पटात्तत्छार्करं स्मृतम्।।

(द्र .गु. वि. उ. 2/50)

अर्थात् गुलाबपुष्प, केवड़ा, वेदमुश्क आदि सुगन्धित द्रव्यों के हिम, फाण्ट और अर्क में तथा अन्य द्रव्यों के क्वाथ में दुगुनी शर्करा मिलाकर मन्दाग्नि पर पकाकर वस्त्र से छान ले। इसे शार्कर (शर्बत) कहते हैं।

सिद्धभेषजमणिमाला में द्रव से चार गुना शर्करा मिलाकर शार्कर (शर्बत) बनाने का निर्देश किया है:-

अभ्यस्यष्टगुणे निधाय च निशि द्रव्यं पलं कुट्टितं
प्रातर्मन्दकृशानुना परिपचेदष्टांशशेषं नयेत्।
तत् सङ्गाल्य पटैश्चतुःपलसितां निक्षिप्य भूयः पचेत्।
यावत्तन्तुभवोऽवतार्य तदिदं प्राहुर्बुधाः शार्करम्।।

(सि. भे. म. मा. 4/45)

अर्थात् 1 पल यवकुट द्रव्य को रात्रि में आठ पल जल में भिगोकर, प्रातःकाल मन्दाग्नि पर पकाकर अष्टमांश (1 पल) शेष रहने पर वस्त्र से छान लें।

उसमें 4 पल शर्करा डालकर पुनः धीरे-धीरे तन्तुयुक्त होने तक पकाकर चासनी बना लें। यह शार्कर (शर्बत) कल्पना कहलाती है।

विमर्शः-शार्कर की चासनी शहद जैसी गाढ़ी बनायी जाती है। शार्कर निर्माण करते समय चासनी की परीक्षा इस प्रकार करनी चाहिए-दर्वी (कडछुल) से शार्कर (चासनी) की 1-2 बूँद किसी पात्र पर गिराने पर वह बूँद ज्यों का त्यों उठा रह जाय, फैले नहीं तो शार्कर तैयार समझना चाहिए। जैसे शहद की बूँद थाली में गिराने पर फैलता नहीं है, वह उठा हुआ ही गोल रहता है।

पतले शार्कर (शर्बत) को दीर्घकाल तक संरक्षित रखने के लिए संरक्षक द्रव्य (Preservative drugs) अवश्य मिलानी चाहिए। Preservative drugs के रूप में प्रायः साइट्रिक एसिड, सोडियम बेंजोएट, पोटाशियम मेटा बाई सल्फाइड आदि का प्रयोग किया जाता है।

फलों के रसों और सुगन्धित द्रव्यों के अर्कों को शर्करा की शीतल हो जाने पर जम जाये, ऐसी गाढ़ी चासनी बनाकर उसमें मिलाने से शार्कर अच्छा बनता है।

बनप्सा शार्करः-

बनप्सिकामष्टगुणे निशायां नीरे निधायाथ विपाच्य चुल्ह्याम्।
अष्टावशेषं शृतमाकलय्य सङ्गालयेद् गाढ़ पटेन युक्त्या।।
चतुर्गुणां तत्र पचेत् सिताख्यां तन्तूद्गमो राजति यावदस्याम्।
बनप्सिका शार्करमेतदाहुः पित्तज्वरे देयमतीव सौम्यम्।।

(सि. भे. म. मा. 4/43-44)

घटक द्रव्य :-

1. बनप्सा (यवकुट) - 1 कि. ग्रा.
2. जल (क्वाथार्थ) - 8 लीटर
   अवशिष्ट जल (क्वाथ) - 1 लीटर
3. शर्करा - 4 कि. ग्रा.

निर्माण विधि :- 1 कि.ग्रा. बनप्सा को यवकुट करके 8 लीटर जल में रात्रि में भिगोकर प्रातःकाल मन्दाग्नि से अष्टमांश (1 लीटर) जल शेष रहने तक पाक करके वस्त्र से छान लें। तत्पश्चात् चार गुना शर्करा मिलाकर मन्दाग्नि से पाक करें। जब तन्तु बनने लग जाये अर्थात् 1 तार की चाशनी बन जाये तो उतारकर छान लें।

मात्रा :- 12 से 24 मि.ली. (जल मिलाकर)

प्रयोगः-पित्तज्वर, जीर्णज्वर, प्रतिश्याय, कास, श्वास, शिरःशूल, नेत्र-मूत्र प्रदाह, अनिद्रा आदि में लाभदायक है।

निम्बू शार्करः-

घटक द्रव्य :-

1. निम्बु स्वरस-1 कि. ग्रा. 2. शर्करा-2.5 कि. ग्रा.

निर्माण विधि :- 1 लीटर नींबू स्वरस में 2.5 कि. ग्रा. शर्करा की चासनी बना लें, फिर उष्ण को ही छान लें।

मात्रा :-1 से 2 तोला तक आवश्यकतानुार जल मिलाकर

गुण और उपयोग :- इस शार्कर के सेवन से पित्त विकार, मन्दाग्नि, अरुचि, तृषा, अजीर्ण, मलावरोध, रक्तदोष आदि दूर होते है, अग्नि प्रदीप्त होती है। गर्मी में सूर्य की धूप में घूमने से उत्पन्न व्याकुलता और पित्तप्रकोप शीघ्र दूर हो जाते है। सन्ताप, दाह और क्लम दूर होता हैं, मन प्रसन्न रहता है।

सीरप (Syrup) :-

Syrup जल या अन्य उचित द्रव में सुक्रोज या शर्करा से निर्मित sweet, viscous और concentrate aqueous solution है। जब केवल शुद्ध जल और शर्करा (sugar) मिलाकर solution बनाया जाता है तो इसे सीरप या simple syrup कहते हैं। जब उसमें औषध द्रव्य मिलाकर बनाया जाता है, तो उसे Medicated syrup कहते हैं। जब syrup बिना औषध के केवल सुगन्धित द्रव्यों से बनाया जाता है, तो उसे flavouring syrup कहते हैं, इस सीरप का उपयोग अप्रिय कटु स्वाद और नमकीन द्रव्यों के सीरप बनाने में किया जाता है।

Sucrose के साथ अन्य Polyols जैसे ग्लिसरीन, सोरबिटोल या अन्य polyhydric alcohol को थोड़ी मात्रा में मिलाया जाता है, जिससे सुक्रोज का crystallization नहीं होता है और अन्य मिलाये गये द्रव्यों की घुलनशीलता बढ़ती है।

सीरप निर्माण के लिए सुक्रोज (शर्करा) और शुद्ध जल दूषित द्रव्यों से रहित होना चाहिए और स्वच्छ पात्र का उपयोग करना चाहिए। Dilute syrup में mold, yeast और अन्य microbial growth आसानी से हो जाती है। जबकि concentrated syrup, जो 65% weight by weight या इससे अधिक से निर्मित है, में microbial growth आदि नहीं होती है, किन्तु concentreated syrup में सुक्रोज का crystallization होने की सम्भावना होती है। Dilute syrup (पतला सीरप) में sodium benzoate, methyl paraben, benzoic acid, potashium metabi sulphid आदि preservatives में से कुछ को मिलाना चाहिए।

आजकल artificial sweetening द्रव्यों से भी सीरप बनाये जाते हैं। इनका लाभ यह है कि इनमें कोई भी कार्बोहाइड्रेट नहीं होने से Diabetic patients को दिया जा सकता है।

सीरप का storage well closed container और $30^{\circ}C$ से कम तापमान पर करना चाहिए।

Elixirs :-

Elixirs मुख से प्रयोग किये जाने वाला स्वच्छ, अच्छा, सुगन्धित, मधुर hydroalcoholic liquid preparation है। इसमें इथेनॉल और जल के साथ ग्लिसरीन, सोरबिटाल, प्रोपीलीन ग्लाइकोल, सुगन्धित द्रव्य, शर्करा और संरक्षक द्रव्य भी मिश्रित किये जाते हैं। ये Medicated and nonmedicated दोनों हो सकते हैं। Medicated elixirs में सामान्यतया अत्यधिक क्रियाशील औषध जैसे antibiotics, antihistaminics and sedatives होती है। उसमें औषध द्रव्य के तिक्त रस और हल्लास कारक स्वाद को ढकने के लिए सुगन्धित और मधुर द्रव्य मिलाये जाते हैं।

Linctuses :-

Linctuses इस प्रकार के औषध द्रव्य से निर्मित मधुर और चिपचिपा (viscous) liquid preparation है, जिनमें demulcent, sedative और expectorant गुण होते हैं। इनका उपयोग cough (कास) रोग की चिकित्सा में किया जाता है। ये गले की श्लैष्मिक कला पर soothening (शूल नाशक) प्रभाव उत्पन्न करते है। अधिक प्रभाव के लिए इनको बिना पानी मिलायें कम मात्रा में धीरे-धीरे निगलना चाहिए।

क्षीरपाक :-

रसोन, भल्लातक, अर्जुन आदि औषध द्रव्यों के वीर्य की तीक्ष्णता को कम करने एवं उनके गुणों में उचित वृद्धि लाने के लिए औषध द्रव्यों को क्वाथविधि से क्षीर (दुग्ध) के साथ पकाया जाता है। इसके अलावा दूध को लघुपाकी बनाने के लिए भी शुण्ठी आदि द्रव्यों के साथ क्षीरपाक किया जाता है।

क्षीरपाक निर्माण के आचार्यों ने 3 मत बताये हैं:-

शार्ङ्गधर संहिता:-

क्षीरमष्टगुणं द्रव्यात् क्षीरात्रीरं चतुर्गुणम्।
क्षीरावशेषं तत्पीतं शूलमामोद्भवं जयेत् ॥

(शा. सं. म. ख. 2/161)

अर्थात् औषध द्रव्य से 8 गुना दुग्ध तथा दुग्ध से चार गुना जल मिलाकर पकाना चाहिए। दुग्ध मात्र शेष रहने पर वस्त्र से छान ले। यह क्षीरपाक विधि है। इसे आमजन्य शूल में प्रयोग करना चाहिए।

आचार्य यादवजी (द्रव्य गुण विज्ञान):-

क्षीरं तिथिगुणं द्रव्यात् क्षीरान्नीरं समं मतम्।
क्षीरावशेषं कर्त्तव्यं क्षीरपाके त्वयं विधिः।।

(द्र. गु. वि. उ. 2/32)

अर्थात् औषध द्रव्य को 15 गुना दुग्ध और 15 गुना जल के साथ मिलाकर पकायें। क्षीरमात्र शेष रहने पर उतार कर छान लें। यह क्षीरपाक विधि है।

वृद्धवाग्भट्टः-

"क्षीरादिसहितं च द्रव्यं न सम्यङ्मुक्तरसं भवतीति वारिक्वाथपूर्वकं क्षीराद्यैस्तदुपदेशे अनुपदग्धं क्वाथयेत्।" (अ. सं. क. 8/12)

अर्थात् औषध को क्षीरादि (क्षीर,दधि, मस्तु, मूत्रादि) के साथ पकाने से औषध अपना रस (सारभाग) क्षीरादि में नहीं छोड़ता है। अतः पहले औषध द्रव्य का क्वाथ बनाकर, उस क्वाथ में समभाग दुग्ध डालकर दुग्ध मात्र शेष रहने तक मन्दाग्नि पर पकायें। दुग्ध जलना नहीं चाहिए।

क्षीरपाक में लवण रस, अम्लरस तथा कषाय रस वाले द्रव्यों का उपयोग नहीं होता है। क्योंकि लवणरस, अम्लरस, कषाय रस युक्त द्रव्यों को दुग्ध में डालकर पकाने से दुग्ध खराब हो जाता है।

क्षीरपाक का उपयोग द्रव्यानुसार विभिन्न रोगों में किया जाता है। यथा :- अर्जुन क्षीरपाक-हृद्रोग, रसोन क्षीरपाक-वातव्याधि, शुण्ठी क्षीरपाक-अरोचक, अजीर्ण और आमवात में।

अर्जुन क्षीरपाक:-

अर्जुनस्य त्वचा सिद्धं क्षीरं योज्यं हृदामये।
सितया पञ्चमूल्या वा बलया मधुकेन वा।।

(भै. र. हृद्रोग/11)

अर्थात् अर्जुन त्वक् 20 ग्राम को यवकुट करके 160 मि.ली. दुग्ध एवं 640 मि.ली. जल को स्टेनलैस स्टील के पात्र में डालकर मन्दाग्नि पर पाक करें। जब दुग्ध मात्र शेष रह जाये तो उतारकर वस्त्र से छान लें और मिश्री मिलाकर पिलावें।

मात्रा:-50 मि.ली.

प्रयोग:-हृद्रोग

रसोन क्षीरपाकः-

साधयेच्छुद्धशुष्कस्य लशुनस्य चतुष्पलम्।
क्षीरोदकेष्टगुणिते क्षीरशेषञ्च पाययेत्।।
वातगुल्ममुदावर्तं गृध्रसीं विषमज्वरम्।
हृद्रोगं विद्रधिं शोथं नाशयत्याशु तत्पयः।
एवन्तु साधिते क्षीरे स्तोकमेवात्र दीयते।।

(भै. र. गुल्मरोग/13-14)

अर्थात् निस्तुष लशुन 4 पल (192 ग्राम), दुग्ध-768 मि.ली. तथा जल-768 मि.ली. लें। सर्वप्रथम लशुन को पीसकर स्टेनलेस स्टील के पात्र में दूध और जल के साथ मिलाकर मन्दाग्नि पर पकावें। दुग्धमात्र शेष रहने पर छानकर रोगी को पिलावें।

उपयोगः- यह दुग्ध प्रयोग करने पर गुल्म, गृध्रसी, विषमज्वर, हृद्रोग, विद्रधि, शोथ को नष्ट करता है।

मात्रा :- यह लशुन साधित गर्म दुग्ध धीरे-धीरे 100 मि.ली. तक एक साथ पिलाना चाहिए।

विमर्श :- क्षीरपाक विधि के अनुसार लशुन से दुग्ध 8 गुना तथा दुग्ध से जल 4 गुना लेना चाहिए। किन्तु इस श्लोक के अनुसार लशुन से दुग्ध और जल की मिलित मात्रा 8 गुना (1.536 लीटर) बताई है।

शुण्ठी क्षीरपाकः-

1 तोला शुण्ठी के यवकुट चूर्ण को 8 तोला गोदुग्ध तथा 32 तोला जल में मिलाकर मंदाग्नि पर पाक करें। क्षीर मात्र शेष रहने पर वस्त्र से छानकर प्रयोग करें।

मात्राः-1 तोला

उपयोगः-अरोचक, आमवात, वातव्याधि, अजीर्ण आदि।

सत्त्व कल्पना :-

किसी द्रव्य का सारभाग (Extract) सत्त्व कहा जाता है। आयुर्वेदीय भैषज्य कल्पना में सत्त्व दो प्रकार से निर्मित किये जाते हैं-1. घनसत्त्व कल्पना और 2. सत्त्व कल्पना।

1. घनसत्त्व कल्पना :- घनसत्त्व कल्पना रसक्रिया की परिभाषा में आती हैं, जिसमें पहले औषधद्रव्य का क्वाथ बनाकर फिर घन बनाया जाता है तथा सम्पूर्ण क्रिया अग्नि से सम्पन्न होती है, केवल अंतिम शुष्कीकरण के लिए धूप में सुखाया जाता

है। घनसत्त्व में औषधद्रव्य के जल में घुलनशील तत्त्व (Water soluble extract) होते है। यथा :- गुडूची घनवटी।

2. सत्त्व कल्पना :- यह कल्पना अग्नि के बिना निर्मित की जाती है। इसमें औषधद्रव्य के जल में अघुलनशील तत्त्व (Water Insoluble extract) आते है। जिन औषध द्रव्यों में स्टार्च की मात्रा अधिक होती है, उनका सत्त्व निकाला जाता है। यथा :- अमृता सत्त्व।

गुडूचीसत्त्व (अमृता सत्त्व) :-

गुडूचीं खण्डशः कृत्वा कुट्टयित्वा सुमर्दयेत्।
वस्त्रेण विधृतं तोयं स्रावयेत्तच्छनैः शनैः ।।
शुद्धशंखनिभं चूर्णमेतैः संमिश्रयेद्भिषक् ।।

(यो. र. राजयक्ष्मा/गुडूच्यादि मोदक पृ.328)

गुडूची खण्डशः कृत्वा क्षालयित्वा सुकुट्टयेत्।
चतुर्गुणं जलं दत्त्वा हस्ताभ्यां मर्दयेद् दृढम्।।
वस्त्रेण गालितं तोयं रात्रिं संस्थापयेद् बुधः।
उपरिस्थं जलं त्यक्त्वा सत्त्वं ग्राह्यमधःस्थितम्।।

(द्र. गु. वि.उ. 2/108-109)

अँगूठे जितनी मोटी, ताजी हरी गुडूची काण्ड को जल से धोकर छोटे-छोटे टुकड़े कर लें, फिर इमामदस्ते में रखकर अच्छी तरह कूट लें। फिर स्टेनलेस स्टील के पात्र में डालकर चार गुना पानी मिलाकर हाथों से अच्छी तरह मर्दन करें। पानी में खूब फेन आयेंगे। इस प्रकार गुडूचीकाण्ड का सारा स्टार्च वाला अंश फेनरूप में जल में घुल जायेगा। अब इन गुडूचीखंण्डों को निचोड़कर फेक दें। कुछ देर बाद जल को स्वच्छ वस्त्र से दूसरे पात्र में छानकर रात्रिपर्यन्त (12 घंटे) रख दें। इससे गुडूची का सत्त्व जल से पृथक् होकर तल में एकत्र हो जायेगा। दूसरे दिन पात्र को हिलाये बिना धीरे-धीरे ऊपर के जल को निथार लें और तल में एकत्र मैदा जैसा पदार्थ (गुडूची सत्त्व) को सुखाकर वस्त्र से छानकर रख लें। यही गुडूची सत्त्व है।

विमर्शः-निथारे हुए जल को मंद अग्नि पर पकाकर, उसका घन बनाकर संशमनी वटी बना लें।

आजकल बाजार में प्रायः गुडूचीसत्त्व कृत्रिम आता है। अरारोट चूर्ण में गुडूची स्वरस की भावना देकर धूप में सुखा लेते हैं। इसमें गुडूची सत्त्व का वर्ण कुछ हरिताभ श्वेत हो जाता है तथा स्वाद में गुडूची की तिक्तता आ जाती है।

मात्रा व अनुपान :- 2 से 4 रत्ती (250 मि. ग्रा. से 500 मि. ग्रा.) शहद से।

गुण :- यह पित्तशामक, बल्य, वृष्य एवं शुक्रल है। ज्वर, जीर्णज्वर, रक्तपित्त, राजयक्ष्मा, रक्तप्रदर, दाह, मूर्च्छा, अपस्मार, कण्डू, कुष्ठ, रक्तविकृति, मूत्रकृच्छ्र, मूत्रप्रदाह नाशक है।

गुग्गुल कल्पना :-

गुग्गुलु कल्पना भी वटी कल्पना के अन्तर्गत आती है, जो मुख्यतः वातरोगों (सन्धिवात, वातरक्त, आमवात आदि), नाड़ी रोगों में प्रयुक्त होती है। गुग्गुलुकल्पों में गुग्गुलु के साथ सामान्यतः त्रिफला एवं त्रिकटु आदि घटक होते है। गुग्गुलु कल्पना उत्तम वेदनानाशक तथा शोथहर है।

गुग्गुलु कल्पना निर्माण की दो विधियाँ हैं:-

1. शुष्क गुग्गुलु विधि   2. गुग्गुलुपाक विधि।

1. शुष्क गुग्गुलु विधि:-इस विधि में शुद्ध गुग्गुलु को इमामदस्ते में रखकर कूटते जाते हैं। कूटने से पहले इमामदस्ते में थोड़ा घृत लगा लेते है तथा गुग्गुलु कूटते समय थोड़ा-थोड़ा घृत मिलाते रहते है। कूटते-कूटते जब गुग्गुलु मृदु हो जाये तब उसमें थोड़ी-थोड़ी मात्रा में चूर्ण मिलाते रहते है तथा पुनः कूटते जाते है। जब सम्पूर्ण चूर्ण गुग्गुलु में मिल जाये तथा वटी बनने योग्य मृदु गुग्गुलु हो जाये, तो उसकी उचित परिमाण व आकार की वटियाँ बनाकर छाया शुष्क कर लेते है।

विमर्श:-गुग्गुलु को जितना अधिक कूटते हैं, गुग्गुलु उतना ही अधिक गुणकारी होता जाता है, इसलिए जयपुर (राजस्थान) परम्परा में गुग्गुलु को एक लाख (लक्षघाती) चोट लगाने के पश्चात् ही वटी बनाने की परम्परा है।

2. गुग्गुलुपाक विधि:-इस विधि में शुद्ध गुग्गुलु में थोड़ा जल (लगभग चतुर्थांश) मिलाकर अग्नि पर चढ़ाकर लेहवत् पाक करते हैं, फिर उसमें औषधद्रव्यों का चूर्ण मिलाकर उचित परिमाण व आकार की वटियाँ बनाकर छायाशुष्क कर लेते है। या गुग्गुलु को त्रिफला क्वाथ में घोलकर वस्त्र से छान लेते हैं और पुनः अग्नि पर चढ़ाकर लेहवत् पाक करके चूर्ण मिलाकर वटी बना लेते हैं। गुग्गुलु पाक के लक्षण गुडपाक के समान होते हैं, किन्तु गुग्गुलुपाक में रस और गन्ध भिन्न होती है।

गुग्गुलु शोधन:-

चतुर्गुणे गव्यदुग्धे गुग्गुलुं स्वेदयेद् भृशम्।
वस्त्रपूतं विधायाथ मलं वस्त्रस्थमुत्सृजेत्।।
दुग्धं शीतं तु विज्ञाय दुग्धपात्रतलस्थितम्।
समाहरेद् गुग्गुलुं तु सर्वदोषसमुज्झितम्।।
(र. त. 24/579-580)

अर्थात् एक साफ मोटे कपड़े में गुग्गुलु के छोटे-छोटे टुकड़ों को बाँधकर उसे दोलायन्त्र विधि से गोदुग्ध में उबालें। जब गुग्गुलु पिघलकर दूध में मिल जाये तो पोट्टली को (जिसमें गुग्गुलु में स्थित कंकड़, पत्थर, पत्ते या अपमिश्रित द्रव्य रह जायें) निचोड़कर अलग कर दें। जब दूध ठण्डा हो जाये तो पात्र के तल प्रदेश में जमे हुए गुग्गुलु को निकाल लें। उसे मन्दाग्नि से पकाकर गाढ़ा कर लें, फिर धूप में सुखाकर रख लें। इस विधि से गुग्गुलु सर्वदोष रहित होकर शुद्ध हो जाता है।

विमर्शः- (i) विभिन्न ग्रन्थों में गोदुग्ध के स्थान पर त्रिफला क्वाथ, त्रिफला और गुडूची क्वाथ या दशमूल क्वाथ में गुग्गुलु का शोधन उपरोक्त विधि से बताया गया है।

(ii) सामान्यतः गुग्गुलु का शोधन त्रिफला क्वाथ में किया जाता है।

त्रिफलाक्वाथ संपाच्यं वस्त्रबद्धश्च गुग्गुलुम्।
वस्त्रे स्थितं मलं त्यक्त्वा शुष्कं शुद्धं प्रजायते।।

(र. प्र. 11/11)

घटक द्रव्यः-

1. गुग्गुलु - 600 ग्राम 2. त्रिफला (मिलित) - 600 ग्राम

विधिः-सर्वप्रथम त्रिफला (मिलित)-600 ग्राम को यवकुट करके अष्टगुण जल में क्वाथ निर्माण करते हैं, चतुर्थांश शेष रहने पर छान लेते हैं। फिर गुग्गुलु के टुकड़ों को दोलायन्त्र विधि से उबलते हुए त्रिफला क्वाथ में पकाते है। गुग्गुलु को तब तक उबालते रहना चाहिए जब तक कि सारा गुग्गुलु द्रवरूप में कपड़े से बाहर न निकल जाये। पोट्टली में बचे अंश को फैंक देना चाहिए।

द्रव को छानकर पुनः इसके गाढ़ा होने तक उबाला जाता है। फिर इसे धूप में सुखा लिया जाता है। फिर थोड़ा-थोड़ा घी के साथ इमामदस्ते में कूटा जाता है, जिससे वह मोम सा नरम हो जाता है।

गुडूचीत्रिफलाक्वाथे क्षीरे चैव विशेषतः।
पक्त्वा च खण्डशः शुद्धं गृह्णीयान्मृदु गुग्गुलुम्।।

(र. सा. सं. 1/402)

अर्थात् गुग्गुलु को टुकड़े कर गुडुची तथा त्रिफला क्वाथ में और विशेषकर गोदुग्ध में पकाकर छान लेने से गुग्गुलु शुद्ध एवं मृदु हो जाता है। छानने के बाद गुग्गुलु के जलीयांश को मन्दाग्नि पर सुखा लेना चाहिए। यदि कुछ जलीयांश रह जाये तो धूप में सुखा लेना चाहिए।

मात्राः–काष्ठौषधिचूर्ण से निर्मित गुग्गुलु की मात्रा 3 ग्राम तक है, किन्तु भस्म मिश्रित काष्ठौषधिचूर्ण से निर्मित गुग्गुलु की मात्रा 500 मि.ग्रा. से 1 ग्राम तक होती है।

अनुपानः–रोगानुसार उष्ण ज़ल, दशमूलक्वाथ, रास्नादि क्वाथ, गुडूची क्वाथ, त्रिफला क्वाथ, पिप्पली क्वाथ, वरुण क्वाथ, पुनर्नवाष्टक क्वाथ, गोमूत्र, गोदुग्ध, मधु आदि के साथ देना चाहिए। इसके अतिरिक्त विभिन्न रोगों को दृष्टिगत कर अन्य उचित अनुपान का भी प्रयोग किया जा सकता है।

प्रयोगः–गुग्गुलु कल्पना का प्रयोग सामान्यतः वातरोगों, नाड़ीरोगों, मेदोरोग आदि में किया जाता है। यह उत्तम वेदनाशामक एवं शोथहर है।

गुग्गुल का प्रयोग योगानुसार विभिन्न रोगों में होता है यथाः-

योगराज गुग्गुलु - सन्धिवात, आमवात
सिंहनाद गुग्गुलु - आमवात
कैशोर गुग्गुलु - वातरक्त
त्रिफला गुग्गुलु - अर्श, व्रण
त्रयोदशांग गुग्गुलु - सन्धिवात, गृध्रसी
नवक गुग्गुलु - मेदोरोग, स्थौल्य
मेदोहर गुग्गुलु - मेदोरोग, स्थौल्य
गोक्षुरादि गुग्गुलु - मूत्रकृच्छ्र, मूत्राघात

त्रिफला गुग्गुलु :-

त्रिपलं त्रिफलाचूर्णं कृष्णाचूर्णं पलोन्मितम्।
गुग्गुलुं पाञ्चपलिकं क्षोदयेत्सर्वमेकतः।।
ततस्तु गुटिकां कृत्वा प्रयुञ्ज्याद्वह्न्यपेक्षया।
भगन्दरं गुल्मशोथावर्शांसि च विनाशयेत्।।
(शा. सं. म. ख. 7/82-83)

घटक द्रव्यः-

1. हरीतकी - 1 पल
2. बिभीतकी - 1 पल
3. आमलकी - 1 पल
4. पिप्पली - 1 पल
5. शुद्ध गुग्गुलु - 5 पल

निर्माण विधि :- क्र. सं. 1 से 4 तक की औषधियों के सूक्ष्मचूर्ण को शु. गुग्गुलु में मिलाकर भली भाँति कूटा जाता है। मुलायम होने पर 1-1 ग्राम की गोलियाँ बनाकर छायाशुष्क करके काँच के जार में सुरक्षित रखें।

मात्रा :- 3 ग्राम

अनुपानः- उष्ण जल

मुख्य उपयोग :- अर्श, भगन्दर, गुल्म, शोथनाशक।

कैशोर गुग्गुलु :-

त्रिफलायास्त्रयःप्रस्थाः प्रस्थैका चामृता भवेत्।।
संकुट्य लोहपात्रेण सार्धद्रोणाम्बुना पचेत्।
जलमर्धशृतं ज्ञात्वा गृह्णीयाद्वस्त्रगालितम्।।
ततः क्वाथे क्षिपेच्छुद्धं गुग्गुलुः प्रस्थसम्मितम्।
पुनः पचेदयः पात्रे दर्व्या संघर्षयेन्मुहुः।।
सान्द्रीभूतं ततो ज्ञात्वा गुडपाकसमाकृतिम्।
चूर्णीकृत्य ततस्तत्र द्रव्याणीमानि निक्षिपेत्।।
त्रिफला द्विपला ज्ञेया गुडूची पलिका मता।
षडक्षं त्र्यूषणं प्रोक्तं विडङ्गानां पलार्धकम्।।
दन्ती कर्षमिता कार्या त्रिवृत्कर्षमिता स्मृता।
ततः पिण्डीकृतं सर्वं घृतपात्रे विनिक्षिपेत्।।
गुटिकाः शाणमात्रेण युञ्ज्याद्दोषाद्यपेक्षया।
अनुपाने भिषग्दद्यात्कोष्णं नीरं पयोऽथवा।।
मञ्जिष्ठादिशृतं वापि युक्तियुक्तमतः परम्।
जयेत्सर्वाणि कुष्ठानि वातरक्तं त्रिदोषजम्।।
सर्वव्रणानि गुल्मानि प्रमेहपिडिकास्तथा।
प्रमेहोदरमन्दाग्निकासश्वयथुपाण्डुजान् ।।
हन्ति सर्वामयान्नित्यमुपयुक्तो रसायनः।
कैशोरकाभिधानोऽयं गुग्गुलुः कान्तिकारकः।।

(शा. सं. म. ख. 7/70-79)

घटक द्रव्यः-

1. हरीतकी	- 768 ग्राम	2. बिभीतकी	- 768 ग्राम
3. आमलकी	- 768 ग्राम	4. गुडूची	- 768 ग्राम
5. क्वाथार्थ जल	- 18.432 लीटर		
अवशिष्ट क्वाथ	- 9.216 लीटर		
6. शुद्ध गुग्गुलु	- 768 ग्राम	7. हरीतकी	- 32 ग्राम
8. बिभीतकी	- 32 ग्राम	9. आमलकी	- 32 ग्राम

10. शुण्ठी	- 24 ग्राम	11. मरिच	- 24 ग्राम
12. पिप्पली	- 24 ग्राम	13. गुडूची	- 48 ग्राम
14. विडङ्ग	- 24 ग्राम	15. त्रिवृतमूल	- 12 ग्राम
16. दन्तीमूल	- 12 ग्राम	17. घृत-100 ग्राम या यथावश्यक	

निर्माण विधि :- सर्वप्रथम त्रिफला एवं गुडूची का यवकुट कर 18.432 लीटर जल में क्वाथ कर अर्द्धांश शेष रखे। फिर छने हुए क्वाथ में गुग्गुलु डालकर कलछुल से चलाते हुए मन्दाग्नि पर पकावें। जब सम्पूर्ण गुग्गुलु पिघल जाय तब छानकर गुग्गुलु एवं क्वाथ के घोल को कलछुल से चलाते हुए मध्यमाग्नि पर पकावें। गुग्गुलु के गाढ़ा होने पर आमलकी से दन्ती पर्यन्त सभी द्रव्यों का कपड़छान सूक्ष्म चूर्ण डालकर भली-भाँति मिलायें। अब इमामदस्ते में घी डालकर अच्छी प्रकार मुलायम होने तक कूटें। अन्त में 1-1 ग्राम की गोलियाँ बनाकर छायाशुष्क करके काँच के जार में सुरक्षित रखें।

मात्रा:- 3 ग्राम

अनुपान :- मुद्गयूष, क्षीर, मंजिष्ठादि क्वाथ

मुख्य उपयोग :- वातरक्त, कुष्ठ, व्रण, गुल्म, प्रमेह, प्रमेह पिडिका, उदररोग, मन्दाग्नि, कास, पाण्डु, शोथ।

योगराज गुग्गुलु :-

चित्रकं पिप्पलीमूलं यमानीं कारवीं तथा।
विडङ्गान्यजमोदाच्च जीरकं सुरदारु च।।
चव्यैलासैन्धवं कुष्ठं रास्नागोक्षुरधान्यकम्।
त्रिफलामुस्तकव्योषं त्वगुशीरं यवाग्रजम्।।
तालीसपत्रं पत्रञ्च श्लक्ष्ण चूर्णानि कारयेत्।
यावन्त्येतानि चूर्णानि तावन्मात्रन्तु गुग्गुलुम्।।
सम्मर्द्य सर्पिषां गाढं स्निग्धे भाण्डे निधापयेत्।
सम्मर्द्य सर्पिषा गाढं स्निग्धे भाण्डे निधापयेत्।
ततो मात्रां प्रयुञ्जीत यथेष्टाहारवानपि।।
योगराज इति ख्यातो योगोऽयममृतोपमः।
आमवाताढ्यवातादीन् कृमिदुष्टव्रणानि च।।
प्लीहगुल्मोदरानाहदुर्नामानि विनाशयेत्।
अग्निञ्च कुरुते दीप्तं तेजोवृद्धिं बलं तथा।।
वातरोगान् जयत्येष सन्धिमज्जागतानपि।।
(भै. र. आमवात/90-95)

घटक द्रव्य :-

1. चित्रकमूल	- 1 भाग	2. पिप्पलीमूल	- 1 भाग
3. यवानी	- 1 भाग	4. कृष्ण जीरक	- 1 भाग
5. विडङ्ग	- 1 भाग	6. अजमोदा	- 1 भाग
7. श्वेत जीरक	- 1 भाग	8. देवदारु	- 1 भाग
9. चव्य	- 1 भाग	10. सूक्ष्मैला	- 1 भाग
11. सैंधव लवण	- 1 भाग	12. कुष्ठ	- 1 भाग
13. रास्ना	- 1 भाग	14. गोक्षुर	- 1 भाग
15. धनियाँ	- 1 भाग	16. हरीतकी	- 1 भाग
17. बिभीतकी	- 1 भाग	18. आमलकी	- 1 भाग
19. मुस्ता	- 1 भाग	20. शुण्ठी	- 1 भाग
21. मरिच	- 1 भाग	22. पिप्पली	- 1 भाग
23. दालचीनी	- 1 भाग	24. उशीर	- 1 भाग
25. यवक्षार	- 1 भाग	26. तालीसपत्र	- 1 भाग
27. तेजपत्र	- 1 भाग	28. शुद्ध गुग्गुलु	- 27 भाग

सहायक द्रव्य :- गोघृत यथावश्यक

निर्माण विधि:- क्र. सं.1 से 27 तक की सभी औषधियों को पृथक्-पृथक् इमामदस्ते में डालकर कूटते हैं। फिर शुद्ध गुग्गुलु में सूक्ष्म चूर्ण मिलाकर अच्छी प्रकार से कूटते हुए थोडा-थोडा घी मिलाकर मुलायम किया जाता है। या शुद्ध गुग्गुलु में थोड़ा जल मिलाकर अग्नि पर पिघलाकर एवं गुग्गुलुपाक करके उसमें शेष द्रव्यों का चूर्ण मिलाकर थोड़ा घी के साथ कूटकर मुलायम करते हैं। फिर 1-1 ग्राम की गोलियाँ बनाकर छायाशुष्क करके काँच के जार में सुरक्षित रखें।

मात्रा :- 3 ग्राम

अनुपान :- रास्ना सप्तक क्वाथ, दशमूल क्वाथ या रोगानुसार।

मुख्य उपयोग :- आमवात, आढ्यवात, कृमिरोग, दुष्टव्रण, गुल्म, प्लीहारोग, उदररोग, अर्श, समस्त वातव्याधि, सन्धिवात, मज्जागतवात।

सिंहनाद गुग्गुलु :-

पलत्रयं कषायस्य त्रिफलायाः सुचूर्णितम्।
सौगन्धिकपलश्चैकं कौशिकस्य पलं तथा।।
कुडवं चित्रतैलस्य सर्वमादाय यत्नतः।
पाचयेत्पाकविद्वैद्यः पात्रे लौहमये दृढे।।

हन्ति वातं तथा पित्तं श्लेष्माणं खञ्जपङ्गुताम्।
श्वासं सुदुर्जयं हन्ति कासं पञ्चविधं तथा।।
कुष्ठानि वातरक्तानि गुल्मशूलोदराणि च।
आमवातं जयेदेतदपि वैद्यविवर्जितम्।।

(भै. र. आमवात/130-133)

घटक द्रव्य :-

1. हरीतकी - 1 पल
2. बिभीतकी - 1 पल
3. आमलकी - 1 पल
4. शुद्ध गन्धक - 1 पल
5. शुद्ध गुग्गुलु - 1 पल
6. एरण्डतैल - 4 पल

क्वाथार्थ जल :- 576 मि. ली.

अवशिष्ट क्वाथ :- 144 मि. ली.

निर्माण विधि :- त्रिफला को यवकुट कर जल में उबालकर चतुर्थांश शेष रहने पर छान लें। फिर किसी लौह की कड़ाही में त्रिफला क्वाथ और शुद्ध गुग्गुलु को मिलाकर उबालते है। जब गुग्गुलु त्रिफला क्वाथ में घुल जाये तब शुद्ध गन्धक और एरण्ड तैल को मिलाकर पकावें। हमेशा दर्वी से चलाते रहें। जब अच्छी तरह पाक हो जाये तब काँच के जार में सुरक्षित रखें। एरण्ड तैल की मात्रा ग्रन्थानुसार 4 पल मिलाने पर अर्धघन (द्रव रूप) रहता है, अतः वटी नहीं बनती है। एरण्ड तैल की मात्रा कम लेने पर ही वटी बनती है।

मात्रा:- 3 ग्राम

अनुपान :- उष्ण जल

मुख्य उपयोग :- आमवात, खञ्ज, पङ्गु, श्वास, पञ्चविध कास, कुष्ठ, वातरक्त, गुल्म, उदरशूल, त्रिदोषविकारनाशक।

काञ्चनार गुग्गुलु :-

काञ्चनारत्वचो ग्राह्यं पलानां दशकं बुधैः।।
त्रिफला षट्पला कार्या त्रिकटु स्यात्पलत्रयम्।
पलैकं वरुणं कुर्यादेलात्वक्पत्रकम् तथा।।
एकैकं कर्षमात्रं स्यात्सर्वाण्येकत्र चूर्णयेत्।
यावच्चूर्णमिदं सर्वं तावन्मात्रन्तु गुग्गुलुः।।
संकुट्यसर्वमेकत्र पिण्डं कृत्वा च धारयेत्।
गुटिका शाणमात्रेण प्रातर्ग्राह्या यथोचितम्।।

(शा. सं. म. ख. 7/95-98)

घटक द्रव्यः-

1. काञ्चनार त्वक्	- 480 ग्राम	2. हरीतकी	- 96 ग्राम
3. बिभीतकी	- 96 ग्राम	4. आमलकी	- 96 ग्राम
5. शुण्ठी	- 48 ग्राम	6. मरिच	- 48 ग्राम
7. पिप्पली	- 48 ग्राम	8. वरुण	- 48 ग्राम
9. सूक्ष्मैला	- 12 ग्राम	10. दालचीनी	- 12 ग्राम
11. तेजपत्र	- 12 ग्राम	12. शुद्ध गुग्गुलु	- 996 ग्राम

निर्माण विधि :- क्र. सं. 1 से 11 तक की औषधियों का सूक्ष्म चूर्ण करके शुद्ध गुग्गुलु में मिलाकर अच्छी प्रकार से कूट लेते हैं। फिर थोडा-थोडा घृत देकर मुलायम होने तक कूटकर अन्त में 1-1 ग्राम की गोलियाँ बनाकर छाया शुष्क करके काँच पात्र में सुरक्षित रखें।

मात्राः- 3 ग्राम

अनुपान :- उष्णजल, हरीतकी क्वाथ, खदिरसार क्वाथ, मुण्डी क्वाथ।

मुख्य उपयोग :- गण्डमाला, अपची, अर्बुद, ग्रन्थि, गुल्म, कुष्ठ, भगन्दर।

वटी कल्पना :-

वटी कल्क और चूर्ण कल्पना का ही विकसित स्वरूप है। जो द्रव्य अप्रिय रस या अप्रिय गन्ध वाले होते हैं, उनको आसानी से निगलने के लिए, साथ ही निश्चित मात्रा में प्रयोग हेतु तथा औषध के गुण-वीर्य अधिक समय तक सुरक्षित रहे, इस उद्देश्य से वटी बनायी जाती है। साधारण भाषा में इन्हें गोलियाँ (Pills) कहा जाता है।

वटी के पर्यायवाची शब्दः- आकृति, परिमाण, प्रयोगमार्ग आदि के विचार से वटी को वटक, वटिका, गुटिका, चक्रिका, मोदक, पिण्ड, पिण्डी, गुड और वर्ति कहा जाता है।

वटिका (वटी), गुटिका (गुटी) छोटे गोल आकार की गोलियाँ होती है। अधिक परिमाण की अर्थात बड़े आकार की हो तो इन्हें वटक, पिण्ड या मोदक कहा जाता है। वटक कल्पना 500 मि.ग्रा. (4 रत्ती) से बड़ी होती है। मोदक (लड्डू) गोल आकार में 20 ग्राम से 100 ग्राम तक की मात्राओं में बनाये जाते हैं। जो वर्ति (Stick) की तरह लम्बी आकृति की वटी बनाते है, उसे वर्ति (Suppository) कहते हैं। औषध द्रव्यों के चूर्ण के साथ गुड डालकर बनाने पर गुड कल्पना कहा जाता है। गुग्गुलु डालकर बनाने पर गुग्गुलु कल्पना कहा जाता है। शर्करा के साथ पिण्ड की तरह बनाने पर पिण्ड या पिण्डी कही जाती है। चपटी आकृति की वटी को चक्रिका कहते हैं। अंग्रेजी में गोलाकार वटी को Pill तथा चपटी आकृति की वटी को Tablet कहते हैं। वटी को यूनानी में हब्बे कहा जाता है।

वटी निर्माण परिभाषा:-

लेहवत् साध्यते वह्नौ गुडो वा शर्करा तथा।
गुग्गुलुर्वा क्षिपेत्तत्र चूर्णं तन्निर्मिता वटी।।
कुर्यादवह्निसिद्धेन क्वचिद् गुग्गुलुना वटीम्।
द्रवेण मधुना वापि गुटिकां कारयेद् बुधः।।
(शा. सं. म. ख. 7/2-3)

वटी निर्माण की तीन विधियाँ है:-

1. गुड अथवा शर्करा अथवा शुद्ध गुग्गुलु को अग्नि पर चढ़ाकर लेहवत् पाक करके उसमें चूर्ण डालकर वटी बना लेते हैं।

2. कभी-कभी बिना अग्निसंयोग के गुग्गुलु के साथ औषधचूर्ण को मिलाकर वटी बना लेते हैं।

3. औषध चूर्ण में द्रव (क्वाथ, स्वरस, गोमूत्र, आदि), मधु आदि की भावना देकर भी वटी बना ली जाती है।

प्रथम विधि के अनुसार वटी बनाने हेतु पहले गुड, शर्करा अथवा गुग्गुलु में थोड़ा जल (लगभग चतुर्थांश) मिलाकर अग्नि पर चढ़ाकर लेहवत् पाक करते हैं, फिर उसमें औषधद्रव्यों का चूर्ण मिलाकर वटी बनायी जाती है।

द्वितीय विधि में गुग्गुलु को त्रिफलाक्वाथ में शोधन करके सुखा लेते हैं। फिर शुद्ध गुग्गुलु को इमामदस्ते में रखकर कूटते हैं। कूटते-कूटते जब गुग्गुलु मृदु हो जाये तब उसमें थोड़ी-थोड़ी मात्रा में चूर्ण मिलाते जाना चाहिए तथा पुनः कूटते जाना चाहिए। सम्पूर्ण चूर्ण गुग्गुलु में मिल जाने पर तथा वटी बनने योग्य मृदु गुग्गुलु हो जाने पर उसकी उचित आकार व आकृति की वटियाँ बनाकर छायाशुष्क कर लें। गुग्गुलु कूटने से पहले इमामदस्ते में थोड़ा घृत लगा लेना चाहिए, जिससे गुग्गुलु इमामदस्ते में नहीं चिपकें। गुग्गुल कूटते समय थोड़ा-थोड़ा घृत मिलाते रहना चाहिए। इसी प्रकार गुड को भी इमामदस्ते में कूट-कूटकर वटी बनायी जाती है।

तृतीय विधि के अनुसार औषध द्रव्य के चूर्ण को खरल में डालकर किसी स्वरस, क्वाथ आदि द्रव मिलाकर मर्दन करते हैं। मर्दन करते-करते जब औषध कल्क के समान पिण्ड बन जाये तो उससे उचित आकार की वटी बनाकर सुखा लेते हैं।

प्रक्षेप द्रव्य :-

वटी निर्माण में शर्करा डालनी हो तो चूर्ण से चतुर्गुण, गुड डालना हो तो द्विगुण, गुग्गुलु और मधु चूर्ण के समान मात्रा में मिलाना चाहिए। द्रव (जल, स्वरस, गोमूत्र, क्वाथ आदि) चूर्ण से द्विगुण मिलाना चाहिए।

सिता चतुर्गुणा देया वटीषु द्विगुणो गुडः।
चूर्णाच्चूर्णसमः कार्यो गुग्गुलुर्मधु तत्समम्।।
द्रवं च द्विगुणं देयं मोदकेषु भिषग्वरैः।।

(शा. सं. म. ख. 7/4-5)

वटी की मात्रा :-

कर्षप्रमाणा तन्मात्रा बलं दृष्ट्वा प्रयुज्यते।।

(शा. सं. म. ख. 7/5)

अर्थात् वटी की सामान्य मात्रा एक कर्ष (12 ग्राम) हैं, किन्तु रोग, रोगी एवं औषधियों के बलाबल का विचार करके वटी की मात्रा निर्धारित करनी चाहिए।

विमर्शः-आचार्य शार्ङ्धर ने वटी की मात्रा 1 कर्ष (12 ग्राम) बताई है, जो अधिक प्रतीत होती है। यह मात्रा मोदक की मानी जा सकती है, क्योंकि मोदक 10 ग्राम, 20 ग्राम, 50 ग्राम आदि मात्राओं में बनाये जाते हैं। वटी की यह मात्रा पूरे दिन (24 घंटे) के हिसाब से विभाजित मात्रा में दी जा सकती है।

रसभस्मों या वत्सनाभ आदि विष द्रव्यों से निर्मित वटी की मात्रा 1 रत्ती से 2 रत्ती (125 मि.ग्रा. से 250 मि.ग्रा.) है। यथा-संजीवनी वटी, त्रिभुवनकीर्तिरस आदि। काष्ठादि द्रव्यों से निर्मित वटी की मात्रा प्रायः 1 ग्राम से 3 ग्राम तक दी जा सकती है। यथा चन्द्रप्रभा वटी, मरिच्यादि वटी।

अतः वटी की मात्रा रोग, रोगी एवं औषध द्रव्यों के बलाबल का विचार करके निर्धारित करनी चाहिए।

अनुपानः-वटियाँ प्रायः किसी द्रव (जल, दुग्ध, स्वरस, क्वाथ, शार्कर आदि) के अनुपान से ली जाती है।

वटी कल्पना का प्रयोजनः-

1. औषध द्रव्यों के कटु, तिक्त, कषाय आदि रसों एवं अप्रिय गन्ध के कारण चूर्ण को सेवन करने में कष्ट होता है, अतः उनको सेवन के लिए वटी बनायी जाती है।

2. चूर्ण अल्प समय (दो माह) में हीन वीर्य हो जाता है, अतः औषध द्रव्यों को अधिक समय (एक वर्ष) तक सवीर्य बनाये रखने हेतु वटी कल्पना का आविष्कार हुआ है।

3. औषध द्रव्यों को निश्चित मात्रा में लेने हेतु उसी परिमाण की वटी बनायी जाती है।

4. कस्तूरी अम्बर, कर्पूर आदि द्रव्यों के सुगन्ध, वर्ण, रस तथा कार्मुक अंशों की सुरक्षा हेतु वटी बनायी जाती है।

5. वटी को जल, दुग्ध, स्वरस आदि के साथ सुविधापूर्वक निगला जा सकता है।

वटी निर्माण में सावधानियाँ:-

1. सूक्ष्मचूर्ण से ही वटी बनानी चाहिए। मोटे चूर्ण से निर्मित वटी फटी-फटी सी रूक्ष व टूटने वाली बनती है। ऐसी वटियाँ कुछ तो सूखते ही बिखर जाती है एवं कुछ हिलाने से बिखर जाती है।

2. वटी उतने ही प्रमाण में बनानी चाहिए, जो सरलतापूर्वक निगली जा सके।

3. चूर्ण में द्रव पदार्थ डालकर सुभावित (अच्छी तरह मर्दन) करके बनाने से वटी अच्छी बनती है और टूटने का भय नहीं रहता है।

4. वटी बनाते समय हाथ या मशीन आदि में स्नेहांश (घृत) लगा लेना चाहिए। ऐसा करने से वटी मुलायम बनती है तथा चिपकती नहीं है।

5. वटी ऐसे द्रव्यों से बनानी चाहिए जो आमाशय में जाकर शीघ्र घुल जाये। अन्यथा वटी घुले बिना ही मल के साथ निकल जाती है।

6. वटी न अधिक कठिन और न अधिक मृदु बनानी चाहिए।

चित्रकादि वटी :-

चित्रकं पिप्पलीमूलं द्वौ क्षारो लवणानि च।
व्योषं हिंग्वजमोदाच्च चव्यं चैकत्र चूर्णयेत्।।
गुटिका मातुलुङ्गस्य दाडिमस्य रसेन वा।
कृता विपाचयत्यामं दीपयत्याशु चानलम्।।

(च. चि. 15/95-96)

घटक द्रव्य :-

1. चित्रक मूल - 1 भाग
2. पिप्पलीमूल - 1 भाग
3. यवक्षार - 1 भाग
4. स्वर्जिक्षार - 1 भाग
5. सौवर्चल लवण - 1 भाग
6. विड़ लवण - 1 भाग
7. सैन्धव लवण - 1 भाग
8. सामुद्र लवण - 1 भाग
9. औद्भिद लवण - 1 भाग
10. शुण्ठी - 1 भाग
11. मरिच - 1 भाग
12. पिप्पली - 1 भाग
13. शुद्ध हींग - 1 भाग
14. अजमोदा - 1 भाग
15. चव्य - 1 भाग

भावना द्रव्य :- मातुलुङ्ग स्वरस अथवा दाडिमफल स्वरस-यथावश्यक

निर्माण विधि :- उपरोक्त सभी द्रव्यों को पृथक्-पृथक् सूक्ष्म चूर्ण बनाकर एवं खरल में डालकर मातुलुङ्ग नींबू या दाडिम स्वरस की भावना देकर मर्दन करें। फिर 4-4 रत्ती की गोलियाँ बना सुखाकर काँच के जार में सुरक्षित रखें।

मात्रा :- 4 रत्ती

अनुपान :- उष्ण जल, तक्र

मुख्य उपयोग:- अग्निमान्द्य, आमदोष, ग्रहणी।

सञ्जीवनी व्रटी:-

विडङ्गं नागरं कृष्णा पथ्यामलबिभीतकम्।।
वचा गुडूची भल्लातं सविषं चात्र योजयेत्।
एतानि समभागानि गोमूत्रेणैव पेषयेत्।।
गुञ्जाभा गुटिका कार्या दद्यादार्द्रकजै रसैः।
एकामजीर्णगुल्मेषु द्वे विसूच्यां प्रदापयेत्।।
तिस्रश्च सर्पदष्टे तु चतस्रः सान्निपातिके।।

(शा. सं. म. ख. 7/18-21)

घटक द्रव्य:-

1. विडङ्ग	- 1 भाग	2. शुण्ठी	- 1 भाग
3. पिप्पली	- 1 भाग	4. हरीतकी	- 1 भाग
5. बिभीतक	- 1 भाग	6. आमलकी	- 1 भाग
7. वचा	- 1 भाग	8. गुडूची	- 1 भाग
9. शुद्ध भल्लातक	- 1 भाग	10. शुद्ध वत्सनाभ	- 1 भाग

भावना द्रव्य :- गोमूत्र यथावश्यक

निर्माण विधि:- उपरोक्त सभी द्रव्यों को पृथक्-पृथक् इमामदस्ते में डालकर वस्त्रपूत सूक्ष्म चूर्ण करें। फिर खरल में डालकर गोमूत्र की भावना देते हुए मर्दन करें। बाद में जब वर्ति बनने लग जाये तब 1-1 रत्ती की गोलियाँ बनाकर और सुखा कर काँच के जार में सुरक्षित रखें।

मात्रा :-

अजीर्ण और गुल्म	- 1 रत्ती	विसूचिका	- 2 रत्ती
सर्पदंश	- 3 रत्ती	सन्निपात ज्वर	- 4 रत्ती

अनुपान :- आर्द्रक स्वरस

मुख्य उपयोग :- अजीर्ण, गुल्म, सर्पदंश, विसूचिका एवं सन्निपात ज्वर।

अर्कवटी :-

सौवर्चलं सादरमर्कपुष्पं मरीचमेकत्र समं विमर्द्य।
गुञ्जा प्रमाणा गुटिका विधेया कर्षन्ति कार्श्यं क्रमशः कृशानोः ।।
(सि. भे. म. मा. अग्निमान्द्य/254)

घटक द्रव्य:-

1. सौवर्चल लवण	- 1 भाग	2. शु. नवसादर	- 1 भाग
3. अर्कपुष्प	- 1 भाग	4. मरिच	- 1 भाग

निर्माण विधि:-सर्वप्रथम अर्कपुष्प को छोड़कर सभी द्रव्यों को इमामदस्ते में डालकर सूक्ष्म चूर्ण का निर्माण करें। फिर खरल में आर्द्र अर्कपुष्प डालकर धीरे-धीरे चूर्ण को मिलाते हुए मर्दन करें। अन्त में 2-2 रत्ती की गोलियाँ बनाकर एवं छाया में सुखाकर काँच पात्र में सुरक्षित रखें।

मात्रा:-500 मि.ग्रा.

अनुपान:-जल

मुख्य उपयोग:-कफज अग्निमांद्य, गुल्म, अजीर्ण, अम्लपित्त।

लवङ्गादि वटी :-

तुल्या लवङ्गमरिचाक्षफलत्वचः स्युः
सर्वैः समो निगदितः खदिरस्यसारः।
बब्बूलवृक्षजकषाययुतश्च चूर्णं
कासान्निहन्ति गुटिका घटिकाऽष्टकान्ते।।
(वैद्यजीवन कासश्वास चि./7)

घटक द्रव्य:-

1. लवङ्ग	- 1 भाग	2. मरिच	- 1 भाग
3. बिभीतक फलत्वक्	- 1 भाग	4. खदिरसार (कत्था)	- 3 भाग

भावना द्रव्य :- बब्बूल वृक्षत्वक् क्वाथ-यथावश्यक

निर्माण विधि:- उपरोक्त द्रव्यों का इमामदस्ते में पृथक्-पृथक् सूक्ष्म चूर्ण बना खरल में डालकर बब्बूलवृक्षत्वक् स्वरस या क्वाथ की भावना देकर भली भाँति मर्दन करके 4-4 रत्ती की गोलियाँ बनाकर छाया शुष्क कर काँच के जार में सुरक्षित रखें।

मात्रा :- 4 रत्ती की वटी चूषणार्थ।

मुख्य उपयोग:- कास, श्वास।

वर्तिकल्पनाः-

वर्ति कल्पना वटी कल्पना के अन्तर्गत आती है। वर्ति प्रायः दोनों किनारों पर पतली और बीच में थोड़ी मोटी यवाकृति (जौ के समान आकृति) के समान होती है। कभी-कभी एक समान लम्बी आकृति की गोलाकर भी होती है। इन वर्तियों के प्रयोग से वात का अनुलोमन तथा सञ्चित दोषों (मल-मूत्र-कफ-रक्त आदि) का निष्कासन हो जाता है। वर्ति रोग, रोगी, स्थान, दोष एवं कर्म आदि के भेद से अनेक प्रकार की होती है। यथाः-

1. गुदवर्ति या फलवर्ति
2. योनिवर्ति
3. शिश्नवर्ति
4. नेत्रवर्ति
5. नासावर्ति
6. व्रणवर्ति
7. धूमवर्ति

गुदा, योनि या शिश्न में प्रवेश के लिए जिन वर्तियों का अवयवानुसार अलग-अलग निर्माण किया जाता है, उन सभी वर्तियों को फलवर्ति कहा जाता है। किन्तु सामान्य रूप से फलवर्ति से गुदवर्ति का ग्रहण किया जाता है।

1. गुदवर्ति (Rectal suppository) :- गुदा में संचित शुष्क मल, प्रकुपित वायु, गुदा में रुका हुआ बस्ति द्रव अथवा गुदा में अवरूद्ध अन्य दोष, दूष्य आदि को बाहर निकालने के लिए गुदवर्ति (फलवर्ति) का प्रयोग किया जाता है। गुदवर्ति का निर्माण रेचक एवं वातानुलोमक औषधों का सूक्ष्म चूर्ण बनाकर क्षार एवं लवण मिश्रित कर, गुड़पाक करके उसमें चूर्णों को डालकर अंगुष्ठ प्रमाण की (अंगूठे की जितनी मोटी एवं लम्बी) स्निग्ध वर्ति बनायी जाती है। इसे गुदवर्ति कहते हैं।

गुदवर्ति को कठिन बनाने के लिए उसमें गुड मिलाना आवश्यक होता है। गुड औषध चूर्ण से समान मात्रा में डाले अथवा उतना गुड डाले जिससे ठीक से वर्ति का निर्माण हो सके, जैसा कि आचार्य चक्रपाणि ने लिखा है :-

"गुडेनेति वचनेन यावता गुडेन वर्तिः कर्त्तुं युज्यते तावन्मानो गुडो देयः।"

(च. द.)

"इयं च वर्ति गुडपाकेन कठिना कर्त्तव्या यथाश्लक्ष्णा भवति।"

(च. सि. 9/58-61 पर चक्रपाणि टीका)

गुडपाक करने हेतु सर्वप्रथम एक कडाही में गुड और थोड़ा जल मिलाकर द्रवित करें। द्रवित होने पर वस्त्र से छानकर पुनः गुडपाक के लक्षण दिखायी देने तक

पाक करें। फिर उसे अग्नि से नीचे उतारकर क्षार लवण मिश्रित औषधचूर्ण मिलाकर अंगुष्ठ प्रमाण की श्लक्ष्ण वर्ति बना लें।

प्रयोग के समय वर्ति को घृत में भिगोकर तथा गुदा में घृत लगाकर धीरे-धीरे प्रवेश कराना चाहिए, जिससे वर्ति का गुदा में प्रवेश आसानी से हो:-

घृताभ्यक्ता गुदे क्षेप्या श्लक्ष्णा स्वाङ्गुष्ठसन्निभा।
मल-प्रवर्तिनी वर्तिः फलवर्तिश्च सा स्मृता।।

(शा. सं. उ. ख. 7/15)

2. योनिवर्ति (Vaginal suppository-pessary) :- स्त्रियों के गर्भाशय सम्बन्धी विकारों जैसे-प्रदर, गर्भस्राव, गर्भाशय शूल, गर्भाशय शोथ, गर्भाशय व्रण आदि में शोधन और दोषहरण हेतु स्त्रियों के अपत्यपथ में योनिवर्ति का प्रयोग किया जाता है।

गर्भाशय शोधक एवं दोषहर द्रव्यों यथा-अशोक त्वक्, लोध्रत्वक्, जीरक, लवण, क्षार, हींग, एलुवा (कुमारी घनसत्त्व) आदि द्रव्यों की गुड के साथ योनिवर्ति बनाई जाती है। इसकी लम्बाई आयु के अनुसार 2 अंगुल से 6 अंगुल तथा मोटाई तर्जनी अंगुली के सदृश रखनी चाहिए।

स्त्रियों के मूत्रमार्ग में प्रवेश हेतु वर्ति उत्तरवस्ति यन्त्र की नली के समान लम्बी होनी चाहिए, जिसको आगे की तरफ सर्षप के समान मोटी तथा पीछे की तरफ उड़द के समान मोटी रखनी चाहिए।(च.सि.9/58-61 पिप्पल्यादि वर्ति)

3. शिश्नवर्ति (Urethral Bougies):-यह वर्ति पुरुष के शिश्न छिद्र (मूत्रेन्द्रिय) में प्रवेश के लिए बनायी जाती है। इसके प्रयोग से मूत्रकृच्छ्र, मूत्राघात, अश्मरी, मूत्राशय शूल, पूयमेह तथा उष्णवातादि रोग नष्ट हो जाते हैं।

इस वर्ति का निर्माण वरुण, पाषाणभेद, गोक्षुर, यवक्षार, सूर्यक्षार (कलमीशोरा), नवसादर, स्फटिका, पुनर्नवा, तृणपञ्चमूल आदि औषधद्रव्यों के चूर्णों को गुड के साथ मिलाकर किया जाता है। यह मूत्रनली के छिद्र के आकार की पतली एवं 4 से 12 अंगुल तक लम्बी बनायी जाती है। इसके प्रयोग से मूत्र की प्रवृत्ति सम्यक् रूप से होती है।

आधुनिक चिकित्सा प्रणाली (Allopathy medicine) में अनेक प्रकार की वर्ति प्रचलित है। मुख्य रूप से Glycerine suppository का प्रयोग गुदवर्ति के रूप में होता है। ग्लिसरीन सपोजिटरी (Glycerine suppository) के अतिरिक्त अन्य वर्तियों में Theobroma oil का प्रयोग होता है, जो 25° सेन्टग्रेट तापक्रम पर

द्रवित हो जाता है, अतएव भारत जैसे ऊष्ण देश में वर्ति बनाने के लिए Theobroma oil में श्वेत मधूच्छिष्ट (White beeswax) मिलाया जाता है, जिससे Theobroma oil का द्रवणांक 25° सेन्टीग्रेड से बढ़कर 37° सेन्टीग्रेड हो जाता है। फिर उसको द्रवित करके उत्तम लोहे के बने सांचे (Moulds) में डालकर वर्ति बनायी जाती है।

4. नेत्रवर्ति :- नेत्ररोगों जैसे-तिमिर, काच, अधिमन्थ, रात्र्यन्ध, पोथकी, अञ्जननामिका आदि रोगों में तीक्ष्ण, रूक्ष, कटु और लेखन औषधियों (शंखनाभि, विभीतक फलमज्जा, त्रिकटु, कुष्ठ, तुत्थ, वचा आदि) से यवक्कार वर्ति बनाकर प्रयोग किया जाता है। जैसे-चन्द्रोदयवर्ति।

5. नासावर्तिः-शिरोरोग यथा शिरः शूल, शिरोकृमि तथा नासारोगों यथा-प्रतिश्याय, पीनस आदि रोगों में नासामार्ग का शोधन करने हेतु नासावर्ति का प्रयोग किया जाता है। इसके लिए तीक्ष्ण एवं कृमिघ्न द्रव्यों यथा अपामार्ग बीज, विडंग, शिरीष बीज, कट्फल, मरिच आदि द्रव्यों के सूक्ष्म चूर्ण को वस्त्र में लपेटकर (वर्ति के आकार में लम्बी बनाकर) नासा में प्रवेश करने पर खूब छींक आती है तथा उपर्युक्त रोग नष्ट हो जाते हैं।

6. व्रणवर्तिः-पक्व व्रणों में से या शस्त्रकर्म के पश्चात् व्रण के छिद्रों में से भली प्रकार पूय (Pus) नहीं निकलने से उनमें शोथ, लालिमा, वेदना आदि कष्ट हो जाते हैं तथा व्रणों का रोपण नहीं होता है तो निम्बपत्र, हरिद्रा, स्फटिका, तुत्थ आदि द्रव्यों को पीसकर पतली वर्ति बनाकर या वस्त्रवर्ति बनाकर व्रणछिद्र में प्रवेश करायी जाती है, जिससे दूषित रक्त व पूय का निर्हरण होकर नाडीव्रण, सूक्ष्म मुख वाले व्रणों का भी रोपण हो जाता है।

7. धूमवर्तिः-ऊर्ध्वजत्रुगत रोगों तथा पीनस, शिरःशूल, मन्यास्तम्भ, दन्त एवं मुखरोग, श्वास, कास, हिक्का तथा कफवातज रोगों में तत्तद्रोगहर द्रव्यों (जटामांसी, हरेणु, प्रियंगु, ज्योतिष्मति, अपराजिता, मनः शिला आदि) को पीसकर वर्ति बना ली जाती है और उस धूमवर्ति को धूमनेत्र में रखकर प्रयोग करते हैं, जिससे उपरोक्त ऊर्ध्वजत्रुगत रोगों का शमन होता है।

फलवर्तिः-

मदनं पिप्पली कुष्ठं वचा गौराश्च सर्षपाः।
गुडक्षारसमायुक्ताः फलवर्तिरिहोच्यते ॥

(भै. र. उदावर्त/9)

घटक द्रव्य :-

1. मदनफल	- 10 ग्राम	2. पिप्पली	- 10 ग्राम
3. कुष्ठ	- 10 ग्राम	4. वचा	- 10 ग्राम
5. श्वेत सर्षप	- 10 ग्राम	6. गुड	- आवश्यकतानुसार
7. यवक्षार	- 10 ग्राम		

निर्माण विधि :- सर्वप्रथम क्र.सं. 1 से 5 तक के द्रव्यों का पृथक्-पृथक् सूक्ष्म चूर्ण कर लें। फिर गुड में थोड़ा जल मिलाकर अग्नि पर चढ़ाकर गुडपाक करें। गुडपाक होने पर उतारकर उपरोक्त औषधियों तथा यवक्षार का चूर्ण मिलाकर अंगूठे के समान (अङ्गुष्ठसन्निभा) आकृति की वर्ति बनाकर शुष्क कर लें। थोड़ा सा घी भी इन पर लगा लेना चाहिए।

प्रयोग :- उदावर्त रोग में गुदवर्ति के रूप में स्थानीय प्रयोग किया जाता है।

चन्द्रोदया वर्तिः-

शङ्खनाभिर्बिभीतस्यमज्जा पथ्या मनःशिला।
पिप्पली मरिचं कुष्ठं वचा चेति समांशकम्।।
छागीक्षीरेण सम्पिष्य वर्तिं कृत्वा यवोन्मिताम्।
हरेणुमात्रां संघृष्य जलैः कुर्यादथाञ्जनम्।।
तिमिरं मांसवृद्धिं च काचं पटलमर्बुदम्।
रात्र्यन्ध्यं वार्षिकं पुष्पं वर्तिश्चन्द्रोदया जयेत्।।

(शा. सं. उ. ख. 13/75-77)

घटक द्रव्यः-

1. शंखनाभि	- 1 भाग	2. बिभीतक मज्जा	- 1 भाग
3. हरीतकी	- 1 भाग	4. शुद्ध मनःशिलाः	- 1 भाग
5. पिप्पली	- 1 भाग	6. मरिच	- 1 भाग
7. कुष्ठमूल	- 1 भाग	8. वचा	- 1 भाग

भावना द्रव्य :- अजा दुग्ध-यथावश्यक

निर्माण विधिः- उपरोक्त सभी द्रव्यों का पृथक्-पृथक् सूक्ष्म चूर्ण कर खरल में डालकर अजादुग्ध से मर्दन करें। जब गोली बनाने जैसा चिकना हो जाये तब यवाकृति वर्ति बनायें। फिर इसे छाया शुष्क कर सुरक्षित रखें। आवश्यकतानुसार इस वर्ति को साफ एवं चिकने पत्थर पर शहद या जल के साथ घिसकर नेत्रों में अञ्जन करें।

प्रमुख उपयोगः- तिमिर, मांसवृद्धि, काच, पटल, अर्बुद, अधिमांस, रात्र्यन्ध।

वटी का आधुनिक मत:-

अंग्रेजी भाषा में गोल या अर्धवृत्ताकार वटी या गुटिका के लिए Pill तथा टिकिया या चक्रिका, जो चिपटी आकृति की बनती है, के लिए tablet शब्द का प्रयोग होता है। लेटिन भाषा में वटी या गुटिका को Pillula तथा टिकिया या चक्रिका को tabellae कहते हैं। ब्रिटिश राजकीय औषधिकोष (British pharmacopea) में Pill तथा Tablet के लिए निम्न वर्णन मिलता है:-

एक या एक से अधिक औषध द्रव्यों से निर्मित किये गये उस घन या अर्द्धघन कल्प को वटी कहते हैं, जिसको हाथ से या मशीनों से गोल बना लिया जाता है। वटियों (Pills) में यह विशेषता होती है कि इनका सेवन जल आदि द्रव की सहायता से सरलता पूर्वक किया जा सकता है। कटु रस युक्त औषध की वटी भी सरलता से निगली जा सकती है। इसके अलावा वटियाँ एक निश्चित मात्रा की होती है, अतः औषध वितरण में या वटी के सेवन में बार-बार तौल कर उचित व सुरक्षित मात्रा निर्धारण की आवश्यकता नहीं होती है। वटी के विषय में विशेष ध्यान यह रहना चाहिए कि वटियाँ न अधिक कठोर हो और न अत्यधिक मृदु हो, क्योंकि अधिक कठोर वटी का सेवनोपरान्त अच्छी तरह पाचन नहीं होगा तथा अधिकांश मल के साथ मिलकर बाहर निकल जायेगी। अधिक मृदु वटी का आकार बदल जायेगा और वे एक दूसरे से चिपक जायेगी। उक्त दोष को दूर करने के लिए तथा यदि उनका स्वाद अरुचिकारक है तो उनको स्वर्ण या रजत वर्क से आवृत या अवगुंठित (Coating) कर दिया जाता है। भारत जैसे उष्ण देशों में ऋतु के प्रभाव के कारण समय-समय पर वटियाँ अत्यधिक कठोर या मृदु हो जाती है, यथा ग्रीष्म ऋतु में अत्यधिक कठोर तथा वर्षाऋतु में अतिमृदु हो जाती है। इस कारण वटियाँ बनाने के बाद उनको अच्छी तरह बन्द की हुई शीशी में रखना चाहिए।

वटियाँ प्रायः पाँच ग्रेन से अधिक परिमाण की नहीं होनी चाहिए। इसके बनाने की विधि यह है कि पहले खरल में औषधियों का चूर्ण लेकर किसी उपयुक्त द्रव के साथ भावना देकर कल्क बनाया जाता है। उसके बाद इस कल्क की वर्ति बनाकर इच्छानुसार भिन्न भिन्न आकार और मात्रा की वटी पिल मेकिंग मशीन (Pill making machine) से बना ली जाती हैं। जब औषध द्रव्य कम हो या मशीन के अभाव में उसके कल्क को वटी बनाने वाली पट्टिका (Pill tile) पर रख कर स्पेचुला की सहायता से भी वटी बनायी जा सकती है। इन दोनों के अभाव में हाथ से वटियाँ बनायी जा सकती हैं। वटी पूर्ण गोल और कठोर होनी चाहिए। ब्रिटिश फार्माकोपिया में सात प्रकार की Pills का वर्णन मिलता है :-

1. Pillula Aloes
2. Pillula Aloes et Asafoetidae
3. Pillula Aloes et Ferri
4. Pillula Colocynthidis et Hyoscyami
5. Pillula Ferri Carbonate
6. Pillula Hydrargyri and
7. Pillula Rhei Co.

सभी रेचक वटियों में (Pillula Hydrargyri को छोड़कर) में मुसब्बर (Aloes) पड़ता है। सभी वटियों की मात्रा 4 से 8 ग्रेन है, केवल Pillula ferri carbonate की मात्रा 5 से 30 ग्रेन है। सभी वटियाँ काली भूरी (Blackish brown) या काली होती है, केवल Pillula Hydrargyri नीली होती है।

अधिक मात्रा में वटियाँ (Pills) पिल मेकिंग मशीन (Pill making machine) द्वारा बनायी जाती है। जिसमें वटी बनाने के लिए पहले एण्डरनर, एजरनर या पेस्ट मेकर से कल्क बनाते हैं। फिर उस कल्क से स्टिक मेकिंग मशीन (Stick/ thread making machine–वर्ति बनाने की मशीन) से वर्ति बनाकर पिल मेकिंग मशीन से वटियाँ बनाते हैं। फिर उन वटियों को पिल पॉलिशिंग पेन (Pill Polishing Pan) से गोल और वटियों पर Sugar आदि का Coating (अवगुंठन) कर लेते हैं। आजकल पिल मेकिंग मशीन में Stick making (वर्ति बनाना) एवं Pill Cutting (वटी बनाना) मशीन दोनों एक साथ भी होती हैं।

टेबलेट (Tablet) :-

टेबलेट वह है जो औषध द्रव्य के ठोस स्वरूप को निश्चित मात्रा में दबाव (Compression या molding) द्वारा विलायक (Diluents) के साथ अथवा विलायक के बिना विभिन्न आकृति तथा माप की निर्मित की जाती है।

टेबलेट् विभिन्न आकार जैसे disc shaped with covex surface, गोलाकार (Round), अण्डाकार (oval), लंबाकार या आयताकार (Oblong), बेलनाकार (Cylindrical), वर्गाकार (Square), त्रिकोणाकार (Trianguler) आदि में बनायी जाती है।

टेबलेट के लाभ:-

1. टेबलेट देखने में आकर्षक, निगलने में आसान तथा रखरखाव में सरल होती है।

2. टेबलेट पर Coating करने से उसके कटु, तिक्त आदि रस को आच्छादित कर देती है।

3. टेबलेट का निर्माण औषध की निश्चित मात्रा से किया जाता है, इसलिए रोगी में मात्रा निर्धारण आसान होता है।

4. टेबलेट पर बाह्य वातावरण का कम प्रभाव पड़ता है, इसलिए इसमें औषधीय गुण अधिक समय तक संरक्षित रहते हैं।

5. अधिक मात्रा में निर्माण होने के कारण यह सस्ती होती है।

वटी के आवश्यक गुणः-

1. टेबलेट भार, आकृति एवं आकार में एक रूप होनी चाहिए तथा उसमें औषध का वितरण समान रूप से होना चाहिए।

2. टेबलेट अत्यधिक कठोर नहीं होनी चाहिए, नहीं तो आमाशयिक स्राव में घुलनशील नहीं होती है।

3. टेबलेट भण्डारण के दौरान भौतिक व रासायनिक रूप से खराब नहीं होनी चाहिए।

4. टेबलेट सेवन करने पर शीघ्र घुलनशील होनी चाहिए।

5. टेबलेट में उत्पादन दोष (जैसे टूटी हुई, चटकी हुई, परिवर्तित रंगवाली) नहीं होना चाहिए।

टेबलेट के प्रकारः-

निर्माण के आधार पर टेबलेट दो प्रकार की होती है :-

1. Molded tablet (ढलाईकृत वटी)
2. Compressed tablet (कुंचित वटी)

1. ढलाईकृत वटी (Molded Tablet):-

यह वटी छोटी गोली चपटी (Small disk shape) साँचे में डालकर दबाव द्वारा बनाई जाती है।

सामान्यतया अधिक गुणकारी एवं अत्यधिक विषाक्त औषधियों को अल्प मात्रा में उपयोग करने हेतु मोल्डेड टेबलेट बनाई जाती है। अत्यधिक गुणकारी औषधि को विलायक (Diluent) जैसे-Lactose, Dextrose, Sucrose या Lactose and Sucrose के मिश्रण के साथ मिलाकर तथा alcohol के उपयुक्त घोल (लगभग 50% alcohol) के साथ मिलाकर एकरूप एवं मृदु कल्क बनाया जाता है। इस कल्क को Spatula या चम्मच से सांचे (Triturate mold) की एक प्लेट में भरकर दूसरी प्लेट से दबाकर Molded tablet बनायी जाती है।

Molded tablet दो प्रकार की होती है। यथा :-

(i) Hypodermic tablets

(ii) Dispensing tablets

(i) Hypodermic Tablets:- ये टेबलेट मृदु एवं आसानी से घुलनशील होती है तथा Tablet triturate mold से बनाई जाती है। ये इन्जेक्शन के घोल (Solution) के निर्माण में काम आती है। ये टेबलेट उन द्रव्यों से बनाई जाती है, जो पूर्णरूप से घुलनशील हो। उसमें अघुलनशील कण नहीं होने चाहिए। ये टेबलेट जीवाणु संक्रमण से रहित होनी चाहिए। आजकल उनका उपयोग इन्जेक्शन का Solution बनाने में कम हो गया है, क्योंकि अब Sterile parenteral solutions प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है।

(ii) Dispensing Tablets:- ये टेबलेट औषध द्रव्य की सही और उचित मात्रा से निर्मित की जाती है। इनसे अन्य औषधीय कल्पना जैसे द्रव (Liquids), चूर्ण या केप्सूल बनाये जाते हैं। ये अत्यधिक गुणकारी औषधियों से निर्मित की जाती है, जिसकी अधिक मात्रा घातक हो सकती है।

2. कुंचित वटी (Compressed Tablets) :-

(i) निगलने योग्य वटी (Oral Tablets):- इन्हें जिह्वा के ऊपर रखकर जल या अन्य किसी द्रव पदार्थ के साथ निगल लिया जाता है। इन्हें इस प्रकार निर्मित किया जाता है कि आमाशय में पहुँचकर टूट जाये और जाठरिक स्राव (Gastric secretions) में घुलकर यही से उनका अवशोषण हो सके।

Oral tablets शीघ्र घुलनशील होनी चाहिए, इसलिए औषध द्रव्य स्वयं gastro-intestinal fluids में शीघ्र घुलनशील हो या उसके निर्माण में विघटनकारक द्रव्य (Disintegrating agent) मिलाने चाहिए।

(ii) चर्वण योग्य वटी (Buccal/ChewableTablets):- इन्हें निगलने से पहले दाँतों (Teeths) के बीच रखकर तोड़ना व चबाना पड़ता है। ये वटियाँ उन्हें दी जाती है, जिन्हें वटी निगलने में कठिनाई होती है। एन्टासिड और मल्टीविटामिन की अधिकतर वटी चर्वण योग्य बनाई जाती है।

इन वटियों के निर्माण में मेनिटाल (Mannital) का आधार के रूप में प्रयोग होता है। यह एक सफेद दानेदार, रासायनिक क्रियारहित, जल अनावशोषक (Non hygroscopic), ताप स्थिरीकारक (Thermostable) और ग्लूकोज की तरह मीठा होता है। मेनिटाल महँगा होने के कारण इसके स्थान पर Sorbitol lactose, chocolate powder, dextrose and glycine का उपयोग किया जाता है। इनके

निर्माण में disintegrating agent, binding agent आदि की आवश्यकता नहीं होती है। इन वटियों का स्वाद रुचिकर होता है।

(iii) जिह्वा अधोगत वटी (Sublingual Tablets):- इन वटियों को जिह्वा के नीचे या गाल (Buccal) के अन्दर रखते हैं, जिससे औषधि धीरे-धीरे घुलकर Mucosa से ही अवशोषित हो जाती है। सामान्यतया ये वटियाँ उन द्रव्यों से निर्मित की जाती है, जो जाठरिक स्राव में नष्ट हो जाती है या क्रियाहीन होती है, आमाशय या आन्त्र (G.I.T.) से अवशोषित नहीं होती है। इन टेबलेट् में Sweetening agent जैसे-मेनिटाल और सुक्रोज का प्रयोग वटी को मीठा करने के लिए किया जाता है।

(iv) चूसने योग्य वटी (Lozenge Tablets):- इन वटियों को मुख गुहा (Oral cavity) में टूटना नहीं चाहिए अपितु धीरे-धीरे घुलना चाहिए, जिससे गले की श्लैष्मिक कला पर उसका प्रभाव लगातार बना रहे। ये मोल्डिंग और कम्प्रेशन दोनों विधियों से बनायी जा सकती है। इनमें विघटनकारी तत्त्व नहीं मिलाये जाते हैं अपितु संघटित कारक द्रव्य (Binding agent) मिलाये जाते हैं, जिससे इनकी घुलने की क्रिया धीरे-धीरे चले। इनके निर्माण में मधुर और सुगन्धित द्रव्यों का प्रयोग किया जाता है।

(v) घुलनशील वटी (Soluble Tablets):- इस प्रकार की वटी एक निश्चित सान्द्रता के विलयन के निर्माण के लिए बनायी जाती है। ये वटी विलायक में घोलने पर पूर्ण रूप से घुल जानी चाहिए, इसलिए इनके निर्माण में प्रयुक्त द्रव्य विलायक में पूर्णरूप से घुलनशील होने चाहिए। घुलनशील वटी से Mouth wash gargles, skin lotions, Douche, antibiotics और कुछ विटामिन के विलयन बनाये जाते हैं।

(vi) फेन उत्पन्न करने वाली वटी (Effervescent Tablet):- इन वटियों में कार्यकारी औषध द्रव्यों के साथ अन्य द्रव्य जैसे सोडियम बाई कार्बोनेट, साइट्रिक एसिड और टार्टरिक एसिड मिलाये जाते हैं, जो जल की उपस्थिति में कार्बन डाई आक्साईड तथा फेन उत्पन्न करते हैं, जिससे वटी टूट जाती है।

(vii) योनिगत वटी (Vaginal Tablets):- जब योनिगत वर्ति (Vaginal suppositories) या Pessaries को कम्प्रेशन विधि से बनाते हैं, तो उसे योनिगत वटी (Vaginal tablets) कहते हैं। इस प्रकार की वटी एन्टिबायोटिक्स और स्टीरायड्स से बनाते हैं। ये सामान्यतः अण्डाकार या बादाम आकार की होती है, जिससे इनका योनिगत प्रवेश सरल होता है। इनके निर्माण में घुलनशील सहायक द्रव्य

(Soluble additive) मिलाये जाते हैं। कुछ रेचक वर्ति (Laxative suppositories) भी कम्प्रेशन विधि से बनायी जाती है।

इसी प्रकार गुदागत वटी (Rectal tablets) Poly ethylene glycol की पतली झिल्ली से ढ़की रहती है, जो वटी को सुरक्षित रखती है और गुदा में प्रवेश को सरल बनाती है।

(viii) आरोपण योग्य वटी (Implants or Implantable Tablets):- ये वटियाँ आकार में छोटी होती है, इन्हें शल्यक्रिया द्वारा त्वचा के नीचे रखकर त्वचा पुनः सिल दी जाती है। इनका निर्माण विसंक्रमित स्थिति (Aseptic conditions) में करना चाहिए तथा विसंक्रमित पात्र में इकाई मात्रा (Unit dose) में रखना चाहिए।

इनका निर्माण और प्रयोग इसलिए करते है जिससे औषध का प्रभाव दीर्घकाल तक (3 माह, 6 माह या इससे भी अधिक) धीरे-धीरे और निरन्तर बना रहें। इसलिए इनका निर्माण जल में अघुलनशील द्रव्यों से करते हैं, कोई सहायक द्रव्य Excipients नहीं मिलाये जाते हैं और heavy pressure से कम्प्रेश्ड (दबाव) करके बनाते हैं। इनका उपयोग पशुचिकित्सा में अधिक होता है। इनका प्रयोग मनुष्यों में जनसंख्या नियन्त्रण (परिवार नियोजन) हेतु किया जाता है। सामान्यतः स्टीरायडल हार्मोन्स जैसे Testosteron आदि का Implant किया जाता है।

(ix) आन्त्रिक अवगुण्ठित वटी (Enteric Coated Tablets):- ये वटियाँ उन औषध द्रव्यों से बनायी जाती है, जो जाठराग्नि स्राव से नष्ट हो जाती है। इसके लिए वटी पर अवगुंठन (Coating) किया जाता है, जिससे वटी आमाशय में न टूटकर सीधे आंत्र में पहुँच जाती है और वहाँ के क्षारीय माध्यम में टूटकर घुल जाती है।

(x) स्थिर क्रिया वटी (Sustained Action Tablets):- ये वटियाँ मुख से ग्रहण के पश्चात् भी औषध द्रव्य के प्रभाव को इच्छित समय तक धीरे-धीरे मुक्त करती रहती है, जिससे औषध द्रव्य का प्रभाव देर तक बना रहता है।

पुनः क्रिया वटी (Repeat action tablets) एक निर्धारित समय के पश्चात् औषध द्रव्य की पूर्ण मात्रा को अन्नवह स्रोतस (G.I.T.) के स्राव में मुक्त करती है, जिससे औषध द्रव्य की एक निश्चित मात्रा रक्त में बनी रहती है।

(xi) शर्करा अवगुंठित वटी (Sugar Coated Tablets):- इन वटियों का निर्माण दबाव (Compressed) विधि से होता है। इन पर शर्करा का अवगुण्ठन (Sugar coating) होता है, जो औषध द्रव्य के कटु स्वाद व अप्रिय गंध को ढकदेता

है तथा बाह्य वातावरण के प्रभाव से औषध की सुरक्षा करता है। इनको आकर्षक बनाने के लिए उचित वर्ण का अवगुण्ठन भी किया जा सकता है।

(xii) झिल्ली अवगुण्ठित वटी (Film Coated Tablets):- इन वटियों के ऊपर जल में घुलनशील द्रव्यों की पतली परत का अवगुंठन किया जाता है, जो वटी के औषध द्रव्य की बाह्य वातावरण से सुरक्षा प्रदान करती है। अनेक प्रकार के Polymers फिल्म कोटिंग में प्रयुक्त होते हैं।

(xiii) परतदार वटी (Layered Tablets):- ये वटियाँ भिन्न-भिन्न द्रव्यों के दानों को एक ही वटी में 2 या 3 परतों में एक के ऊपर एक दबाकर बनायी जाती है। इन वटियों को बनाने हेतु विशेष प्रकार की टेबलेट मेकिंग मशीन की आवश्यकता होती है।

(xiv) Press Coated Tablets:- पहले निर्मित Compressed वटी के ऊपर भिन्न प्रकार के औषध द्रव्यों के दानों (Granules) से दबाव (Compressed) विधि द्वारा प्रेस कोटेड टेबलेट बनाई जाती है। ये वटियाँ विशेष प्रकार की टेबलेट मेकिंग मशीन से दो बार दबाव (Two successive compressions) से बनायी जाती है। ये वटियाँ Enteric Coating and sustained release हेतु प्रयुक्त की जा सकती है।

वटी निर्माण में उपयोगी सहायक द्रव्य:- Compressed वटी के निर्माण में क्रियाशील औषध द्रव्यों के साथ अनेक क्रियाहीन सहायक द्रव्य प्रयुक्त होते हैं, जिन्हें excipients या additives कहा जाता है। अच्छी गुणवत्ता की वटी बनाने के लिए ये addivies मिलाये जाते हैं। यद्यपि ये सहायक द्रव्य क्रियाहीन होते हैं, तथापि इनका प्रभाव वटी की स्थिरता, जैविक क्षमता तथा मात्रावत निर्माण की प्रक्रिया पर पड़ता है। इन additives का कार्य के अनुसार निम्न प्रकार से वर्गीकरण किया जा सकता है:-

1. विलायक द्रव्य (Diluents)
2. संघटक द्रव्य (Binders)
3. दानेदार बनाने वाले द्रव्य (Granulating agents)
4. विघटक द्रव्य (Disintegrating agents)
5. स्निग्ध करने वाले द्रव्य (Lubricants)
6. रंगने वाले द्रव्य (Colouring agents)
7. सुगन्धित द्रव्य (Flavouring agents)
8. मधुर द्रव्य (Sweetening agents)

वटी में सभी सहायक द्रव्यों का प्रयोग करना आवश्यक नहीं हैं। इनमें से कुछ सहायक द्रव्य (additives) दो या दो से अधिक कार्य करते हैं। जैसे-वटी में स्टार्च का प्रयोग विलायक, संघटक द्रव्य और विघटक द्रव्य के रूप में होता है।

1. विलायक द्रव्य (Diluents):- जब औषध द्रव्य की मात्रा इतनी कम होती है कि उससे दबाब द्वारा छोटी वटी का निर्माण करना सम्भव नहीं होता है, तब उसमें क्रियाहीन द्रव्य मिलाकर चूर्ण की मात्रा बढ़ा देते हैं, जिससे आसानी से दबाव द्वारा वटी का निर्माण हो जाता है। उन क्रियाहीन द्रव्यों को विलायक कहते हैं। जैसे-लेक्टोज, स्टार्च, सोडियम क्लोराइड, सुक्रोज, मेनिटोल, केल्शियम कार्बोनेट आदि।

2. संघटक द्रव्य (Binders):- वटी निर्माण हेतु औषध द्रव्य के चूर्ण को दानेदार (Granules) बनाया जाता है। इस प्रक्रिया में जो द्रव्य चूर्ण के मध्य आकर्षण उत्पन्न कर उन्हें बाँधते हैं अर्थात् दानेदार बनाने में सहायता करते हैं, उन्हें संघटक द्रव्य कहते हैं। यह आकर्षण दबाव द्वारा वटी निर्माण में सहायक होता है। स्टार्च, एकेशिया, जिलेटिन, ग्लुकोज, लेक्टोज, सुक्रोज ट्रेगेकेन्थ, मेथिल सेल्युलोज आदि संघटक द्रव्य है।

टेबलेट निर्माण में कुछ संघटक द्रव्य शुष्क रूप में मिश्रित किये जाते हैं जबकि कुछ संघटक जल, एल्कोहोल या दोनों के मिश्रण में घोलकर प्रयुक्त किये जाते हैं। संघटक द्रव्य की मात्रा टेबलेट के प्रकार पर निर्भर करती है। जिन वटियों का प्रभाव शीघ्र घुलकर दिखाना हो, उनमें संघटक द्रव्य की मात्रा कम होती है, जबकि Lozenges and Implants tablets में जिनका प्रभाव अधिक समय तक बनाये रखना है, उनमें संघटक द्रव्य की मात्रा अधिक होती है।

3. दानेदार बनाने वाले द्रव्य (Granulating Agents):- औषध द्रव्य के चूर्ण को दानेदार बनाने हेतु जिन द्रव्यों को चूर्ण में मिलाया जाता है, उन्हें Granulating agents कहते हैं। इन द्रव्यों को मिलाने पर चूर्ण दानेदार बन जाता है। जल, एकेशिया म्यूसिलेज, ट्रेगेकेन्थ, स्टार्च, लिक्विड ग्लूकोज, सीरप और भिन्न-भिन्न सान्द्रता का एल्कोहोल आदि ग्रनुलेटिंग द्रव्य है।

4. विघटन द्रव्य (Disintegrating Agents):- ये द्रव्य वटी का सेवन करने के बाद अन्नवह स्रोतस (G.I.T.) में विघटन में सहायता प्रदान करते हैं। ये दो प्रकार के होते हैं:-1. कुछ द्रव्य जल या आर्द्रता के सम्पर्क में आने पर फूल जाते हैं। जैसे-मक्का और आलू का स्टार्च। 2. कुछ द्रव्य जल या आर्द्रता के सम्पर्क में आते हैं तो फेन व कार्बन डाईआक्साइड उत्पन्न करते हैं। जैसे-वीगम, मेथिल सेल्युलोज, अगर, बेन्टोनाइट, कार्बोक्सी मेथिल सेल्युलोज और नींबू का गूदा आदि।

5. चिकनापन प्रदान करने वाले द्रव्य (Lubricants):- ये द्रव्य औषध द्रव्य के दानों के मध्य घर्षण को कम कर हॉपर में दानों के बहाव (Flow) को बढ़ा देते हैं। मेग्नेशियम स्टीरेट, कैल्शियम स्टीरेट, स्टीरिक एसिड, टैल्क, कोकोआ बटर, हाइड्रोजिनेटेड वेजिटेबल ऑयल, लिक्विड पैराफिन, हार्ड पैराफिन, मोम आदि Lubricant द्रव्य है।

6. रंगने वाले द्रव्य (Colouring Agent):- ये द्रव्य वटी को सुन्दर एवं आकर्षक बनाते है। इन द्रव्यों को दाने निर्माण से पहले या बाद में मिलाया जाता है। वटी निर्माण में स्वीकृत रंगों का ही प्रयोग होता है।

7. सुगन्धित द्रव्य (Flavouring Agents):- सामान्यतया इन द्रव्यों का प्रयोग सभी चूसने वाली (Lozenges), चबाने वाली (chewable) और झाग उत्पन्न करने वाली (Effervescence) वटियों में किया जाता है। इसके लिए उड़नशील तैल, उड़नशील द्रव्यों और फलों की सुगंध का प्रयोग किया जाता है। उड़नशील द्रव्यों को उचित कार्बनिक विलायक में घोलकर दबाव से पूर्व दानों पर छिड़क दिया जाता है। फलों की सुगंध को दाने बनाने से पहले चूर्ण में मिला दिया जाता है।

8. मधुर द्रव्य (Sweetening Agent):- इन द्रव्यों का प्रयोग मुख में घुल जाने वाली वटियों में किया जाता है। इस प्रकार के द्रव्य मधुर रस वाले होते है। जैसे:-मेनिटाल, लैक्टोज और सुक्रोज। कृत्रिम मधुर द्रव्यों Cyclamates और Saccharin के प्रयोग पर प्रतिबन्ध है।

वटी का निर्माण:-

वटी (Tablets) के निर्माण में सूक्ष्म चूर्ण का प्रयोग नहीं होता है, अपितु चूर्ण के दाने (Granules) बनाकर दबाव प्रक्रिया (Compressed Method) द्वारा वटी का निर्माण किया जाता है। दाने (ग्रेनुल्स) के निम्नलिखित लाभ है:-

1. दाने हॉपर से समान रूप से बहते हैं, जिससे सभी वटियाँ समान भार की निर्मित होती है। जबकि सूक्ष्म चूर्ण समान रूप से नहीं बहता है, जिससे भिन्न भार वाली वटियाँ बनती है।

2. दानों से वटी निर्माण में औषध का वितरण और बंधन समान रूप से होता है, जबकि सूक्ष्म चूर्ण में विभिन्न भार के द्रव्य होते हैं, जो मशीन के कम्पन से अलग-अलग एकत्र हो जाते है, अर्थात् भारी द्रव्य नीचे एकत्र हो जाते है। जिससे वटी में औषध का वितरण एक समान नहीं होती है।

3. अत्यधिक सूक्ष्म चूर्ण सांचों की दीवार से चिपक जाते है, जबकि दाने भारी होने से यह कठिनाई हीं होता है।

दानों का उचित आकार 12 नम्बर से 20 नम्बर के Mesh size का माना जाता है। यह आवश्यक नहीं है कि पूरा औषध द्रव्य दानों के रूप में हो, उसमें 10 से 20 प्रतिशत सूक्ष्म चूर्ण भी होना चाहिए, जिससे वटी चिकनी बनती है। अत्यधिक बड़े दानों से वटी अच्छी नहीं बनती है।

वटी निर्माण की विधियाँ:-

वटी निर्माण की तीन विधियाँ है :-

1. सीधे दबाव द्वारा (Direct compression)
2. बिना जल के दानों का निर्माण (Dry granulation)
3. जल के द्वारा दानों का निर्माण (Wet granulation)

1. सीधे दबाव द्वारा (Direct Compression):- जो द्रव्य दानेदार, आसानी से सरकने वाले तथा बंधन क्षमता वाले होते हैं, उन्हें सीधे ही मशीन में भरकर दबाव विधि से वटी बना ली जाती है। लेकिन इस विधि से निर्मित अधिकांश द्रव्यों की वटी विघटित नहीं होती है। इस कठिनाई को दूर करने के लिए Compressible vehicles मिलाकर वटी बनाई जाती है। शुष्क लेक्टोज, एनहाइड्रस लैक्टोज, कैल्शियम फास्फेट, मृदु शर्करा, मैनिटाल तथा माईक्रोक्रिस्टलाइन सेल्युलोज Compressible vehicle है।

सोडियम क्लोराइड, सोडियम ब्रोमाइड, सोडियम सेलिसिलेट, पोटैशियम क्लोराइड, पोटेशियम ब्रोमाइड, पोटेशियम नाइट्रेट, अमोनियम क्लोराइड, पोटेशियम परमेगनेट आदि द्रव्यों की वटी इस विधि द्वारा निर्मित की जाती है।

2. बिना जल के दानों का निर्माण (Dry Granulation):- इस विधि को मन्द दबाव (Slugging, precompression) या दोहरी दबाव विधि (Double compression method) भी कहते हैं। औषध चूर्ण को विशेष प्रकार की मशीन में डालकर और दबाकर slugs (Flat faced large size tablets) बनाते हैं। इन slugs को oscillating granulator, जिसमें 10 से 20 न. की sieve लगी होती है, में डालकर उचित आकार के दानों में तोड़ लेते हैं। इन दानों में lubricants और अन्य सहायक द्रव्य मिलाकर दबाव विधि (compression) से वटी का निर्माण कर लेते हैं।

3. जल द्वारा दानों का निर्माण (Wet Granulation):- यह विधि वटी निर्माण के लिए सर्वाधिक प्रचलित है। इस विधि से अच्छी वटी का निर्माण होता है। इस विधि द्वारा उन द्रव्यों की वटी नहीं बनाई जा सकती हे, जो नमी या अधिक ताप द्वारा नष्ट हो जाते हैं।

इस विधि में दानेदार चूर्ण का सूक्ष्म चूर्ण बनाकर उसमें दूसरे सहायक द्रव्य (मुख्य रूप से विघटक द्रव्य-Disintegrating agent) डालकर समान रूप से मिश्रण कर लेते हैं। इस मिश्रित चूर्ण को 30 से 60 न. की छलनी से छानकर उसमें संघटक द्रव्य (Binding agent) और Granulating agent का घोल मिलाते हैं। दाना निर्माण में द्रव्य की उचित मात्रा का निर्धारण करने के लिए चूर्ण में granulating द्रव्य को मिलाकर पिण्ड को हथेली पर रखकर दूसरे हाथ के मध्यम दबाव से दबाते हैं, यदि पिण्ड टूट जाता है तो मिश्रण वटी निर्माण के लिए सही समझा जाता है।

चूर्ण में granulating agent की उचित मात्रा डालकर निरन्तर मिलाते रहते हैं जब तक समान रूप पिण्ड नहीं बन जाता है। इस गीले पिण्ड को 6 से 20 न. की छलनी से छानकर प्राप्त गीले दानों को ट्रे में एक पतली परत में रखकर ओवन में 60° C ताप पर सुखाते हैं। फिर सुखे हुए दानों को तोड़कर उचित छलनी से छानकर उचित आकार के दानों का निर्माण करते हैं। उन दानों में अन्य सहायक द्रव्य जैसे:- डिसिन्टीग्रेन्टस, ल्युब्रिकेन्टस और फ्लेवरिंग द्रव्य आदि मिलाकर दबाव विधि द्वारा वटी का निर्माण करते हैं।

Tablet Compression Machines :- दानों को Compression द्वारा वटी का निर्माण करने के लिए अनेक प्रकार की मशीनों का प्रयोग किया जाता है, उन्हें वटी निर्माण मशीन (Tablet making machine) कहते हैं। सामान्य रूप से निम्न प्रकार की मशीन प्रयुक्त होती है :-

1. एकल पंच मशीन (Single punch machine)
2. बहुल पंच मशीन (Multi punch machine)
3. घुमावदार वटी मशीन (Rotary tablet machine)
4. तीव्र घुमावदार वटी मशीन (High speed rotary tablet machine)
5. बहुपरत घुमावदार वटी मशीन (Multilayer rotary tablet machine)

Tablet Coating :- वटी की सुन्दरता, स्वाद और स्थिरता बढ़ाने के लिए उस पर अवगुंठन (Coating) किया जाता है। आजकल Coating का प्रयोग वटी से औषध निष्कासन का स्थान के अनुसार या औषध के निष्कासन देर से करने के लिए भी किया जाता है। Coating दो प्रकार की होती है :- 1. simple (साधारण), 2. Complex (जटिल)। साधारण अवगुंठन में वटी को धूलरहित करने और तिक्त स्वाद को कम करने के लिए Varnish की पतली परत की जाती है। जटिल Coating में भिन्न प्रकार के असमान द्रव्य के ऊपर inner या outer shell की

coating की जाती है। इसका प्रयोग विशेष समय पर वटी से औषध निष्कासन के लिए भी होता है।

Sugar Coating (शर्करावगुंठन):-वटी पर sugar coating महत्वपूर्ण, सबसे पुरानी और सर्वाधिक प्रयोग की जाने वाली विधि है। इसका प्रयोग वटी की अप्रिय स्वाद व गंध को समाप्त करने तथा वायु और आर्द्रता से औषध के विघटन को रोकने के लिए किया जाता है। Coating करने के लिए वटी की सतह उत्तल (Convex) बनाई जाती है। चपटी (Flat) सतह की अपेक्षा उत्तल सतह पर Coating सरलता से होती है।

वटी से सूक्ष्म चूर्ण और टूटी हुई वटी हटाने के लिए छननी से छानकर Coating pan में रखते हैं। Coating pan स्टेनलेस स्टील या ताम्र का बना गोल पात्र होता है, जो मोटर द्वारा एक अक्ष पर घुमता है। Polishing pan में Canvas drum होता है, जिसे उसी मशीन पर Coating pan को हटाकर लगाते हैं। Pan में लगे हुए air blower गरम और शीतल वायु के दबाव से वटी सुखाने में सहायक होते हैं। इसमें लगे हुए exhaust pipe से अवांछित धूल, चूर्ण और आर्द्रता को हटाया जाता है।

Sugar coating निम्नलिखित चरणों में पूर्ण होती है:-

1. Water proofing
2. Sub coating
3. Smoothing
4. Colouring
5. Finishing

1. सर्वप्रथम Water proof material (Arsenic free shellac, ethyl cellulose and silicone) की एक या दो coating की जाती है।

2. फिर वटियों को सुखाकर acacia और sugar solution से निर्मित heavy syrup से coating की जाती है। जब वटियाँ एक दूसरे से चिपक जाती है, तो dusting powder (Talc, starch, acacia powder or precipitated chalk) से dusting करते हैं, जिससे वटियाँ एक दूसरे से अलग हो जाती है। वटियों के सूखने तक coating pan को घुमाते रहते हैं। फिर heavy syrup and dusting powder का क्रमशः प्रयोग करते रहते हैं जब तक कि वटी गोल और चारों तरफ से पर्याप्त Coating नहीं हो जाती है। इसमें यह सावधानी रखनी चाहिए कि अगली Coating से पहले वटी को Coating pan से निकाल कर सुखा लेना चाहिए।

3. इसके बाद Subcoated tablets को coating pan में रखकर और सुखाकर heavy sugar syrup की कुछ coating की जाती है, जब तक कि वटी चिकनी और उचित आकार की नहीं बन जाती है।

4. वटी पर Colouring के लिए इच्छित वर्ण का तनु घोल बनाकर कई coating की जाती है, प्रत्येक Coating के बाद सुखाते हैं। अन्तिम coating सान्द्र घोल से करते हैं। अन्त में वटियों को मन्दगति से सुखाया जाता है।

5. फिर अच्छी तरह शुष्क वटियों को Polishing pan (Canvas drum) में डालकर घुमाते है, जिसमें मोम (wax) का पिण्ड या उड़नशील तैल से निर्मित घोल मिला देते हैं। उड़नशील तैल के उड़ने तथा इच्छित Polishing होने तक pan को घुमाते रहते हैं।

Film Coating (झिल्ली अवगुंठन):– इस विधि से coating करने पर वटी देखने में कम सुन्दर होती है। sugar coating के कई चरणों में पूरी होने, अधिक समय लगने और मंहगी होने के कारण वर्तमान में Film coating विधि अधिक प्रचलित है। इसके लिए Sodium carboxy methyl cellulose और अन्य Cellulosic high polymer का प्रयोग अप्रिय स्वाद और गन्ध को आच्छादित करने के लिए किया जाता है।

Compression Coating :- इस विधि को Dry coating या Press coating भी कहा जाता है। इसमें जल या किसी विलायक का प्रयोग नहीं किया जाता है। इसमें पूर्व निर्मित वटी के चारों तरफ सुखे दानों (Dry granules) की coating की जाती है। इस विधि का प्रयोग उन द्रव्यों की वटी में किया जाता है, जो नमी की उपस्थिति में नष्ट हो जाती है।

Enteric Coating (आन्त्रिक अवगुंठन):– जिन वटियों को आमाशय में न टूटकर सीधे आन्त्र में पहुँचकर टूटने की आवश्यकता होती है, उन पर enteric coating की जाती है। सामान्यतः जिन द्रव्यों पर enteric coating की जाती है, वे निम्न गुण वाले होते हैं:-

(i) जो द्रव्य आमाशय के अम्लीय माध्यम में नष्ट हो जाते हैं।
(ii) जो द्रव्य आमाशय में क्षोभ उत्पन्न करते हैं।
(iii) जिन औषध द्रव्यों की आवश्यता केवल आन्त्र में होती है।
(iv) जिन औषध द्रव्यों का अवशोषण आन्त्र से प्रारम्भ होता है।
(v) जिन औषध द्रव्यों के प्रभाव की विलम्ब से आवश्यकता होती है।

वटी पर enteric coating के लिए fat, fatty acid, shellac, shellac derivatives and cellulose acetate phthalates का प्रयोग होता है।

संखिया रहित शेलेक (Shellac) के एल्कोहोलिक घोल को Coating pan में घुम रही वटियों पर छिड़का जाता है। अल्कोहोल उड़ने तक वटियाँ घुमती रहती है और वटियों को गर्म वायु से सुखा दिया जाता है। जिन वटियों पर Cellulose acetate की coating करते हैं, उन्हें मोम के आवरण में बन्द कर दिया जाता है, जिससे उनमें नमी का प्रवेश न हो।

Micro encapsulation (सूक्ष्म आवरण):-Microencapsulation को capsule वर्ग में रखा जाता है, किन्तु औषध के ऊपर Coating किये जाने के कारण coating प्रक्रिया के अन्तर्गत ही वर्णन किया जाता है।

इस विधि के द्वारा ठोस, द्रव आदि पर सूक्ष्म पतला अवगुंठन, जिसकी मोटाई 1/10 माइक्रोन से 5000 μ तक होती है, किया जाता है। इसके लिए air suspension, coacervation phase separation, electrostatic deposition, spray drying and congealing, pan coating आदि विधियाँ है।

इसके लिए ज़िलेट्रिन, पॉली विनाइल एल्कोहल, इथाइल सेल्युलोज, सेल्युलोज एसिटेट, पथलेट और स्टीरिन मैलेक एनहाइड्राइड आदि द्रव्यों का प्रयोग किया जाता है। इसका प्रयोग निम्न कार्यों के लिए किया जाता है:-

1. कटु और तिक्त स्वाद के आवरण के लिए।
2. भिन्न-भिन्न द्रव्यों को अलग रखने के लिए।
3. देर से प्रभाव दिखाने वाली वटी निर्माण के लिए।
4. औषध द्रव्य को नमी और ऑक्सीडेशन से सुरक्षा के लिए।
5. उड़नशील द्रव्यों को उड़ने से बचाने के लिए।

केप्सूल (Capsules) :-

केप्सूल औषध द्रव्य की Solid unit dosage form है, जिसमें द्रव्य को स्वाद रहित, कठोर या मृदु घुलनशील जिलेटिन से निर्मित Capsule (खोल) में रखते हैं। Hard capsules ठोस औषध द्रव्य को भरने में प्रयोग किया जाता है, जबकि soft capsules द्रव या अर्धघन द्रव्य भरने में प्रयोग किया जाता है। वटी के बाद hard capsule सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण कल्पना है। केप्सूल को जिह्वा पर रखकर जल से निगल लिया जाता है।

केप्सूल आकर्षक, स्वाद रहित, गंधरहित होने से आसानी से प्रयोग किया जा सकता है। जिन औषध द्रव्य की अप्रिय गंध और रस होता है, उनको केप्सूल में भरकर प्रयोग करना उचित है। लेकिन जो द्रव्य Hygroscopic होते हैं, उनके capsule

भरना उचित नहीं है, क्योंकि वे केप्सूल में उपस्थित जल को सोख लेते हैं, जिससे Capsule shell भंगुर होकर टूट जाते हैं।

Hard capsule का आधार सामान्यतया Plasticizer और जल होता है, इसमें Preservative, colour, flavours और sugar भी होती है। Capsule shell दो cylindrical भागों में होता है। एक व्यास में थोड़ा बड़ा लेकिन लम्बाई में छोटा होता है, जिसे cap कहते हैं। जबकि दूसरा व्यास में थोड़ा छोटा लेकिन लम्बाई में बड़ा होता है, जिसे Body कहते हैं। औषध द्रव्य को केप्सूल की Body में भरकर उसके ऊपर cap लगा दी जाती है।

केप्सूल 000 से 5 न. की आकृति के उपलब्ध होते हैं। 000 न. के केप्सूल सबसे बड़े और 5 न. के सबसे छोटे होते हैं। केप्सूल में औषध द्रव्य की मात्रा केप्सूल के आकार और द्रव्य की density पर निर्भर करती है। सामान्यतया यह मात्रा सबसे बडे केप्सूल में 600mg तथा छोटे में 30 mg हो सकती है।

औषध द्रव्य की एक मात्रा के अनुसार केप्सूल के आकार का चयन किया जाता है। तथा capsule filling machine से capsule भर लिये जाते हैं। ये मशीन Hand operated, semi automatic and automatic machine होती है।

Soft capsuls मृदु होते हैं जो जिलेटिन से बनाये जाते हैं, जिसमें ग्लिसरीन, सोरबिटोल या प्रोपीलीन ग्लाइकोल मिलाया जाता है, जिससे केप्सूल flexible बनते हैं। इनमें bacteria and fungi की वृद्धि रोकने के लिए Preservative भी मिलाया जाता है। ये कई आकार spherical, ovoid, cylindrical and tubes आदि में उपलब्ध होते हैं।

Hard capsule, soft capsule के अलावा enteric coated capsule sustained release capsule, rectal capsule, capsule for packing of opthalmic ointment भी बनाये जाते हैं।

मसी कल्पना:-

मसी का अर्थ होता है स्याही। स्याह वर्ण की होने के कारण इसको मसी कहते हैं। जाङ्गम एवं औद्भिद द्रव्यों को जलाकर कृष्णवर्ण या स्याह वर्ण बना लेने को मसी कहते हैं।

द्रव्यों को शरावसम्पुट या घटसम्पुट में बन्द करके अन्तर्धूम पाक करने से कृष्ण वर्ण (कोयले जैसी या स्याह वर्ण) की मसी कल्पना बनती है। मसी बनाने के लिए द्रव्य के काठिन्य एवं मात्रा के अनुसार लघुपुट या गजपुट में पाक किया जाता है।

स्वाङ्गशीत होने पर शरावसम्पुट को निकालकर औषधि को खरल में पीसकर वस्त्र से छान लेते हैं। इस कल्पना को मसी कहते हैं।

यदि द्रव्य को खुले शराव में रखकर (ऑक्सीजन की उपस्थिति) पाक करेंगे तो द्रव्य जलकर श्वेत वर्ण भस्म (राख) बनती है, जिससे क्षार प्राप्त किया जाता है। जिससे उसके गुणधर्म बदल जाते है।

सुश्रुत संहिता में एक-दो स्थलों पर मसी कल्पना का संक्षेपतः वर्णन मिलता है, जिसमें प्रायः प्राणिज द्रव्यों को शरावसम्पुट कर पाक करके कृष्णवर्ण बनाने का वर्णन मिलता है। यथाः-

'कृष्णस्य सर्पस्य मसी सुदग्धा' (सु. चि. 9/17)

इसकी व्याख्या में डल्हण ने स्पष्ट किया हैः-

''कृष्णसर्पो यदा दह्यमानोऽतिकृष्णत्वं गच्छति तदा तच्चूर्ण ''मसी'' इत्युच्यते, स एवाग्निदह्यमानो यदा शुक्लत्वं याति तदा 'क्षार' इत्युच्यते।

अर्थात् कृष्ण सर्प को जब जलाकर अतिकृष्ण वर्ण का बनाया जाता है, तो उसे मसी कहते हैं और जब जलाकर शुक्ल वर्ण का बनाया जाता है तो उसे क्षार कहते हैं।

सुश्रुत के अनुसार चतुष्पदों या जाङ्गम प्राणियों के त्वक्, रोम, खुर, शृंग, अस्थि आदि को मसी बनाकर तैल में मिलाकर स्थानिक प्रयोग करने से रोम (बाल) उगने लगते हैंः-

चतुष्पदानां त्वग्रोमखुरशृङ्गास्थिभस्मना।
तैलाक्ता चूर्णिता भूमिर्भवेद्रोमवती पुनः।। (सु. चि. 1/102)

इसी प्रकार हस्तीदन्तमसी व रसाञ्जन को गोमूत्र में लेप बनाकर इन्द्रलुप्त के स्थान पर लगाने से सभी रोम (बाल) पूर्ववत् निकल आते हैंः-

हस्तिदन्तमसीं कृत्वा मूत्रं चैव रसाञ्जनम्।
लोमन्येतेन जायन्ते लेपात् पाणितलेष्वपि।। (सु. चि. 1/101)

भावप्रकाश एवं शार्ङ्गधर संहिता में गोमूत्र के स्थान पर अजादुग्ध के साथ लेप बनाने का वर्णन मिलता है। (भा.प्र.चि.61/10 एवं शा.सं.उ.ख.11/23)

वर्तमान में हस्तिदन्त मसी, त्रिफला मसी, मयूरपिच्छ मसी, वन्योपल मसी, अक्षरोट फलत्वक् मसी आदि प्रचलित है।

त्रिफलामसीः-

आमलकी, हरीतकी, विभीतकी तीनों फलों का त्वक् (छिलका) 50 ग्राम-50 ग्राम (कुल 150 ग्राम) लेकर शरावसम्पुट में बन्द कर लघुपुट में पाक करे। स्वाङ्गशीत होने पर सम्पुट खोलकर खरल में पीसकर वस्त्र से छानकर रख लें।

प्रयोग:-मञ्जन (दाँत साफ) करने के लिए। रक्तरोधनार्थ भी इसका उपयोग होता है।

मयूरपिच्छ मसी:-

मयूरपिच्छभस्म:-(आ.सा.सं.)

पर्याय:-शिखिपुच्छभूति, मयूरपक्षभस्म

हिक्कां हरति प्रबलां प्रबलं श्वासं च नाशयत्याशु।
शिखिपुच्छभूतिपिप्पलिचूर्णं मधुमिश्रितं लीढ़म्।।

(च. द. हिक्काश्वास/137)

अर्थात् मयूरपिच्छ का भस्म तथा पिप्पली का चूर्ण मधु मिलाकर चाटने से भयंकर हिक्का तथा प्रबल श्वास रोग को शीघ्र ही नाश करता है।

बहिर्धूम से बनाने पर भस्म बनती है। तथा अन्तर्धूम जारण करने से मयूरपिच्छ मसी बनती है।

उपयोग:-हिक्का, श्वास, छर्दि (यो.र.)

मात्रा:-125 मि.ग्रा. से 250 मि.ग्रा.

अनुपान:-मधु, पिप्पली चूर्ण, दशमूल क्वाथ

लवण कल्पना:-

सैन्धव लवण को पीसकर अर्कपत्र, नारियल आदि के साथ अग्नि में पाक करने के उपरान्त जो धूसर वर्ण या कृष्णवर्ण का लवण प्राप्त होता है, वह लवण कल्पना कहलाती है। यह कल्पना शूल, गुल्म, यकृत्प्लीहारोग, उदरविकार, उदावर्त, विबन्ध, कोष्ठ काठिन्य आदि में लाभकारी है। इसके अतिरिक्त इनमें मूत्रल और स्वेदल गुण विद्यमान रहते हैं। सौवर्चल (काला नमक) भी एक प्रकार का लवण कल्प है। इसे भी अग्नि पर पाक करके ही बनाया जाता है। अर्कलवण और नारिकेललवण लवण कल्पना के उदाहरण है।

अर्कलवण:-

सूचूर्णितं सैन्धवन्तु समार्कदलसंयुतम्।
अन्तर्धूमं पचेद्धीमान् स्वाङ्गशीतमथोद्धरेत्।।
जायते खल्वसम्पिष्टं लवणं कज्जलप्रभम्।
आयुर्वेदाचार्यवर्य्यैर्नाम्नार्कलवणं मतम्।।
यकृत्प्लीहोदरहरं रुचिरं मलभेदनम्।
विशेषतः समाख्यातं तन्त्रेऽर्कलवणं बुधैः।।

माषकार्द्धमितं त्वर्कलवणं कोष्णवारिणा।
पथ्याशिभिस्तु पुरुषैः सततं परिशीलनम्।।
वातिकं श्लैष्मिकं वापि सज्वरं वा विज्वरम्।
सकोष्ठबद्धं व्यथया चीत्कारयुतयापि वा।।
संयुक्तं कठिनस्पर्शं ह्यतीसारादिवर्जितम्।
यकृद्दल्युदरं नूत्नं प्लीहोदरमलं हरेत्।।
(र. त. 14/131-136)

अर्कपत्रं सलवणमन्तर्धूमं दहेन्नरः।
मस्तुना तत्पिबेत्क्षारं प्लीहगुल्मोदरापहम्।।
(भै. र. यकृत्प्लीहारोग/30)

घटक द्रव्यः-

1. सुपक्व अर्कपत्र-100 ग्राम 2. सैन्धव लवण - 100 ग्राम

निर्माण विधिः-सर्वप्रथम शराव में स्वच्छ अर्कपत्र फैला दें। इन पर सैन्धव लवण चूर्ण की पतली परत फैलाकर पुनः उस पर अर्कपत्र रखें तथा पुनः सैन्धवलवण का चूर्ण फैलाकर, पुनः अर्कपत्र रखें। इस प्रकार क्रमशः सम्पूर्ण सैन्धवलवण और अर्कपत्र रखें। तत्पश्चात् दूसरा शराव उल्टा रखकर कपड़मिट्टी से सन्धिबन्धन कर गजपुट में अन्तर्धूम पाक करें। स्वाङ्गशीत होने पर कपड़मिट्टी खोलकर कज्जल वर्ण या धूसर श्वेत वर्ण (राख जैसा) के लवण को निकालकर खरल में बारीक पीसकर रखें। यह अर्कलवण है।

मात्राः-500 मि.ग्रा. (4 रत्ती)

अनुपानः-उष्ण जल, मस्तु।

उपयोगः-यकृतरोग, प्लीहा रोग, उदररोग, विबन्ध, ज्वर युक्त या अज्वर युक्त वातज एवं कफज यकृत रोग या नवीन प्लीहोदर रोग का नाशक है। स्पर्श में यकृत अतिकठिन हो और अतिसार न हो एवं यकृत की असह्य पीड़ा में प्रयोग करने पर लाभदायक है। रुचिकारक है।

विमर्शः- अर्कलवण का वर्ण धूसरवर्ण होता है।

नारिकेल लवणः-

"सुविपक्वं ससलिलं नारिकेलं समाहरेत्।
अपनीय जटां वृद्धिपत्रेण स्फोटयेद् दृशम्।।
जातरन्ध्रान्नारिकेलान्नीरं सर्वं परित्यजेत्।
सुचूर्णितं सैन्धवन्तु दशतोलकसंमितम्।।

निक्षिप्य रन्ध्रमार्गेण ततो रन्ध्रं निरोधयेत्।
वसनेन समाच्छाद्य परितो लेपयेन्मृदा।।
रौद्रयन्त्रे विशोष्याथ पुटयेत्तु महापुटे।
तद्गोलकं स्वाङ्गशीतं प्रयत्नेन समाहरेत्।।
सैन्धवं कज्जलीवर्णं कपालांशोज्झितं हरेत्।
लवणो नारिकेलाख्य: समाख्यातो भिषग्वरै:।।
लवणो नारिकेलो य: पाचन: पित्तनाशन:।।
अम्लपित्तहर: कामं पित्तशोषजशूलनुत्।।
वातजं पित्तजं शूलं श्लेष्मजं सन्निपातजम्।
शूलञ्च परिणामोत्थं नाशयेदविकल्पत:।।
लवणो नारिकेलाख्यो माषकद्वयसंमित:।
नृसारयवजोपेत: पित्तशोषजशूलनुत्।।''

(र. त. 14/123-130)

घटक द्रव्य:-

1. सुपक्व सजल नारियल-1 नग
2. सैन्धव लवण-10 तोला (120 ग्राम)

निर्माण विधि:- सुपक्व तथा सजल नारियल लेकर उसके छिलके (जटा) को चाकू से अलग हटा दें। अब उस नारियल के नेत्रभाग में मोटी शलाका से छिद्र कर उसका जल निकाल लें तथा उसी छिद्र से 10 तोला (120 ग्राम) सैन्धव लवण का चूर्ण भर दें। फिर उस छिद्र को मुलतानी मिट्टी से बन्द कर पूरे नारियल पर एक अंगुल मोटा मुलतानी मिट्टी युक्त कपड़ा का लेप लगाकर धूप में अच्छी तरह सुखा लें। फिर उसे गजपुट या महापुट में पाक करें। स्वाङ्गशीत होने पर उसे निकालकर कपड़मिट्टी हटा दें। फिर उसके ऊपर के कठिन नारियल कपाल को हटाकर नारियल गिरि एवं सैन्धव लवण को निकालकर पीसकर सुखा ले एवं स्वच्छ काँचपात्र में सुरक्षित रख लें। नारिकेल लवण का वर्ण कृष्ण वर्ण (धूसरवर्ण) होता है।

मात्रा:-2 रत्ती (250 मि.ग्रा.) से 2 माषा (2 ग्राम) तक।

अनुपान:-पिप्पली चूर्ण, नवसादर, यवक्षार, जल।

उपयोग:-पाचक एवं पित्तशामक है। अम्लपित्त, पित्तशोषजशूल (पित्ताशय शूल), उदरशूल, परिणाम शूल नाशक है।

विमर्श:-आचार्य भावमिश्र ने सजल नारियल में सैन्धव लवण चूर्ण भरकर नारिकेल लवण बनाने को कहा है अर्थात् नारियल में से जल नहीं निकालना है। शेष

विधि पूर्ववत् है। सजल नारियल से निर्मित नारिकेल लवण की तीक्ष्णता कम होगी, जो अधिक उचित है। यथा:-

नारिकेलं सतोयं च लवणेन सुपूरितम्।
मृदावावेष्टितं शुष्कं पक्वं गोमयवह्निना।।
पिप्पल्या भक्षितं हन्ति शूलं च परिणामजम्।
वातिकं पैत्तिकञ्चापि श्लेष्मिकं सान्निपातिकम्।।

(भा. प्र. पू. शूल./71-72)

क्षार कल्पना:-

तत्र क्षरणात् क्षणनाद्वा क्षारः। (सु. सू. 11/4)

अर्थात् क्षरणकर्म या क्षणनकर्म करने वाले द्रव्य को क्षार कहा जाता है। दूषित मांस आदि को काटने (क्षरण) के कारण अथवा त्वचा, मांस आदि का विनाश (क्षणन-हिंसा) करने के कारण क्षार कहलाता है।

आचार्य चरक ने क्षार की छः रसों में गणना न करके द्रव्य माना है, क्योंकि यह अनेक रसों से उत्पन्न होता है। इसमें कटु एवं लवणादि अनेक रस होते हैं। यह अनेक इन्द्रियों से ग्रहण करने योग्य विषयों से संयुक्त है। क्षार स्पर्श में शीत, विस्रगंधी, श्वेत वर्ण (दर्शनेन्द्रिय से ग्राह्य), कटु एवं लवण आदि रस (रसनेन्द्रिय से ग्राह्य) युक्त होता है। यह संस्कार या साधन द्वारा उत्पन्न होता है। इसलिए क्षार को द्रव्य माना है:-

'क्षरणात् क्षारः नासौ रसः' द्रव्यं तदनेकरससमुत्पन्नमनेकरसं कटुक-लवणभूयिष्ठमनेकेन्द्रियार्थसमन्वितं करणाभिनिर्वृत्तम्। (च. सू. 26/9)

आचार्य चक्रपाणि के अनुसार जो नीचे की ओर गमन करे, उसे क्षार कहते हैं। गमन करना द्रव्य का कार्य होता है, अतः क्षार रस न होकर द्रव्य है:-

'क्षरणादधोगमनक्रियायोगात् क्षारो द्रव्यं नासौ रसः' रसस्य हि निष्क्रियस्य क्रियाऽनुपपन्नेत्यर्थः। क्षरणं च क्षारस्य पानीययुक्तस्याधोगमनेन वदन्ति हि लौकिकाः, क्षारं स्रावयामः इति। (च. सू. 26/9 की चक्रपाणि टीका)

चरक चिकित्सा के गुल्म चिकित्सा में क्षार की परिभाषा निम्न प्रकार दी है:-

'छित्त्वा छित्त्वाऽऽशयात् क्षारः क्षरत्वात् क्षारयत्यधः'

(च. चि. 5/58)

अर्थात् क्षरण स्वभाव होने के कारण आशय से मांसादि (गुल्म) को काट-काट कर अधोमार्ग से बाहर निकालता है, वह क्षार होता है।

भेदः- प्राप्ति के आधार पर क्षार के दो भेद होते है :-

(i) खनिजः-प्राकृतिक रूप में प्राप्त होने वाले क्षार, जैसे-टंकण, सज्जीक्षार आदि।

(ii) वानस्पतिक क्षार (कृत्रिम रूप से बनाये जाने वाले क्षार):-ये क्षार वनस्पतियों से बनाये जाते हैं, जैसे-यवक्षार, अपामार्गक्षार, तिलक्षार, कदलीक्षार, मूलकक्षार आदि।

प्रयोग के आधार पर क्षार के दो भेद होते हैं:-

(i) प्रतिसारणीय क्षारः-त्वग्रोगों में बाह्य प्रयोग किया जाता है। यह शुष्क चूर्ण रूप में होता है। प्रतिसारणीय क्षार भी मृदु, मध्य एवं तीक्ष्ण तीन प्रकार का होता है। ये भेद क्षार की मृदुता एवं तीक्ष्णता के आधार पर किये गये हैं।

(ii) पानीय क्षारः-पानीयक्षार का आभ्यन्तर प्रयोग विभिन्न प्रकार के उदर रोग, अम्लपित्त, शूल, गुल्म, अग्निमांद्य, अरुचि, मूत्रकृच्छ्र, मूत्राघात, अश्मरी में किया जाता है। यह क्वाथवत् द्रव होता है। औषध योगों में क्षार चूर्ण रूप में ही मिलाया जाता है।

वर्ग के आधार पर क्षार के चार भेद होते हैं:-

1. क्षारद्वयः-स्वर्जिक्षार, यवक्षार
2. क्षारत्रयः-स्वर्जिक्षार, यवक्षार एवं टंकण
3. क्षारपञ्चकः-मुष्कक्षार, यवक्षार, पलाशक्षार, स्वर्जिक्षार एवं तिलनालक्षार
4. क्षाराष्टकः-सुधाक्षार, पलाशक्षार, अपामार्गक्षार, चिंचाक्षार (इमली क्षार), अर्कक्षार, तिलनालक्षार, स्वर्जिक्षार एवं यवक्षार।

सर्जिक्षारो यवक्षारः क्षारद्वयमुदाहृतम्।
सौभाग्येन समायुक्तं क्षारत्रिकमुदाहृतम्॥ (र. त. 2/6)
मुष्कक्षारो यवक्षारः किंशुकक्षार एव च।
सर्जिक्षारस्तिलक्षारः क्षारपञ्चकमुच्यते॥ (र. त. 2/7)
सुधापलाशशिखिरचिञ्चार्कतिलनालजाः।
स्वर्जिका यावशूकश्च क्षाराष्टकमुदाहृतम्॥ (र. त. 2/8)

क्षार निर्माण विधि (वानस्पतिक क्षार) :-

क्षारवृक्षस्य काष्ठानि शुष्काण्यग्नौ प्रदीपयेत्।
नीत्वा तद्भस्म मृत्पात्रे क्षिप्त्वा नीरे चतुर्गुणे।
विमर्द्य धारयेद्रात्रौ प्रातरच्छं जलं नयेत्।

तन्नीरं क्वाथयेद्वह्नौ यावत्सर्वं विशुष्यति।
ततः पात्रात्समुल्लिख्य क्षारो ग्राह्यः सितप्रभः ।।

(शा. सं. म. ख. 11/102-103)

अर्थात् जिस काष्ठौषधि (क्षार प्रधान वनस्पति) का क्षार बनाना हो उसकी काष्ठ (या पञ्चाङ्ग-काण्ड, काष्ठ, मूल, त्वक्, पत्र, पुष्प, फल) लेकर अच्छी तरह से सुखाकर, स्वच्छ कड़ाही में जलाकर भस्म (श्वेताभ राख) बना लें। उसके बाद उस भस्म को मिट्टी के पात्र में डालकर चार गुना जल मिलाकर हाथ से मसलकर पात्र को ढककर रात भर रखें। दूसरे दिन राख घुले जल (स्वच्छ जल) को निथारकर वस्त्र से छान लें। पात्र तल में अवशिष्ट भाग को फेंक दें। इसी तरह उक्त जल को 3-4 बार छान लें। फिर उस जल को मन्दाग्नि पर पका कर गाढ़ा कर लें। जब पंकवत् (कीचड़ जैसा) हो जाये तो उसे धूप में सुखा लें। यही क्षार है, जो श्वेत वर्ण का चूर्ण रूप में प्राप्त होता है।

विमर्शः-1. आचार्य यादवजी ने स्पष्ट रूप से क्षार वृक्ष का पंचाङ्ग लेकर क्षार निर्माण बताया है, जबकि शार्ङ्गधर संहिता एवं रसतरंगिणी में क्षारवृक्ष के काष्ठ से क्षार निर्माण बताया है। रसतरंगिणी की टीका में लिखा है कि यवक्षार में शूकधान्य आदि का पंचांग लिया जाता है, जबकि पलाश क्षार आदि में काष्ठ का ग्रहण किया जाता है, अतः 'काष्ठानि' कहना उपलक्षण मात्र है। वर्तमान में द्रव्य के वर्ग (वनस्पति, वानस्पत्य, वीरूध और औषध) के अनुसार एवं उपलब्धता के अनुसार अवयव (पंचाङ्ग या कोई एक या दो अंग) लेकर क्षारनिर्माण किया जाता है।

2. आचार्य यादवजी ने द्रव्य की भस्म को छः गुना जल में घोलने का निर्देश किया है, जबकि शार्ङ्गधरसंहिता एवं रसतरंगिणी में चार गुना जल में घोलने का उल्लेख है:-

क्षारवृक्षस्य काष्ठानि दग्ध्वा भूमिं समाहरेत्।
विमले भाजने न्यस्यसलिलस्तु चतुर्गुणम्।।
प्रक्षिप्य मर्दयेत्सम्यक् याममात्रं भिषग्वरः।
त्रिगुणीकृतवस्त्रेण स्रावयेत्सलिलं ततः।।
स्रावितं सलिलञ्चाथ वह्नौ सन्तापयेत्ततः।
निःशेषं सलिलं ज्ञात्वा निर्मलक्षारमाहरेत्।।

(र. त. 14/59-61)

क्षारवृक्षस्य पञ्चाङ्गं शुष्कमग्नौ प्रदीपयेत्।
नीत्वा तद्भस्म मृत्पात्रे क्षिप्त्वा नीरे तु षड्गुणे।।

विमर्द्य धारयेद्रात्रौ प्रातरच्छं जलं नयेत्।
एकविंशतिवारांस्तद्वाससा स्रावयेज्जलम्।।
तन्नीरं क्वाथयेद्वह्नौ यावत्सर्वं विशुष्यति।
ततः पात्रात् समुल्लिख्य क्षारो ग्राह्यः सितप्रभः।।

(द्र. गु. वि. उ. 2/97-99)

3. 'क्षारवृक्ष' के लिए शार्ङ्गधर संहिता की आढ़मल्ल टीका में निम्न औषधियाँ बताई है। यथा :-

1. कुटज 2. पलाश 3. अश्वकर्ण 4. पारिभद्र 5. विभीतक 6. आरग्वध 7. बिल्व 8. अर्क 9. स्नुही 10. अपामार्ग 11. पाटला 12. आरग्वध 13. वृक्षक 14. कदली 15. चित्रक 16. पूतीक 17. इन्द्रवृक्ष 18. आस्फोता 19. करवीर 20. सप्तच्छद 21. अग्निमन्थ 22. गुञ्जा चतुर्विध 23. कोशातकी।

"**कुष्ठजपलाशाश्वकर्णपारिभद्रबिभीतकारग्वधबिल्वकाऽर्कस्नुह्यपामार्ग-पाटलानक्तमालवृक्षकदलीचित्रकपूतिकेन्द्रवृक्षास्फोताश्वमारकसप्तच्छदाग्निमन्थ-गुञ्जाश्चतस्रः कोशातकी समूलफलपत्रशाखा दहेत्। इति।**"

(शा. सं. म. ख. 11/101-104 की आढ़मल्ल टीका)

गूढ़ार्थदीपिका टीका में इनके अतिरिक्त चिंचा, शिग्रु, कण्टकारी आदि भी औषधियाँ क्षार निर्माण हेतु बताई है।

क्षारनिर्माण में सावधानियाँ :-

1. द्रव्य पूर्ण रूप से शुष्क होना चाहिए।

2. द्रव्य को अच्छी प्रकार जलाकर भस्म (राख) बना लेनी चाहिए। इसमें कोयले (कार्बन) का अंश न रहे।

3. जल को सावधानी पूर्वक निथारना चाहिए। यदि किसी कारणवश द्रव हिल जाये तो द्रव्य की भस्म को नीचे बैठने दें, उसके बाद जब जल स्वच्छ हो जाये तब निथारना चाहिए। स्वच्छ क्षारोदक प्राप्त करने के लिए एक वर्ति या साइफन द्वारा जल ग्रहण किया जाना अधिक सरल है।

4. जल को मन्दाग्नि पर पाक करना चाहिए। इसको चम्मच (दर्वी) से चलाते रहना चाहिए।

5. जल जल गाढ़ा होने लगे तब उसे जल अवगाह (Water bath) या धूप में सुखाना चाहिए।

6. जब जल पूर्ण रूप से सुख जाये तो क्षार को काँच पात्र (बोतल) में भरकर कार्क (ढक्कन) लगा देना चाहिए, ताकि वायु प्रवेश न कर सके। यदि क्षार वायु के सम्पर्क में आ जाता है तो क्षार गीला होकर खराब हो जाता है।

7. क्षार का निर्माण ऐसे पात्र में करना चाहिए, जिन पर क्षार की प्रतिक्रिया न हो।

क्षार के गुण :- आचार्य चरक के अनुसार क्षार तीक्ष्ण, उष्ण, लघु, रूक्ष, क्लेदी, पक्ता (पकाने वाला), विदारण (फाड़ने वाला), दाहकारक, दीपन, छेदन करने वाला और अग्नि सदृश है। यथा:-

तीक्ष्णोष्णो लघुरूक्षश्च क्लेदी पक्ता विदारणः।
दाहनो दीपनश्छेत्ता सर्वः क्षारोऽग्निसन्निभः॥

(च. सू. 27/306)

आचार्य सुश्रुत के अनुसार क्षार न अतितीक्ष्ण, न अतिमृदु, श्वेत, श्लक्ष्ण, पिच्छिलः, अविष्यन्दी (अप्रसरणशील), शिव (कल्याणकारक) और शीघ्रकारी होता है:-

नैवातितीक्ष्णो न मृदुः शुक्लः श्लक्ष्णोऽथ पिच्छिलः।
अविष्यन्दी शिवः शीघ्रः क्षारो ह्यष्टगुणः स्मृतः॥

(सु. सू. 11/16)

आचार्य वाग्भट्ट (अष्टांग हृदय) के अनुसार क्षार नातितीक्ष्णमृदु, श्लक्ष्ण, पिच्छिल, शीघ्रकारी, सितः (श्वेत), शिखरी, सुखनिर्वाप्य, अविष्यन्दी, नातिरूक, होता है। यथा:-

नातितीक्ष्णमृदुः श्लक्ष्णः पिच्छिलः शीघ्रगः सितः।
शिखरी सुखनिर्वाप्य न विष्यन्दी न चातिरूक्॥

(अ. हृ. सू. 30/24)

इसके अतिरिक्त क्षार द्वारा शस्त्र के दारण-पाटन आदि कर्म तथा अग्नि के दाह-पाक आदि कर्म सम्पन्न होते हैं, साथ ही शरीर में शीघ्र आचूषित होकर सर्वशरीर में फैले हुए दोषों को समूल उन्मूलन करके रोगों का नाश करता है। यथा:-

क्षारो दशगुणः शस्त्रतेजसोरपि कर्मकृत्।
आचूषन्निव संरम्भाद् गात्रमापीडयन्निव॥
सर्वतोऽनुसरन् दोषानुन्मूलयति मूलतः।
कर्म कृत्वा गतरूजः स्वयमेवोपशाम्यति॥

(अ. हृ. सू. 30/25-26)

रसार्णव में क्षारों को मलनाशक कहा गया है :-

सर्वे क्षाराः मलहराः (रसार्णव 5/43)

रसरत्नसमुच्चय में क्षार के निम्न गुण बताये हैं- सभी क्षार सामान्यतः तीक्ष्ण, अत्यन्त उष्णवीर्य, दाहकारक (मृदु त्वचा, मांस को जलाने वाले) होते है। क्षार से गुल्म, अर्श, ग्रहणी रोग, प्लीहावृद्धि, मूत्रकृच्छ्र तथा अश्मरी आदि रोग नष्ट होते हैं। इसके प्रयोग से बाह्यकृमि एवं आभ्यन्तर कृमि दोनों नष्ट हो जाते हैं। ये पाचक (आभ्यन्तर प्रयोग से) एवं दारण (बाह्य प्रयोग से व्रण शोथ को पकाने वाला एवं व्रणशोथ, विद्रधि आदि को गलाकर फाड़ने वाले) होते हैं। ये व्रणो का शोधन एवं रोपण करते हैं एवं मूत्रल है :-

क्षारास्तीक्ष्णो महोष्णाश्च दाहकर्मकराः परम् ।
गुल्मार्शोग्रहणीप्लीहमूत्रकृच्छ्राश्मरीहराः ।।
कृमिघ्नाःपाचनाश्चैव दारणाश्च विसर्पिणः ।
शोधना रोपणाश्चैव मूत्रलाश्च प्रकीर्तिताः ।।

(र. त. 14/62-63)

मात्रा :- क्षारों की सामान्य मात्रा 2 से 8 रत्ती (250 मि.ग्रा. से 1 ग्राम) बतायी गयी है :-

द्विगुञ्जतः समारभ्य रक्तिकाष्टकसम्मितान् ।
क्षारांस्तु विनियुञ्जीत् साधारणतया भिषक् ।।

(र. त. 14/64)

अपामार्ग क्षार :-

अपामार्ग के शुष्क पंचांग 1 कि.ग्रा. लेकर लोहे की कड़ाही में रखकर जलाकर भस्म (राख) बना ले। अपामार्ग भस्म (राख) को 4 लीटर या 6 लीटर जल में घोलकर रात्रिभर रख दें। दूसरे दिन प्रातः काल स्वच्छ जल को निथार कर वस्त्र से 3-4 बार छानकर दूसरे पात्र में रखें। इसके बाद स्वच्छ जल (क्षारोदक) को कड़ाही में डालकर पकावें और पंकवत गाढ़ा हो जाने पर धूप में सुखा लें। जल पूर्णतः सूख जाने पर कड़ाही के तल में स्थित श्वेतवर्ण के क्षार को निकाल लें। यह अपामार्ग क्षार होता है। अपामार्ग क्षार को मयूरक्षार, किणिक्षार और खरमञ्जरिकाक्षार भी कहा जाता है। अपामार्गक्षार के गुणः-

खरमञ्जरिकाक्षारस्तीक्ष्णः श्वासनिबर्हणः ।
गुल्मशूलादिरोगघ्नः कामं बाधिर्यनाशनः ।।

(र. त. 14/66)

अर्थात् अपामार्ग क्षार तीक्ष्ण होता है। इसका प्रयोग से श्वास गुल्म, शूल आदि रोगों का नाश करता है। यह बाधिर्य नाशक है।

आमयिक प्रयोग एवं अनुपान:- (र. त. 14/67-73)

1. जीर्ण श्वास में मधु से
2. बधिरता में अपामार्गक्षार से सिद्ध तैल का कर्ण में बाह्य प्रयोग
3. उदरशूल एवं आध्मान में त्रिकटु चूर्ण, अजवायन व उष्ण जल से
4. जीर्ण लिङ्गार्श में समभाग हरताल व जल के साथ लेप
5. श्वित्र में-समभाग मनः शिला व गोमूत्र मिलाकर लेप
6. मूत्रकृच्छ्र एवं अश्मरी में-यवक्षार मिलाकर जल से
7. गुल्म एवं प्लीहा रोग में त्रिकटु चूर्ण व सैन्धव लवण चूर्ण के साथ।

स्नुहीक्षार :-

स्नुही के डण्ठल (काण्ड) को बीच में फाड़कर एवं काटकर सुखा कर क्षार निर्माण की सामान्य विधि के अनुसार जलाकर एवं भस्म को 4 या 6 गुना जल में घोलकर एवं पकाकर क्षार प्राप्त किया जाता है।

गुण:- **स्नुहीक्षारः स्मृतस्तीक्ष्णः सर्वोदरविनाशनः।**
गुल्मप्रशमनो वह्निदीपनः शोफनाशनः॥
विसूचिकाहरोऽजीर्णनाशनः शूलसूदनः।
यकृद्दोषप्रशमनः श्वासातङ्कप्रभञ्जनः॥

(र. त. 14/92-93)

स्नुहीक्षार तीक्ष्ण और सर्व उदररोगनाशक है, अग्निदीपक है। गुल्म, शोथ विसूचिका, अजीर्ण, शूल, यकृद्दोष तथा श्वासरोग नाशक है।

आमयिक प्रयोग एवं अनुपान:-

1. विसूचिका, अजीर्ण, पक्वगुल्म, ग्रहणी एवं उदरशूल में शंखभस्म, स्वर्जिक्षार, यवक्षार के साथ
2. शोथ, प्लीहावृद्धि, उदररोग में त्रिलवण, त्रिक्षार से
3. श्वासरोग में त्रिकटुचूर्ण व मधु से
4. अग्निमांद्य, यकृतरोग, प्लीहारोग एवं उदररोग में त्रिफला चूर्ण, सैन्धलवण एवं चित्रकचूर्ण से।

क्षारसूत्र :-

क्षारसूत्र का सर्वप्रथम वर्णन चक्रदत्त में उपलब्ध होता है। यद्यपि सुश्रुत संहिता में क्षार के लेखन, कर्त्तन आदि कर्मों का विस्तृत वर्णन उपलब्ध होता है, किन्तु क्षारसूत्र का वर्णन नहीं मिलता है। चक्रदत्त के पश्चात् भावप्रकाश आदि ने भी क्षारसूत्र के इसी श्लोक को उद्धृत किया है। क्षारसूत्र का प्रयोग अर्श, भगन्दर, नाडीव्रण और अर्बुद में किया जाता है।

भावितं रजनीचूर्णैः स्नुहीक्षीरे पुनः पुनः।
बन्धनात् सुदृढं सूत्रं भिनत्त्यर्शो भगन्दरम् ।। (च. द. अर्श/147)

निर्माण विधि :- एक स्वच्छ काँच पात्र में स्नुहीक्षीर तथा हरिद्रा चूर्ण समान मात्रा में मिलाकर रखें। फिर एक नातिस्थूल दृढ़ कार्पास सूत्र (Thread) को स्नुहीक्षीर और हरिद्रा चूर्ण मिश्रित घोल में 24 घंटे तक डुबोकर बाद में छाया शुष्क कर लें। सूख जाने पर पुनः स्नुहीक्षीर और हरिद्रा चूर्ण के नवीन घोल में भिगों दें। इस प्रकार सात बार भावित कर छाया शुष्क करें। इसके बाद विसंक्रमित सूत्र (क्षार सूत्र) को स्वच्छ Test tube में कार्क लगाकर सुरक्षित रखें।

मात्रा :- आवश्यकतानुसार

उपयोग :- अर्श, भगन्दर, नाडीव्रण एवं अर्बुद को काटने के लिए क्षारसूत्र का प्रयोग किया जाता है।

भगन्दर व्रण में एक से अधिक मुख होते हैं। व्रण मुखों में क्षारसूत्र डालकर उसमें ग्रंथि (गाँठ) लगा देते हैं। क्षार सूत्र से धीरे-धीरे व्रण कटता रहता है और भरता रहता है। इस प्रकार आसानी से भगन्दर व्रण कटकर भर जाता है। अर्श (Piles) में अर्शमुल में क्षारसूत्र बाँधते हैं। जिससे अर्श (मस्से) कट जाते हैं।

दुर्बल, कृश, शस्त्रकर्म से डरने वाले तथा मर्म स्थान में स्थित व्रण-अर्बुद में शस्त्रकर्म निषिद्ध हैं। अर्श, भगन्दर आदि सद्यः प्राण हर मर्म (गुदा) में आश्रित होते हैं। अतः ऐसे स्थान पर क्षारसूत्र का प्रयोग करना चाहिए। यथा:-

कृशदुर्बलभीरूणां गतिर्मर्माश्रिता च या।
क्षारसूत्रेण तां छिन्द्यान्न शस्त्रेण कदाचन ।। (च. द. नाडीव्रण/10)

❋ ❋ ❋

पञ्चम अध्याय

यन्त्र उपकरण

आयुर्वेद में औषध द्रव्यों की विभिन्न कल्पना करने के लिए द्रव्यों को यवकुट चूर्ण या सूक्ष्म चूर्ण करना आवश्यक होता है। औषध द्रव्यों को सूक्ष्म करना size reduction कहा जाता है। इस प्रक्रिया को comminution (चूर्ण करना) और grinding भी कहते हैं। जब द्रव्य का चूर्ण मशीनों से किया जाता है, तो उसे milling कहते हैं।

औषध द्रव्यों को चूर्ण करने के लिए Cutting, chopping, crushing, grinding, milling, micronizing and trituration आदि अनेक प्रक्रियायें होती है, जो प्रयुक्त यन्त्र पर निर्भर करती है। द्रव्य के चूर्ण की सूक्ष्मता की आवश्यकता के अनुसार उपयुक्त यन्त्र का उपयोग किया जाता है। चूर्ण करने के लिए Disintegrator, Grinder, Pulverizer, Mixer, End runner, Edge runner आदि यन्त्र प्रयोग किये जाते हैं।

Disintegrator :-

It works on the principle of impact and grinding. It is used for powdering of drugs especially coarse powder (kwath churan).

The disintegrator consist of a drum shaped chamber made of steel. In the chamber, there are four steel beater fixed to a disc through which passes a shaft which rotates at a high speed upto 5000 to 7000 r.p.m. The lower part of the chamber is fitted with a desired number sieve which can be easily attached or detached. A hopper is attached at the upper surface of the chamber.

The drug to be comminuted is fed into the chamber through the hopper where it is broken by the direct blow of the beaters and by the impact of the material which is thrown with a great force against the surface of the chamber. The reduced particles through the sieve of desired size.

Scanned with CamScanner

Now a days the disintegrators have become very popular because they can be used for reducing the particle size of all kind of material.

Disintegrator

Grinder :-

औषध द्रव्यों को चूर्ण करने के लिए Cutting, crushing, grinding आदि अनेक प्रक्रिया है, जिसमें से grinding भी महत्वपूर्ण है। इस प्रक्रिया से चूर्ण करने के लिए जो यन्त्र काम में लिये जाते हैं, उन्हें grinder कहते हैं। अल्प मात्रा में चूर्ण निर्माण के लिए mortar and pestle (खल्व यन्त्र) का उपयोग किया जाता है। इसी प्रकार घरों में उपयोग किये जाने वाले grinder and mixer से भी अल्प मात्रा में चूर्ण बनाया जाता है। द्रव्य को grinding करने के बाद उपयुक्त छलनी से छानकर चूर्ण प्राप्त किया जाता है।

जिन यन्त्रों द्वारा Grinding प्रक्रिया से चूर्ण बनाया जाता है, उन्हें Grinding machine, grinding mill और grinder कहा जाता है। सामान्यतया grinding का अर्थ चूर्ण करना भी होता है, इसलिए चूर्ण करने के लिए प्रयोग किये जाने वाले यन्त्रों को भी grinder या grinding mill कह सकते हैं। इनमें प्रमुखतया Hand mill, hammer mill, Endrunner, Edgerunner, Disintegrator, Pulverizer, Mixer grinder आदि है।

A grinding mill is a unit operation designed to break a solid material into smaller pieces. There are many different types of grinding mills and many types of material processed in them.

Scanned with CamScanner

Historically mills were powered by hand (mortar and pestle), working animal (horse mill), wind (wind mill) or water (water mill). Today they are also powered by electricity.

(i) Hand Mill:- It works on the principle of grinding. Hand mills are used for grinding small quantities of drugs. The hand mill consists of two cones out of which one is solid and the other is hollow, the adjacent surface of which are toothed or corrugated. These two cones provide the grinding surface. the solid cone fits into the hollow cones which are attached to a shaft. The material to be ground is put into the machine through a hopper. By turning the handle fitted externally, the solid cone revolves by which the material is ground in small particles. The gap between the two cones can be adjusted with the help of a thumb screw fitted externally.

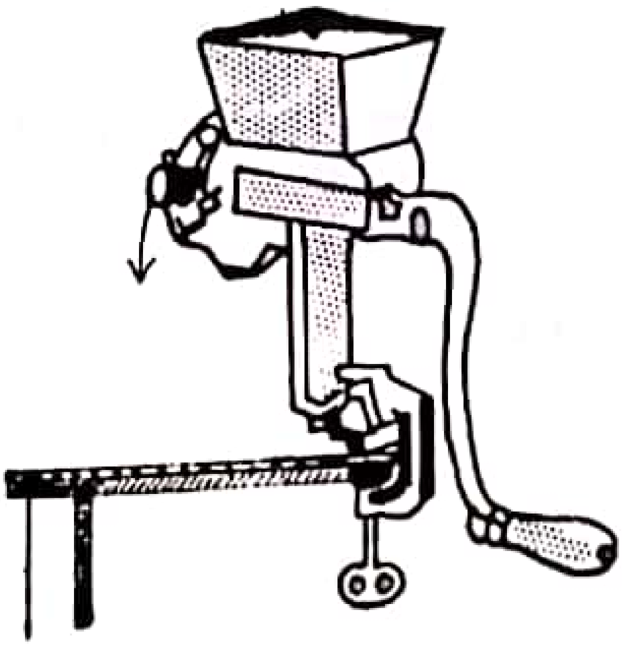

Hand Mill

(ii) Cutter Mill :- Cutter mill is fitted with two types of knives i.e. stationary and rotating. The stationary knives are mounted in the casing of the machine and rotating knives are attached to a rotor which rotates at a high speed. The upper part is attached with a hopper and at the lower part of the machine a screen of desired size is attached.

Scanned with CamScanner

The material to be reduced in size is put in the hopper and reduced material is collected from the screen. This method is used to obtain a coarse degree of size reduction of soft material such as roots and peels before its extraction.

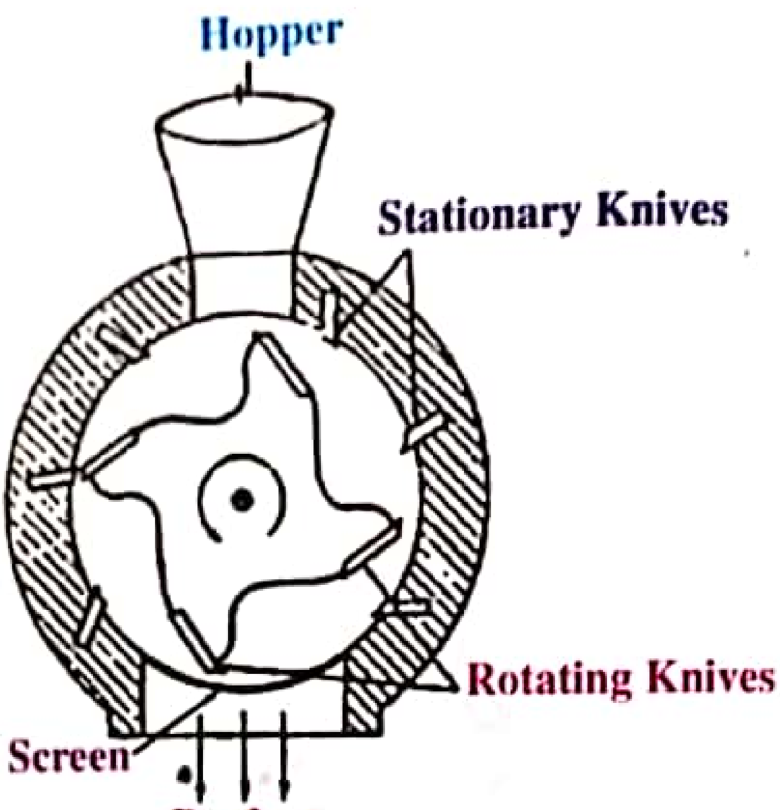

Cutter Mill

(iii) Hammer mill:-The hammer mill consists of a steel casing in which central shaft is enclosed to which a number of swinging hammers are attached. When the shaft is rotated the hammers swing out to a radial position. On the lower part of the casing a screen of desired size is fitted which can be easily replaced according to the particle size required. The construction to a hammer mill is almost similar to that of a disintegrator with the difference that in hammer mill the hammer are swinging in nature which are mounted with swivel joints and in disintegrator the beater or hammers are fixed. These mills are provided with a fan and a cyclone for collecting the material when it has been reduced to the desired size.

Scanned with CamScanner

The material to be reduced in size is fed through the hopper which is then supplied to the mill centrifugally and reduced in size by impact of hammers or against the plates along the perphery of the mill casing. The reduces powder passes out through the screen fitted at the lower part of the mill and unreduced particles are retained in the mill for further reduction in size.

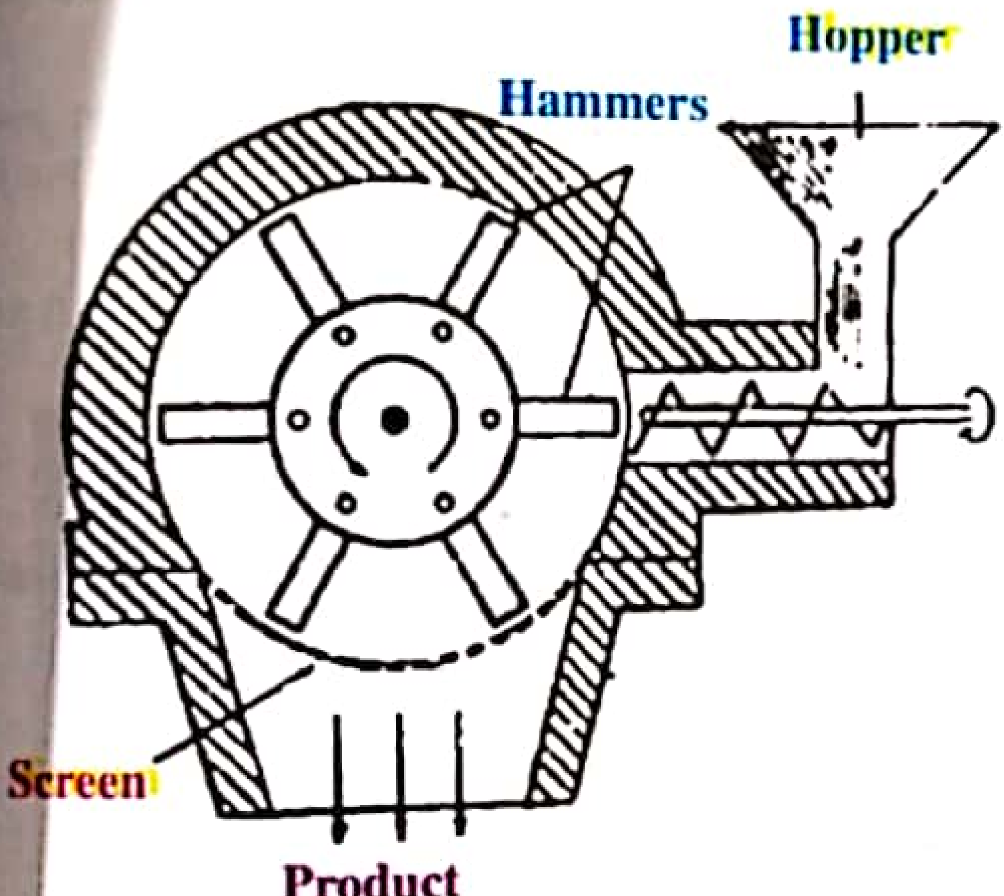

Hammer Mill

पल्वराइजर :-

यह द्रव्यों को चूर्ण करने में उपयोगी है। इसमें एक Chamber या Box होता है, जिसमें एक Disc पर Beater (Cutter) लगे होते है। यह Chamber एक Hopper से जुड़ा होता है, जिसमें चूर्ण करने के लिए द्रव्य डाला जाता है। Chamber में इच्छित आकार की चलनी लगी होती है, जिससे चूर्ण छानता है और Tube में उड़कर Cloth bag में पहुँच जाता है। बाद में bag को खोलकर चूर्ण को निकाल लेते है।

Pulveriser

माइक्रोपल्वराइजर :- यह द्रव्यों को अतिसूक्ष्म चूर्ण बनाने में उपयोगी है।

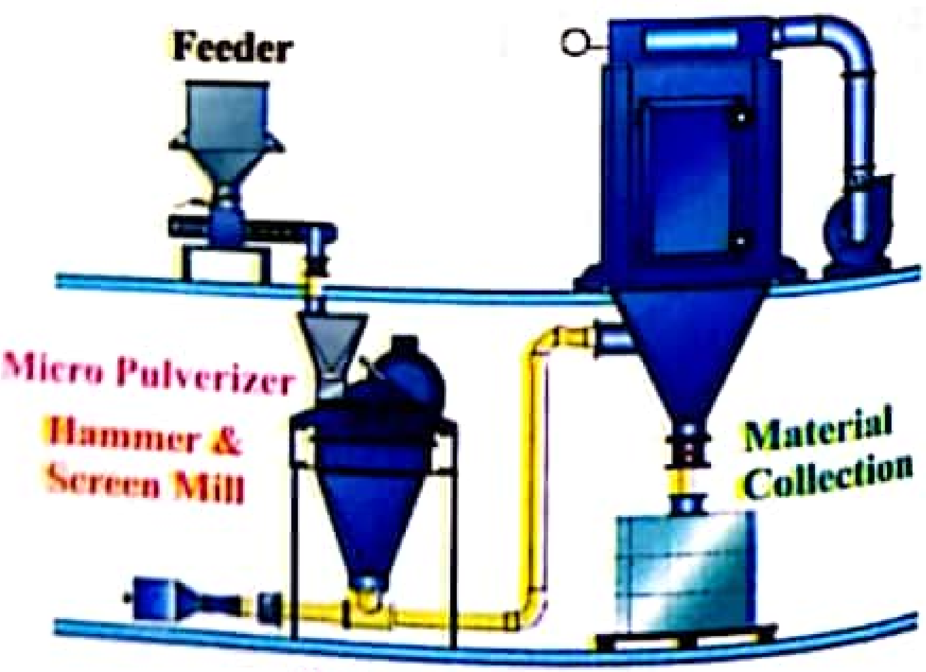

Micro Pulverizer

Scanned with CamScanner

Mixer :-

दो या दो से अधिक द्रव्यों को एक समान मिश्रित करना mixing कहलाता है। एक द्रव्य का प्रत्येक कण (Particle) दूसरे द्रव्य के कण से एक समान (Uniformly) मिल जाना चाहिए। द्रव्यों की प्रत्येक अवस्था द्रव, अर्धघन और ठोस द्रव्यों को मिश्रित करने की आवश्यकता होती है। द्रव द्रव्यों के मिश्रण और ठोस द्रव्यों के मिश्रण के लिए भिन्न प्रकार के यन्त्रों का उपयोग किया जाता है।

1. द्रव मिश्रण के लिए Shaker mixer, propeller mixers, trubine mixer and paddle mixer आदि यन्त्र उपयोगी है।

2. ठोस द्रव्य (चूर्ण) मिश्रण के लिए Mortar and pastle, spatula, sieves, powder and mass mixer tumbler mixers, agitator mixer आदि यन्त्र उपयोगी है।

(i) Powder and mass mixer :- यह शुष्क चूर्णों को एक समान मिश्रित (Uniform mixing) करने में प्रयुक्त किया जाता है।

Powder and mass mixer

(ii) Tumbler Mixer :- These mixer are used for large scale mixing of powder. A common type of mixer consists of mettalic container which is rotated on its horizontal axis by means of a motor. The most popular mixer is the twin-shell blender "V" shape. When this is rotated the material collected in the bottom of V split into two portions when the V is inverted. This design is quite effective because bulk transport and shear forces are en-

hanced. To improve agitation of the powder bed, a bar fitted with blades which rotate in the opposite direction to that of blender may be attached. Various other type of tumbler mixer e.g. cubical, double cone.y-shaped and cylindrical are used which may be rotated on any axis.

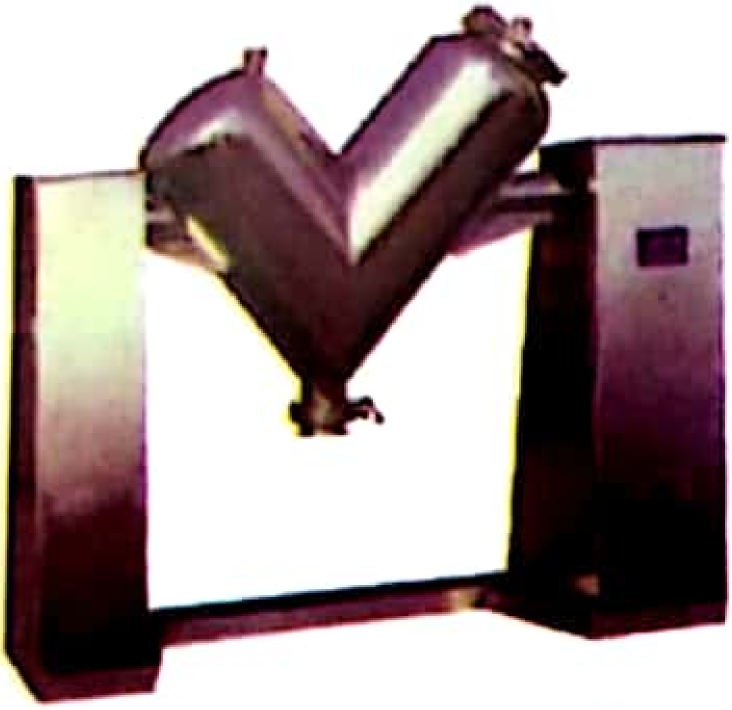

Tumbler Mixer (V Shape)

The efficiency of tumbler mixers depends on the speed of rotation. If the speed of rotation is too slow it will cause sliding only i.e. at the highest position the powder will fall to the bottom and desired tumbling will not be produced. But on the other hand if rotation is too high it will produce sufficient centrifugal forces which will hold the powder along the sides of the mixer and will not allow the powder to fall down thereby there will be no mixing. The optimum speed of a mixer is 30 to 100 r.p.m.

(iii) Agitator mixers:-These are another type of mixers in which the container to hold the material is fixed and mixing is done by means of mixing screws, paddles or blades. They are useful for mixing powders of sticky or plastic consistency. The high shear forces set up breaks the lumps or aggregates. The most popular mixer of this type is the ribbon blender.

Scanned with CamScanner

This blender consists of a horizontal cylindrical tank which usually opens at the top. The spiral blades or helical blades are attached to a shaft through the material is picked up by the helical blades which is then spitt back thereby the particles are mixed.

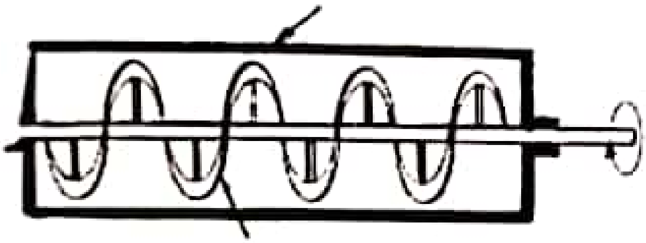

Agitator mixer (Ribben blender)

Mixer-Grinder:-

इसका उपयोग घरों में अनेक प्रकार के कार्य करने में किया जाता है। इसकी Basic unit में motor लगी होती है और ऊपर जार लगाये जाते हैं। जिसके भीतर Blade or cutter लगे होते हैं। इसके द्वारा शुष्क और आर्द्र द्रव्यों का चूर्ण और कल्क (चटनी) बनाया जाता है। शुष्क द्रव्यों का चूर्ण होने के बाद इच्छित आकार की छलनी से छान लिया जाता है। इसका उपयोग mixing (मिश्रित) करने में होने के कारण mixer भी कहा जाता है।

Mixer-Grinder

सामान्यतया छोटे स्तर पर औषध द्रव्यों का चूर्ण करने के लिए इसका प्रयोग किया जाता है।

End Runner Mill :-

End runner mill is modified form of the pestle and mortar. It works on the principle of crushing and shearing.

End Runner Mill

It consists of a mortar made of steel or granite. A dumble shaped heavy pestle is mounted eccentrically in the mortar through a hinged joint. The mortar is rotated by a motor. The pestle rotates itself by friction and is free to rise and fall in the mortar due to which the grinding action i.e. crushing and shearing are produced. Scrappers are attached to the pestle which ensure that the material is constantly removed from the pestle and returned back to the mortar. At the end of grinding the pestle is raised to remove the powdered material.

The material to be ground is put in the mortar which is rotated mechanically. The pestle rotates itself by friction. The material is crushed and rubbed between the pestle and rotating mortar. The scrapper remove the sticking material form the pestle and returns back to the mortar for gringding. At the end of grinding the pestle is raised to facilitate emptying and cleaning of the mortar. The ground material passed through a sieve to get the powder of reuired particle size. This mill used to reduce the partical size of hard material. Wet grinding is also possible in this mill.

Scanned with CamScanner

Edge runner mill :-

This mill works on the principle of crushing and friction. The edge runner mill is also known as chaser mill because two heavy wheels made of steel or granite are mounted vertically on a horizontal shaft which are made to revolve or chase each other on a steel or granite base. The stones may very from 0.5 to 2.5 meter in diameter. The large size rollers may weigh upto 6 tonnes, usually the wheels are rotated but sometimes the bed is made to rotate. The height between the rollers and the base determines the particle size of the material hence the fineness of the particles can be increased or decreased by adjusting the height.

The material to be round is put on the base of the mill and is kept in the path of the runners by scrappers. The particle size is reduced due to crushing by the weight of rollers but is more due to the friction between the roller and the bed stone. After grinding the material is taken out of the mill and passed through a suitable sieve. The coarse powder obtained after sieving is again put in the mill for regrinding.

The end runner mill provides moderately fine powder of extremely tough and fibrous material. Wet grinding with very viscous material such as ointments and paste is also possible.

Edge Runner (Chaser Mill)

Scanned with CamScanner

Sieve :-

A sieve or sifter is a device for separating wanted elements from unwanted material or for characterizing the particle size distribution of a sample.

Sieving or sifting is a process by which different grades of powders are separated from each other. Different grades of sieves are used for sifting the powders and for preparing the granules of required particle size. After powdering of any material it is passed through a specific grade sieve to get the required size particles.

The ordinary sieves used in pharmacy consist of a circular frame made up of wood or metal which is fitted with a wire cloth made of copper alloys, stainless steel, hair, silk, nylon or terylene, having specific diameter of the wire. Each sieve is given a definite number which indicates the number of meshes of standard diameter present in a length of 2.54 cm or 1 inch. The number mentioned for the sieve is the number of meshes and not the number of wires. Thus a no. 10 sieve has 10 mehses in 2.54 cm in each direction. In the sieving process the powder is passed over a perforated screen which is shaken. The particles smaller than the mesh size will pass through the sieve and oversize particles will be retained on the sieve.

Mesh :-

A mesh is a semi permeavle barrier made of connected strands of metal, fibre or other flexible ductile materials. A mesh is similar to a web or a net in that it has many attached or woven strands. A plastic mesh may be extruded, oriented, expanded woven or tubular. It can be made from polyporpylene, polyethylene, nylon, PVC or PTFE. A metal mesh may be woven, knitted, welded, expanded from steel or other metals. Meshes are used to screen out unwanted things.

Scanned with CamScanner

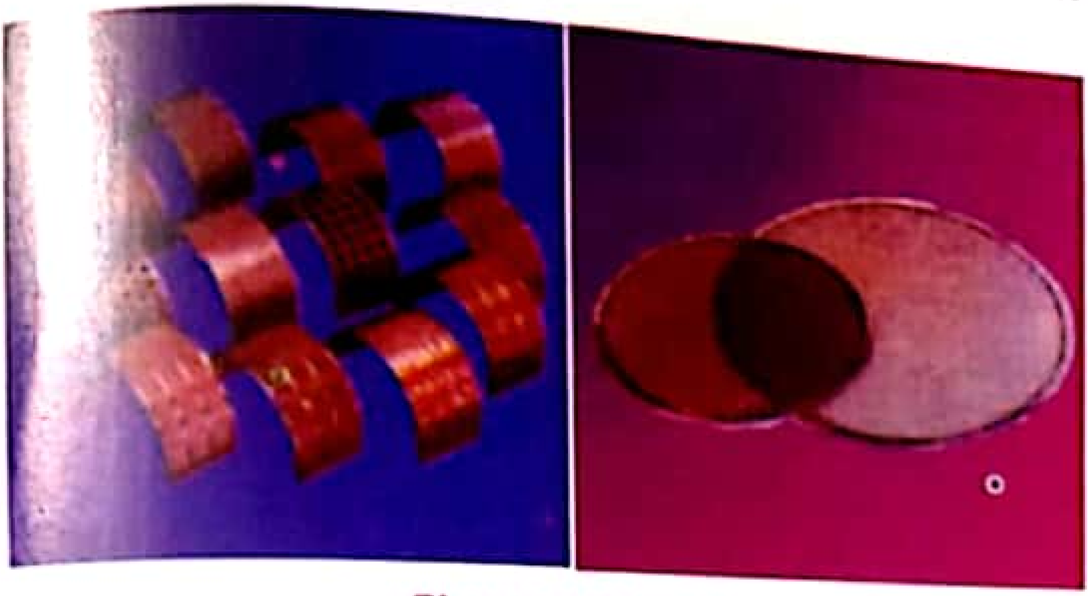

Sieves and mesh

Sieve shaker :-

Sieve shaker is a device used to shake a stacked column of standard sieve test trays to cause solids to sift proressively from the top (Large openings) to the bottom (Small openings) and a final pan, according to particle size.

Sieve Shaker

Sieve Shaker (Shifter)

Granulator :-

Granulator machine is an Important machine in the process of granulation in tablet making as quality of tablet is determined by the desirable quality of the granules used for its com-

Scanned with CamScanner

pression. Quallity & percentage of granules can be achieve better compared to other processing machines like multi mill, comminuting mill etc.

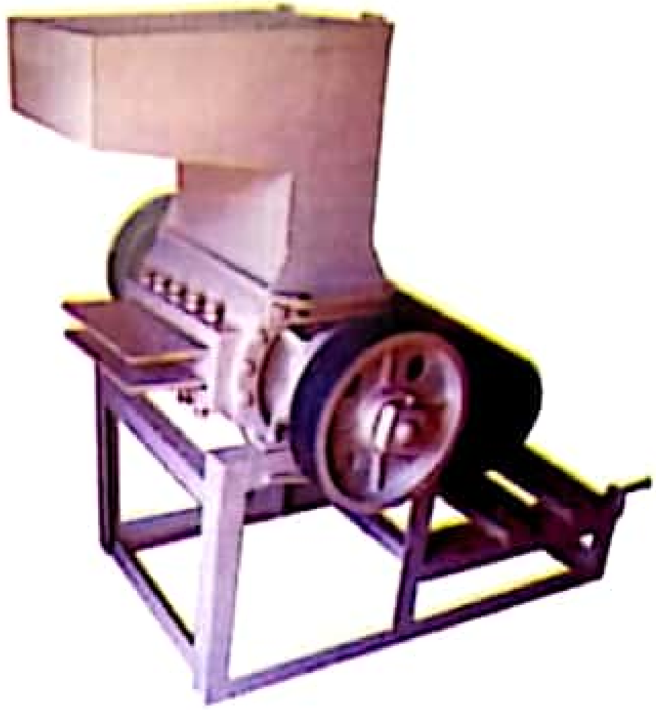

Granulator

Tablet making machine :-

For the compression of granules in the form of tablets, various types of machines are used which are known as tablet making machines. Various types of machines so used are as follows:-

i. Single punch machine.
ii. Multi punch machine.
iii. Rotary tablet machine.
iv. Multilayer rotary tablet machine.

(i) Single punch machine :-

In these types of machines one set of die and punch is fitted and only one tablet can be compressed at one time. They are used when small quantity of tablets are to be prepared. They may be hand operated or power operated and with these machines 60 to 90 tablets per minute can be prepared.

Scanned with CamScanner

Tablet Compression Machine

Single punch, hand operated or power operated tablet making machines are made up of good quality of steel frame with heavy base. The horizontal plate of the frame is fitted with a die which is held firmly in place by means of a screw. The vertical shaft holds a lower punch which moves freely in the die. On the lower side of the shaft, capacity regulating screw and ejection regulating screws are fitted by which the volume and weight of the granules to be compressed and ejection of the tablet after compression can be adjusted. The upper punch having the same diameter as that of lower punch is fixed and locked into its holder in the upper part of the shaft. The pressure to be applied is also adjusted from here. The upper punch enters the die correctly on its downward movement. A hopper shoe is provided in which the granules to be compressed are filled. A driving wheel is attached to the shaft which may be hand operated or driven by a motor.

Working

The granulated material ready for compression is placed in the hopper of the machine from where it feeds into the die, where it is compressed in between two punches, the upper punch and the lower punch. The lower punch is adjusted in such a way that it makes sufficient space in the die cavity to hold weighed amount of the material so as to make the tablet of required weight and at the same time the top of the lower punch should be in level with the upper surface of the die for easy ejection of the com-

Scanned with CamScanner

pressed tablet from the die. The pressure required for compression is adjusted from the upper punch. A number of trial tablets are prepared and when the machine is adjusted correctly, it is locked in position and required number of tablets are prepared. When a large number of tablets are to be prepared, the materials can be put into the large feeding cup attached to the hopper. This avoids, the frequent refilling of the hopper.

(ii) Multi punch machine :-

The construction and working of multi punch machines is exactly similar as that of hand operated single punch machines with the difference that a number of dies varying from 2-12 are fitted in the steel frame having exactly the same number of upper and lower punches. With multi punch machines, during one cycle instead of one tablet as many tablets are prepared as that of number of dies. These types of machines are used when the size of the tablets is small and pressure can be adjusted easily. The disadvantages are that all the dies are not filled uniformly which may lead to weight variation in tablets.

(iii) Rotary tablet machine :-

Roatry tablet machines are used for large scale production. The high speed rotary tablet machines are fitted with as many as 70 sets of dies and punches and can produce upto 10000 tablets per minute. The underlying principle of rotary tablet machine is that the dies and punches are mounted in a rotating holder (turret) which passes them in sequence through the filling, compression and ejection stages at a much faster speed whereby the output is increased to a great extent.

The essential features of the rotary machine is that it has a circular rotating head which is divided into three parts:

(a) an upper part which carries the upper punches

(b) a central part which carries the dies.

(c) a lower part which carries the lower punches.

Scanned with CamScanner

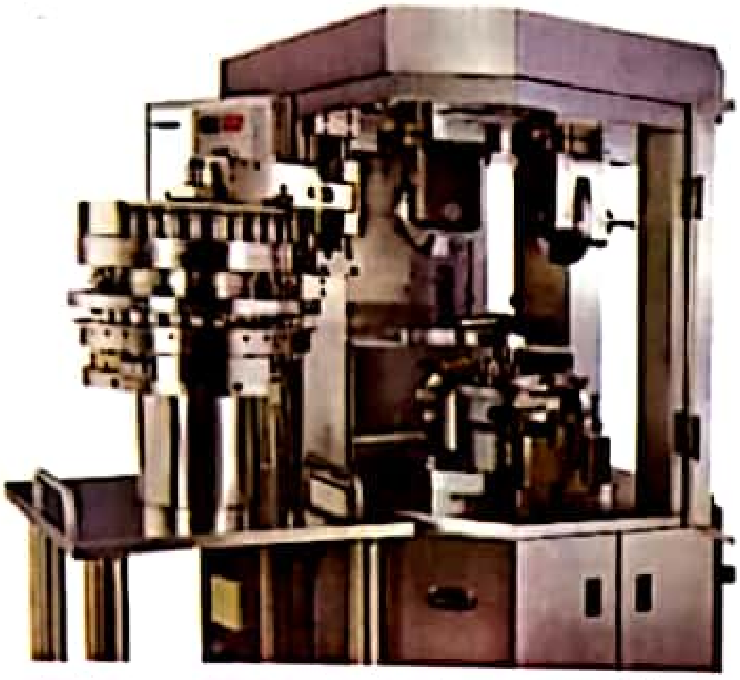

Rotary Tablet Macking Machine

All these parts are arranged in a circle around the rotating head. A large hopper is fitted which supplies the granules to the 'feed frame' placed over the central part containing the dies. As the head rotates, the dies come one by one under the feed frame and are filled. The upper and lower punches passing in between rollers, gradually compress the granules in the form of tablets which are pushed out.

(iv) Multilayer rotary tablet machine :-

With multilayer rotary tablet machines, tablets having one, two or three layers can be produced. They have the advantage that incompatible drugs can be compressed in different layers and separating these layers with an inert material. Sustanined action preparations can also be prepared by this method.

Pill making machine :-

Pill making machine के दो भाग होते हैं :- (i) Stick making machine (ii) Pill cutter (Making) machine. ये दोनों भाग एक मशीन में भी हो सकते है या अलग-अलग भी हो सकते हैं। पहले औषध द्रव्य के चूर्ण में भावना देकर कल्क बनाया जाता है। फिर उस कल्क (Paste) को Stick making machine में डालकर 4 mm से 12 mm की वर्ति (Stick) बनायी जाती है। फिर उस वर्ति को Pill cutter (Making) machine के Roller में डालकर वटी बनाई जाती है। वर्ति की आकार के अनुसार ही Roller की Size होनी चाहिए।

Scanned with CamScanner

Stick making machine :-

It makes the elongated stick 4mm to 12 mm of the mixed material to be fed into motorized stick making machine.

Pill cutter machine :-

Pill making machine consists of sets of two rollers with cut grove spaces for suitable size of pills to be prepared. It is motorized operated with belt. The unit is with one set of roller of desired size of pills up to 4mm to 12 mm.

Pill machine makes ayurvedic medicines in classical pills shape. The paste of drugs is fed into the extruder and the output is cut into pills shape by 2 sets of form cutters, finally a polishing pan shapes the pills.

Stick Making Machine

Pill making machine

Coating and polishing pan :-

The coating pans are spherical vessels made of stainless steel, which rotate on the axis driven by a motor. The polishing pans consists of canvas drums which may be rotated on the same machine after removing the coating pan. The pans are fitted with air blowers to force hot or cold air to facilitate drying. They are also fitted with exhaust pipes to remove the unwanted dusting powders and moisture from the coating pans.

Tablets were coated for the sake of pharmaceutical elegance by improving their appearance, taste and stability. The

most important is sugar coating of tablets. It is one of the oldest and most commonly used method of coating the tablets on a commercial scale

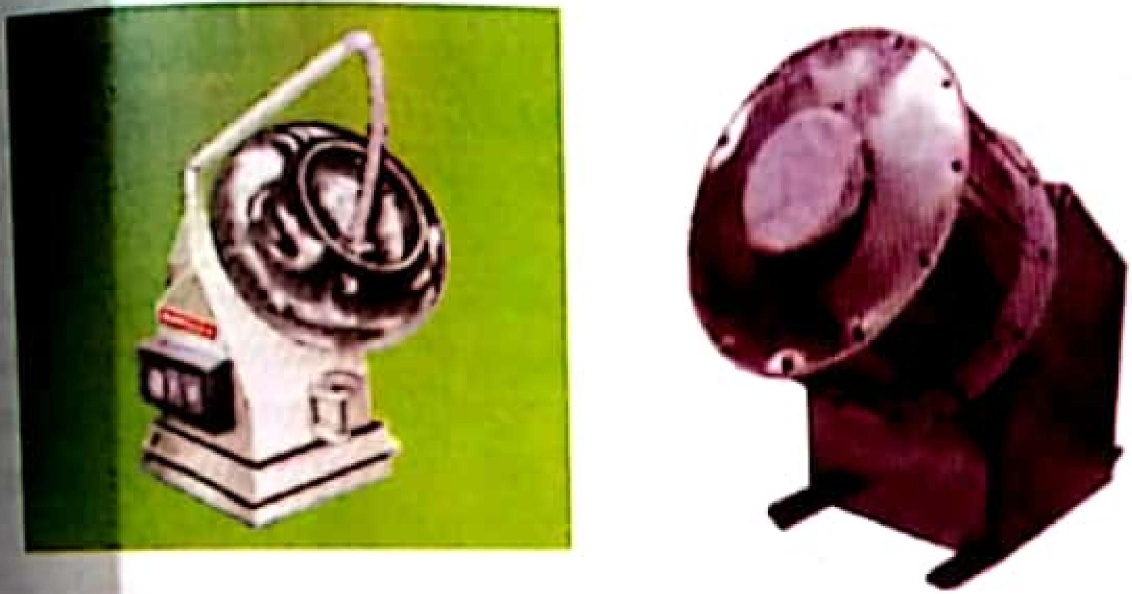

Tablet Coating & Polishing Pan

Capsule Filling Machine :-

Hand operated and electrically operated machines are in practice for filling the capsules but for small and quick dispensing hand operated machines are quite economical. A hand operated hard gelatin capsule filling machine consists of the following parts.

1. A bed with 200 or 300 holes.
2. A capsule loading tray.
3. A powder tray.
4. A pin plate having 200 or 300 pins corresponding to the number of holes in the bed and capsule loading tray.
5. A lever.
6. A handle.
7. A plate fitted with rubber top.

All parts of the machine are made up of stainless steel. The machines are generally supplied with additional loading trays, beds, and pin plates with various diameters of holes so as to fill the desired size of the capsules. These machine are very simple

to operate, can be easily dismantled and reassembled. Even an unskilled worker can fill the capsules without much difficulty.

Capsule Filling Machine

Working

The empty capsules are filled into the loading tray which is then placed over the bed. By operating the handle. the bodies of the capsules are locked and caps separated in the loading tray itself which is then removed by operating the lever. The weighed amount of the drug to be filled in the capsules is placed in powder tray already kept in position over the bed. Spread the powder with the help of a powder spreader so as to fill the bodies of the capsules uniformly. Collect excess of the powder on the platform of the powder tray. Lower the pin plate and move it downward so as to press the powder in the bodies. Remove the powder tray and place the caps holding tray in position. Press the caps with the help of plate with rubber top and operate the lever to unlock the cap and body of the capsules. Remove the loading tray and collect the filled capsules in a tray. With 200 hole machine about 5000 capsules can be filled per hour and with 300 hole machine 7500 capsules can be filled per hour.

On large scale manufacturing various types of semiautomatic and automatic machiners are used. They operate on the same principle as manual filling, namely the caps are removed

Scanned with CamScanner

powder filled in the bodies, caps replaced and filled capsules are ejected out. With automatic capsule filling machines powders or granulated products can be filled into hard gelatin capsules. With accessory equipment, pellets or tablets along with powders can also be filled into the capsules. Depending upon the make and model, operator and the type of the materials to be filled, a machine can fill 9000 to 1,50,000 capsules per hour.

Since the primary reason of filling the drug in capsules is to avoid odour and taste of the drug. The whole aim is lost even if a small amount of the drug remains sticking outside the capsules. Therefore all the capsules whether filled by hand or by machine must be thoroughly cleaned. Small quantities of capsules can be cleaned by wiping each capsule with surgical gauze or clean cloth. On large scale they can be rolled lightly in the folds of a clean towel or cloth forward and backward until cleaned. Still another method is to rotate or shake gently the capsules with granular sodium chloride contained in a container. Then the sticking sodium chloride is removed by rolling them on a clean cloth surface.

The cleaned capsules may be polished by rolling them in a towel which has been previously sprinkled lightly with liquid paraffin. This gives very good shine to the capsules.

⌘ ⌘ ⌘

Scanned with CamScanner

षष्ठ अध्याय

स्नेह कल्पना

स्नेह निरुक्ति :- पुल्लिङ्ग "स्निह" धातु में घञ् प्रत्यय लगाने पर स्नेह शब्द निष्पन्न होता है।

स्नेह के गुण:-

गुरुशीतसरस्निग्धमन्दसूक्ष्ममृदुद्रवम् ।
औषधं स्नेहनं प्रायो............... ।। (अ. सं. सू. 25/4)

अर्थात् गुरु, शीत, सर, स्निग्ध, मन्द, सूक्ष्म, मृदु और द्रव-इन आठ गुणों वाले द्रव्यों को स्नेह कहते हैं।

स्नेह योनि:-

स्नेहानां द्विविधा चासौ योनिः स्थावरजङ्गमा।।
तिलः प्रियालाभिषुकौ बिभीतकश्चित्रामयैरण्डमधूकसर्षपाः।
कुसुम्भबिल्वारुकमूलकातसीनिकोचकाक्षोडकरञ्जशिग्रुकाः।।
स्नेहाशयाः स्थावरसंज्ञिताः तथा स्युर्जङ्गमा मत्स्यमृगाः सपक्षिणः।
तेषां दधिक्षीरघृतामिषं वसा स्नेहेषु मज्जा च तथोपदिश्यते।।
(च. सू. 13/9-11)

अर्थात् स्थावर और जङ्गम भेद से स्नेह की योनि दो प्रकार की होती है।

1. स्थावर स्नेह योनि:-तिल, चिरौंजी, पिस्ता, विभीतक, रक्त एरण्ड, हरीतकी, एरण्ड, महुआ, सर्षप, कुसुम्भ, बिल्व, वासा, मूली, अलसी, नीम का बीज, अखरोट, करञ्ज, सहिजन आदि द्रव्यों को स्थावर स्नेह की योनि में माना गया है।

2. जङ्गम स्नेह योनि-मछली, मृग पशु (गाय, भैंस, बकरी आदि) और पक्षी सभी को जङ्गम स्नेह की योनि में माना गया है। जिनके दूध, घृत, दधि, मांस, वसा और मज्जा का प्रयोग किया जाता है। प्राणिज स्नेहों में घृत, मज्जा, वसा का विशेष प्रयोग होता है।

सर्वेषां तैल... तिलतैलं विशिष्यते।
बलार्थे स्नेह... ...मैरण्डं तु विरेचने।। (च. सू. 13/12)

अर्थात् शरीर में बल एवं ... के लिए समस्त स्थावर तैलों में तिल का तैल और विरेचन के लिए एरण्ड का तैल श्रेष्ठ होता है।

स्नेह के प्रकार:-

सर्पिस्तैलं वसा मज्जा सर्वस्नेहोत्तमा मताः।
एषु चैवोत्तमं सर्पिः संस्कारस्यानुवर्तनात्।।
(च. सू. 13/13)

अर्थात् घृत, तैल, वसा और मज्जा ये चार प्रकार के स्नेह समस्त स्नेहों में श्रेष्ठ माने गये हैं। इन चारों में भी घृत सबसे श्रेष्ठ माना गया है। क्योंकि घृत संस्कारों से दूसरों के गुणों को अपने में आत्मसात् कर लेता है। इस प्रकार स्थावर स्नेहों में तिल तैल और जङ्गम स्नेहों में घृत, वसा और मज्जा मुख्य माने गये हैं।

स्नेह पाक कल्पना:-

चिकित्सा में प्रयोग करने के लिए घृत, तैल आदि स्नेह को क्वाथ, स्वरस, दुग्ध, जल आदि द्रव पदार्थ तथा औषध द्रव्यों के कल्क के साथ पकाकर जो कल्पना की जाती है, उसे स्नेहकल्पना या स्नेहपाक कल्पना कहते हैं।

भैषज्यरत्नावली में स्नेहपाक विधि निम्न प्रकार वर्णित की है:-

आदौ संमूर्च्छयेत् स्नेहं क्वाथं सञ्चारयेत्ततः।
दुग्धं कल्कं क्रमाद्दद्याद् गन्धद्रव्यं ततः परम्।।
एवं रीत्या मन्दमन्दानलेनैव पचेद्भिषक्।
निर्मलं निर्जलं दृष्ट्वा स्नेहसिद्धिं तु लक्षयेत्।।
(भै. र. ज्वर 5/1282-84)

अर्थात् सर्वप्रथम स्नेहों का संमूर्च्छन करने के बाद विविधरोगनाशक द्रव्यों के क्वाथ या स्वरस मूर्च्छित स्नेह में डालकर पाक करें। फिर दूध और कल्क को क्रमशः डालकर पाक करें। तत्पश्चात् सुगन्धित द्रव्यों को डालकर पाक करना चाहिए। अन्तः में सम्यक् पाक के लिए तैल के समान जल डालकर मन्दाग्नि पर जलरहित होने तक पकाना चाहिए। इस प्रकार सामान्य स्नेह पाक हो जाता है।

वर्तमान में स्नेहपाक निर्माण की यह विधि प्रचलित नहीं है। इस विधि के अनुसार सर्वप्रथम स्नेह का मूर्च्छन करना चाहिए। स्नेह (घृत, तैल) का मूर्च्छन सभी ग्रन्थों में नहीं बताया गया है।

Scanned with CamScanner

स्नेहमूर्च्छन विधि:-

स्नेह मूर्च्छन का विधान चरक संहिता, सुश्रुत संहिता, अष्टांग संग्रह, अष्टांग हृदय, शार्ङ्गधर संहिता आदि प्राचीन ग्रन्थों तथा डल्हण, चक्रपाणिदत्त, शिवदास सेन आदि की टीकाओं में नहीं मिलता है, लेकिन पश्चात के ग्रन्थों यथा वृहद्योगतरंगिणी, योगरत्नाकर, शार्ङ्गधर संहिता की गूढार्थ दीपिका टीका, चक्रदत्त की रत्नप्रभा टीका (निश्चलकृत) तथा भैषज्यरत्नावली में इसका वर्णन मिलता है। इन ग्रन्थों के अनुसार घृत, तैल आदि स्नेहों की उग्रता, दुर्गन्ध और आमदोष को दूर करके उनमें सुगन्ध व उत्तम वर्ण की उत्पत्ति हेतु सर्वप्रथम कुछ विशिष्ट द्रव्यों के साथ पाक करना स्नेहमूर्च्छन कहलाता है। स्नेहमूर्च्छन करने से स्नेह में योगोक्त औषधियों के गुण ग्रहण की शक्ति में वृद्धि हो जाती है। घृत तथा पृथक्-पृथक् तैलों के मूर्च्छन हेतु औषधद्रव्य अलग बताये हैं।

घृत मूर्च्छन:-

पथ्याधात्री विभीतैर्जलधररजनीमातुलुङ्गद्रवैश्च
सर्वैरेतैः सुपिष्टैः पलक परिमितैर्मन्दमन्दानलेन।
आज्यप्रस्थं विफेनं परिचपलगतं मूर्च्छयेद्वैधराजः।
तस्मादामोपदोषं हरति च सहसा वीर्यवान् सौख्यदायि॥

(भै.र.ज्वर 5/1285)

अर्थात् एक प्रस्थ घृत को स्टील के पात्र में डालकर मन्दाग्नि पर गर्म करके पात्र को चूल्हे से नीचे उतार कर घृत को थोड़ा सा शीतल करें। इसके पश्चात् हरीतकी, बिभीतकी, आमलकी, नागरमोथा, हरिद्रा और मातुलुङ्ग नींबू स्वरस-प्रत्येक द्रव्य एक-एक पल लेकर उसका कल्क बनाकर घृत में शनैःशनैः डाला जाता है। बाद में एक प्रस्थ जल डालकर मन्दाग्नि द्वारा फेन और जल रहित होने तक घृत को पकाकर मूर्च्छन किया जाता है। इस प्रकार मूर्च्छन करने पर घृत आमदोष रहित, वीर्यवान और सुखदायक हो जाता है।

तिलतैल मूर्च्छन:-

तैलं कृत्वा कटाहे दृढतरविमले मन्दमन्दानलैस्तत्
तैलं निष्फेनभावं गतमिह च यदा शैत्यभावं समेत्य।
मञ्जिष्ठारात्रिलोध्रैर्जलधरनलिकैः सामलैः साक्षपथ्यैः
सूचीपुष्पाङ्घ्रिनीरैरूपहितकथितैर्गन्धयोगं जहाति॥

तैलस्येन्दुकलांशिकैकथिकसा भागोऽपि मूर्च्छाविधौ
ये चान्ये त्रिफलापयोदरजनी ह्रीबेरलोध्रान्विताः।
सूचीपुष्पवटप्ररोहनलिकास्तस्याश्च पादांशिका
दुर्गन्धं विनिहन्ति तैलमरुणं सौरभ्यमाकुर्वते॥

(भै. र. ज्वर 5/1286-87)

अर्थात् सर्वप्रथम एक प्रस्थ तिल तैल को स्टील के पात्र में डालकर मंदाग्नि द्वारा भलाभाँति गर्म करने पर जब तैल में उत्पन्न फेन बंद हो जाय तब चूल्हे से पात्र को नीचे उतारकर थोड़ा ठण्डा करें। फिर मंजिष्ठा, हरिद्रा, लोध्र, नागरमोथा, नलिका, आमलकी, बिभीतकी, हरीतकी, केतकीपुष्प, वटाङ्कुर, सुगन्धबाला इन द्रव्यों में मंजिष्ठा 4 तोला और शेष दस द्रव्य एक-एक तोला की मात्रा में लेकर कल्क बनाकर उक्त तैल में डाला जाता है। इसके पश्चात् तैल के बराबर जल डालकर अग्नि पर निर्जल होने तक पकाया जाता है। इस प्रकार तिल तैल का मूर्च्छन हो जाने पर तैल अरुण वर्ण का, सुगन्धित और आमदोष रहित हो जाता है।

कटुतैल (सर्षप तैल) मूर्च्छन:-

वय:स्थारजनीमुस्तबिल्वदाडिमकेशरैः॥
कृष्णजीरकह्रीबेरनलिकैः सबिभीतकैः।
ऐतैः समांशैः प्रस्थे च कर्षमात्रं प्रयोजयेत्॥
अरुणाद् द्विपल तत्र तोयञ्चाढकसम्मितम्।
कटुतैलं पचेत्तेनं चामदोषहरं परम्॥

(भै. र. ज्वर 5/1288-89)

अर्थात् सर्वप्रथम एक प्रस्थ कटु तैल को स्टील के पात्र में डालकर मंदाग्नि पर भलीभाँति गर्म करने पर जब तैल में फेन उत्पन्न होकर बंद हो जाय तब पात्र को चूल्हे से नीचे उतारकर थोड़ा ठण्डा करें। फिर आमलकी, हरिद्रा, नागरमोथा, बिल्व, दाड़िम, नागकेशर, कृष्णजीरक, सुगन्धवाला, नलिका और बिभीतकी प्रत्येक द्रव्य एक-एक तोला तथा मंजिष्ठा दो पल का कल्क बनाकर उक्त तैल में डाला जाता है। इसके पश्चात् कटुतैल से चतुर्गुण अर्थात् एक आढक जल डालकर अग्निपर निर्जल होने तक पकाया जाता है। इस प्रकार कटु तैल मूर्च्छन हो जाने पर तैल आमदोष रहित हो जाता है।

एरण्ड तैल मूर्च्छनः–

विकसा मुस्तकं धान्यं त्रिफला वैजयन्तिका।
ह्रीबेरवनखर्जूरवटशुङ्गा निशायुगम्॥
नलिकाभेषजं देयं केतकी च समं समम्।
प्रस्थे देयं शाणमितं मूर्च्छने दधिकाञ्जिकम्॥

(भै. र. ज्वर. 5/1290-91)

अर्थात् सर्वप्रथम एक प्रस्थ एरण्ड तैल को स्टील के पात्र में डालकर मंदाग्नि पर गर्म करके तैल को निष्फेन होने पर पात्र को चूल्हे से नीचे उतारकर तैल को थोड़ा ठण्डा करें। फिर मंजिष्ठा, नागरमोथा, धनियाँ, हरीतकी, बिभीतकी, आमलकी, अरणीमूल, सुगन्धबाला, वन खर्जूर, वटाङ्कुर, हरिद्रा, दारुहरिद्रा, नलिका, शुण्ठी और केतकी इन द्रव्यों को एक-एक शाण (3 ग्राम) की मात्रा में लेकर कल्क बनाकर उक्त तैल में डाल देवें। अन्त में 2 प्रस्थ दधि और 2 प्रस्थ काञ्जी मिश्रित कर यथाविधि पकाने पर एरण्ड तैल मूर्च्छित होकर आमदोष रहित हो जाता है।

इस प्रकार घृत, तिलतैल, कटुतैल और एरण्ड तैल की मूर्च्छन विधि का वर्णन किया गया है। उपरोक्त शास्त्र सम्मत विधियों से मूर्च्छन करने पर स्नेह सुगन्धित एवं आमदोष रहित हो जाते हैं। मूर्च्छन करने के समय मंदाग्नि में पाक, द्रव्यों का कल्क थोड़ा ठण्डा होने पर डालना, वानस्पतिक द्रव्यों का चूर्ण या यवकुट कर जल से कल्क बनाना आदि सावधानियाँ रखना अति आवश्यक होता है। मूर्च्छन करने के पश्चात् स्नेहों को छानकर रोगानुसार घृत पाक या तैल पाक यथा-त्रिफला घृत, ब्राह्मीघृत, नारायण तैल, अणुतैल आदि का निर्माण किया जा सकता है। वर्तमान में स्नेह मूर्च्छन तैल घृत को गर्म करके कर लिया जाता है।

स्नेहपाक विधिः–

सामान्यतः स्नेह से चार गुना द्रव और स्नेह का चतुर्थांश कल्क लेकर स्नेहपाक किया जाता है। किन्तु शास्त्र में निर्दिष्ट होने पर उसी के अनुसार कल्क एवं द्रव का ग्रहण करके स्नेहपाक किया जाता है।

स्नेहपाक का सामान्य नियमः–

जलस्नेहौषधानां तु प्रमाणं यत्र नेरितम्।
तत्र स्यादौषधात् स्नेहः स्नेहात्तोयं चतुर्गुणम्॥
द्रवकार्येऽपि चानुक्ते सर्वत्र सलिलं स्मृतम्।
यतश्च पादनिर्देशश्चतुर्भागस्ततश्च सः॥

(च. क. 12/101,100)

स्नेहभेषजतोयानां प्रमाणं यत्र नेरितम्।
तत्रायं विधिरास्थेयो निर्दिष्टे तद्वदेव तु॥
अनुक्ते द्रवकार्ये तु सर्वत्र सलिलं मतम्।
कल्कक्वाथावनिर्देशे गणात्तस्मात् प्रयोजयेत्॥

(सु. चि. 31/9-10)

स्नेहाच्चतुर्गुणोद्रवः स्नेहचतुर्थांशो भेषजकल्कः तदैकध्यं संसृज्य विपचेदित्येष स्नेहपाककल्पः स्नेहकुडवे भेषजपलं पिष्टं कल्कं चतुर्गुणम् द्रवमावाप्य विपचेदित्येष स्नेहपाककल्पः॥ (सु. चि. 31/8)

स्नेहपाके त्वनिर्दिष्टप्रमाणे समुदितस्य द्रवस्य पादेन स्नेहो योज्यस्तत्पादेन कल्कः॥ (अ. सं. क. 8/19)

कल्काच्चतुर्गुणीकृत्य घृतं वा तैलमेव वा।
चतुर्गुणे द्रवे साध्यं तस्य मात्रा पलोन्मिता॥
निक्षिप्य क्वाथयेत् तोयं क्वाथ्यद्रव्याच्चतुर्गुणम्।
पादशिष्टं गृहीत्वा च स्नेहं तेनैव साधयेत्॥

(शा. सं. म. ख. 9/1-2)

अर्थात् प्रायः सभी आचार्यों ने स्नेहपाक सिद्धि के लिए जहाँ पर जल, स्नेह और औषध का मान निर्दिष्ट नहीं किया हो वहाँ पर औषध से स्नेह चार गुना तथा स्नेह से जल चार गुना लेकर स्नेहपाक करने का सामान्य नियम बतलाया है। यहाँ पर चरक संहिता एवं सुश्रुत संहिता में स्नेहपाक में यदि द्रव का उल्लेख नहीं हो तो जल को ग्रहण करने का निर्देश दिया है और पाद शब्द से चतुर्थांश ग्रहण करने को कहा गया है। आचार्य सुश्रुत ने कल्क एवं क्वाथ का स्पष्ट निर्देश नहीं होने पर निर्दिष्ट औषधियों के वर्ग के द्रव्यों का ग्रहण करने का निर्देश दिया है। आचार्य सुश्रुत ने एक कुडव स्नेह में एक पल औषधि का कल्क और चार गुना द्रव पदार्थ डालकर स्नेहपाक करने का निर्देश दिया है। आचार्य शार्ङ्गधर ने क्वाथ्य द्रव्य में चार गुना जल डालकर अग्नि पर पकाकर चतुर्थांश शेष रहने पर छानकर स्नेहपाक सिद्ध करने का निर्देश दिया है।

इस प्रकार स्नेह से चतुर्गुण जल, क्वाथ, गोमूत्र, दूध आदि और चतुर्थांश औषधकल्क लेकर एकत्र पात्र में डालकर मन्दाग्नि द्वारा स्नेह सिद्धि होने तक स्नेहपाक करना चाहिए। उपरोक्त आचार्यों ने एक साथ ही स्नेह, औषध कल्क एवं द्रव को डालकर स्नेहपाक का निर्देश दिया है। किन्तु भैषज्यरत्नावली में क्वाथ, दुग्ध, कल्क, गन्धद्रव्य आदि को क्रमशः एक-एक डालकर स्नेहपाक करने का उल्लेख किया है।

Scanned with CamScanner

अतः मूर्च्छित स्नेह में शास्त्र सम्मत विधि से कल्क एवं द्रव पदार्थ डालकर स्नेहपाक भली भांति करने पर ही औषध कल्पना लाभदायक सिद्ध होती है। इसमें किसी भी स्तर पर नियम का पालन नहीं करने पर औषधि योग अनुपयोगी या अल्प उपयोगी हो जाता है। स्नेह सिद्ध हो जाने पर सिद्ध घृत या तैल कल्पना को छानकर पैकिंग की जाती है।

स्नेहपाके त्वमानोक्तौ चतुर्गुणविवर्धितम्।
कल्कस्नेहद्रवं योज्यमधीते शौनकः पुनः।।
स्नेहे सिध्यति शुद्धाम्बुनिष्क्वाथस्वरसैः क्रमात्।
कल्कस्य योजयेदंशं चतुर्थं षष्टमष्टमम्।।

(अ. सं. क. 8/20-21)

अर्थात् आचार्य वाग्भट के अनुसार सामान्य नियम के विपरीत स्नेहपाक में जल से स्नेहपाक करना हो तो जल स्नेह से चार गुना, क्वाथ से स्नेहपाक करना हो तो क्वाथ स्नेह से छः गुना और स्वरस से स्नेहपाक करना हो तो स्वरस स्नेह से आठ गुना लेकर स्नेहपाक किया जाता है। इसी प्रकार जल के साथ स्नेहपाक में कल्क चतुर्थांश, क्वाथ के साथ कल्क षष्ठांश और स्वरस के साथ कल्क अष्टमांश लेकर स्नेहपाक किये जाने का भी निर्देश है।

स्नेहपाक में अधिक द्रवों का परिमाण:-

द्रवाणि यत्र स्नेहेषु पञ्चादीनि भवन्ति हि।
तत्र स्नेहसामान्याहुर्यथापूर्वं चतुर्गुणम्।।

(शा. सं. म. ख. 9-8)

अर्थात् स्नेहपाक में जहाँ पर पाँच से अधिक द्रव पदार्थ डालने का निर्देश हो तो वहाँ पर प्रत्येक द्रव स्नेह के समान मात्रा में डाले जाते हैं। किन्तु पाँच से कम चार, तीन, दो या एक द्रव पदार्थों द्वारा स्नेहपाक करना हो तो वहाँ पर सभी द्रव द्रव्य मिलाकर चतुर्गुण ही डाले जाते हैं।

स्नेहपाकार्थ क्वाथ में जल का परिमाण:-

चतुर्गुणं मृदुद्रव्ये कठिनेऽष्टगुणं जलम्।
तथा च मध्यमे द्रव्ये दद्यादष्टगुणं पयः।।
अत्यन्त कठिने द्रव्ये नीरं षोडशिकं मतम्।
कर्षादितः पलं यावत्क्षिपेत्षोडशिकं जलम्।।

तदूर्ध्वं कुडवं यावद्द्रवेदष्टगुणं पयः।
प्रस्थादितः क्षिपेन्नीरं खारी यावच्चतुर्गुणम्।।

(शा. सं. म. ख. 9/3-5)

अर्थात् आचार्य शार्ङ्गधर मिश्र ने स्नेहपाक के लिए क्वाथ निर्माण में मृदु द्रव्य में चतुर्गुण जल, मध्यम द्रव्य में अष्टगुण जल, कठिन द्रव्य में अष्टगुण जल और अत्यन्त कठिन द्रव्य में षोडश गुण जल के प्रयोग का निर्देश दिया है। इसके अतिरिक्त द्रव्यों की मात्रानुसार एक से चार तोला तक के द्रव्यों में क्वाथ निर्माणार्थ षोडशगुण जल, चार तोले से सोलह तोले तक के द्रव्यों में क्वाथ निर्माणार्थ अष्टगुण जल और सोलह तोले से खारी पर्यन्त तक के द्रव्यों में क्वाथ निर्माणार्थ चतुर्गुण जल लेने का निर्देश दिया है।

स्नेहपाक में कल्क का परिमाण:-

अम्बुक्वाथरसैर्यत्र पृथक् स्नेहस्य साधनम्।
कल्कस्यांशं तत्र दद्याच्चतुर्थं षष्ठमष्टमम्।।
दुग्धे दध्नि रसे तक्रे कल्को देयोऽष्टमांशकः।
कल्कस्य सम्यक्पाकार्थं तोयमत्र चतुर्गुणम्।।

(शा. सं. म. ख. 9/6-7)

अर्थात् स्नेहपाक में जल, क्वाथ, स्वरस का निर्देश होने पर स्नेहों में कल्क की मात्रा जल के साथ चतुर्थांश, क्वाथ के साथ षष्ठांश और स्वरस के साथ अष्टमांश लेकर पाक करना चाहिए। इसी प्रकार दूध, दही, मांसरस, तक्र में से किसी एक द्रव के द्वारा स्नेह पाक का निर्देश होने पर कल्क अष्टमांश की मात्रा में लेना चाहिए। फिर उचित पाक करने के लिए स्नेह में चतुर्गुण जल डालकर स्नेहपाक करना चाहिए।

स्वरसक्षीरमाङ्गल्यैः पाको यत्रेरितः क्वचित्।
जलं चतुर्गुणं तत्र वीर्याधानार्थमावपेत्।।
न मुञ्चति रसं द्रव्यं क्षीरादिभिरुपस्कृतम्।
सम्यक् पाको न जायेत तस्मात्तोयं चतुर्गुणम्।।

(वै. प. प्र. 1/10-11)

अर्थात् स्वरस, दूध, दही के साथ स्नेहपाक करने के लिए सुपाकार्थ स्नेह से चार गुना जल मिलाकर स्नेहपाक करने पर वह वीर्यवान् हो जाता है क्योंकि स्वरस, दूध, दही से पकाने पर द्रव्य अपने रस गुण वीर्य स्नेह में पूर्ण रूप से नहीं छोड़ता है। इनकी मात्रा कम होने पर अधिक समय तक अग्नि में नहीं पकाया जा सकता है। इस

Scanned with CamScanner

कारण इनमें चतुर्गुण जल मिलाकर स्नेहपाक करने पर औषध में विशेष गुणान्तराधान हो जाता है।

कल्क से स्नेहपाक:-

द्रव्येण केवलेनैव स्नेहपाको भवेद् यदि।
तत्राम्बुपिष्टः कल्कः स्याज्जलं चात्र चतुर्गुणम्।।

(शा. सं. म. ख. 9/9)

अर्थात् यदि केवल द्रव्य के द्वारा ही स्नेहपाक निर्दिष्ट हो तो द्रव्य को जल से पीसकर कल्क बनाकर डाला जाता है। द्रव का उल्लेख नहीं होने पर भी चतुर्गुण जल डाला जाता है। यथा:- गौराद्यं घृतम्।

क्वाथ से स्नेहपाक:-

क्वाथेन केवलेनैव पाको यत्रेरितः क्वचित्।
क्वाथद्रव्यस्य कल्कोऽपि तत्रस्नेहे प्रयुज्यते।।

(शा. सं. म. ख. 9/10)

अर्थात् यदि केवल क्वाथ के द्वारा स्नेहपाक निर्दिष्ट हो तो क्वाथ द्रव्यों को ही जल के साथ पीसकर स्नेह से चतुर्थांश मात्रा में कल्क बनाकर स्नेह में डाला जाता है। यथा-वज्री तैलम्।

कल्कहीन स्नेहपाक:-

कल्कहीनस्तु यः स्नेहः स साध्यः केवले द्रवे।

(शा. सं. म. ख. 9/10½)

अर्थात् यदि स्नेहपाक में कल्क का निर्देश नहीं हो तो वहाँ पर केवल द्रव पदार्थ (बिना कल्क) से भी स्नेहपाक किया जा सकता है।

पुष्पकल्क से स्नेहपाक:-

पुष्पकल्कस्तु यः स्नेहस्तत्र तोयं चतुर्गुणम्।
स्नेहे स्नेहाष्टमांशच पुष्पकल्कः प्रयुज्यते।।

(शा. सं. म. ख. 9/11)

अर्थात यदि स्नेहपाक पुष्पों के कल्क द्वारा किया जाना हो तो वहाँ पर स्नेह का अष्टमांश पुष्पकल्क और चतुर्गुण जल लेकर स्नेहपाक किया जाता है।

क्षीर से स्नेहपाक:-

स्नेहपाकविधौ यत्र क्षीरमेकन्तु कथ्यते।
तोयादीनामनिर्देशे क्षीरमेव चतुर्गुणम्।।

(वै. प. प्र. 3/12)

अर्थात् यदि दूध से ही स्नेहपाक का निर्देश हो और वहाँ पर जल का विधान नहीं किया गया हो तो वहाँ चतुर्गुण दूध डालकर स्नेहपाक करना चाहिए।

अत्र द्रवान्तरानुक्तौ क्षीरमेव चतुर्गुणम्।
द्रवान्तरेण योगे हि क्षीरं स्नेहसमं भवेत्।।

(वै. प. प्र. 3/2)

अर्थात् यदि केवल दूध से ही स्नेहपाक करना हो तो वहाँ पर स्नेह से चतुर्गुण दूध मिलाकर स्नेहपाक करना चाहिए। परन्तु दूसरे द्रव के साथ डालना हो तो दूध स्नेह के समान और जल स्नेह से चतुर्गुण डालकर स्नेहपाक करना चाहिए।

स्नेहपाक काल:-

घृततैलगुडादींश्च साधयेन्नैकवासरे।
प्रकुर्वन्त्युषिता ह्येते विशेषाद् गुणसञ्चयम्।।

(शा. सं. म. ख. 9/18)

अर्थात् घृत, तैल, गुड, अवलेह आदि कल्पनाओं को एक ही दिन में सिद्ध नहीं किया जाता है। क्योंकि ये कल्पनायें व्युषित (बासी) होने पर विशेष गुणों का सञ्चय करती है।

क्षीरे द्विरात्रं स्वरसे त्रिरात्रं तक्रारनालादिषु पञ्चरात्रम्।
स्नेहं पचेद्वैद्यवरः प्रयत्नादित्याहुरेके भिषजः प्रवीणाः।।
द्वादशाहात्तु मूलानां वल्लीनां क्रममेव च।
एकाहं व्रीहिमांसानां पाकं कुर्याद्विचक्षणः।।

(वै. प. प्र. 3/26-27)

अर्थात् स्नेहपाक दूध के साथ दो रात्रि, स्वरस के साथ तीन रात्रि, तक्र, काञ्जी, दही आदि के साथ पाँच रात्रि, मूलों एवं लताओं के साथ बारह दिन और धान, मांसरस के साथ एक दिन में सिद्ध करना चाहिए।

स्नेहपाक प्रमाण:-

स्नेहपाकविधौ यत्र प्रमाणं नेरितं क्वचित्।
स्नेहस्यकुडवं तत्र पचेत् कल्कपलेन तु।।
मानानुक्तौ घृते तैलेप्रस्थमाहुश्चिकित्सकाः।।

(वै. प. प्र. 3/14-15)

अर्थात् कल्क से स्नेहपाक में प्रमाण का उचित निर्देश नहीं होने पर स्नेह एक कुडव (192 ग्राम) और कल्क एक पल (48 ग्राम) लेकर स्नेहपाक करना चाहिए।

Scanned with CamScanner

जहाँ पर घृत एवं तैल का प्रमाण निर्देश नहीं हो तो वहाँ पर घृत या तैल एक प्रस्थ लेकर स्नेहपाक करना चाहिए।

इस प्रकार स्नेहपाक के लिए स्नेह, कल्क एवं द्रव पदार्थ का स्पष्ट निर्देश नहीं होने पर उपर्युक्त मतानुसार उचितमात्रा में लेकर स्नेहपाक किया जाना चाहिए।

पात्रपाक :-

सिद्ध स्नेह का प्रयोग जिस रोग में उपयोग करना है, उस रोग को नाश करने वाले यथा गुण पात्र में पाक करना पात्रपाक कहलाता है। स्नेहपाक करने के लिए स्टीलपात्र, लौहपात्र, ताम्रपात्र एवं वंगलिप्त ताम्रपात्र का प्रयोग करना चाहिए। शास्त्रों में योगानुसार और रोगानुसार भिन्न पात्रों में स्नेहपाक करने का निर्देश किया गया है, जैसे शार्ङ्गधर संहिता में कासीसादिघृत का निर्माण ताम्रपात्र में करने का स्पष्ट निर्देश है। केरल में स्नेहपाक विशेष रूप से ताम्रपात्र में किया जाता है।

पत्रकल्क:-

पक्वपूतेऽप्युष्ण एव सम्यक् पेषणवर्त्तितम्।
दीयते गन्धवृद्ध्यर्थं पत्रकल्कं तदुच्यते।।

(च. द. वातव्याधि /309)

अर्थात् तैलपाक हो जाने पर छानने के बाद उष्णावस्था में ही कस्तूरी आदि गन्ध द्रव्यों को पीसकर गन्धवृद्धि के लिए डाला जाता है, उसे पत्रकल्क कहते है।

इसी को गन्धपाक और पत्रपाक भी कहते है। यह विधि घृतपाक की अपेक्षा तैलपाक में अधिक प्रयुक्त होती है। यथा:- विष्णुतैल, महासुगन्धितैल, लक्ष्मीविलास तैल, महाराजप्रसारणी तैल आदि।

गन्ध द्रव्य :- सूक्ष्मैला, केशर, श्वेतचन्दन, अगर, मुरा, कंकोल, जटामांसी, शटी, सरलनिर्यास, तेजपत्र, गठिवन, कर्पूर, छरीला, उशीर, कस्तूरी, नखी, गन्धमार्जारगण्ड, शिलारस, नागरमोथा, मेथी और लवंग आदि गन्धद्रव्य है :-

एलाकुङ्कुमचन्दनागुरुमुराकक्कोलमांसीशटी-
श्रीवासच्छदग्रन्थिपर्णशशभृत्क्षोणीघ्नजोशीरकम्।
कस्तूरीनखपूतिशैलजलभुङ्मेथीलवङ्गादिकम्
गन्धद्रव्यमिदं प्रदेयमखिलं श्रीविष्णुतैलादिषु।।

(भै. र. वातव्याधि / 295)

स्नेह सिद्धि लक्षण:-

शब्दस्योपरमे प्राप्ते फेनस्योपशमे तथा।
गन्धवर्णरसादीनां संपतौ सिद्धिमादिशेत्।।

घृतस्यैवं विपक्वस्य जानीयात् कुशलो भिषक्।
फेनोऽतिमात्रं तैलस्य शेषं घृतवदादिशेत्।।

(सु. चि. 31/12-13)

वर्तिवत् स्नेहकल्कः स्याद् यदाङ्गुल्या विमर्दितः।।
शब्दहीनोऽग्निनिक्षिप्तः स्नेहः सिद्धो भवेत् तदा।
यदा फेनोद्गमस्तैले फेनशान्तिश्च सर्पिषि।।
गन्धवर्णरसोत्पत्तिः स्नेहसिद्धिस्तदा भवेत्।

(शा. सं. म. ख. 9/12-13)

अर्थात् स्नेहसिद्धि के निम्नांकित लक्षण माने गये है। यथा:-

1. स्नेह का कल्क हाथ की अंगुली द्वारा मसलने पर वर्ती बन जाना।
2. कल्क मिश्रित स्नेह को अग्नि में डालने पर चट्चट् शब्द का नहीं होना।
3. तैलपाक के समय पात्र में फेनोद्गम होना और घृतपाक के समय पात्र में फेन आकर शान्त हो जाना।
4. उचित गन्ध, वर्ण एवं रस की उत्पत्ति हो जाना।

इस प्रकार उपरोक्त लक्षणों से घृत या तैल आदि स्नेहों का उचित प्रकार से पाक हो जाने का ज्ञान हो जाता है। स्नेहपाक करने पर औषधियों के कल्क, क्वाथ, द्रव पदार्थ के गन्ध, वर्ण एवं रस की उत्पत्ति हो जाने पर सम्यक् स्नेहपाक हो जाता है। जिसको विविध प्रयोजन के लिए उपयोग में लिया जा सकता है।

स्नेहपाक के भेद:-

स्नेहपाकस्त्रिधा ज्ञेयो मृदुर्मध्यः खरस्तथा।
तुल्ये कल्केन निर्यासे भेषजानां मृदुः स्मृतः।।
संयाव इव निर्यासे मध्यो दर्वीं विमुञ्चति।
शीर्यमाणे तु निर्यासे वर्त्यमाने खरस्तथा।।

(च. क. 12/102-103)

स्नेहपाकस्त्रिधा प्रोक्तो मृदुर्मध्यः खरस्तथा।
ईषत्सरसकल्कस्तु स्नेहपाको मृदुर्भवेत्।।
मध्यपाकस्य सिद्धिश्च कल्के नीरसकोमले।
ईषत्कठिनकल्कश्च स्नेहपाको भवेत् खरः।।
तदूर्ध्वं दग्धपाकः स्याद् दाहकृन्निष्प्रयोजनः।
आमपाकश्च निर्वीर्यो वह्निमान्द्यकरो गुरुः।।

(शा. सं. म. ख. 9/14-16)

Scanned with CamScanner

घटक द्रव्य :-

स्नेह द्रव्य :-	मूर्च्छित गोघृत	-	768 मि. ली.
द्रव द्रव्य :-	त्रिफला क्वाथ	-	768 मि. ली.
	वासा स्वरस	-	768 मि. ली.
	भृङ्गराज स्वरस	-	768 मि. ली.
	बकरी का दूध	-	768 मि. ली.

कल्क द्रव्य:-

हरीतकी	- 12 ग्राम	मेदा	- 12 ग्राम
बिभीतकी	- 12 ग्राम	मरिच	- 12 ग्राम
आमलकी	- 12 ग्राम	शुण्ठी	- 12 ग्राम
पिप्पली	- 12 ग्राम	शर्करा	- 12 ग्राम
द्राक्षा	- 12 ग्राम	पुण्डरीक	- 12 ग्राम
श्वेतचन्दन	- 12 ग्राम	कमल	- 12 ग्राम
सैन्धव लवण	- 12 ग्राम	पुनर्नवा	- 12 ग्राम
बला	- 12 ग्राम	हरिद्रा	- 12 ग्राम
काकोली	- 12 ग्राम	दारूहरिद्रा	- 12 ग्राम
क्षीरकाकोली	- 12 ग्राम	मधुयष्टी	- 12 ग्राम

निर्माण विधि:-सर्वप्रथम स्टील के पात्र में गोघृत डालकर गर्म किया जाता है। कल्क द्रव्यों का कल्क बनाकर थोड़ा-थोड़ा गोघृत में डाला जाता है। इसके पश्चात् त्रिफला क्वाथ, वासा स्वरस, भृङ्गराज स्वरस एवं बकरी के दूध को क्रमश: डालकर स्नेहपाक किया जाता है। अन्तः में स्नेहपाक की परीक्षा करके सिद्ध त्रिफला घृत के पात्र को चूल्हे से नीचे उतार छानकर उचित पात्र में सुरक्षित रखना चाहिए।

पानार्थ मात्रा:-एक पल (48 ग्राम) व्यवहार में प्रचलित-20 ग्राम

नस्यार्थ मात्रा:-4-6 बूँद

अनुपान:-मिश्रीयुक्त गोदुग्ध

मुख्य उपयोग:-रात्र्यन्धता, नकुलान्ध्य, नेत्रकण्डू, पिल्ल, नेत्रस्राव, नेत्रपटल, तिमिर, काँच एवं अन्य सुदारुण नेत्ररोगनाशक।

ब्राह्मी घृत :-

ब्राह्मीरसे वचाकुष्ठाशङ्खपुष्पीभिरेव च।
पुराणं मेध्यमुन्मादग्रहापस्मारनुद् घृतम्॥

(च. द. अप. चि. 30)

घटक द्रव्य :-	
स्नेह द्रव्य :-	गोघृत-768 मिली.
द्रवद्रव्य :-	ब्राह्मी स्वरस-3.072 लीटर
कल्क द्रव्य :-	1. ब्राह्मी - 60 ग्राम, 2. कुष्ठ - 60 ग्राम
	3. वचा - 60 ग्राम, 4. शंखपुष्पी - 60 ग्राम

निर्माण विधि:-सर्वप्रथम स्टील के पात्र में गोघृत डालकर गर्म कर पात्र को चूल्हे से नीचे उतारकर थोड़ा शीतल किया जाता है। फिर कल्क द्रव्यों का कल्क बनाकर थोड़ा-थोड़ा घृत में डालकर ब्राह्मी स्वरस मिलाकर स्नेहपाक किया जाता है। अन्तः में स्नेहपाक परीक्षा करके सिद्ध ब्राह्मी घृत के पात्र को चूल्हे से नीचे उतारकर छानकर काच पात्र में सुरक्षित रखा जाता है।

पानार्थ मात्रा:-एक पल (48 ग्राम)

अनुपान:-मिश्रीयुक्त गोदुग्ध

मुख्य उपयोग:-स्मृतिवर्द्धक, उन्माद, अपस्मार, ग्रहबाधा नाशक।

जात्यादि घृत :-

जातीनिम्बपटोलपत्रकटुकादार्वीनिशासारिवा।
मञ्जिष्ठाभयासिक्थतुत्थ मधुकैर्नक्ताह्व बीजान्वितैः॥
सर्पिः साध्यमनेन सूक्ष्मवदना मर्माश्रिताः क्लेदिनो।
गम्भीराः सरुजो व्रणाः सगतयः शुद्ध्यन्ति रोहन्ति च॥

(अ. ह. 3.25/67-68)

घटक द्रव्य :-

1. जातीपत्र	- 14.76 ग्राम	2. निम्ब पत्र	- 14.76 ग्राम
3. पटोल पत्र	- 14.76 ग्राम	4. कटुका	- 14.76 ग्राम
5. दारुहरिद्रा	- 14.76 ग्राम	6. हरिद्रा	- 14.76 ग्राम
7. सारिवा	- 14.76 ग्राम	8. मञ्जिष्ठा	- 14.76 ग्राम
9. उशीर	- 14.76 ग्राम	10. सिक्थ	- 14.76 ग्राम
11. तुत्थ	- 14.76 ग्राम	12. मुलेठी	- 14.76 ग्राम
13. करञ्ज	- 14.76 ग्राम	14. गोघृत	- 768 ग्राम
15. जल	- 3.072 लीटर		

Scanned with CamScanner

निर्माण विधि :- सर्वप्रथम सिक्थ और तुत्थ को छोड़कर शेष काष्ठौषधियों का सूक्ष्म चूर्ण करें और जल मिलाकर कल्क बना लें। फिर एक भगोने में गोघृत लेकर चूल्हे पर गर्म करके चूर्ण द्रव्यों का कल्क भगोने में डालें। अब पानी मिलाकर मन्दाग्नि पर चलाते हुए पकावें। घृत सिद्ध होने पर वस्त्र से छान लें। फिर सिद्ध घृत में सिक्थ डालकर कड़छुल से चलाते हुए पाक करें। फिर उसमें तुत्थ द्रव (तुत्थ को थोड़ा जल के साथ घोलकर) डालकर पाक करें। फिर उसे काँच पात्र में सुरक्षित रखें।

विमर्श :- जात्यादि घृत को पहले द्रवित कर हिलाकर (Shake well before use) प्रयोग करना चाहिए, क्योंकि उसमें तुत्थ अघुलनशील होने से नीचे रह जाता है।

मुख्य उपयोग :- मर्माश्रित व्रण, क्लेदी व्रण, गम्भीर व्रण, सरुजव्रण।

क्षीरषट्पल घृत :-

पिप्पलीपिप्पलीमूलचव्यचित्रकनागरैः ।
ससैन्धवैश्च पलिकैर्घृतप्रस्थं विपाचयेत् ।।
क्षीरं चतुर्गुणं दत्त्वा तद्घृतं प्लीहनाशनम् ।
विषमज्वरमन्दाग्निहरं रुचिकरं परम् ।।
(शा. सं. म. ख. 9/19-20)

घटक द्रव्य:-

1. पिप्पली	- 48 ग्राम	2. पिप्पलीमूल	- 48 ग्राम
3. चव्य	- 48 ग्राम	4. चित्रक	- 48 ग्राम
5. शुण्ठी	- 48 ग्राम	6. सैन्धवलवण	- 48 ग्राम
7. गोघृत	- 768 ग्राम	8. गोदुग्ध	- 3.072 लीटर

निर्माण विधि:- सर्वप्रथम क्र.सं. 1 से 6 तक के द्रव्यों का सूक्ष्म चूर्ण करके कल्क निर्माण करें। फिर गोघृत को गर्म करें और उसमें कल्क डालकर एवं गोदुग्ध डालकर पाक करें। सम्यक् पाक हेतु चतुर्गुण जल भी डालना चाहिए। फिर सिद्ध हो जाने पर छानकर किसी पात्र में सुरक्षित रखें।

मात्रा:- 12 ग्राम

उपयोग:- प्लीहारोग, विषम ज्वर और मन्दाग्नि नाशक एवं रुचिकर है।

नारायण तैल :-

अश्वगंधां बलां बिल्वं पाटलां बृहतीद्वयम् ।
श्वदंष्ट्राऽतिबला निम्बं श्योनाकं च पुनर्नवा ।।
प्रसारिणीमग्निमन्थं कुर्याद् दशपलं पृथक् ।
चतुर्द्रोणे जले पक्त्वा पादशेषं शृतं नयेत् ।।

तैलाढकेन संयोज्य शतावर्या रसाढकम् ।
क्षिपेत् तत्र च गोक्षीरं तैलात् तस्माच्चतुर्गुणम् ।।
शनैर्विपाचयेदेभिः कल्कैर्द्विपलिकैः पृथक् ।
कुष्ठैला चन्दनं मूर्वा वचामांसी ससैन्धवैः ।।
अश्वगंधाबलारास्नाशतपुष्पेन्द्रदारुभिः ।
पर्णीचतुष्टयेनैव तगरेण च साधयेत् ।।
तत्तैलं नावनऽभ्यङ्गे पाने बस्तौ च योजयेत् ।
पक्षाघातं हनुस्तम्भं मन्यास्तम्भं गलग्रहम् ।।
खल्लत्वं बधिरत्वं च गतिभङ्गं कटिग्रहम् ।
गात्रशोषेन्द्रियध्वंसावसृक्शुक्रज्वरक्षयान् ।।
अन्त्रवृद्धिं कुरण्डं च दन्तरोगं शिरोग्रहम् ।
पार्श्वशूलं च पाङ्गुल्यं बुद्धिहानिं च गृध्रसीम् ।।
अन्यांश्च विषमान् वाताञ्जयेत् सर्वाङ्गसंश्रयान् ।
अस्य प्रभावाद् बन्ध्यापि नारी पुत्रं प्रसूयते ।।
मर्त्यो गजो वा तुरगस्तैलादस्मात् सुखी भवेत् ।
यथा नारायणो देवो दुष्टदैत्यविनाशनः ।।
तथैव वातरोगाणां नाशनं तैलमुत्तमम् ।
(शा. सं. म. ख. 9/101-110)

घटक द्रव्य :-

स्नेह द्रव्य :-	तिल तैल	- 3.072 लीटर
द्रव द्रव्य :-	शतावरी स्वरस	- 3.072 लीटर
	गोदुग्धः	- 12.288 लीटर

क्वाथ द्रव्य :-

अश्वगंधा	- 480 ग्राम	अतिबला	- 480 ग्राम
बला	- 480 ग्राम	निम्ब	- 480 ग्राम
बिल्व	- 480ग्राम	श्योनाक	- 480 ग्राम
पाटला	- 480 ग्राम	पुनर्नवा	- 480 ग्राम
बृहती	- 480 ग्राम	प्रसारिणी	- 480 ग्राम
कण्टकारी	- 480 ग्राम	अग्निमन्थ	- 480 ग्राम
गोक्षुर	- 480 ग्राम	जल	- 49.152 लीटर
		अवशिष्ट क्वाथ	- 12.288 लीटर

Scanned with CamScanner

कल्क द्रव्य:-

कुष्ठ	- 96 ग्राम	रास्ना	- 96 ग्राम
एला	- 96 ग्राम	सौंफ	- 96 ग्राम
श्वेतचन्दन	- 96 ग्राम	देवदारू	- 96 ग्राम
मूर्वा	- 96 ग्राम	मुद्गपर्णी	- 96 ग्राम
बला	- 96 ग्राम	माषपर्णी	- 96 ग्राम
जटामांसी	- 96 ग्राम	शालपर्णी	- 96 ग्राम
सैंधव लवण	- 96 ग्राम	पृश्निपर्णी	- 96 ग्राम
अश्वगन्धा	- 96 ग्राम	तगर	- 96 ग्राम
वचा	- 96 ग्राम		

निर्माण विधि:-सर्वप्रथम क्वाथ द्रव्यों को यवकुट कर स्टील के पात्र में 49.152 लीटर जल में डालकर चतुर्थांश शेष रहने तक पकाकर छानकर अलग पात्र में रखें। फिर स्टील के पात्र में तिल तैल डालकर गर्म करे। थोड़ा शीतल करके कल्क द्रव्यों को पीसकर बनाए हुए कल्क को थोड़ा-थोड़ा पात्र में डाल देवें। फिर शतावरी स्वरस, गोदुग्ध एवं निर्मित क्वाथ को क्रमशः स्नेह में डालकर स्नेहपाक करें। अन्त में स्नेहपाक की परीक्षा कर सिद्ध नारायण तैल को पात्र में छानकर सुरक्षित रखें।

पानार्थ मात्रा:-एक पल (48 मि. ली.)

नस्यार्थ मात्रा:-4-6 बूँद

अभ्यंग एवं बस्ति:-यथावश्यक

मुख्य उपयोग:-पक्षाघात, हनुस्तम्भ, मन्यास्तम्भ, गलग्रह, खल्ली, बधिरता, गतिभङ्ग, कटिग्रह, गात्रशोष, इन्द्रियध्वंस, रक्तजरोग, शुक्ररोग, ज्वर, क्षय, आन्त्रवृद्धि, कुरंड, दन्तरोग, शिरोग्रह, पार्श्वशूल, पंगुता, बुद्धिहानि, गृध्रसी, विषमवातिकरोग, सर्वाङ्गसंश्रित वातव्याधि, बन्ध्यत्व।

अणुतैल:-

चन्दनागुरुणी पत्रं दार्वीत्वङ्मधुकं बलाम्।
प्रपौण्डरीकं सूक्ष्मैलां विडङ्ग बिल्वमुत्पलम्।
ह्रीबेरमभयं वन्यं त्वङ्मुस्तं सारिवां स्थिराम्।।
जीवन्तीं पृश्निपर्णीं च सुरदारु शतावरीम्।
हरेणुं बृहतीं व्याघ्रीं सुरभीं पद्मकेशरम्।।
विपाचयेच्छतगुणे माहेन्द्रे विमलेऽम्भसि।
तैलाद्दशगुणं शेषं कषायमवतारयेत्।।

तेन तैलं कषायेण दशकृत्वो विपाचयेत्।।
अथास्य दशमे पाके समांशं छागलं पयः।।
दद्यादेषोऽणुतैलस्य नावनीयस्य संविधिः।
अस्य मात्रां प्रयुञ्जीत तैलस्यार्धपलोन्मिताम्।।
स्निग्धस्विन्नोत्तमाङ्गस्य पिचुना नावनैस्त्रिभिः।
त्र्यहात्त्र्यहाच्च सप्ताहमेतत्कर्म समाचरेत्।।
निवातोष्ण समाचारी हिताशी नियतेन्द्रियः।
तैलमेतत्त्रिदोषघ्नमिन्द्रियाणां बलप्रदम्।।
प्रयुञ्जानो यथाकालं यथोक्तानश्नुते गुणान्।

(च. सू. 5/63-70½)

पटक द्रव्य :-

स्नेह द्रव्य :- तिल तैल - 2.700 लीटर

द्रव द्रव्य :- अजा दुग्ध - 2.700 लीटर

क्वाथ द्रव्य :-

श्वेत चन्दन	- 100 ग्राम	दालचीनी	- 100 ग्राम
अगुरु	- 100 ग्राम	नागरमोथा	- 100 ग्राम
तेजपत्र	- 100 ग्राम	सारिवा	- 100 ग्राम
दारूहरिद्रा	- 100 ग्राम	शालपर्णी	- 100 ग्राम
मधुयष्टी	- 100 ग्राम	जीवन्ती	- 100 ग्राम
बला	- 100 ग्राम	पृश्निपर्णी	- 100 ग्राम
प्रपौण्डरीक	- 100 ग्राम	देवदारू	- 100 ग्राम
सूक्ष्मैला	- 100 ग्राम	शतावरी	- 100 ग्राम
वायविडङ्ग	- 100 ग्राम	रेणुका	- 100 ग्राम
बिल्व	- 100 ग्राम	बृहती	- 100 ग्राम
नीलकमल	- 100 ग्राम	कण्टकारी	- 100 ग्राम
सुगन्धबाला	- 100 ग्राम	कुन्दरु	- 100 ग्राम
खस	- 100 ग्राम	पद्मकेशर	- 100 ग्राम
केवटीमोथा	- 100 ग्राम		

क्वाथार्थ जल - 270 लीटर, अवशिष्ट क्वाथ - 27 लीटर

निर्माण विधि:-सर्वप्रथम क्वाथ द्रव्यों को यवकुट चूर्ण करके किसी बड़े पात्र में 270 लीटर माहेन्द्र जल में पकाकर दशमांश शेष (27 लीटर) क्वाथ का निर्माण

किया जाता है। फिर क्वाथ को छानकर अलग पात्र में रखा जाता है। फिर एक लौह के पात्र में तिल तैल को डालकर उसमें प्रत्येक बार 2.700 लीटर क्वाथ डालकर 9 बार तैल को पकाया जाता है। फिर अन्त में (दसवीं बार) 2.700 लीटर क्वाथ, 2.700 लीटर अजादुग्ध को 9 बार सिद्ध तैल में डालकर पकाया जाता है। इस प्रकार बनाया हुआ यह अणु तैल नस्य में प्रयोग किया जाता है।

नस्य मात्रा:–सप्ताह में तीन बार आधा पल (24 मि. ली.)

मुख्य उपयोग:–मन्यास्तम्भ, शिरःशूल, अर्दित, हनुस्तम्भ, जीर्ण प्रतिश्याय, अर्धावभेदक, शिरःकम्प में उपयोगी है। त्रिदोषघ्न एवं सभी इन्द्रियों के लिए बल्य है।

अर्क तैल :–

अर्कपत्ररसे पक्वं हरिद्राकल्क संयुतम्।
नाशयेत् सार्षपं तैलं पामां कच्छूं विचर्चिकाम् ।।
(शा. सं. म. ख. 9/141)

घटक द्रव्य:–

1. हरिद्रा – 250 ग्राम
2. सर्षप तैल – 1 कि.ग्रा.
3. अर्कपत्र स्वरस – 4 लीटर

निर्माण विधि:–सर्वप्रथम हरिद्रा का सूक्ष्म चूर्ण करके जल के साथ पीसकर कल्क निर्माण करें। फिर सर्षप तैल को गर्म करें और उसमें हरिद्राकल्क डालें। फिर उसमें अर्कपत्र स्वरस डालकर पाक करें। फिर सिद्ध हो जाने पर छानकर किसी पात्र में सुरक्षित रखें।

मात्रा:–बाह्य प्रयोग किया जाता है। अतः आवश्यकतानुसार प्रयोग करें।

उपयोग:–पामा, कच्छू तथा विचर्चिकानाशक है।

बला तैल:–

बलामूलकषायेण दशमूलशृतेन च।
कुलत्थयवकोलानां क्वाथेन पयसा तथा।
अष्टाष्टभागयुक्तेन भागमेकं च तैलतः।
गणेन जीवनीयेन शतावर्येन्द्रदारुणा ।।
मञ्जिष्ठाकुष्ठशैलेयतगरागरुसैन्धवैः ।
वचापुनर्नवामांसीसारिवाद्वयपत्रकैः ।।
शतपुष्पाश्वगन्धाभ्यामेलया च विपाचयेत्।
गर्भार्थिनीनां नारीणां नराणां क्षीणरेतसाम् ।।

व्यायामक्षीणगात्राणां सूतिकानां च युज्यते।
राजयोग्यमिदं तैलं सुखिनां च विशेषतः ।।
बलातैलमिति ख्यातं सर्ववातामयापहम् ।।
(शा. सं. म. ख. 9/113-118)

घटक द्रव्य:–

1. तिल तैल – 1 कि.ग्रा.

द्रव द्रव्य:–

2. बलामूल क्वाथ	– 8 लीटर		
3. दशमूल क्वाथ	– 8 लीटर	4. कुलत्थ क्वाथ	– 8 लीटर
5. यव क्वाथ	– 8 लीटर	6. बदरत्वक् क्वाथ	– 8 लीटर
7. गोदुग्ध	– 8 लीटर		

कल्क द्रव्य:–

8. जीवक	– 9 ग्राम	9. ऋषभक	– 9 ग्राम
10. काकोली	– 9 ग्राम	11. क्षीरकाकोली	– 9 ग्राम
12. मेदा	– 9 ग्राम	13. महामेदा	– 9 ग्राम
14. ऋद्धि	– 9 ग्राम	15. वृद्धि	– 9 ग्राम
16. जीवन्ती	– 9 ग्राम	17. मुलेठी	– 9 ग्राम
18. माषपर्णी	– 9 ग्राम	19. मुद्गपर्णी	– 9 ग्राम
20. शतावरी	– 9 ग्राम	21. देवदारु	– 9 ग्राम
22. मञ्जिष्ठा	– 9 ग्राम	23. कुष्ठ	– 9 ग्राम
24. शैलेय	– 9 ग्राम	25. तगर	– 9 ग्राम
26. अगरु	– 9 ग्राम	27. सैन्धव लवण	– 9 ग्राम
28. वचा	– 9 ग्राम	29. पुनर्नवा	– 9 ग्राम
30. जटामांसी	– 9 ग्राम	31. श्वेत सारिवा	– 9 ग्राम
32. कृष्ण सारिवा	– 9 ग्राम	33. तेजपत्र	– 9 ग्राम
34. शतपुष्पा	– 9 ग्राम	35. अश्वगन्धा	– 9 ग्राम
36. सूक्ष्मैला	– 9 ग्राम		

निर्माण विधि:– सर्वप्रथम क्र.सं. 8 से 36 तक के द्रव्यों का सूक्ष्म चूर्ण करके कल्क निर्माण करें। फिर तिलतैल को गरम करें और उसमें कल्क डालें। फिर उसमें क्रमशः क्वाथ द्रव एवं गोदुग्ध डालकर पाक करें। सम्यक् पाक होने पर छानकर किसी पात्र में सुरक्षित रखें।

Scanned with CamScanner

अर्थात् आचार्यों ने मुख्यरूप से स्नेहपाक को मृदु स्नेहपाक, मध्य स्नेहपाक और खर स्नेहपाक भेद से तीन प्रकार का माना है। यथा:-

1. मृदु स्नेहपाक :- जब औषध का कल्क पककर निर्यास की तरह हो जाय और कल्क कुछ रसयुक्त हो, उसे मृदु स्नेहपाक कहते हैं।

मृदु स्नेहपाक में स्नेह (घृत या तैल) में से जल समाप्त हो जाता है किन्तु कल्क में जल रहता है। अतः थोड़ा स्नेह (घृत या तैल) लेकर अग्नि पर डालने पर चट् चट् की आवाज नहीं आती है और जलने लगता है, जबकि कल्क में पानी रहने से अग्नि पर डालने पर चट् चट् की आवाज आती है। कल्क में जल होने से कल्क की वर्ति नहीं बनती है।

2. मध्य स्नेहपाक :- जब औषध का कल्क पककर संयाव (हलुआ) की तरह हो जाय, दर्वी में नहीं लगता हो, रस (जल) से रहित और कोमल हो उसे मध्य स्नेहपाक कहते हैं।

मध्य स्नेहपाक में कल्क में से भी जल समाप्त हो जाता है, इसलिए कल्क को अग्नि पर डालने पर बिना चट् चट् की आवाज किये जलता है। कल्क की वर्ति बन जाती है।

3. खर स्नेहपाक :- जब औषध के कल्क की वर्ति बनाने पर टुकड़े-टुकड़े होकर गिरने लगें और कल्क द्रव्य कुछ कठिन (खर) हो जाय तो उसे खर स्नेहपाक कहते हैं।

इनके अतिरिक्त आचार्य शार्ङ्गधर ने खरपाक के पश्चात् पाक करने पर उसे दग्धपाक माना है, जो दाहकारक एवं निष्प्रयोजन होता है।

स्नेह का सम्यक् परिपाक नहीं होने से पहले पाक बन्द कर दिया जाये तो उस कच्चे पाक को आमपाक कहते हैं। जो हीनवीर्य, अग्निमांद्यकारक एवं गुरु होता है।

स्नेहपाक भेदों का उपयोग:-

खरोऽभ्यङ्गे स्मृतः पाको मृदुर्नस्तः क्रियासु च।
मध्यपाकं तु पानार्थे बस्तौ च विनियोजयेत्।।

(च. क. 12/104)

नस्यार्थ स्यान्मृदुः पाको मध्यमः सर्वकर्मसु।
अभ्यङ्गार्थ खरः प्रोक्तो युञ्ज्यादेवं यथोचितम्।।

(शा. सं. म. ख. 9/17)

'तत्र पानाभ्यवहारयोमृदुः, नस्याभ्यङ्गयोर्मध्यमः, बस्ति कर्णपूरणयोस्तु खर इति।' (सु. चि. 31/11)

अर्थात् आचार्य चरक एवं शार्ङ्गधर ने मृदुपाक स्नेह को नस्यकर्म, मध्यम पाक स्नेह को पीने एवं बस्ति कार्य और खरपाक स्नेह को अभ्यङ्ग में उपयोगी कहा है। जबकि आचार्य सुश्रुत ने मृदुपाक स्नेह को पान एवं भोजन, मध्य पाक स्नेह को नस्य एवं अभ्यंग तथा खरपाक स्नेह को बस्ति एवं कर्णपूरण में उपयोगी माना है।

सर्वेषामिह द्रव्याणां मध्यपाकः प्रशस्यते।
वरं पाको मृदुः कार्य्यः तथापि न खरो मतः।
किञ्चिद्वीर्य्यं मृदुर्धत्ते तज्जहाति खरः पुनः।।

(वै. प. प्र. 3/47)

अर्थात् त्रिविध पाकों में से मध्य स्नेहपाक श्रेष्ठ माना गया है। साथ ही मृदु पाक भी अच्छा बतलाया है। किन्तु मृदु स्नेहपाक में पूर्ण वीर्य नहीं आ पाता है। फिर भी कुछ वीर्य तो रहता ही है। लेकिन गुणों के नष्ट हो जाने से खरपाक अच्छा नहीं माना गया है। इस प्रकार आचार्यों द्वारा मृदु स्नेहपाक, मध्यम स्नेहपाक और खर स्नेहपाक को विविध कार्यों के लिए लाभदायक माना गया है।

सिद्धस्नेह सेवन मात्राः-

आचार्य शार्ङ्गधर ने स्नेहपान (घृत, तैल) की सामान्य सेवन मात्रा एक पल (48 ग्राम) मानी है।

त्रिफला घृत :-

त्रिफलाया रसप्रस्थं प्रस्थं वासारसोद्भवम्।।
भृङ्गराजरसप्रस्थं प्रस्थमाजं पयः स्मृतम्।
दत्त्वा तत्र घृतप्रस्थं कल्कैः कर्षमितैः पृथक्।।
त्रिफला पिप्पली द्राक्षा चन्दनं सैन्धवं बला।
काकोली क्षीरकाकोली मेदा मरिचनागरम्।।
शर्करा पुण्डरीकं च कमलं च पुनर्नवा।
निशायुग्मं च मधुकं सर्वैरभि र्विपाचयेत्।।
नक्तान्ध्यं नकुलान्ध्यं च कण्डूं पिल्लं तथैव च।
नेत्रस्रावं च पटलं तिमिरं काचकं जयेत्।।
अन्येऽपि प्रशमं यान्ति नेत्ररोगाः सुदारुणाः।
त्रैफलं घृतमेतद्धि पाने नस्यादिषूचितम्।।

(शा. सं. म. ख. 9/66-71)

मात्रा :- बाह्य प्रयोग-आवश्यकतानुसार
आभ्यन्तर प्रयोग-12 ग्राम

उपयोग :-इस तैल का रोगानुसार अभ्यङ्ग, बस्ति, नस्य, कर्णपूरण, और पान किया जाता है।

गर्भाधान की इच्छा रखने वाली स्त्रियों को, क्षीणशुक्र पुरुषों को, अतिव्यायाम से शुष्क शरीर वाले पुरुषों को, प्रसूता स्त्रियों को इस तैल का सेवन करना चाहिए। यह राजपुरुषों एवं सुखी पुरुषों के सेवन योग्य है। यह सम्पूर्ण वातरोगों को नष्ट करता है।

पञ्चगुण तैल :- (सिद्धयोगसंग्रह-वेदनाहर)

घटक द्रव्य :-

1. तिलतैल	- 1 लीटर	2. हरीतकी	- 60 ग्राम
3. बिभीतकी	- 60 ग्राम	4. आमलकी	- 60 ग्राम
5. निम्बपत्र	- 180 ग्राम	6. निर्गुण्डी पत्र	- 180 ग्राम
7. क्वाथार्थ जल	- 4.320 लीटर		
अवशिष्ट क्वाथ	- 1.080 लीटर	8. सिक्थ	- 48 ग्राम
9. गन्धविरोजा	- 48 ग्राम	10. शिलारस	- 48 ग्राम
11. राल	- 48 ग्राम	12. गुग्गुलु	- 48 ग्राम
13. कर्पूर	- 60 ग्राम	14. तारपीन तैल	- 30 मि. ली.
15. यूकेलिप्टस तैल	- 30 मि. ली.	16. केजोपुटी तैल	- 30 मि. ली.

निर्माण विधि :- सर्वप्रथम त्रिफला, निम्बपत्र एवं निर्गुण्डी पत्र को यवकुट कर उल्लिखित जल में क्वाथ कर चतुर्थांश शेष रखें। इसके बाद भगोने में तिलतैल को गर्म करें। अब मोम से गुग्गुलु तक पाँचों द्रव्यों का कल्क बनाकर तैलपात्र में डालें। फिर उसमें क्वाथ डालकर निर्जल होने तक पाक करें। अन्तः में छानकर कर्पूर एवं तारपीन आदि तीनों तैलों को मिश्रित कर काँच के पात्र में सुरक्षित रखें।

मुख्य उपयोग :- कर्णशूल, सन्धिवात, आमवात, व्रण, वेदनानाशक।

जात्यादि तैल :-

जातीनिम्बपटोलानां नक्तमालस्य पल्लवाः।
सिक्थं समधुकं कुष्ठं द्वे निशे कटुरोहिणी।।
मञ्जिष्ठा पद्मकं लोध्रमभया नीलमुत्पलम्।
तुत्थकं सारिवाबीजं नक्तमालस्य दापयेत्।।
एतानि समभागानि पिष्ट्वा तैलं विपाचयेत्।।

(शा. सं. म. ख. 9/168-170)

घटक द्रव्य :-

1. जातीपत्र	- 10.66 ग्राम	2. निम्बपत्र	- 10.66 ग्राम
3. पटोलपत्र	- 10.66 ग्राम	4. करञ्जपत्र	- 10.66 ग्राम
5. सिक्थ	- 10.66 ग्राम	6. मुलेठी	- 10.66 ग्राम
7. कुष्ठ	- 10.66 ग्राम	8. हरिद्रा	- 10.66 ग्राम
9. दारुहरिद्रा	- 10.66 ग्राम	10. कटुका	- 10.66 ग्राम
11. मञ्जिष्ठा	- 10.66 ग्राम	12. पद्मक	- 10.66 ग्राम
13. लोध्र	- 10.66 ग्राम	14. हरीतकी	- 10.66 ग्राम
15. नीलोत्पल	- 10.66 ग्राम	16. तुत्थ	- 10.66 ग्राम
17. सारिवा	- 10.66 ग्राम	18. करञ्ज	- 10.66 ग्राम
19. तिल तैल	- 768 ग्राम	20. जल	- 3.072 लीटर

निर्माण विधि :- सर्वप्रथम क्रम सं. 1 से 18 तक के द्रव्यों (सिक्थ और तुत्थ को छोड़कर) का सूक्ष्म चूर्ण करके कल्क निर्माण करें। फिर तिलतैल को गर्म करें और उसमें कल्क डालकर जल को मिलाकर तैलपाक करें। फिर सिद्ध हो जाने पर वस्त्र से छान लें। फिर सिद्धतैल में सिक्थ डालकर पाक करें। फिर उसमें तुत्थद्रव (तुत्थ में थोड़ा जल मिलाकर बनाते हैं) डालकर पाक करें। फिर उसे काँच के जार में सुरक्षित रखें।

विमर्श :- जात्यादि तैल के पात्र को अच्छी तरह हिलाकर (Shake well before use) प्रयोग करना चाहिए। क्योंकि तुत्थ स्नेह में अघुलनशील होने से नीचे Sediment के रूप में रह जाता है।

मुख्य उपयोग :- कच्छू, स्फोटक, नाड़ीव्रण, शस्त्रप्रहारव्रण, दग्धव्रण दन्तनखक्षत, दुष्टव्रण।

भल्लातक तैलपातन :-

भल्लातकानां जर्जरीकृतानां पिष्टस्वेदनं पूरयित्वा भूमावकण्ठं निखातस्य स्नेहभावितस्य दृढस्योपरि कुम्भस्यारोप्योडुपेनापिधाय कृष्णमृत्तिकावलिप्तं गोमयाग्निभिरूपस्वेदयेत्; तेषां यः स्वरसः कुम्भं प्रपद्यते, तमष्ठभागमधुसंप्रयुक्तं द्विगुणघृतमद्यात्; तत्प्रयोगाद्वर्षशतमजरं वयस्तिष्ठतीति समानं पूर्वेण।।

(च. चि. 1/2/14)

तथा भल्लातकास्थीन्याहृत्य कलशप्रमाणेन चापोथ्य स्नेहभाविते दृढे कलशे सूक्ष्माने कच्छिद्रब्रध्ने शरीमुपवेष्ट्य मृदावलिप्ते समावाप्योडुपेन पिधाय भूमावकण्ठं निखातस्य स्नेहभावितस्यैवान्यस्य दृढस्य कुम्भस्योपरि समारोप्य समन्तादगोमयैरूपचित्य दाहयेत, स यदा जानीयात् साधु दग्धानि गोमयानि विगत-

संछादि च भल्लातकान्यौनीति ततस्तं कुम्भमुद्धरेत्। अथ तस्माद् द्वितीयात्-कुम्भात् स्नेहमादाय विडङ्गतण्डुलचूर्णः स्नेहार्धमात्रैः प्रतिसंसृज्यातपे सर्वमहः स्थापयित्वा ततोऽस्मै मात्रां प्रयच्छेत् पानाय तेन साधु विरिच्यते। (च. चि. 7/23)

भल्लातकान् वासयेत्तु क्षीरे प्राङ्मूत्रमावितान्।
ततो द्विधा छेदयित्वा लौहे कुम्भे निधापयेत्।।
कुम्भेऽन्यस्मिंस्त्रिखाते तु तं कुम्भमथ योजयेत्।
मुखं मुखेन सन्धाय गोमयैर्दाहयेत्ततः।।
यः स्नेहश्च्यवते तस्माद् ग्राहयेत्तं शनैर्भिषक्।।

(सु. चि. 1/90-92)

सर्वबीजेषु वा तैलं ग्राह्यं पातालयन्त्रके।।

(र.का.धे प्रथम उप. पाद 4/143)

इदं पातालयन्त्रं हि सर्वतैलं निपातयेत।
काष्ठत्वग्बीजमांसास्थिवंशतैलं समाहरेत्।।

(आ. क. अमृ. 26/135)

घटक द्रव्य:-

1. भल्लातक फल - 1 कि. ग्रा. 2. पिष्टस्वेदन यन्त्र या पाताल यन्त्र

निर्माण विधि:-पूर्णरस वीर्य सम्पन्न भल्लातक को छोटे-छोटे टुकड़े कर पिष्टस्वेदन यन्त्र या पाताल यन्त्र में भर दें। अब ऊपर वाले घड़े के ऊपर उपलों को जला दें। उस अग्नि से भल्लातक स्वित्र हो जायेंगे और उससे तैल नीचे के पात्र या घड़े में आ जायेगा।

मात्रा:- 1 से 2 बूँद (भा. प्र. हिन्दी टीका), 5 से 10 बूँद (आ. नि.)
10 से 20 बूँद (Database के अनुसार)

सहपान:- अष्टमांश मधु और द्विगुण घृत मिलाकर केप्सूल में भरकर प्रयोग करना चाहिए।

उपयोग :- भल्लातक मेध्य, रसायन एवं अग्निवर्धक है। यह कफ, वात, व्रण, उदररोग, कुष्ठ, अर्श, संग्रहणी, गुल्म, शोथ, आनाह, ज्वर एवं कृमिरोग को नष्ट करता है। इस तैल का घृत एवं तैल के साथ मिलाकर कुष्ठ आदि रोगों में आभ्यन्तर एवं बाह्य प्रयोग करते है।

चरक संहिता के अनुसार भल्लातक क्षौद्र (भल्लातक तैल में आठवाँ भाग मधु और द्विगुण गोघृत मिलाकर) का प्रयोग करने से मनुष्य जरारहित 100 वर्ष की आयु प्राप्त करता है तथा अन्य रसायनों के गुण भी प्राप्त होते हैं। भल्लातक का

विधिपूर्वक प्रयोग कफजन्य सभी रोगों तथा विबन्ध को शीघ्र ही नष्ट करता है तथा मेधा तथा अग्नि को बढ़ाने वाला होता है।

भल्लातक सेवन का निषेध:-शिशु, सगर्भास्त्रियों, वृद्ध एवं पित्तप्रकृति वाले पुरुषों को इसका सेवन नहीं करना चहिए। अतिसार, वृक्कशोथ एवं उष्ण काल (विशेष रूप से शरद एवं ग्रीष्म ऋतु) में इसका सेवन नहीं करना चाहिए।

अपथ्य:-इसके सेवन करते समय पित्तवर्धक द्रव्यों यथा उष्णवीर्य, कटु, एवं अम्ल रस वाले द्रव्यों का सेवन नहीं करना चाहिए। अग्नि के पास या धूप में नहीं बैठना चाहिए।

पथ्य:-पित्तशामक द्रव्यों यथा :- दूध, घृत, मिश्री और भात का सेवन हितकर है। तिल और नारियल का सेवन भी लाभप्रद है।

विषाक्त लक्षण और चिकित्सा:-अतिमात्रा में सेवन करने से सर्वप्रथम गुदा और शिश्न के अग्रभाग पर कण्डू और दाह होता है। स्वेद अधिक आता है और प्यास अधिक लगती है। मूत्र की मात्रा कम हो जाती है और उसका वर्ण धूम्र या रक्तवर्ण हो जाता है।

ऐसी स्थिति में उसका सेवन बन्द करके दोष शामक द्रव्यों का प्रचुर मात्रा में प्रयोग करना चाहिए। त्वचा में कण्डू, दाह या शोथ हो जाने पर नारियल तैल, तिलतैल, गोघृत या राल का मलहम लगाना चाहिए। ऐसा करने पर ये उपद्रव 3-4 दिनों में शान्त हो जाते हैं।

विशेष :- 1. पिष्टस्वेदन यन्त्र में ऊपर वाले घड़े के तल में अनेक सूक्ष्मछिद्र होते हैं, जो नीचे वाले घड़े के मुख के अन्दर ही रहने चाहिए, जिससे तैल घड़े के अन्दर ही जायें, बाहर नहीं गिरे। इसमें ऊपर वाले घड़े के मुख को शराव से ढ़ककर कपड़मिट्टी कर देते हैं। नीचे वाले घड़े को जमीन में गाड़कर उसके ऊपर भल्लातक से भरा हुआ घड़ा रखकर सन्धिबन्धन कर देना चाहिए।

2. पाताल यन्त्र से भी इसी सिद्धान्त पर भल्लातक तैलपातन किया जाता है।

जयपाल तैलपातन:-

बीजानि जयपालस्य समाहृत्य नवानि च।
कूपिकायन्त्रयोगेन तैलं निस्सार्य नीयते।।
पातालयन्त्रयोगेन अथवा क्वाथ्य गृह्यते।
कदुष्णवारिणा पश्चात्क्षणं स्थित्वा निपीयते।।
उष्णस्थाने स्थितः स्वच्छे बहुताम्बूलभक्षणम्।
कुरुते सारयेदेतत्सुवेगेन न संशयः।।

Scanned with CamScanner

अथ वेदं च गृह्णीयात तैलबिन्दुचतुष्टयम्।
निराकुलं सुखं कुर्यात्तथा सार्ध्यानि भूयम्॥
नित्यं नित्यं नयेद्धीमानुदराणि विनाशयेत्।
अष्ठीलां कृमिरोगांश्च सद्यो व्याधीन्विनाशयेत्॥

(र. चि. 10/1-10)

अर्थात् कूपिका यन्त्र अथवा पाताल यन्त्र द्वारा जयपाल के ... बीजों का तैल निकाल लें अथवा इनको कूटकर क्वाथ कर लें। क्वाथ ठण्डा होने पर क्वाथ के ऊपरी सतह पर इसका तैल तैरता मिलता है, उसे सावधानी से ग्रहण कर शीशी में सुरक्षित रख लें।

मात्रा:–इस तैल की चार बूँद मन्दोष्ण जल में डालकर प्रातः काल पीकर निर्वात एवं उष्ण घर में बैठना चाहिए।

Database on medicinae plants के अनुसार इसकी मात्रा ½ से 1 बूँद है।

अनुपान:–ताम्बूल भक्षण करना चाहिए। बार–बार ताम्बूल खाने से अत्यधिक विरेचन होकर कोष्ठ शुद्ध हो जाता है।

उपयोग:–सभी प्रकार के उदररोग, अष्ठीला, कृमिरोगों को शीघ्र नष्ट करता है।

सप्तम अध्याय

सन्धान कल्पना

सन्धान कल्पना :– सन्धान कल्पनाओं यथा :– सुरा, मद्य, आसवादि का वैदिक काल में उल्लेख मिलता है। इस काल में देवता इन कल्पनाओं का प्रयोग मात्र आमोद प्रमोद के लिए किया करते थे। चिकित्सा की दृष्टि से सर्वप्रथम चरक संहिता में सधान कल्पनाओं का विशेष वर्णन पाया जाता है। इसके पश्चात् सुश्रुत संहिता एवं अन्य संहिता ग्रंथों में वर्णन मिलता है। आचार्य शार्ङ्गधर ने सन्धान कल्पनाओं के विषय में निम्न उल्लेख किया है। यथा:–

द्रवेषु चिरकालस्थं द्रव्यं यत्सन्धितं भवेत्।
आसवारिष्टभेदैस्तु प्रोच्यते भेषजोचितम्।।

(शा. सं. म. ख. 10/1)

अर्थात् जल, क्वाथ आदि द्रव पदार्थों में गुड, धातकी पुष्प आदि द्रव्यों को सन्धान काल तक रखा रहने पर सन्धान होकर जो द्रव तैयार होता है, उसे आसव, अरिष्ट आदि कहा जाता है। ये कल्पनाएँ शीघ्र प्रभावकारी एवं लम्बे समय तक प्रयोग में ली जा सकती है। सन्धान प्रक्रिया को गुणयुक्त बनाने के लिए निम्नांकित घटकों का ज्ञान रखना आवश्यक होता है :–

1. वानस्पतिक द्रव्य
2. क्वाथ निर्माण
3. क्वाथार्थ जल
4. सन्धान पात्र
5. सन्धान योग्य स्थान
6. सन्धान हेतु अनुकूल वातावरण
7. क्वाथादि में मधुरद्रव्यों का मिश्रण
8. सुगन्धित द्रव्यों का मिश्रण
9. सन्धान काल
10. खनिज द्रव्यों का मिश्रण एवं सुरामापन
11. सन्धान परीक्षण

1. वानस्पतिक द्रव्य:–वानस्पतिक औषधियाँ नवीन एवं रस, गुण, वीर्य, विपाकादि से परिपूर्ण लेनी चाहिए। पुरातन, घुन युक्त या अन्य विकार से ग्रसित द्रव्यों को सन्धान कार्य में प्रयोग नहीं करना चाहिए। वानस्पतिक द्रव्यों को यवकुट चूर्ण या

Scanned with CamScanner

चूर्ण बनाकर प्रयोग किया जाना चाहिए। ब्राह्मी, शंखपुष्पी, मण्डूकपर्णी, तालीस पत्र, तेजपत्र, धातकी पुष्प आदि मृदुद्रव्यों को बिना चूर्ण किये हुए डालने पर भी सन्धान कल्पना में सार भाग आ जाता है। इन द्रव्यों को धूप में सुखाकर सन्धान पात्र में डाला जा सकता है।

2. **क्वाथ निर्माण**:–क्वाथ द्रव्यों को यवकुट करके चतुर्गुण या सामान्य नियमानुसार जल डालकर चतुर्थांश अवशेष रखा जाता है। क्वाथ निर्माण में श्रेष्ठ घटकों का उपयोग करने पर ही सन्धान कल्पनाएं श्रेष्ठ बनती है। क्वाथ निर्माण के लिए विशेष रूप से मध्यमाग्नि का ही प्रयोग किया जाना चाहिए। क्वाथ निर्माण का प्रयोजन औषधि द्रव्यों का सार भाग प्राप्त करना होता है। अतः इस सारभाग को प्राप्त करने के लिए शास्त्रोक्त विधि द्वारा ही निर्माण किया जाना चाहिए।

3. **क्वाथार्थ जल**:–सन्धान कल्पनाओं (आसवारिष्ट) के निर्माण के लिए स्वच्छ पीने योग्य जल का निश्चित मात्रा में प्रयोग किया जाना चाहिए। अशुद्ध एवं अनिश्चित मात्रा में जल का प्रयोग नहीं करना चाहिए।

4. **सन्धान पात्र**:–प्राचीन काल में सन्धान कल्पना निर्माण के लिए मिट्टी के पात्रों का उल्लेख मिलता है। इसके अतिरिक्त सागवान काष्ठ पात्र, स्टेनलेस स्टील पात्र, अच्छे प्लास्टिक पात्र, सीमेंट टैंक, चीनी मिट्टी के बड़े पात्र आदि का आवश्यकतानुसार औषध निर्माता कम्पनियाँ प्रयोग में लेती हैं। आसवारिष्ट का निर्माण अल्प मात्रा में होना एवं पात्रों के टूटने की संभावना के कारण मिट्टी के पात्रों का उपयोग ठीक नहीं रहता है। प्लास्टिक अच्छा नहीं होने पर द्रव में घुलने के कारण सन्धान क्रिया गुणवती नहीं होती है। चीनी मिट्टी के पात्रों में अल्प मात्रा में ही सन्धान क्रिया हो पाती है।

अतः सन्धान कल्पना के लिए सबसे उपयुक्त पात्र स्टेनलेस स्टील के ही माने जाते हैं। इसके अभाव में सागवान काष्ठ पात्र या सीमेन्ट टैंक भी काम में लिए जा सकते हैं। काष्ठ के पात्रों में एक ही आसवारिष्ट का निर्माण किया जाना उपयुक्त होता है। बदल-बदल कर बनाने पर आसवारिष्ट खराब हो जाते हैं।

आसवारिष्ट बनाने के पश्चात् पात्रों की सफाई अच्छी प्रकार से करनी चाहिए। इस प्रकार स्टील के पात्रों को छोड़कर अन्य पात्रों में विविध प्रकार की कठिनाईयाँ होने के कारण सन्धान कल्पना के लिए उत्तम स्टील के पात्र ही निरापद होते हैं।

5. **सन्धान योग्य स्थान**:– प्राचीन संहिताओं में सन्धान पात्र को भूमि के अन्दर या धान्य राशि में रखने का उल्लेख मिलता है। किन्तु यह व्यवस्था छोटे पात्रों के लिए ही सम्भव हो सकती है। इस व्यवस्था का प्रधान उद्देश्य ताप नियन्त्रण करना होता है। किन्तु मिट्टी के पात्र में शनै शनै द्रव के रिसने या निकालने-रखने में पात्र के टूटने की सम्भावना रहती है। अतः भूमि के अन्दर पात्र को गाड़ने की प्रक्रिया उचित नहीं है।

अतः सन्धान कार्य हेतु संधान पात्र को निर्वात कक्ष में रखा जाना उपयुक्त रहता है। सन्धान कक्ष का तापमान 30 से 35° सेन्टिग्रेड होना चाहिए।

6. **सन्धान हेतु अनुकूल वातावरण**:–सन्धान कल्पना के लिए अनुकूल वातावरण का होना अति आवश्यक है। इसके लिए 30 से 35 डिग्री सेन्टिग्रेड तापमान तथा शरद एवं बसन्त ऋतु को सर्वश्रेष्ठ माना गया है। शीत एवं वर्षा ऋतु में सन्धान प्रक्रिया विलम्ब से होती है। वर्षा ऋतु में वनस्पतियों में सड़न पैदा हो जाती है। शीत प्रदेशों यथा श्रीनगर, दार्जिलिंग, मसूरी, नैनीताल में अधिक शीत के कारण सन्धान प्रक्रिया संपन्न होने में कठिनाई होती है। अतः बसन्त एवं शरद ऋतु को सन्धान के लिए उपयुक्त माना गया है। क्योंकि इन ऋतुओं में सन्धान प्रक्रिया चार दिन में ही प्रारम्भ हो जाती है। लगभग 20-25 दिन में आसवारिष्ट तैयार हो जाता है। एयरकन्डीशनर द्वारा सभी जगह सभी ऋतुओं में कृत्रिम ताप नियन्त्रण द्वारा संधान प्रक्रिया आसानी से संपन्न की जा सकती है।

7. **क्वाथादि में मधुरादि द्रव्यों का मिश्रण**:–गुड, शर्करा, मधु आदि का उत्तम गुणवान् होना सन्धान के लिए जरूरी है। क्योंकि अच्छी गुणवत्ता का नहीं होने पर आसवारिष्ट का स्वाद अच्छा नहीं होता है। गुड को सन्धान पात्र में डाल कर अच्छी प्रकार घोलना चाहिए। शास्त्रोक्त मात्रा में मधुर द्रव्यों की मात्रा मिलानी चाहिए। धातकी पुष्प को धूप में सुखाकर बिना कूटे डाला जाता है।

8. **सुगन्धित द्रव्यों का मिश्रण**:–सन्धान कल्पना में प्रक्षेप द्रव्यों को निर्धारित मात्रा में सन्धान प्रक्रिया पूर्ण होने पर डालना चाहिए। सन्धान पात्र में सुन-सुन की आवाज बन्द होने पर प्रक्षेप द्रव्यों को कूटकर पात्र में डालना चाहिए। सन्धान प्रक्रिया के बंद होने पर प्रक्षेप द्रव्य डालने से उसके तत्त्व आसवारिष्ट में विलीन होकर मिल जाते है। इस प्रकार सन्धान प्रक्रिया के समाप्त होने के बाद दालचीनी, छोटी इलायची, तेजपात, नागकेशर, लवंग, जायफल, जावित्री, केशर, कपूर आदि सुगन्धित द्रव्यों का

Scanned with CamScanner

चूर्ण कर पात्र में मिलाकर सन्धान पात्र का ढक्कन बन्द कर दिया जाता है। इसके तीन चार दिन बाद छानकर आसवारिष्ट की पैकिंग की जाती है।

9. सन्धान काल:–प्राचीन आचार्यों ने सन्धान प्रक्रिया के लिए 30 दिन का समय निर्धारित किया है। किन्तु ऋतुकाल के अनुसार यह समय कम ज्यादा हो सकता है। बसन्त एवं शरद ऋतु में आसवारिष्ट का निर्माण करना श्रेष्ठ माना जाता है, अन्य ऋतु में नहीं। सन्धान कार्य को शीघ्र सम्पन्न करने के लिए किण्व (Yeast) का प्रयोग किया जा सकता है।

10. खनिज द्रव्यों (भस्मों) का मिश्रण एवं सुरामापन:–आसवारिष्टों में जहां पर भस्मों को डालने का प्रावधान हो तो वहाँ पर सन्धान समाप्त होने के बाद वारितर भस्मों को डालना चाहिए। आसवारिष्टों में सुरा का प्रतिशत मापने के लिए वर्तमान में एल्कोहल मीटर का प्रयोग किया जाता है। इस यन्त्र पर 0 से 100 तक अंक निर्धारित होते हैं। जिसको आसवारिष्ट में डुबोकर एल्कोहल की मात्रा का ज्ञान किया जाता है। सामान्यतः आसवारिष्ट में 5 से 15 प्रतिशत तक एल्कोहल की मात्रा पायी जाती है। औषध प्रसाधन अधिनियम के अनुसार 12% से अधिक एल्कोहाल नहीं होना चाहिए।

11. सन्धान परीक्षण:–सन्धान पात्र में सभी द्रव्यों को डालकर मुख को बन्द करके निर्वात स्थान पर रख दिया जाता है। तब सात दिन के पश्चात् किण्वीकरण की प्रक्रिया आरम्भ हो जाती है। इस समय सन्धान पात्र में सुन्-सुन् की आवाज प्रारम्भ हो जाती है एवं कार्बनडाईऑक्साइड गैस का निर्माण शुरू हो जाता है। यह आवाज कान लगाकर सुन सकते हैं। और जलती तीली को पात्र के बीच में ले जाने पर बुझ जाती है। इसका यह मतलब होता है कि सन्धान प्रक्रिया जारी है। जब किण्वीकरण की प्रक्रिया समाप्त हो जाती है, तब पात्र में सुन्-सुन् की आवाज बन्द हो जाती है और सन्धान पात्र के बीच में माचिस की जलती तीली ले जाने पर जलती रहती है। जो ऑक्सीजन गैस की उपस्थिति की पहचान है। इस प्रकार आसवारिष्ट निर्माण की परीक्षा की जाती है।

Lime Water Test :- सन्धान प्रक्रिया में उत्पन्न CO_2 gas की परीक्षा हेतु यह किया जाता है। यह Test परीक्षा करने के लिए सन्धान पात्र के मुख में एक काँच की नली जोड देते है, जिसका दूसरा सिरा चूर्णोदक में रखते है। सन्धान क्रिया में जब ग्लूकोज ऑक्सीकृत होकर मद्य (Alcohol) में परिवर्तित होता है तब कार्बन डाई ऑक्साइड गैस नली से होती हुई चूर्णोदक में पहुँचकर बुलबुले उत्पन्न करती है तथा जल का रंग दूधिया (Milky white) हो जाता है। जब सन्धान प्रक्रिया चल रही होती

है, तब यह परीक्षा सकारात्मक होती है। सन्धान प्रक्रिया पूर्ण हो जाने पर चूर्णोदक के रंग में कोई परिवर्तन नहीं होता है।

$$Ca(OH)_2 + CO_2 - CaCO_3 + H_2O$$

इसके पश्चात् आसवारिष्टों को छानकर उचित बोतलों में पैकिंग करके लेबल लगाकर सुरक्षित स्थान पर रख दिया जाता है। इस प्रकार सम्यक् रूप से बने हुए आसवारिष्टों को एक वर्ष बाद में प्रयोग में लेना चाहिए। क्योंकि आसवारिष्ट जितने पुराने होते जाते हैं, उतने ही अधिक गुणकारी होते हैं।

आसवः–

"**षुञ् अभिषवे**" धातु से "**आसूय निष्पाद्यते**"। इस अर्थ में आसव शब्द की निष्पत्ति हुई है, अर्थात् जिसे संधान करके बनाया जाता है, उसे आसव कहते है।

"**एषामासवानामासुतत्वादासवसंज्ञा।**" (च. सू. 25/49)

अर्थात् संधान क्रिया द्वारा निर्मित होने के कारण इसे आसव कहते हैं। इस व्युत्पत्ति से आसव शब्द मद्यमात्र के लिए प्रयुक्त होता है।

यदपक्वौषधाम्बुभ्यां सिद्धं मद्यं स आसवः। (शा. सं. म. ख. 10/2)

अर्थात् अपक्व औषध एवं जल के संयोग से संधान क्रिया द्वारा तैयार मद्य को आसव कहते हैं।

आसव योनियाँ:–

धान्यफलमूलसारपुष्पकाण्ड पत्रत्वचो भवन्त्यासव योनयोऽग्निवेश! संग्रहेणाष्टौ शर्करानवमीकाः ।। (च. सू. 25/49)

अर्थात् धान्य, फल, मूल, सार, पुष्प, काण्ड, पत्र, त्वक् और शर्करा ये नौ आसव की योनियाँ चरकाचार्य ने मानी है।

आसव संख्या:–

तास्वेव द्रव्यसंयोगकरणतोऽपरिसंख्येयासु यथापथ्यतमानामासवानां चतुरशीतिं निबोध। तद्यथा–सुरासौवीरतुषोदकमैरेयमेदकधान्याम्लाः षड् धान्यासवा भवन्ति, मृद्वीकाखर्जूरकाश्मर्यधन्वनराजादनतृणशून्यपरूषकाभयामलकमृग-लिण्डिका जाम्ववकपित्थकुवलबदरकर्कन्धुपीलुप्रियालपनसन्यग्रोधाश्वत्थ-प्लक्षकपीत नोदुम्बराजमोदशृङ्गाटकशङ्खिनी फलासवाः षड्विंशतिर्भवन्ति, विदारीगन्धाश्वगन्धाकृष्णगन्धा शतावरी........(च.सू.25/49)

Scanned with CamScanner

अर्थात् चरक संहिता में हितकर 84 आसवों का उल्लेख किया है-

धान्यासव - 6	फलासव - 26	मूलासव - 11
सारासव - 20	पुष्पासव - 10	काण्डासव - 4
पत्रासव - 2	त्वगासव - 4	शर्करासव - 1

आसव के गुण:-

मनः शरीराग्निबलप्रदानामस्वप्नशोकारुचिनाशनानाम्।
संहर्षणानां प्रवरासवानामशीतिरूक्ता चतुरुत्तरैषा॥

(च. सू. 25/50)

अर्थात् मन, शरीर एवं अग्नि के लिए बलवर्द्धक, शोक एवं अरुचि का नाशक और मन को प्रसन्न करने वाले 84 आसवों का वर्णन चरक संहिता में किया गया है।

अरिष्ट :-

"न रिष्यते इति अरिष्टः"। (द्र. गु. वि. यादवजी)

अर्थात् जो चिरकाल तक नष्ट (खराब) नहीं हो, उसे अरिष्ट कहते हैं।

"अरिष्टो द्रव्य संयोग संस्कारादधिको गुणैः" (सु. सू. 45/194)

अर्थात् अरिष्ट में द्रव्य संयोग तथा संस्कार से गुणाधान अधिक होता है।

अरिष्टः क्वाथसाध्यः स्यात्....॥ (शा. सं. म. ख. 10/2)

अर्थात् औषधियों का क्वाथ निर्माण कर सन्धान करने पर अरिष्ट का निर्माण होता है।

आसवारिष्ट निर्माण विधि:-

क्वाथादौ भेषजद्रव्यं शर्करां मधु वा गुडम्।
सम्यगासवनिष्पत्यै किञ्चित् किण्वं तथैव च॥
सन्धाय स्थापयेज्जातरसं वस्त्रपरिसुतम्।
मांसीमरिचलोहैस्तु प्रलिप्ते धूपितेऽथवा॥
शुचौ भाण्डे मुखं रूद्ध्वा स्थापितं भेषजोचितम्।
आसवारिष्टसंज्ञां तं कल्पमाहुश्चिकित्सकाः॥

(द्र. गु. वि. यादव जी 2/72-74)

अर्थात् वानस्पतिक द्रव्यों के क्वाथ, स्वरस आदि में गुड, शर्करा या मधु मिलाकर सन्धान पात्र में रखकर उसमें किण्व एवं सुगन्धित एवं अन्य औषध द्रव्यों का चूर्ण या यवकुट चूर्ण मिलाकर शरावसम्पुट कर निर्वात स्थान में 20-25 दिनों के लिए

रखें। फिर मद्य के निष्पन्न होने पर परीक्षा करके छानकर पुनः उस पात्र को मांसी, मरिच, अगरू से प्रलिप्त या धूपित करके सन्धान पात्र का मुख बन्द कर कुछ दिन तक रखा रहने दें। फिर छानकर सुरक्षित पात्र में रखा जाता है। इस प्रकार विद्वान लोग इसे आसवारिष्ट कहते हैं।

आसवारिष्टों में जल, गुड, मधु एवं प्रक्षेप का मान:-

अनुक्तमानारिष्टेषु द्रवद्रोणे तुलां गुडम्।
क्षौद्रं क्षिपेद् गुडादर्धं प्रक्षेपं दशमांशिकम्॥

(शा. सं. म. ख. 10/3)

अर्थात् जिन आसवारिष्टों में जल, गुड, मधु एवं प्रक्षेप द्रव्यों के मान का स्पष्ट उल्लेख नहीं हो तो वहाँ पर सामान्य नियमानुसार एक द्रोण, (12.288 लीटर) जल में गुड एक तुला (4.800 किग्रा.), मधु 2.400 किग्रा.और प्रक्षेप द्रव्य 480 ग्राम की मात्रा में डालकर आसवारिष्ट बनाया जा सकता है।

अरिष्ट के गुण:-

शोषार्शोग्रहणीदोषपाण्डुरोगारुचिज्वरान् ।
हन्त्यरिष्टः कफकृतान् रोगान् दीपनपाचनः॥

(च. सू. 27/182)

अरिष्टोद्रव्यसंयोगसंस्कारादधिकोगुणैः ।
बहुदोषहरश्चैव दोषाणां शमनश्च सः॥
दीपनः कफवातघ्नः रसः पित्ताविरोधनः।
शूलाध्मानोदरप्लीहज्वराजीर्णार्शसां हितः॥

(सु. सू. 45/195)

अरिष्टं लघुपाकेन सर्वतश्च गुणाधिकम्।
अरिष्टस्य गुणाज्ञेया बीजद्रव्यगुणैः समा॥

(भा. प्र. संधान वर्ग)

अर्थात् विविध द्रव्यों के संयोग एवं संस्कार से लघुपाकी होने के कारण अरिष्ट आसव से अधिक गुणवान् होता है। यह विविध रोग एवं दोषों को नष्ट करता है। यह दीपक, पाचक, कफवातहर, दोषशामक, पित्तवृद्धिकर होता है। अरिष्ट का सेवन करने पर शूल, शोष, अर्श, ग्रहणी, पाण्डु, अरुचि, ज्वर, आध्मान, उदररोग, प्लीहा, अजीर्ण, अर्श, विबन्ध आदि रोगों को दूर करता है। बीज द्रव्य के समान गुण अरिष्ट में होते हैं।

Scanned with CamScanner

आसवारिष्ट सेवन मात्रा:–

..........तयोर्मानं पलोन्मितं ।। (शा. सं. म. ख. 10/2)

अर्थात् आसवारिष्ट की सामान्य सेवन मात्रा एक पल बतलायी है। वर्तमान में आधा पल की मात्रा में सेवन करना चाहिए। अहिफेनासव, कर्पूरासव, मृगमदासव आदि की मात्रा बिन्दुओं में दी जाती है।

आसवारिष्ट अनुपान:–

भोजनोत्तर समान भाग जल के साथ।

आसवारिष्ट में भेद :–

आसव:–किसी सन्धान पात्र में जल, स्वरस, हिम में गुड, शर्करा, मधु एवं सुगन्धित प्रक्षेप द्रव्यों का चूर्ण, धातकी पुष्प, किण्वादि निर्धारित मात्रा में मिश्रित कर 15 से 30 दिनों तक सन्धान हेतु निश्चित स्थान पर रखा जाता है। इस प्रकार जो मद्य तैयार हो जाता है, उसे आसव कहते हैं। इसे अपक्व जल से निर्मित किया जाता है।

अरिष्ट:–योगोक्त औषधि द्रव्यों का क्वाथ बनाकर उसमे गुड, शर्करा, मधु एवं सुगन्धित प्रक्षेप द्रव्यों का चूर्ण, धातकी पुष्प, किण्वादि निर्धारित मात्रा में सन्धान पात्र में मिश्रित कर 15 से 30 दिनों तक सन्धान हेतु निश्चित स्थान पर रखा जाता है। इस प्रकार जो मद्य तैयार हो जाता है, उसे अरिष्ट कहते हैं। अर्थात् आसव अपक्व जल एव औषध से तथा अरिष्ट पक्व जल एवं औषधादि से बनाया जाता है। यह आसव एवं अरिष्ट में मुख्य भेद होता है।

विमर्श:–यह भेद शार्ङ्गधर संहिता में बताया गया है। चरक संहिता एवं सुश्रुत संहिता में भेद नहीं बताया गया है।

चरक संहिता में वर्णित मध्वासव का क्वाथ बनाकर सन्धान किया गया है। इसी प्रकार सुश्रुत संहिता में मृत्तिकारिष्ट का सन्धान बिना क्वाथ ही किया गया है। पर इस प्रकार के आसवारिष्ट का निर्माण अपवाद स्वरूप ही मिलते हैं। लेकिन अधिक मात्रा में आसव बिना क्वाथ एवं अरिष्ट क्वाथ से ही सन्धान किया जाता है। आसवारिष्ट कल्पनायें मद्य वर्ग में होने पर भी एल्कोहल की मात्रा अल्प होने से मादकता उत्पन्न नहीं करके औषध के रूप में अपना प्रभाव करती है। आसवारिष्ट की सवीर्यता अवधि अधिक होने के कारण चिरकाल तक अधिक गुणकारी होती है।

आसवारिष्ट निर्माण में सावधानियाँ :–

- काष्ठौषधियां पूर्ण रस, वीर्य, गुण आदि से परिपूर्ण होनी चाहिए।
- क्वाथ निर्माण शास्त्र सम्मत विधि से ही किया जाना चाहिए।

- गुड, शर्करा, मधु को निर्धारित मात्रा में सर्वप्रथम मिलाना चाहिए।
- खनिज द्रव्यों का प्रयोग भस्म बनाकर ही किया जाना चाहिए।
- जल स्वच्छ, मधुर एवं निर्धारित मात्रा में डालना चाहिए।
- प्रक्षेप द्रव्यों का सूक्ष्म चूर्ण नहीं किया जाना चाहिए।
- सन्धान स्थान निर्वात या वातानुकूलित (AC) होना चाहिए।
- आसवारिष्ट निर्माण शरद एवं बसन्त ऋतु में करना चाहिए।
- सन्धान पात्र का ढक्कन कसकर नहीं लगाया जाना चाहिए।
- सन्धान प्रारम्भ होने की परीक्षा समय पर की जानी चाहिए।
- आसवारिष्ट बनने के बाद पैकिंग एव लेबलिंग की जानी चाहिए।
- आसवारिष्ट निर्माण में GMP का पालन किया जाना चाहिए।

प्रचलित आसव:–

अरविन्दासव	द्राक्षासव	सारिवाद्यासव
अहिफेनासव	धनूरासव	मध्वासव
उशीरासव	पुनर्नवासव	लोध्रासव
कुमार्यासव	पिप्पल्यासव	वासासव
चन्दनासव	लोहासव	कर्पूरासव

प्रचलित अरिष्ट:–

द्राक्षारिष्ट	कुटजारिष्ट	वासारिष्ट
अश्वगंधारिष्ट	जीरकाद्यरिष्ट	दन्त्यरिष्ट
अशोकारिष्ट	अभयारिष्ट	अमृतारिष्ट
विडङ्गारिष्ट	बलारिष्ट	पत्रांगारिष्ट

औषध प्रसाधन अधिनियम के अनुसार आसव अरिष्ट में अल्कोहल की मात्रा 12% से अधिक नही होनी चाहिए।

मृत्संजीवनी सुरा और महाद्राक्षासव में 16% से अधिक अल्कोहॉल नहीं होना चाहिए। कर्पूरासव, अहिफेनासव, मृगमदासव की पैकिंग 15 मि. ली., मृत्संजीवनी सुरा की 30 मि. ली. और महाद्राक्षासव की पैकिंग 120 मि. ली. से अधिक नहीं होनी चाहिए।

सुरा:–

परिपक्वान्नसन्धानसमुत्पन्नां सुरां जगुः ।

(शा. सं. म. ख. 10/4½)

Scanned with CamScanner

अर्थात् यव, चावल आदि अन्न को पकाकर सन्धान करने के बाद मध्यमाग्नि द्वारा स्रवण (Distilation) करके प्राप्त होने वाले द्रव को सुरा कहते हैं।

सुरा के गुण:-

कृशानां रक्तमूत्राणां ग्रहण्यर्शोविकारिणाम्।
सुरा प्रशस्ता वातघ्नी स्तन्यरक्तक्षयेषु च।।

(च. सू. 27/179)

कासार्शोग्रहणीदोषमूत्राघातानिलापहा।
स्तन्यरक्तक्षयहिता सुरा बृंहणदीपनी।।

(सु. सू. 45/175)

अर्थात् सुरा का उचित मात्रा में सेवन करने पर कास, अर्श, ग्रहणीरोग एवं मूत्राघात को नष्ट करती है। यह वातहर, दूध, रक्तक्षय में हितकर, बृंहण एवं अग्निदीपन होती है।

सुरा के भेद:-

निर्माणोपरान्त सुरा को पात्र में रखने पर उसमें निम्न स्तर होते हैं:-

सुरामण्डः प्रसन्ना स्यात् ततः कादम्बरी घना।।
तदधो जगलो ज्ञेयो मेदको जगलाद् घनः।
पक्वोऽसौ हतसारः स्यात् सुराबीजं च किण्वकम्।।

(शा. सं. म. ख. 10/5-6)

अर्थात् सुरा के ऊपर का स्वच्छ मण्ड भाग को प्रसन्ना, प्रसन्ना की अपेक्षा नीचे के गाढ़े भाग को कादम्बरी, कादम्बरी से भी नीचे के गाढ़े भाग को जगल, जगल से नीचे के गाढ़े भाग को मेदक तथा सुरापात्र में अवशिष्ट नि:सार घन भाग को सुराबीज, वक्कस, किण्व या सुराकल्क कहते हैं। सुरा के ये पाँचो स्तर प्रसन्ना, कादम्बरी, जगल, मेदक और वक्कस (सुराबीज) होते हैं। ऊपर से नीचे का स्तर क्रमश: गाढ़ा होता चला जाता है, मद्य (Alcohol) की मात्रा कम होती जाती है तथा गुणों में भी न्यूनता होती जाती है।

प्रसन्ना के गुण:-

छर्द्यरोचकहृत्कुक्षितोदशूलप्रमर्दनी।
प्रसन्ना कफवातार्शोविबन्धानाहनाशिनी।।

(सु. सू. 45/177)

अर्थात् प्रसन्ना उचित मात्रा में सेवन करने पर वमन, अरुचि, हृदयशूल, कुक्षिशूल, कफवातहर, अर्श, विबन्ध एवं आनाह रोग को नष्ट करती है।

कादम्बरी के गुण-प्रसन्ना से कुछ अल्प गुण कादम्बरी के होते हैं।

जगल के गुण:-

ग्राह्युष्णो जगलः पक्ता रूक्षस्तृट्कफशोफकृत्।
हृद्यः प्रवाहिकाऽऽटोपदुर्नामानिलशोषहृत्।।

(सु. सू. 45/180)

अर्थात् जगल का उचित मात्रा में सेवन करने पर ग्राही, हृद्य, उष्ण, पाचक एवं रूक्ष होता है। इससे तृष्णा, कफविकार, शोथ, प्रवाहिका, आटोप, अर्श, वात एवं क्षय रोग दूर हो जाते हैं।

मेदक के गुण:-इसमें जगल से अल्प गुण होते हैं।

वक्कस (सुराबीज) के गुण:-

वक्कसो हृत्सारत्वाद्विष्टम्भी वातकोपनः।
दीपनः सृष्टविण्मूत्रो विशदोऽल्पमदो गुरुः।।

(सु. सू. 45/181)

अर्थात् सुराबीज (वक्कस) नि:सार होने से सेवन करने पर विष्टम्भी, वातकोपक, अग्निदीपक, सृष्टविण्मूत्र, विशद, गुरु एवं अल्प मद को उत्पन्न करता है।

मैरेय:-

आसवस्य सुरायाश्च द्वयोरेकत्र भाजने।
सन्धान तद्विजानीयान्मैरेयमुभयाश्रयम्।।

(च. सू. 27/182 चक्रपाणि)

अर्थात् आसव एवं सुरा को समान मात्रा में पात्र में डालकर सन्धान करने पर प्राप्त द्रव को मैरेय कहते हैं। सुश्रुत संहिता में इसे ही सुरासव कहा है।

मैरेय के गुण:-

तीक्ष्णकषायोमदकृद्दुर्नामकफगुल्महृत्।
कृमिमेदोऽनिलहरो मैरेयो मधुरो गुरुः।।

(सु. सू. 45/189)

अर्थात् यह तीक्ष्ण, कषाय, मदकारी, मधुर और गुरु होता है। यह अर्श, कफ, गुल्म, कृमि, मेद और वातनाशक होता है।

Scanned with CamScanner

सुरासव :-

"सूरया सूयते तोय कार्यम् क्रियते यस्मिन् सः सुरासव।"
(च. सू. 27/187 चक्रपाणि)

अर्थात् जिस मद्य के सन्धान में जल के स्थान पर सुरा का ही प्रयोग किया जाये, उसे सुरासव कहते हैं।

"मैरेयो नाम सुरासवयोः" (सु. सू. 6/190 डल्हण टीका)

अर्थात् सुश्रुत संहिता में आचार्य डल्हण ने मैरेय को ही सुरासव कहा है। किन्तु चरक संहिता एवं सुश्रुत संहिता में दोनों के गुणों का पृथक्-पृथक् वर्णन होने के कारण मैरेय एवं सुरासव को अलग-अलग भी कहा गया है।

सुरासव के गुणः-

सुरासवः तीक्ष्णमदो वातघ्नो वदनप्रियः।
छेदी मध्वासवस्तीक्ष्णो मैरेयो मधुर गुरुः।।
(च. सू. 27/187)

तीक्ष्णः सुरासवो हृद्यो मूत्रलः कफवातनुत्।
मुखप्रियः स्थिरमदो विज्ञेयोऽनिलनाशनः।।
(सु. सू. 45/187)

अर्थात् सुरासव मधुर, गुरु, तीक्ष्ण, हृद्य, मूत्रल, कफवातनाशक, मुख के लिए प्रिय और तीव्र एवं स्थिर नशा उत्पन्न करने वाला होता है।

वारूणीः-

यत्तालखर्जूररसैः सन्धिता सा हि वारूणी।
(शा. सं. म. ख. 10/7)

पुनर्नवाशालिपिष्टि विहिता वारूणी स्मृता।।
(भा. प्र. संधान वर्ग)

अर्थात् ताड, खर्जूर आदि तने के अग्रभाग पर चीरा लगाकर पात्र लगाने से एकत्र रस 2-3 दिन में मद्य रूप में परिवर्तित हो जाता है। लोकभाषा में इसे ताड़ी अथवा नीरा कहा जाता है। वारूणी यन्त्र से निकालने के कारण इसे वारुणी कहते हैं।

वारूणी के गुण :-

तद्गुणा वारूणी हृद्या लघुस्तीक्ष्णा निहन्ति च।
शूलकासवमिश्वासविबन्धाध्मानपीनसान्।।
(अ. हृ. सू. 5/68)

सुरावद्वारूणी लघ्वी पीनसाध्मानशूलनुत्। (भा. प्र. संधान वर्ग)

अर्थात् वारूणी लघु, तीक्ष्ण, हृद्य, शूल, कास, छर्दि, श्वास, विबन्ध, आध्मान एवं पीनस आदि रोगों को नष्ट करती है। इस प्रकार वारूणी भी सुरा जैसी ही गुणवान् होती है।

सीधुः-

इक्षुरस आदि मधुर द्रवों के संधान से निर्मित मद्य को सीधु (सिरका) कहते हैं। सीधु दो प्रकार का होता है-1.अपक्व रस सीधु 2.पक्वरस सीधु।

ज्ञेयःशीतरसः सीधुरपक्वमधुरद्रवैः।
सिद्धः पक्वरसः सीधुः सम्पक्वमधुरद्रवैः।।
(शा. सं. म. ख. 10/4)

अर्थात् ईक्षु रस आदि मधुर द्रवों को बिना अग्नि पर पकाये सन्धान करके तैयार किए हुए मद्य को **अपक्वरस सीधु** कहते हैं और पकाये हुए मधुर द्रवों के द्वारा सन्धान करके तैयार किए हुए मद्य को **पक्वरस सीधु** कहते हैं।

अपक्व रस सीधु के गुणः-

जरणीयो विबन्धघ्नः स्वरवर्णविशोधनः।
लेखनः शीतरसिको हितः शोफोदरार्शसाम्।।
(च. सू. 27/185)

कर्शनः शीतरसिकः श्वयथूदरनाशनः।
वर्णकृज्जरण स्वर्योविबन्धघ्नोऽर्शसां हितः।।
(सु. सू. 45/185)

अर्थात् अपक्व रस सीधु आहार को पचाने वाला, स्वर एवं वर्ण को शुद्ध करने वाला, लेखन, कर्शन करने वाला और शोथ, उदर, अर्श एवं विबन्ध को नष्ट करता है।

पक्वरस सीधु के गुणः-

रोचनो दीपनो हृद्यः शोषशोफार्शसां हितः।
स्नेहश्लेष्मविकारघ्नो वर्ण्यः पक्वरसो मतः।।
(च. सू. 27/184)

तद्वत् पक्वरसः सीधुर्बलवर्णकरः मरः।
शोफघ्नो दीपनो हृद्यो रूच्यः श्लेष्मार्शसां हितः।।
(सु. सू. 45/184)

Scanned with CamScanner

अर्थात् पक्वरस सीधु भोजन के प्रति रुचि उत्पन्न करने वाला, अग्निदीपक, हृद्य, वर्ण्य, बल्य, सर, मेद एवं कफज रोगों को नष्ट करने वाला और शोथ, शोष, अर्श आदि रोगों को नष्ट करके शरीर के लिए हितकारी होता है।

मद्य कल्पना:-

सन्धान प्रक्रिया द्वारा उत्पन्न होने वाली कल्पना को मद्य कल्पना कहते हैं। इस मद्य कल्पना के अन्तर्गत आसव, अरिष्ट, सुरा, प्रसन्ना, कादम्बरी, मेदक, जगल, सीधु, मैरेय, कोहल, वारूणी आदि सम्मिलित होते हैं।

मद्य निरुक्ति:-

बुद्धिं लुम्पति यद् द्रव्यं मदकारी तदुच्यते।
तमोगुणप्रधानं च यथा मद्यं सुरादिकम्।।

(शा. सं. पू. ख. 4/21)

पेयं यन्मादकं लोकैस्तन्मद्यमभिधीयते।
यथाऽरिष्टं सुरा सीधुरासवाद्यमनेकधा।।

(भा. प्र. संधान वर्ग)

अर्थात् जिस द्रव द्रव्य के सेवन करने पर बुद्धि का लोप हो जाय और शरीर एवं मन में नशा उत्पन्न हो जाय और तमोगुण की प्रधानता का आभास हो तो उसे मद्य कहा जाता है। इसका यह तात्पर्य है कि जिस पेय पदार्थ द्वारा शारीरिक एवं मानसिक नशा उत्पन्न हो जाय और बुद्धि पर विपरीत प्रभाव पड़े, उसे मद्य के नाम से जाना जाता है। यह मद्य, सुरा, आसव, अरिष्ट, सीधु आदि भेद से अनेक प्रकार का होता है।

मद्य के पर्याय:-

मद्यन्तु सीधुमैरेयमिरा च मदिरा सुरा।
कादम्बरी वारुणी च हालाऽपि बलवल्लभा।।

(भा. प्र. संधान वर्ग)

अर्थात् मद्य के सीधु, मैरेय, इरा, मदिरा, सुरा, कादम्बरी, वारुणी, हाला, बलवल्लभ, अरिष्ट, आसव, प्रसन्ना, जगल, कोहल, मेदक और सुरासव पर्याय हैं।

मद्य के गुण:-

हिक्काश्वासप्रतिश्यायकासवर्चोग्रहारुचौ।
वम्यानाहविबन्धेषु वातघ्नी मदिरा हिता।।

(च. सू. 27/180)

प्रायशोऽभिनवं मद्यं गुरु दोषसमीरणम्।
स्रोतसां शोधनं जीर्णं दीपनं लघु रोचनम्।।

(च. सू. 27/193)

सर्वं पित्तकरं मद्यमम्लं रोचनदीपनम्।
भेदनं कफवातघ्नं हृद्यं बस्तिविशोधनम्।।
पाके लघु विदाह्युष्णं तीक्ष्णमिन्द्रियबोधनम्।
विकासी सृष्टविण्मूत्रं शृणु तस्य विशेषणम्।।

(सु. सू. 45/170)

मद्यं सर्वं भवेदुष्णं पित्तकृद्वातनाशनम्।
भेदनं शीघ्रपाकं च रूक्षं कफहरं परम्।।
अम्लं च दीपनं रूच्यं पाचनं चाशुकारि च।
तीक्ष्णं सूक्ष्मं च विशदं व्यावयि च विकासी च।।

(भा.प्र.संधान वर्ग)

अर्थात् संपूर्ण मद्य विपाक में लघु एवं वीर्य में उष्ण होते हैं। नवीन मद्य त्रिदोष प्रकोपक होते हैं, जबकि पुरातन मद्य पित्तकारक, कफवातनाशक, दीपक, पाचक, भेदक, हृद्य, बस्तिशोधक, विदाही, तीक्ष्ण, इन्द्रिय बोधक, विकासी, मलमूत्रसारक, शीघ्रपाकी, रूक्ष, अम्ल, रुच्य, आशुकारी, सूक्ष्म, विशद और व्यवायि होते हैं। मद्य का सेवन करने पर कास, श्वास हिक्का, प्रतिश्याय, विबन्ध, आनाह, अरुचि, वमन, ग्रहणी, अर्श आदि रोगों को नष्ट करते हैं।

मद्य के दोष:-

सान्द्रं विदाही दुर्गन्धं विरसं कृमिलं गुरु।।
अहृद्यं तरुणं तीक्ष्णमुष्णं दुर्भाजनस्थितम्।
अल्पौषधं पर्युषितमत्यच्छं पिच्छिलं च यत्।।
तद्वर्ज्यं सर्वथा मद्यं किञ्चिच्छेषं च यद्भवेत्।

(सु. सू. 45/198-199½)

अर्थात् जो मद्य गाढ़ा, विदाही, दुर्गन्धित, विकृत रस, कृमियुक्त, गुरु, हृदय के प्रतिकूल, नवीन, तीक्ष्ण, उष्ण, मलिन पात्र स्थित, अल्प औषधियों से निर्मित, बासी, जलयुक्त, पिच्छिल और पात्र में तल छट युक्त हो, इस प्रकार के मद्य को पीने पर क्रमशः कफ, पित्त एवं वात दोषों को बढ़ाता है। अतः दोषयुक्त मद्य का सेवन नहीं करना चाहिए।

Scanned with CamScanner

विधिपूर्वक सेवित मद्य के गुणः-

हर्षणं प्रीणनं मद्यं भयशोकश्रमापहम् ।
प्रागल्भ्यवीर्यप्रतिभातुष्टिपुष्टिबलम् ।।
सात्विकैर्विधिवद्युक्त्या पीतं स्यादमृतं यथा ।

(सु. सू. 45/201)

अर्थात् सात्त्विक मनुष्यों द्वारा नियमित रूप से विधिपूर्वक मद्य का सेवन करने पर आनन्ददायक, तृप्तिकारक, वीर्य, प्रगल्भता, प्रतिभा, तुष्टि और बल उत्पन्न कर अमृत के समान लाभदायक होता है। जिससे भय, शोक एवं परिश्रम से आयी हुई निर्बलता दूर हो जाती है।

सेवन योग्य मद्यः-

चिरस्थितं जातरसं दीपनं कफवातजित् ।
रुच्यं प्रसन्नं सुरभि मद्यं सेव्यं मदावहम् ।।

(सु. सू. 45/203)

अर्थात् चिरकाल से रखा हुआ, रस गन्धादि से युक्त, दीपन, कफवातनाशक, रुचिकारक, मन को प्रसन्न करने वाला और सुगन्धता से परिपूर्ण मद्य का सेवन करना चाहिए।

मद्य का शरीर पर कार्यकारी प्रभावः-

तस्यानेकप्रकारस्य मद्यस्य रसवीर्यतः ।।
सौक्ष्म्यादौष्ण्याच्च तैक्ष्ण्याच्च विकासित्वाच्च वह्निना ।
समेत्य हृदयं प्राप्य धमनीरूर्ध्वमागतम् ।।
विक्षोभ्येन्द्रियचेतांसि वीर्यं मदयतेऽचिरात् ।।

(सु. सू. 45/204-205)

अर्थात् रस वीर्य आदि के कारण विविध प्रकार के मद्य अपने गुणों (सूक्ष्म, उष्ण, तीक्ष्ण, विकासी) द्वारा जाठराग्नि से मिलकर शीघ्र ही हृदय में जाकर धमनियों को आश्रित करके ऊर्ध्व भाग में जाकर मन एवं इन्द्रियों को विक्षोभित कर मनुष्य में मद उत्पन्न कर देता है।

अति मद्यपान के दुष्प्रभावः-

अशौचनिद्रामात्सर्यागम्यागमनलोलताः ।
असत्यभाषणञ्चापि कुर्याद्धि तामसे मदः ।।

(सु. सू. 45/209)

मनुष्यमारणं स्तेयं परदाराभिमर्षणम् ।
पारूष्यमनृतञ्चैव साहसं पञ्चधास्मृतम् ।। (डल्हणः)

अर्थात् तामस प्रकृति वाले द्वारा अतिमद्यपान करने पर वह अपवित्र कार्यकारी, अतिशयन, दूसरे की उन्नति से ईर्ष्या, लोभ, असत्य भाषण और अगम्या स्त्रियों से सम्भोग की प्रबल इच्छा आदि दुर्गुण कार्यों को करने लगता है। मद्य की अतिमात्रा सेवन से तीव्र साहस की उत्पत्ति होकर मनुष्य हत्या, चोरी, परदाराभिगमन, कठोर और झूठ बोलने वाला हो जाता है।

इस प्रकार मद्य का उचित मात्रा में सेवन करने पर यह औषध गुणों को प्रदान करता है। यथाः-कांकायन वटी को वातजगुल्म में मद्य के अनुपान से देने पर आचार्य शार्ङ्गधर ने लाभदायी बतलाया है। किन्तु अतिमात्रा में सेवन करने पर मनुष्य में दुर्गुण आने से वह पाप का भागी हो जाता है।

शुक्तकल्पना :-

सर्वं मद्यं पञ्चरसं कालान्तरवशाद्यदा ।
त्यक्त्वाऽन्यरसमम्लत्वं याति शुक्तं तदुच्यते ।।

(सु. सू. 45/212 डल्हण)

सभी मद्य पाँच रसों से युक्त होने पर भी कालान्तर में अन्य रसों को छोड़कर केवल अम्लरस में परिवर्तित होकर शुक्त कहलाता है। शुक्त, चुक्र काञ्जिक, धान्याम्ल, आरनाल, सौवीरक, तुषोदक, शिण्डाकी (सण्डाकी) आदि शुक्तवर्गीय सन्धान कल्पना है।

कन्दमूलफलादीनि सस्नेहलवणानि च ।
यत्र द्रवेऽभिषूयन्ते तच्छुक्तमिधीयते ।।

(शा. सं. म. ख. 10/7)

अर्थात् सूरण आदि कन्द, मूली, गाजर आदि मूल, लौकी, सेम आदि फल, घी तथा तैल के पकोड़े एवं लवणों को जल या ईक्षुरस में डालकर किए जाने वाले सन्धान को शुक्त कहते हैं।

मधु शुक्तः-

जम्बीराणां फलरसः प्रस्थैकः कुडवोन्मितम् ।।
माक्षिकं तत्र दातव्यं पलैका पिप्पली स्मृता ।
एतदेकीकृतं सर्वं मृद्भाण्डे च निधापयेत् ।।
यवाम्भो मधुसंयुक्तं शृङ्गवेरगुडान्वितम् ।
धान्यराशौ त्रिरात्रिस्थं मधुशुक्तमुदाहृतम् ।।

(शा. सं. म. ख. 10/9-11)

Scanned with CamScanner

अर्थात् जम्बीरी नींबू स्वरस एक प्रस्थ, मधु एक कुडव और पिप्पली एक पल तीनों को मिट्टी के पात्र में भरकर तीन दिन धान्यराशि में रखने पर मधुशुक्त तैयार हो जाता है। इसी प्रकार अन्य विधि में यव का क्वाथ एक प्रस्थ, मधु एक कुडव, शृङ्गबेर एवं गुड एक-एक पल सभी को मिट्टी के पात्र में भरकर तीन दिन धान्यराशि में रखने पर मधुशुक्त तैयार हो जाता है।

गुड शुक्त:-

गुडाम्बुना सतैलेन कन्दमूलफलैस्तथा।
सन्धितं चाम्लतां यातं गुडशुक्तं तदुच्यते।।
एवमेवेक्षुशुक्तं स्यान्मृद्वीका सम्भवं तथा।

(शा. सं. म. ख. 10/12-12½)

अर्थात् गुड 250 ग्राम, जल 2 लीटर, तैल युक्त पदार्थ, राई एवं पकोड़े, कन्द, मूल, फल आदि के संयोग द्वारा संधान करने के उपरान्त तैयार अम्ल द्रव को गुड शुक्त कहते हैं। इसी प्रकार इक्षु रस, अंगूर रस या द्राक्षा रस से भी शुक्त बनाया जा सकता है।

शुक्त के गुण:-

रक्तपित्तकरं शुक्तं छेदनं भुक्तपाचनम्।
वैस्वर्यं जरणं श्लेष्मपाण्डुक्रिमिहरं लघु।।
तीक्ष्णोष्णं मूत्रलं हृद्यं कफघ्नं कटुपाकि च।
तद्वत्तदासुतं सर्वं रोचनञ्च विशेषतः।।

(सु. सू. 45/211)

अर्थात् शुक्त रक्तपित्तकर, छेदक, पाचक, स्वरविकृतिकारक, आमदोषहर, कफ, पाण्डु, कृमिहर, लघु, तीक्ष्ण, उष्ण, मूत्रल, हृद्य, कफनाशक और कटु विपाकी होता है। इस प्रकार सन्धानित मद्य विशेषकर रुचि उत्पन्न करने वाले होते हैं।

काञ्जिक :-

कुल्माषधान्यमण्डादि सन्धितं काञ्जिकं विदुः।
सण्डाकी सन्धिता ज्ञेया मूलकैः सर्षपादिभिः।।

(शा. सं. म. ख. 10/14)

अर्थात् उबाले हुए गेहूँ, चना आदि (कुल्माष), चावल, यव आदि धान्यों के मण्ड तथा राई, नमक, हरिद्रा आदि को मिश्रित कर सन्धान करने पर प्राप्त अम्ल द्रव को काञ्जिक कहते हैं। मूली, सरसों, राई आदि से बनी हुई काञ्जी को सण्डाकी (शिण्डाकी) कहते हैं।

अन्नं शाल्यादि संसिद्धं प्रक्षिप्तं त्रिगुणे जले।
धान्याम्लं सन्धितं प्रोक्तमारनालं च काञ्जिकम्।।
शालिकोद्रव मण्डैर्वा सन्धितं काञ्जिकं भवेत्।

(द्र. गु. वि. यादव जी 2/81-82)

अर्थात् शालि चावल को सिद्ध कर पात्र में डालकर त्रिगुण पानी मिश्रित कर सन्धान करने के उपरान्त प्राप्त द्रव को काञ्जी कहते हैं। आरनाल और धान्याम्ल भी काञ्जिक को ही कहा गया है। कई आचार्यों ने चावल या कोदों के मण्ड का सन्धान करके काञ्जिक बनाने को लिखा है। दोनों विधियों में साथ में राई, सैन्धव लवण तथा मूली के टुकड़े भी डालने चाहिए।

काञ्जिक के गुण:-

दाहज्वरापहं स्पर्शात् पानाद्वातकफापहम्।
विबन्धघ्नमवस्रंसि दीपनं चाम्लकाञ्जिकम्।।

(च. सू. 27/192)

धान्याम्लं धान्ययोनित्वाज्जीवनं दाहनाशनम्।
स्पर्शात् पानात्तु पवनकफतृष्णाहरं लघु।।
तैक्ष्ण्याच्च निर्हरेदाशु कफं गण्डूषधारणम्।
मुखवैरस्यदौर्गन्ध्यमलशोषक्लमापहम् ।।
दीपनं जरणं भेदि हितमास्थापनेषु च।
समुद्रमाश्रितानां च जनानां सात्म्यमुच्यते।।

(सु. सू. 45/214-216)

अर्थात् काञ्जिक स्पर्श से दाहज्वरहर, पीने से वातकफविकार नाशक, दीपन, मलमूत्रसारक, विबन्ध नाशक, तृषानाशक एवं लघु है। तीक्ष्ण होने से गण्डूषधारण द्वारा कफहर, मुखवैरस्य, दुर्गन्धता, मल, क्षय, क्लमहर है। अग्निदीपक, पाचक, भेदन, आस्थापन में हितकारी और समुद्र के पास रहने वाले मनुष्यों के लिए सात्म्य होती है।

सौवीरक एवं तुषोदक:-

यवैस्तु निस्तुषैः पक्वैः सौवीरं सन्धितं भवेत्।
तुषाम्बु सन्धितं ज्ञेयमामैर्विदलितैर्यवैः।।

(शा. सं. म. ख. 10/13)

अर्थात् तुष रहित पक्व यव का सन्धान करने पर प्राप्त द्रव को सौवीरक कहते हैं। कच्चे यव के टुकड़ों द्वारा सन्धान करने पर प्राप्त द्रव को तुषोदक कहते हैं।

Scanned with CamScanner

भृष्टान्माषतुषान् सिद्धान् यवचूर्णसमन्वितान्।
आशृतानम्भसा तद्वज्जातं तच्च तुषोदकम्।।

(वै. प. प्र. 3/185)

अर्थात् भृष्ट (भुने हुए) उड़द के तुषों में समभाग यव चूर्ण मिलाकर जल के साथ पकाने के बाद सन्धान करने पर प्राप्त द्रव को तुषोदक कहते हैं।

सौवीरक एवं तुषोदक के गुण:-

दीपनं जरणीयं च हृत्पाण्डुक्रिमिरोगनुत्।
ग्रहण्यर्शोहितं भेदि सौवीरक तुषोदकम्।।

(च. सू. 27/191)

ग्रहण्यर्शो विकारघ्नं भेदि सौवीरकं तथा।
तुषाम्बु दीपनं हृद्यं हृत्पाण्डुकृमिरोगनुत्।।

(सु. सू. 45/213)

अर्थात् सौवीरक एवं तुषोदक अग्निदीपक, पाचक, मलभेदक, हृद्य, पाण्डु, कृमिरोग, ग्रहणी और अर्श रोगों के लिए हितकारी होते हैं।

चुक्रः-

विनष्टमम्लतां यातं मद्य वा मधुरद्रवः।
विनष्टः सन्धितो यस्तु तच्चुक्रमभिधीयते।।

(शा. सं. म. ख. 10/8)

अर्थात् मद्य अथवा इक्षु आदि मधुरद्रव जब अम्ल रस युक्त हो जाता है, तो उसे विनष्ट (मर गया है या बिगड़ गया है) कहते हैं। पुनः इसका सन्धान करने पर जो अम्ल पदार्थ प्राप्त होता है, उसे चुक्र कहते हैं।

तक्रारिष्टः-

हपुषां कुञ्चिकां धान्यमजाजीं कारवीं शटीम्।
पिप्पलीं पिप्पलीमूलं चित्रकं हस्तिपिप्पलीम्।।
यवानीं चाजमोदां च चूर्णितं तक्रसंयुतम्।
मन्दाम्लकटुकं विद्वान् स्थापयेद् घृतभाजने।।
व्यक्ताम्लकटुकं जातं तक्रारिष्टं मुखप्रियम्।
प्रपिबेन्मात्रया कालेष्वन्नस्य तृषितस्त्रिषु।।
दीपनं रोचनं वर्ण्यं कफवातानुलोमनम्।
गुदश्वयथुकण्ड्वर्तिनाशनं बलवर्धनम्।।

(च. चि. 14/72-75)

घटक द्रव्य:-

1. हपुषा	- 48 ग्राम	2. कालाजीरा	- 48 ग्राम
3. धनियाँ	- 48 ग्राम	4. श्वेतजीरा	- 48 ग्राम
5. मगरैला	- 48 ग्राम	6. कचूर	- 48 ग्राम
7. पिप्पली	- 48 ग्राम	8. पिप्पलीमूल	- 48 ग्राम
9. चित्रकमूल	- 48 ग्राम	10. गजपिप्पली	- 48 ग्राम
11. अजवायन	- 48 ग्राम	12. अजमोदा	- 48 ग्राम

द्रव :- तक्र-1 कंस (3.072 लीटर)

निर्माण विधि:-सभी वानस्पतिक द्रव्यों का यवकुट चूर्ण कर घृतभावित मिट्टी के पात्र में तक्र के साथ मिश्रित करके मुख बन्द कर धान्य राशि में रखें। आठवें दिन सन्धान का परीक्षण करने पर यदि उचित सन्धान हो गया हो तो छानकर काँच की शीशियों में भरकर सुरक्षित रखा जाना चाहिए। अम्ल, कटु और स्वादु प्रतीत होने पर इसका सिद्धि लक्षण मानना चाहिए।

मात्रा:-20-30 मि. ली. दिन में प्रातः एवं सायम्।

अनुपान:-भोजनोत्तर समानमात्रा में जल के साथ।

मुख्य उपयोग:- दीपक, पाचक, वर्ण्य, बल्य, रुच्य, कफ एवं वात का अनुलोमक, तृष्णा, शोथ, कण्डू, वेदनानाशक।

कुटजारिष्ट :-

तुलां कुटजमूलस्य मृद्वीकार्द्धतुलां तथा।
मधूकपुष्पकाश्मर्योर्भागान् दशपलोन्मितान्।।
चतुर्द्रोणेऽम्भसः पक्त्वा द्रोणशेषावशेषितम्।
धातक्या विंशति पलं गुडस्य च तुलां क्षिपेत्।
माससमात्रं स्थितो भाण्डे कुटजारिष्ट संज्ञितः।।

(भै. र. अतिसार 97-98½)

घटक द्रव्य :-

1. कुटज	- 4.800 कि. ग्रा.	2. द्राक्षा	- 2.400 कि. ग्रा.
3. मधूकपुष्प	- 480 ग्राम	4. गम्भारी	- 480 ग्राम
5. क्वाथार्थ जल	- 49.152 लीटर		
अवशिष्ट	- 12.288 लीटर		
6. गुड	- 4.800 कि. ग्रा.	7. धातकी	- 960 ग्राम

Scanned with CamScanner

निर्माण विधि :- सर्वप्रथम क्र. सं. 1 से 4 तक के घटक द्रव्यों के क्वाथ का निर्माण किया जाता है। फिर उसमें गुड को घोलकर सन्धान पात्र में डालकर धातकी पुष्प मिलाकर रखा जाता है। सन्धानोपरांत अरिष्ट को छानकर शीशियों में भरकर सुरक्षित रखें।

मात्रा :- 20-30 मि. ली. दिन में दो बार प्रातः एवं सायम्।

अनुपान:- भोजनोपरान्त समान मात्रा में जल के साथ।

मुख्य उपयोग :- ग्रहणी, रक्तातिसार, ज्वर, अग्निमान्द्य।

द्राक्षारिष्ट :-

द्राक्षातुलार्धं द्विद्रोणे जलस्य विपेचत् सुधीः।
पादशेषे कषाये च पूते शीते विनिक्षियेत्॥
गुडस्य द्वितुलां तत्र त्वगेलापत्रकेशरम्।
प्रियङ्गुमरिचं कृष्णां विडङ्गश्च विचूर्णयेत्॥
पृथक् पलोन्मितैर्भागैर्घृतभाण्डे निधापयेत्।
समन्ततो घट्टयित्वा पिबेज्जातरसं ततः॥
उरःक्षतं क्षयं हन्ति कास श्वासगलामयान्।
द्राक्षारिष्टाह्वयः प्रोक्तो बलकृन्मलशोधनः॥

(भै. र. 14/73-76)

घटक द्रव्यः-

1. द्राक्षा	- 2.400 किग्रा.	2. गुड	- 9.600 किग्रा.
3. धातकीपुष्प	- 240 ग्राम	4. दालचीनी	- 48 ग्राम
5. इलायची	- 48 ग्राम	6. तेजपत्र	- 48 ग्राम
7. नागकेशर	- 48 ग्राम	8. प्रियङ्गु	- 48 ग्राम
9. मरिच	- 48 ग्राम	10. पिप्पली	- 48 ग्राम
11. विडङ्ग	- 48 ग्राम		

क्वाथार्थ :- जल - 24.576 लीटर अवशिष्ट जल - 6.144 लीटर।

निर्माण विधि :- सर्वप्रथम एक बड़े पात्र में द्राक्षा (मुनक्का) एवं जल को डालकर मध्यमाग्नि युक्त चूल्हे पर चढ़ाकर चतुर्थांश अवशेष क्वाथ का निर्माण किया जाता है। फिर क्वाथ को शीतल होने पर मुनक्का को मसलकर और छानकर सन्धान पात्र में रखें फिर 9.600 किग्रा. गुड डालकर अच्छी तरह घोल दें। अन्त में धातकी पुष्प और प्रक्षेप द्रव्यों के यवकुट चूर्ण को डालकर सन्धान पात्र पर ढक्कन रखकर

...मिट्टी कर दें। अब सन्धान पात्र को निर्वात स्थान पर सुरक्षित एक माह तक रखा ...दिया जाता है। तत्पश्चात सन्धान परीक्षा कान लगाकर सुनने पर सुन-सुन की ...बन्द होना एवं जलती माचिस की तीली पात्र के मध्य में ले जाने पर जलती ...रहना द्वारा की जाती है। सन्धान द्रव्य को छानकर शीशियों में पैक कर लेबलिंग ...कर सुरक्षित स्थान पर रखा जाता है।

मात्रा :- 20-30 मिली. दिन में दो बार प्रातः एवं सायम्।

अनुपान :- भोजनोपरान्त समान मात्रा में जल के साथ।

मुख्य उपयोग :- उरःक्षत, क्षय, कास, श्वास एवं कण्ठरोगनाशक, दीपक, ...क, बल्य, मलशोधक।

...शोकारिष्टः-

अशोकस्य तुलामेकाञ्चतुर्द्रोणे जले पचेत्।
पादशेषे रसे पूते शीते पलशतद्वयम्॥
दद्याद् गुडस्य धातक्याः पलषोडशिकं मतम्।
अजाजीं मुस्तकं शुण्ठी दार्व्युत्पलफलत्रिकम्॥
आम्रास्थि जीरकं वासां चन्दनञ्च विनिक्षिपेत्।
चूर्णयित्वा पलांशेन ततोभाण्डे निधापयेत्॥
मासादूर्ध्वञ्च पीत्वैनमसृग्दररुजां जयेत्।
ज्वरञ्च रक्तपित्तार्शोमन्दाग्नित्वमरोचकम्॥
मेहशोथादिकहरस्त्वशोकारिष्टसंज्ञितः ॥

(भै. र. 66/114-118)

...टक द्रव्यः-

1. अशोकत्वक्	- 4.800 किग्रा	2. गुड	- 9.600 किग्रा
3. धातकी पुष्प	- 768 ग्राम	4. कृष्णजीरक	- 48 ग्राम
5. नागरमोथा	- 48 ग्राम	6. शुण्ठी	- 48 ग्राम
7. दारूहरिद्रा	- 48 ग्राम	8. नीलकमलपुष्प	- 48 ग्राम
9. हरीतकी	- 48 ग्राम	10. बिभीतकी	- 48 ग्राम
11. आमलकी	- 48 ग्राम	12. आम की गुठली	- 48 ग्राम
13. श्वेत जीरक	- 48 ग्राम	14. वासा	- 48 ग्राम
15. रक्तचन्दन	- 48 ग्राम		

क्वाथार्थ :- जल-49.152 लीटर अवशिष्ट-12.288 लीटर

Scanned with CamScanner

निर्माण विधि :- सर्वप्रथम एक बड़े पात्र में अशोक की छाल को यवकुट कर जल के साथ मिलाकर मध्यमाग्नि द्वारा चतुर्थांश अवशेष क्वाथ का निर्माण किया जाता है। इसके बाद सन्धान पात्र में क्वाथ डालकर गुड को घोला जाता है। अब प्रक्षेप द्रव्यों का यवकुट चूर्ण करके पात्र में डालकर सन्धान पात्र को ढक्कन से ढक दिया जाता है। फिर सन्धान पात्र को निर्वात स्थान पर एक माह तक सुरक्षित रखा जाता है। तत्पश्चात् कान लगाकर सुन-सुन की आवाज बन्द होने एवं जलती हुई तीली पात्र के मध्य में ले जाने पर भी नहीं बुझना-दोनों परीक्षाएं की जाती है। फिर अशोकारिष्ट को छानकर कांच की शीशियों में भरकर सुरक्षित स्थान पर रखा जाता है।

मात्रा:-20-30 मि. ली. दिन में दो बार प्रातः एवं सायं।

अनुपान:-भोजनोत्तर समान मात्रा में जल के साथ।

मुख्य उपयोग :- रक्त प्रदर, श्वेतप्रदर, कष्टार्तव, योनिरोग, ज्वर, रक्तपित्त, अर्श, मन्दाग्नि, अरोचक, प्रमेह, शोथ आदि रोगनाशक।

दशमूलारिष्ट:-

दशमूलानि कुर्वीत भागैः पञ्चपलैः पृथक्।।
पञ्चविंशत्पलं कुर्याच्चित्रकं पौष्करं तथा।
कुर्याद् विंशत्पलं लोध्रं गुडूची तत्समा भवेत्।।
पलैः षोडशभिर्धात्री रविसङ्ख्यैर्दुरालभा।
खदिरो बीजसारश्च पथ्या चेति पृथक्पलैः।।
अष्टभिर्गुणितैः कुष्ठं मञ्जिष्ठा देवदारू च।
विडङ्गं मधुकं भार्ङ्गी कपित्थोऽक्ष पुनर्नवा।।
चव्यं मांसी प्रियङ्गुश्च सारिवा कृष्णजीरकम्।
त्रिवृता रेणुकं रास्ना पिप्पली क्रमुकः शठी।।
हरिद्रा शतपुष्पा च पद्मकं नागकेशरम्।
मुस्तमिन्द्रयवः शृङ्गी जीवकर्षभकौ तथा।।
मेदा चान्या महामेदा काकोल्यौ ऋद्धिवृद्धिके।
कुर्यात पृथक् द्विपलिकान पचेदष्टगुणे जले।।
चतुर्थांश शृतं नीत्वा मृद्भाण्डे सन्निधापयेत्।
चतुःषष्टिपलां द्राक्षां पचेन्नीरे चतुर्गुणे।।
त्रिपादशेषं शीतं च पूर्वक्वाथे शृतं क्षिपेत्।
द्वात्रिंशत्पलिकं क्षौद्रं दद्याद् गुडचतुःशतम्।।

त्रिंशत्पलानि धातक्याः कङ्कोलं जलचन्दनम्।
जातीफलं लवङ्गं च त्वगेलापत्रकेशरम्।।
पिप्पली चेति सञ्चूर्ण्य भागैर्द्विपलिकैः पृथक्।
शाणमात्रां च कस्तूरीं सर्वमेकत्र निक्षिपेत्।।
भूमौ निखातयेद् भाण्डं ततो जातरसं पिबेत्।
कतकस्यफलं क्षिप्त्वा रसं निर्मलतां नयेत्।।
ग्रहणीमरूचिं श्वासं कासं गुल्मं भगन्दरम्।
वातव्याधिं क्षयः छर्दिं पाण्डुरोगं च कामलाम्।।
कुष्ठान्यर्शांसि मेहांश्च मन्दाग्निमुदराणि च।
शर्करामश्मरीं मूत्रकृच्छ्रं धातुक्षयं जयेत्।।
कृशानां पुष्टिजननो वन्ध्यानां गर्भदः परः।
अरिष्टो दशमूलाख्यस्तेजः शुक्रबलप्रदः।।

(शा. सं. म. ख 10/80-94)

घटक द्रव्य:-

1. शालिपर्णी	- 240 ग्राम	2. पृश्निपर्णी	- 240 ग्राम
3. बृहती	- 240 ग्राम	4. कण्टकारी	- 240 ग्राम
5. गोक्षुर	- 240 ग्राम	6. बिल्वमूल	- 240 ग्राम
7. अग्निमन्थ	- 240 ग्राम	8. श्योनाक	- 240 ग्राम
9. पाटला	- 240 ग्राम	10. गम्भारी	- 240 ग्राम
11. चित्रकमूल	- 1.200 किग्रा	12. पुष्करमूल	- 1.200 किग्रा
13. लोध्रत्वक्	- 960 ग्राम	14. गूडूची	- 960 ग्राम
15. आमलकी	- 768 ग्राम	16. यवासक	- 576 ग्राम
17. खदिरकाष्ठ	- 384 ग्राम	18. विजयसार	- 384 ग्राम
19. हरीतकी	- 384 ग्राम	20. कुष्ठ	- 96 ग्राम
21. मंजिष्ठा	- 96 ग्राम	22. देवदारू	- 96 ग्राम
23. विडङ्ग	- 96 ग्राम	24. मधुयष्टी	- 96 ग्राम
25. भार्ङ्गी	- 96 ग्राम	26. कपित्थ	- 96 ग्राम
27. बिभीतक	- 96 ग्राम	28. पुनर्नवा	- 96 ग्राम
29. चव्य	- 96 ग्राम	30. जटामांसी	- 96 ग्राम
31. प्रियङ्गु	- 96 ग्राम	32. सारिवा	- 96 ग्राम
33. कृष्ण जीरक	- 96 ग्राम	34. त्रिवृत	- 96 ग्राम

Scanned with CamScanner

35. रेणुक	- 96 ग्राम	36. रास्ना	- 96 ग्राम
37. पिप्पली	- 96 ग्राम	38. सुपारी	- 96 ग्राम
39. कचूर	- 96 ग्राम	40. हरिद्रा	- 96 ग्राम
41. शतपुष्पा	- 96 ग्राम	42. पद्मकाष्ठ	- 96 ग्राम
43. नागकेशर	- 96 ग्राम	44. नागरमोथा	- 96 ग्राम
45. इन्द्रयव	- 96 ग्राम	46. शुण्ठी	- 96 ग्राम
47. जीवक	- 96 ग्राम	48. ऋषभक	- 96 ग्राम
49. मेदा	- 96 ग्राम	50. महामेदा	- 96 ग्राम
51. काकोली	- 96 ग्राम	52. क्षीरकाकोली	- 96 ग्राम
53. ऋद्धि	- 96 ग्राम	54. वृद्धि	- 96 ग्राम

क्वाथार्थ जल: - 100.608 लीटर (अष्टगुण)

अवशिष्ट क्वाथ: - 25.152 लीटर (चतुर्थांश)

55. द्राक्षा	- 3.072 किग्रा	क्वाथार्थ जल	- 12.288 लीटर
		अवशिष्ट	- 9.216 लीटर

प्रक्षेप द्रव्य:-

56. मधु	- 1.536 किग्रा	57. गुड	- 19.200 किग्रा
58. धातकीपुष्प	- 1.440 किग्रा	59. शीतलचीनी	- 96 ग्राम
60. श्वेतचन्दन	- 96 ग्राम	61. जायफल	- 96 ग्राम
62. लवङ्ग	- 96 ग्राम	63. दालचीनी	- 96 ग्राम
64. इलायची	- 96 ग्राम	65. तेजपत्र	- 96 ग्राम
66. नागकेशर	- 96 ग्राम	67. पिप्पली	- 96 ग्राम
68. कस्तूरी	- 3 ग्राम	69. कतकफल	- यथावश्यक (निर्मलीकरणार्थ)

निर्माणविधि:- सर्वप्रथम क्रम संख्या 1 से 54 तक के क्वाथ द्रव्यों का यवकुट चूर्ण करके अष्टगुण जल के साथ किसी बड़े पात्र में डालकर मध्यमाग्नि द्वारा पकाकर चतुर्थांश शेष क्वाथ का निर्माण किया जाता है। फिर अन्य पात्र में द्राक्षा को भी चतुर्गुण जल में पकाकर त्रिपाद शेष क्वाथ बनाया जाता है। अब किसी उपयुक्त सन्धान पात्र में दोनों क्वाथों को डालकर उसमें गुड को घोलकर मिश्रित किया जाता है। फिर शेष प्रक्षेप द्रव्यों का यवकुट चूर्ण करके सन्धान पात्र में डाल दिया जाता है। अन्त में पात्र का मुख बन्द करके निर्वात स्थान पर एक माह के लिए रख दिया जाता है। एक माह बाद सन्धान परीक्षण विधि से परीक्षा करके सन्धान पूर्ण हो जाने पर

दशमूलारिष्ट को छानकर शीशियों में पैकिंग करके लेबल लगाकर सुरक्षित स्थान पर रखा जाता है।

मात्रा:- 20-30 मि. ली. दिन में दो बार प्रातः एवं सायम्।

अनुपान:- भोजनोत्तर समान मात्रा में जल के साथ।

मुख्य उपयोग:- वृष्य, पुष्टिकर, बल्य, शुक्रल, बृंहण, गर्भप्रद, धातुक्षयनाशक, ग्रहणी, अरुचि, श्वास, कास, गुल्म, भगन्दर, वातव्याधि, क्षय, छर्दि, पाण्डु, कामला, कुष्ठ, अर्श, प्रमेह, मन्दाग्नि, उदररोग, अश्मरी, मूत्रकृच्छ्र।

कुमार्यासव:-

सुपक्वरससंशुद्धं कुमार्याः पत्रमाहरेत्।।
यत्नेन रसमादाय पात्रे पाषाणमृन्मये।
द्रोणे गुडतुलां दत्वा घृतभाण्डे निधापयेत्।।
माक्षिकं पक्वलोहं च तस्मिन्नर्धतुलां क्षिपेत्।
कटुत्रिकं लवङ्गं च चातुर्जातकमेव च।
चित्रकं पिप्पलीमूलं विडङ्ग गजपिप्पली।
चविकं हपुषा धान्यं क्रमुकं कटुरोहिणी।।
मुस्ता फलत्रिकं रास्ना देवदारू निशाद्वयम्।
मूर्वा मधुरसा दन्तीमूलं पुष्करसम्भवम्।।
बलाचातिबला चैव कपिकच्छुस्त्रिकण्टकम्।
शतपुष्पा हिङ्गुपत्री आकल्लकमुटिङ्गणम्।।
पुनर्नवाद्वयं लोध्रं धातुर्माक्षिकमेव च।
एषां चार्धपलं दत्त्वा धातक्यास्तु पलाष्टकम्।।
पलं चार्धपलं चैव पलद्वयमुदाहृतम्।
वपुर्वयःप्रमाणेन बलवर्णाग्निदीपनम्।।
बृहणं रोचनं वृष्यं पक्तिशूलनिवारणम्।
अष्टावुदरजान् रोगान् क्षयमुग्रं च नाशयेत्।।
विंशति मेहजान् रोगानुदावर्तमपस्मृतिम्।
मूत्रकृच्छ्रमपस्मारं शुक्रदोषं तथाश्मरीम्।।
कृमिजं रक्तपित्तं च नाशयेत्तु न संशयः।

(शा. सं. म. ख. 10/20-29½)

Scanned with CamScanner

घटक द्रव्य:-

1. घृतकुमारी स्वरस	- 12.288 लीटर	2. गुड	-4.800 किग्रा
3. मधु	- 2.400 किग्रा	4. लौहभस्म	-2.400 किग्रा
5. शुण्ठी	- 24 ग्राम	6. पिप्पली	-24 ग्राम
7. मरिच	- 24 ग्राम	8. लवङ्ग	-24 ग्राम
9. दालचीनी	- 24 ग्राम	10. इलायची	-24 ग्राम
11. तेजपात	- 24 ग्राम	12. नागकेशर	-24 ग्राम
13. चित्रकमूल	- 24 ग्राम	14. पिप्पलीमूल	-24 ग्राम
15. विडङ्ग	- 24 ग्राम	16. गजपिप्पली	-24 ग्राम
17. चव्य	- 24 ग्राम	18. हपुषा	-24 ग्राम
19. धनियाँ	- 24 ग्राम	20. सुपारी	-24 ग्राम
21. कुटकी	- 24 ग्राम	22. नागरमोथा	-24 ग्राम
23. आमलकी	- 24 ग्राम	24. हरीतकी	-24 ग्राम
25. बिभीतकी	- 24 ग्राम	26. रास्ना	-24 ग्राम
27. देवदारू	- 24 ग्राम	28. हरिद्रा	-24 ग्राम
29. दारू हरिद्रा	- 24 ग्राम	30. मूर्वा	-24 ग्राम
31. गुडूची	- 24 ग्राम	32. मुलेठी	-24 ग्राम
33. दन्तीमूल	- 24 ग्राम	34. पुष्करमूल	-24 ग्राम
35. बलामूल	- 24 ग्राम	36. अतिबला	-24 ग्राम
37. कौंच बीज	- 24 ग्राम	38. गोक्षुर	-24 ग्राम
39. शतपुष्पा	- 24 ग्राम	40. हिङ्गुपत्री	-24 ग्राम
41. अकरकरा	- 24 ग्राम	42. उटिङ्गण बीज	-24 ग्राम
43. श्वेत पुनर्नवा	- 24 ग्राम	44. रक्त पुनर्नवा	-24 ग्राम
45. लोध्र त्वक	- 24 ग्राम		
46. स्वर्णमाक्षिकभस्म	- 24 ग्राम	47. धातकीपुष्प	-384 ग्राम

निर्माण विधि:- सर्वप्रथम घृतकुमारी स्वरस, गुड एवं मधु को सन्धान पात्र में डालकर अच्छी तरह मिश्रित करके उसमें लौहभस्म, स्वर्ण माक्षिक भस्म को मिलावें। इसके बाद शेष प्रक्षेप द्रव्यों का यवकुट चूर्ण करके पात्र में डालकर मिलावें। अन्त: में धातकीपुष्प को डालकर सन्धान पात्र का मुख बन्द करके सुरक्षित निर्वात

स्थान पर रखा जाता है। एक माह पश्चात् सन्धान परीक्षण विधि से परीक्षा करके उचित सन्धान हो जाने पर वस्त्र से छानकर काँच की शीशियों में भरकर लेबिल करके लेबल लगाकर सुरक्षित स्थान पर रखा जाता है।

मात्रा:- 20-30 मि. ली. दिन में दो बार प्रात: एवं सायम्।

अनुपान:- भोजनोत्तर समान मात्रा में जल के साथ।

मुख्य उपयोग:- बल्य, वर्ण्य, अग्निदीपक, वृष्य, बृंहण, पाचक, शीतामशूल, कष्टार्तव, नष्टार्तव, क्षय, प्रमेह, उदावर्त, अपस्मार, मूत्रकृच्छ्र, शुक्रदोष, अश्मरी, कृमि, रक्तपित्त नाशक।

चन्दनासव:-

चन्दनं बालकं मुस्तं गम्भारीं नीलमुत्पलम्।
प्रियङ्गु पद्मकं लोध्र मञ्जिष्ठारक्तचन्दनम्॥
पाठां किराततिक्तं च न्यग्रोधं पिप्पलीं शटीम्।
पर्पटं मधुकं रास्नां पटोलं काञ्चनारकम्॥
आम्रत्वचं मोचरसं प्रत्येकं पलमात्रकम्।
धातकीं षोडशपलां द्राक्षाया: पलविंशतिम्॥
जलद्रोणद्वये क्षिप्त्वा शर्करायास्तुला तथा।
गुडस्यार्धतुलां चापि मासं भाण्डे निधापयेत्॥
चन्दनासव इत्येष शुक्रमेहविनाशन:।
बलपुष्टिकरो हृद्यो वह्निसंदीपन पर:॥

(भै. र. 88/35-39)

घटक द्रव्य:-

1. श्वेत चन्दन	- 48 ग्राम	2. सुगन्धबाला	-48 ग्राम
3. नागरमोथा	- 48 ग्राम	4. गम्भारी	-48 ग्राम
5. नीलकमल पुष्प	- 48 ग्राम	6. प्रियङ्गुपुष्प	-48 ग्राम
7. पद्मकाष्ठ	- 48 ग्राम	8. लोध्रत्वक	-48 ग्राम
9. मंजिष्ठा	- 48 ग्राम	10. रक्तचन्दन	-48 ग्राम
11. पाठा	- 48 ग्राम	12. चिरायता	-48 ग्राम
13. न्यग्रोध	- 48 ग्राम	14. पिप्पली	-48 ग्राम

Scanned with CamScanner

15. कचूर	- 48 ग्राम	16. पर्पट	-48 ग्राम
17. मुलेठी	- 48 ग्राम	18. रास्ना	-48 ग्राम
19. पटोलपत्र	- 48 ग्राम	20. काञ्चनारत्वक्	-48 ग्राम
21. आम्रत्वक्	- 48 ग्राम	22. मोचरस	-48 ग्राम
23. धातकीपुष्प	- 768 ग्राम	24. द्राक्षा	-960 ग्राम
25. शर्करा	- 4.800 कि. ग्रा.	26. गुड	-2.400 कि. ग्रा.

द्रवः–जल–24.576 लीटर

निर्माण विधिः–सर्वप्रथम सन्धान पात्र में द्राक्षा, गुड, शर्करा एवं जल को डालकर अच्छी प्रकार से मिश्रित करें। फिर शेष प्रक्षेप द्रव्यों का यवकुट चूर्ण करके पात्र में मिलाकर अन्त में धातकीपुष्प डालकर मुख बन्द करके एक माह तक सन्धान के लिए रख दिया जाता है। एक माह पश्चात् सन्धान परीक्षण विधि द्वारा परीक्षा करके उचित सन्धान हो जाने पर वस्त्र से छानकर काँच की शीशियों में भरकर पैकिंग करके लेबल लगाकर सुरक्षित स्थान पर रखा जाता है।

मात्राः–20–30 मिली. दिन में दो बार प्रातः एवं सायम्।

अनुपानः–भोजनोत्तर समान मात्रा में जल के साथ।

मुख्य उपयोगः– बल्य, वृष्य, पुष्टिकर, हृद्य, अग्निदीपक, शुक्रमेह, मूत्रकृच्छ्र, संपूर्ण प्रकार के बीस प्रमेह नाशक।

कनकासवः–

> **संक्षुद्य कनकं शाखामूलपत्रफलैः सह।**
> **ततश्चतुष्पलं ग्राह्यं वृषमूलत्वचन्तथा।**
> **मधूकं माधवी व्याघ्री केशरं विश्वभेषजम्।**
> **भार्गी तालीशपत्रञ्च सञ्चूर्ण्यैषां पलद्वयम्।।**
> **संगृह्य धातकीप्रस्थं द्राक्षायाः पलविंशतिम्।**
> **जलद्रोणद्वयं दत्त्वा शर्करायातुलां तथा।।**
> **क्षौद्रस्यार्धतुलाञ्चापि सर्वं सम्मिश्र्य यत्नतः।**
> **भाण्डे निक्षिप्य चावृत्य निदध्यान्मासमात्रकम्।।**
> **निहन्ति निखिलान श्वासान कासं यक्ष्माणमेव च।**
> **क्षतक्षीणं ज्वरं जीर्णं रक्तपित्तमुरः क्षतम्।।**
>
> (भै. र. हिक्का श्वास वि. /115-119)

घटक द्रव्यः–

1. धतूर (शा.मू.प.फ.)	-192 ग्राम	2. वासा (मू.त्व)	-96 ग्राम
3. मधूक (पु.)	-96 ग्राम	4. पिप्पली	-96 ग्राम
5. कण्टकारी	-96 ग्राम	6. नागकेशर	-96 ग्राम
7. शुण्ठी	-96 ग्राम	8. भार्ङ्गी	-96 ग्राम
9. तालीशपत्र	-96 ग्राम	10. धातकी पुष्प	-768 ग्राम
11. द्राक्षा (मुनक्का)	-960 ग्राम	12. जल	-24.576 लीटर
13. शर्करा	-4.800 कि.ग्रा.	14. मधु	-2.400 कि.ग्रा.

निर्माण विधिः–सर्वप्रथम क्र.सं. 1 से 10 तक द्रव्यों का चूर्ण बनावें। मुनक्का को भी कूट लें। फिर सन्धान पात्र में शुद्ध जल 24.576 लीटर डालें उसमें शर्करा और मधु मिलाकर घोलें। फिर सभी द्रव्यों के चूर्ण को मिलाकर सन्धान पात्र के मुख का सन्धिबन्धन करके सुरक्षित रखें। सन्धानोपरान्त आसव को छानकर काँच की बोतलों में पैक करके रखें।

मात्राः– 12 से 24 मि.ली. भोजनोत्तर समभाग जल के साथ।

मुख्य उपयोगः–श्वास, कास, राजयक्ष्मा, क्षतक्षीण, जीर्णज्वर, रक्तपित्त।

✠ ✠ ✠

Scanned with CamScanner

अष्टम अध्याय

कृतान्न और औषधिसिद्ध अन्न कल्पना

कृतान्न परिभाषा:–जिस प्रकार औषध द्रव्यों की विभिन्न कल्पनायें (स्वरसादि) की गई है, उसी प्रकार भक्ष्य अन्न (शूकधान्य-तण्डुल आदि, शिम्बी धान्य-पृथु आदि) से विभिन्न पथ्य कल्पनायें (यवागू, यूष आदि) की गई है। इन विभिन्न कल्पनाओं को कृतान्न वर्ग कल्पना कहा जाता है। यह संख्या में अनेक है और देशभेद से उनकी संख्या और भी अधिक है।

समवायिनी हेतौ ये मुनिर्भिर्गणिता गुणाः।
कार्येऽपि तेऽखिलाज्ञेयाः परिभाषेति भाषिताः।।
क्वचित्संस्कारभेदेन गुणभेदो भवेद्यतः।
भक्तं लघु पुराणस्य शालेस्तच्चिपिटो गुरुः।।
क्वचित् योगप्रभावेण गुणान्तरमपेक्षते।
कदन्नं गुरु सर्पिश्च तद्युक्तं सुपचं भवेत्।।

(भा. प्र. पू. कृतान्न वर्ग)

अर्थात् सामान्यतः समवायि गुण के कारण अन्नादि द्रव्यों में जो गुण होते हैं वे ही समस्त गुण एवं कार्य अन्नादि द्रव्यों से बने हुए यवागू भात आदि में भी होते हैं। किन्तु कहीं-कहीं संस्कार एवं संयोग के प्रभाव से गुणों में अन्तर आ जाता है। इसे ही कृतान्न कहते हैं। यथा:–पुरातन शालि चावल का भात लघु होता है, लेकिन उससे बना हुआ चिउड़ा गुरु होता है। इसी प्रकार कदन्न (खराब अन्न) एवं घी दोनों गुरु होते हैं, किन्तु दोनों का संयोग कर पकाने के पश्चात् सुपाच्य हो जाते हैं।

पथ्य एवं अपथ्य विवेचन:–आयुर्वेद में पथ्य कल्पना का विशेष महत्व है। रोगी के लिए औषधि के अतिरिक्त रोगनाशक और रोगी के लिए हितकारी आहार विहार है, उन्हें पथ्य कहते हैं। इसके विपरीत रोगवृद्धिकारक एवं रोगी के लिए अहितकर आहार विहार को अपथ्य कहते हैं।

Scanned with CamScanner

परिभाषा:-

पथ्यं पथोऽनपेतं यद्यच्चोक्तं मनसः प्रियम्।
यच्चाप्रियमपथ्यं च नियतं तन्न लक्षयेत्।।
मात्राकालक्रियाभूमिदेहदोषगुणान्तरम् ।
प्राप्य तत्तद्धि दृश्यन्ते ते ते भावास्तथा तथा।।

(च. सू. 25/45-46)

अर्थात् जो आहारादि द्रव्य उचित मात्रा में सेवन करने पर शरीर एवं मन के लिए लाभदायक हो, उसे पथ्य कहते हैं। इसी प्रकार जो आहारादि द्रव्य उचित मात्रा में सेवन करने पर शरीर एवं मन के लिए हानिकारक हो, उसे अपथ्य कहते हैं। इस प्रकार पथ्य और अपथ्य द्रव्यों में नियतरूप में नहीं होते है।

अतः पथ्य द्रव्य भी मात्रा, काल, क्रिया, भूमि, देह एवं दोष की विभिन्न अवस्थाओं को प्राप्त करके अपथ्य हो जाते हैं। और इन्हीं कारणों से अपथ्य द्रव्य भी पथ्य हो जाते हैं।

पथ्ये सति गदार्तस्य किमौषधनिषेवणैः।
पथ्येऽसति गदार्तस्य किमौषधनिषेवणैः।।

(लोलिम्बराज)

अर्थात् पथ्य का सेवन करते रहने पर औषध सेवन की आवश्यकता नहीं होती है। और पथ्य का सेवन नहीं करने पर औषधि सेवन से कोई लाभ नहीं मिलता है। इस प्रकार पथ्य के सेवन से औषधि कार्मुक एवं अपथ्य सेवन से औषध अकार्मुक हो जाती है। अतः आयुर्वेद में पथ्य कल्पना का विशेष महत्त्व है।

पथ्य आहार:-

तद्यथा:-लोहितशालयः शूकधान्यानां पथ्यतमत्वे श्रेष्ठतमा भवन्ति, मुद्गाः शमीधान्यानाम्, आन्तरिक्षमुदकानाम्, सैन्धवं लवणानां, जीवन्तीशाकं शाकानाम्, ऐणेयं मृगमांसानाम्, लावः पक्षिणां, गोधा विलेशयानां, रोहितो मत्स्यानां, गव्यं सर्पिः सर्पिषां, गोक्षीरं क्षीराणां, तिलतैलं स्थावरजातानां स्नेहानां, वराहवसा आनूपमृगवसानां, चुलुकीवसा मत्स्यवसानां, पाकहंसवसा जलचर विहङ्गवसानां, कुक्कुटवसा विष्किरशकुनिवसानाम्, अजमेदः शाखाद मेदसां, शृङ्गवेरं कन्दानां, मृद्वीका फलानां, शर्करेक्षु विकाराणामिति प्रकृत्यैव हिततमानामाहारविकाराणां प्राधान्यतो द्रव्याणि व्याख्यातानि भवन्ति।। (च. सू. 25/38)

अर्थात् शूकधान्य में रक्तशालि, शमीधान्य में मूँग, जल वर्ग में अन्तरिक्ष जल, लवणों में सैन्धव, शाकवर्ग में जीवन्ती शाक, मृग मांस में एण मांस, पक्षि वर्ग

Scanned with CamScanner

में लावा मांस, बिलेशय वर्ग में गोह का मांस, मत्स्य में रोहित मछली, घृत में गोघृत, दुग्ध में गोदुग्ध, स्थावर स्नेहों में तिल तैल, आनूप वसा में सूअर वसा, मत्स्य वसा में चुलुकी मछली वसा, जलचर पक्षि वसा में श्वेत हंस वसा, चोंच वाले पक्षियों में मुर्गे की वसा, पशुओं में बकरी की मेद, कन्दों में अदरख, फलों में मुनक्का और ईक्षु विकार में शर्करा को स्वभाव से ही पथ्य माने हैं

अपथ्य आहार:-

अहिततमानप्युपदेक्ष्यामः-यवकाः शूकधान्यानामपथ्यतमत्वेन प्रकृष्टतमा भवन्ति, माषाः शमीधान्यानां, वर्षानादेयमुदकानाम्, औषरं लवणानां, सर्षपशाकं शाकानां, गोमांसं मृगमांसानां, काणकपोतः पक्षिणां, भेको बिलेशयानां, चिलि-चिमो मत्स्यानाम्, आविकं सर्पिः सर्पिषाम्, अविक्षीरं क्षीराणाम्, कुसुम्भ स्नेहः स्थावरस्नेहानाम्, काकमद्गुवसा जलचरविहङ्गवसानां, चटकवसा विष्किरशकु-निवसानां, हस्तिमेदः शाखादमेदसां, निकुचं फलानाम्, आलुकं कन्दानां, फाणित-मिक्षुविकाराणाम, इति प्रकृत्यैवाहिततमानामाहारविकाराणां प्रकृष्टतमानि द्रव्याणि व्याख्यातानि भवन्ति ।। (च. सू. 25/39)

अर्थात् शूकधान्य में यवक, शमीधान्य में उड़द, जलों में वर्षा जल, लवणों में ऊसर लवण, शाकवर्ग में सर्षप शाक, पशुमांस में गाय का मांस, पक्षियों में जङ्गली कबूतर का मांस, बिलेशय वर्ग में मेंढ़क मांस, मत्स्य वर्ग में चिलचिम मछली मांस, घृत में भेड़ का घृत, दुग्ध वर्ग में भेड़ का दूध, स्थावर स्नेहों में कुसुम्भ तैल, आनूप पशु वसा में भैंस की वसा, मत्स्य वसा में कुम्भीर वसा, पक्षियों में काकमद्गु वसा, चोंच वाले पक्षियों में चटक वसा, पशुओं में हाथी की मेदा, फलों में निकुच, कंदों में आलू और ईक्षु विकारों में राब को अपथ्य आहार द्रव्य माने हैं। इस प्रकार पथ्य एवं अपथ्य आहार का संक्षेप में यहाँ पर वर्णन किया गया है। इनके अतिरिक्त भी अनेक पथ्य एवं अपथ्य औषध एवं आहार द्रव्यों का शास्त्रों में वर्णन मिलता है। पथ्य आहारौषध द्रव्य शरीर के लिए सुपाच्य, हितकर, मलमूत्रविसर्जन में सहायक, धातु निर्माण एवं दोषों को प्रकुपित नहीं करने के कारण लाभदायक होते हैं। और अपथ्य आहारौषध द्रव्य शरीर के लिए हानिकारक होते हैं।

पथ्य एवं हितकर आहार द्रव्यों का सेवन करने के लिए जो कल्पनायें निर्मित की जाती है, वे सभी पथ्य कल्पना कहलाती है। यथा:-यवागू, मण्ड, विलेपी, अन्न, भक्त, ओदन, यूष, कृशरा, मांसरस, वेशवार, खड-काम्बलिक, राग, षाडव, दधि एवं तक्र कल्पना।

Scanned with CamScanner

यवागू:–

यवागू तण्डुल आदि शूकधान्यों से बनायी जाती है तथा इसके निर्माण में ...गुणित जल का प्रयोग किया जाता है। यवागू के भेद के विषय में आचार्यों में ...भिन्नता है। आचार्य सुश्रुत ने यवागू के चार भेद मण्ड, पेया, यवागू और विलेपी ...ये हैं। यथा:-

सिक्थैर्विरहितो मण्डः पेया सिक्थसमन्वितः।
यवागूर्बहुसिक्था स्यात् विलेपी विरलद्रवा।।

(सु. सू. 46/344)

अर्थात् आचार्य सुश्रुत ने जिस पेय आहार में सिक्थ (चावल के कण) नहीं ...हो उसे मण्ड, जिसमें अल्प सिक्थ (चावल कण) हो उसे पेया, जिसमें सिक्थ (चावल ...के कण) अधिक हो उसे यवागू और जिसमें चावल का मण्ड (द्रव भाग) अत्यल्प एवं ...सिक्थ भाग अधिक हो उसे विलेपी कहा है।

अन्नं पञ्चगुणे तोये यवागूं षड्गुणे पचेत्।
चतुर्दशगुणे मण्डं विलेपीं तु चतुर्गुणे।।

(सु. सू. 46/344 डल्हण)

अर्थात् पाँच गुना पानी में अन्न, छः गुना पानी में यवागू, चौदह गुना पानी में ...मण्ड और चार गुना पानी में पकाने पर विलेपी कहा गया है।

यवागूः षड्गुणजले सिद्धा स्यात् कृशरा घना।
तण्डुलैर्मुद्गमाषैश्च तिलैर्वा साधिता हिता।।

(शा. सं. म. ख. 2/165)

अर्थात् चावल, मूंग, उड़द या तिलों को कूटकर छः गुना जल के साथ पकाने ...पर सिक्थ भाग की अधिकता वाली कल्पना को यवागू कहते हैं।

साध्यं चतुष्पलं द्रव्यं चतुःषष्टिपले जले।
तत्क्वाथेनार्धशिष्टेन यवागूः साधयेद् घनाम्।।

(शा. सं. म. ख. 2/152)

अर्थात् चार पल औषधि द्रव्य को 64 पल जल के साथ पकाकर अर्धावशिष्ट ...क्वाथ रहने पर उसमें चावल कण डालकर अग्नि पर गाढ़ा होने तक पाक करें। यह ...यवागू कल्पना है। इस प्रकार यहां पर आचार्य शार्ङ्गधर ने यवागू निर्माण की दो प्रक...ार की विधियों का उल्लेख किया है। यथा:–

आम्रादि यवागू –

आम्राम्रातकजम्बूत्वक्कषाये विपचेद् बुधः।
यवागूं शालिभिर्युक्तां तां भुक्त्वा ग्रहणीं जयेत्।।

(शा. सं. म. ख. 2/153)

अर्थात् आम, आम्रातक और जामुन त्वक् के क्वाथ में चावलों के कण की यवागू बनाकर सेवन करने से ग्रहणी रोग पर विजय प्राप्त हो जाती है।

द्रवाद्विंशतिभागेन तण्डुलैः सह साधयेत्।
तथा पञ्चदशाख्येन यवागूर्दशकेन वा।।

(का. सं. खि. 4/72)

अर्थात् यवागू बीस गुना, पन्द्रह गुना या दस गुना जल में चावल पकाकर बनाई जाती है।

विंशतेः स्फुटितैः सिक्थैस्तुल्याधो मध्यतोपरि।
अहस्तहार्या पेया स्यात् यवागूः सपरिग्रहाः।।

(का. सं. खि. 4/73)

अर्थात् काश्यप संहिता में चावल को 20 गुना पानी में सिद्ध करने पर अल्प सिक्थ युक्त द्रव्य को पेया और सिक्थ प्रधान द्रव्य को यवागू कहा गया है।

आचार्य चरक ने चरक संहिता में सूत्र स्थान के द्वितीय अध्याय में अट्ठाईस यवागू का वर्णन किया है। जिनका अनेक साध्यरोगों की चिकित्सा में प्रयोग बतलाया है।

विमर्शः–यवागू निर्माण के लिए आचार्य जीवक ने 20,15 एवं 10 गुना जल में पकाने का निर्देश दिया है। जबकि आचार्य शार्ङ्गधर ने यवागू निर्माण में जल का मान षड्गुण एवं षोडश गुण बतलाया है। सुश्रुत संहिता के टीकाकार डल्हण ने षड्गुण जल का निर्देश किया है।

यवागू गुणः–

यवागूः ग्राहिणी बल्या तर्पणी वातनाशिनी।

(शा. सं. म. ख. 2/166)

अर्थात् यवागू ग्राही, बल्य, तृप्त करने वाली और वातनाशक होती है।

यवागू दोषः–

घना विशीर्णा शीता च न चावक्षीणतण्डुला।
पिच्छिलाविशदाऽहृद्या यवाग्वा दोषसंग्रहः।।

(का. सं. खि. 4/74)

Scanned with CamScanner

अर्थात् गाढ़ी, पतली, ठण्डी, अल्प चावल, पिच्छिल, विशद और अदृढ़ ये सात ढंग यवागू के माने हैं।

मण्डः—

'सिक्थैर्विरहितो मण्डः' (सु. सू. 46/344)

'चतुर्दशगुणे मण्डः' (सु. सू. 46/344 पर डल्हण टीका)

अर्थात् चावल के कणों (सिक्थ) से रहित पेय को मण्ड कहते हैं। चावल में चौदह गुना जल डालकर पकाकर स्वच्छ वस्त्र से छान लेते हैं। इसमें मण्ड (द्रवभाग) ग्रहण करते हैं।

नीरेचतुर्दशगुणे सिद्धो मण्डस्त्वसिक्थकः।
शुण्ठीसैन्धवसंयुक्तः पाचनो दीपनः परः॥

(शा. सं. म. ख. 3/170)

अर्थात् चावल आदि के साथ चौदह गुना जल के साथ पकाया गया सिक्थ रहित भाग मण्ड कहलाता है। जब चावल सिद्ध हो जाते हैं तो उसे स्वच्छ वस्त्र से छानकर केवल मण्ड (द्रव) भाग ग्रहण करते हैं। इसको शुण्ठी एवं सैंधव लवण डालकर पीने से अग्नि का दीपन एवं पाचन करता है।

मण्ड की मात्राः—

विलेपीमुचिताद्भक्ताच्चतुर्थांशकृतां ततः। (सु. चि. 39/8)

अर्थात् मण्ड, पेया, यवागू एवं विलेपी की मात्रा 400 ग्राम चावल खाने वाले व्यक्ति को 100 ग्राम चावल के साथ उपरोक्त कल्पनाएँ सिद्ध कर सेवन करनी चाहिए।

मण्ड के गुणः—

मण्डस्तु दीपयत्यग्निं वातं चाप्यनुलोमयेत्।
मृदुकरोति स्रोतांसि स्वेदं संजनयत्यपि॥
लङ्घितानां विरिक्तानां जीर्णे स्नेहे च तृष्यताम्।
दीपनत्वाल्लघुत्वाच्च मण्डः स्यात् प्राणधारणः॥

(च. सू. 27/251-252)

अर्थात् मण्ड अग्निदीपक, वातानुलोमक, स्रोतो का मार्दवकर, स्वेदनकारक और विरिक्त (विरेचन किये हुए) एवं स्नेह जीर्ण होने के कारण तृषा बढ़ने पर प्राणधारक होता है।

Scanned with CamScanner

वाट्यमण्डः- सुकण्डितैस्तथा भृष्टैर्वाट्यमण्डो यवैर्भवेत्।
कफपित्तहरः कण्ठ्यो रक्तपित्तप्रसादनः॥

(शा. सं. म. ख. 2/173)

अर्थात् तुष रहित तथा कुछ भुने हुए यवों से निर्मित मण्ड को वाट्यमण्ड कहते हैं। इसको 14 गुना पानी के साथ पकाकर एवं स्वच्छ वस्त्र से छानकर बनाया जाता है। यह कफपित्तहर, कण्ठ्य, रक्त एवं पित्त का शोधक होता है।

लाजमण्डः-

लाजैर्वा तण्डुलैर्भृष्टैर्लाजमण्डः प्रकीर्तितः।
श्लेष्मपित्तहरो ग्राही पिपासाज्वरजिन्मतः॥

(शा. सं. म. ख. 2/174)

अर्थात् धान के लाजा (खील) अथवा भुने हुए चावलों को चौदह गुना पानी के साथ पकाकर एवं स्वच्छ वस्त्र से छानने से प्राप्त द्रव को लाजमण्ड कहते हैं। यह कफपित्तहर, ग्राही, प्यास एवं ज्वर को नष्ट करता है।

लाजमण्ड के अन्य गुणः-

लाजमण्डो विशुद्धानां पथ्यः पाचनदीपनः।
वातानुलोमनो हृद्यः पिप्पलीनागरायुतः॥

(सु.सू.46/340)

लाजपेया श्रमघ्नी तु क्षामकण्ठस्य देहिनः।
तृष्णातीसारशमनो धातुसाम्यकरः शिवः॥
लाजमण्डोऽग्निजननो दाहमूर्च्छानिवारणः।
मन्दाग्निविषमाग्निनां बालस्थविरयोषिताम्॥
देयश्च सुकुमाराणां लाजमण्डः सुसंस्कृतः॥
क्षुत्पिपासासहः पथ्यः शुद्धानां च मलापहः।
शृतः पिप्पलीशुण्ठीभ्यां युक्तो लाजाम्लदाडिमैः॥

(च. सू. 27/253-256)

अर्थात् पिप्पली और सोंठ से युक्त लाजमण्ड पथ्य, दीपक, पाचक, वातानुलोमक, हृद्य, श्रमहर, क्षीण स्वर, तृष्णा, अतिसार नाशक, धातुसाम्यकर, कल्याणकर, दाह एवं मूर्च्छाहर, मन्दाग्नि एवं विषमाग्नि वाले पुरुषों, बालकों, वृद्ध स्त्रियों और सुकुमार पुरुषों के लिए विशेष हितकर, मलनिष्कासक एवं क्षुधापिपासा [illegible]दायक होता है।

Scanned with CamScanner

पेया:- "पेया सिक्थसमन्विता" (सु. सू. 46/344)

अर्थात् जिस पेय आहार में चावल के मण्ड (द्रव) में चावल के कुछ कण (सिक्थ) भी रहे, उसे पेया कहते हैं।

द्रवाधिका स्वल्पसिक्था चतुर्दशगुणे जले।
सिद्धा पेया बुधैर्ज्ञेया यूषः किञ्चिद् घनस्ततः।
पेया लघुतरा ज्ञेया ग्राहिणी धातुपुष्टिदा।।
(शा. सं. म. ख. 2/167-168)

अर्थात् चावल के मोटे टुकड़ो में चौदह गुना पानी मिलाकर बनायी गई अल्प सिक्थ (चावल कण) एवं अधिक द्रव(मण्ड) के मिश्रण को पेया कहते हैं। यह लघु, ग्राही और धातुओं को पुष्ट करती है।

पेया के अन्य गुण:-

स्वेदाग्निजननी लघ्वी दीपनी बस्तिशोधनी।।
क्षुत्तृट्श्रमग्लानिहरी पेया वातानुलोमिनी।
(सु. सू. 46/341-341½)

क्षुत्तृष्णाग्लानिदौर्बल्यकुक्षिरोगज्वरापहा।
स्वेदाग्निजननी पेया वातवर्चोऽनुलोमिनी।।
(च. सू. 27/250)

अर्थात् पेया लघु, अग्निदीपक, स्वेदजनक, बस्ति शोधक, भूख, प्यास, ग्लानि एवं श्रमहर, वातानुलोमक, मलानुलोमक, दौर्बल्य, उदररोग एवं ज्वर को दूर करने वाली होती है।

विलेपी:-

"विलेपी विरलद्रवा" (सु. सू. 46/344)

अर्थात जिस पेय आहार में चावल का मण्ड (द्रव) अल्प एवं सिक्थ (चावल के कण) अधिक हो, उसे विलेपी कहते हैं।

विलेपी घनसिक्था स्यात् सिद्धा नीरे चतुर्गुणे।
(शा. सं. म. ख. 2/166)

अर्थात चावल के मोटे टुकड़ो में चार गुना पानी मिलाकर अग्नि पर पकाने के बाद द्रव भाग अल्प एवं सिक्थ भाग अधिक रह जाय, उसे विलेपी कहते हैं।

तर्पणी बृंहणी हृद्या मधुरा पित्तनाशिनी।।
(शा. सं. म. ख. 2/167)

Scanned with CamScanner

तर्पणी ग्राहिणी लघ्वी हृद्या चापि विलेपिका।

(च. सू. 27/250½)

विलेपी तर्पणी हृद्या ग्राहिणी बलवर्धनी।
पथ्या स्वादुरसा लघ्वी दीपनी क्षुत्तृषापहा॥

(सु. सू. 46/342–342½)

विलेपी गुण – विलेपी तृप्तिकारक, बृंहण, हृद्य, मधुर, पित्तनाशक, ग्राही, लघु, बलवर्धक, पथ्य, अग्निदीपक, क्षुधा और प्यास को दूर करने वाली होती है।

अन्न कल्पना –

"अन्न पञ्चगुणे तोये" (सु. सू. 46/344 डल्हण:)

भक्तमन्नं तथाऽन्धश्च क्वचित्कूरं च कीर्तितम्।
ओदनोऽस्त्री स्त्रियां भिस्सा दीदिविः पुंसिभाषितः॥
सुधौतांस्तण्डुलान् स्फीतांस्तोये पञ्चगुणे पचेत्।
तदुक्तं प्रस्रुतं चोष्णं विशदं गुणवन्मतम्॥
भक्तं वह्निकरं पथ्यं तर्पणं रोचनं लघु।
अधौतमस्रुतं शीतं गुर्वरुच्यं कफप्रदम्॥

(भा. प्र. पू. कृतान्न वर्ग)

अर्थात् 100 ग्राम स्वच्छ चावलों में 500 मिली जल मिश्रित कर पात्र को चूल्हे पर चढ़ाकर पकाते हैं। पात्र के मुख को ढक्कन से ढक दिया जाता है। उफान आने पर ढक्कन को हटाकर चावल को पूर्णतया सिद्ध करके या तो छान लिया जाए अथवा मण्ड को उसी में आचूषित करें। इसे ही अन्न कल्पना कहते हैं। अन्न कल्पना के भक्त, अन्न, अन्ध, कूर, ओदन, भिस्सा और दीदिवि भावप्रकाशकार ने पर्याय माने हैं।

भक्त कल्पना: –

जलेचतुर्दशगुणे तण्डुलानां चतुष्पलम्।
विपचेत्स्रावयेन्मण्डं स भक्तो मधुरो लघु॥

(शा. सं. म. ख. 2/169)

अर्थात् चार पल (192 ग्राम) स्वच्छ चावलों में चौदह गुना (2.688लीटर) जल मिश्रित कर पात्र को चूल्हे पर चढ़ाकर चावल सिद्ध कर उसका मण्ड निकाल दिया जाए, उसे भक्त कल्पना कहते हैं। यह मधुर और लघु होता है।

भक्त के गुण: –

धौतस्तु विमलः शुद्धो मनोज्ञः सुरभिः समः।
स्विन्नः सुप्रस्रुतस्तूष्णो विशदस्त्वोदनो लघुः॥

(सु. सू. 46/346)

Scanned with CamScanner

13. [illegible] यूष　14. पल्लव यूष　15. महा यूष
16. [illegible] यूष　17. मसूर यूष　18. चाङ्गेरी यूष
19. मूलक यूष　20. पुनर्नवा यूष　21. अतिबला यूष
22. गुड काम्बलिक यूष　23. त्रिकटु यूष　24. रसोन यूष
25. वास्तुक यूष

दोषभेदेन यूषास्ते संख्याता: पञ्चसप्तति: ।
तथैव पाचनादित्वात् पञ्चाशत्तु रसाश्रयात् ।।

(का. सं. खि. 4/28)

महर्षि कश्यप ने ही दोषभेद से 25×3=75 और आश्रय भेद (कषायमधुर और कषायाम्ल) से यूष को 25×2=50 प्रकार का माना गया है। इस प्रकार महर्षि काश्यप ने 2,3,25,50 एवं 75 प्रकार के यूष के भेद किए हैं।

यूष के गुण:-

यूषादिव्यञ्जनोपेतं भोज्यं पथ्यतरं भवेत् ।
स्वस्थानामातुराणां च विशेषारोग्यकारकम् ।।

(का. सं. खि. 4/3)

रोचनो दीपनो वृष्य: स्वरवर्णबलाग्निकृत् ।।
प्रस्वेदजननो मुख्यस्तुष्टिपुष्टिसुखावह: ।
यूष: स्नेहोष्णभावाच्च वातं स्नेहकषायत: ।।
पित्तं कफं कटूष्णत्वात् संस्काराच्च नियच्छति ।

(का. सं. खि. 4/15-16)

अर्थात् यूष आदि व्यञ्जनों से युक्त आहार द्रव्य स्वस्थ एवं आतुर दोनों के लिए पथ्य माने गये हैं और विशेषरूप से आरोग्य प्रदान करते हैं। यूष रुचिकारक अग्निदीपक, वृष्य, स्वर, वर्ण, बल और अग्निवर्द्धक, स्वेदजनन, मुख के लिए हितकारी, तृप्ति कारक, पुष्टिदायक, सुखदायक होते हैं। यूष स्निग्ध एवं उष्णता से वात का, स्निग्ध एवं कषाय रस से पित्त का और कटु, उष्ण एवं संस्कार से कफ का शमन करते हैं।

आचार्य कश्यप ने काश्यप संहिता के खिलस्थान के चौथे अध्याय 'यूष निर्देशीयो' में यूष का विस्तृत वर्णन किया है।

कृशरा:-कृशरा को लोकभाषा में खिचड़ी कहते हैं। खिचड़ी प्राय: चावल और मूँग की दाल से बनाई जाती है। यह पथ्य के रूप में विशेष रूप से अतिसार रोग में खिलाई जाती है। चावल और मूँग की दाल के अतिरिक्त अन्य द्रव्यों से भी खिचड़ी

Scanned with CamScanner

यूष कल्पना:-

> **द्रवैर्बहुविधैर्द्रव्यैस्तथा चाग्रैतण्डुलै:।**
> **यूष इत्युच्यते सिद्धो यवागूस्तण्डुलै: सह ।।**

(का. सं. खि. 4/18)

अर्थात् जल, क्वाथ, स्वरस आदि द्रव पदार्थ, विविध औषध द्रव्य और मूंग, मसूर आदि शिम्बी धान्य को पकाकर जो द्रव कल्प बनाया जाता है, उसे यूष कहते हैं। वह बिना तण्डुल (चावल) के ही बनायी जाती है। तण्डुल आदि शूकधान्य से यवागू कल्पना बनायी जाती है।

> **कर्षमष्टमिकां वाऽपि कल्कद्रव्यस्य वा पलम्।**
> **वारिप्रस्थेन विपचेत् स द्रवो यूष उच्यते ।।**

(द्र. गु. वि. उ. 2/39)

अर्थात् यूष यदि तीक्ष्ण वीर्य औषध द्रव्य से बनाना हो तो एक कर्ष (12 ग्राम), यदि मध्यवीर्य औषध द्रव्य से बनाना हो तो 2 कर्ष तथा यदि मृदुवीर्य औषध द्रव्य से बनाना हो तो 4 तोला औषध द्रव्य का कल्क बनाकर, इसमें चार से आठ तोला मूंग आदि शिम्बी धान्य और एक प्रस्थ (64 तोला) जल आदि द्रव पदार्थ डालकर पकावें। आधा या चतुर्थांश जल शेष रहने पर स्वच्छ कपड़े से छान लें, इसे यूष कहते हैं।

> **कल्कद्रव्यपलं शुण्ठी पिप्पली चार्धकार्षिकी।**
> **वारिप्रस्थेन विपचेत् स द्रवो यूष उच्यते ।।**

(शा. सं. म. ख. 2/154)

अर्थात् छिलका सहित मूँग, मसूर आदि की दाल एक पल (48 ग्राम), शुण्ठी और पिप्पली आधा कर्ष (6 ग्राम) को यवकुट कर एक प्रस्थ जल (768 मिली) में मिश्रित कर पात्र में डालकर अर्धावशेष या चतुर्थांशावशेष रहने या सम्यक्पाक सिद्ध होने पर स्वच्छ वस्त्र से छान लें। इसे यूष कहते हैं।

यूष के भेद:-

> **अस्नेहलवणं सर्वमकृतं कटुकैर्विना।**
> **विज्ञेयं लवणस्नेहकटुकै: संयुतम् कृतम् ।।**

(सु. सू. 46/379)

अर्थात् आचार्य सुश्रुत ने अकृत यूष और कृत यूष भेद से यूष को दो प्रकार का माना है।

1. अकृतयूष:- जिस यूष में सैंधव लवण, कटुद्रव्य मरिचादि एवं स्नेह नहीं डाला गया हो अर्थात् छौंक नहीं लगाया गया हो, उसे अकृतयूष कहते हैं।

2. कृत यूष:- जिस यूष में सैंधव लवण, मरिच, दालचीनी आदि कटु-द्रव्य एवं स्नेह, घी आदि डाला गया हो अर्थात् छौंक लगाया गया हो, उसे कृतयूष कहते हैं।

> कृताऽकृताऽकृतकृता: पित्तश्लेष्मानिलात्मसु।
> रोगेषु स्नेहयोगाच्च ते यूषास्त्रिविधा स्मृता:।।
>
> (का. सं. खि. 4/25)

अर्थात् आचार्य काश्यप ने कृतयूष, अकृत यूष और कृताकृत यूष भेद से तीन प्रकार के यूष माने हैं, जिनको क्रमश: पित्त, कफ एवं वात रोगों में दिया जाता है।

> यूषा: कषायमधुरा कषायाम्लश्च भार्गव:।
> द्विविधा विहिता: सर्वे सर्वे च द्रवयोनय:।।
>
> (का. सं. खि. 4/24)

काश्यप संहिता में यूष को द्रवयोनय: कहकर दो भेद किये हैं:-

1. कषाय मुधर, 2. कषायाम्ल।

महर्षि कश्यप ने द्रव्यभेद से यूष के 25 प्रकार बताये हैं:-

> मुद्गयूषो विरसिका यूषो दाडिमकस्तथा।
> चित्रकामलकानां च द्वौ यूषौ परिकीर्तितौ।
> पञ्चकोलकयूषौ द्वौ संग्राही दीपनस्तथा।
> धान्ययूषोऽथ कौलत्थ: फलयूषश्च भार्गव।।
> पुष्पयूष: पत्रयूषो वल्कयूषस्तथैव च।।
> मुख्य: पल्लवयूषश्च महायूषस्तथैव च।
> रास्नायूषो मसूराख्यश्चाङ्गेर्या मूलकस्य च।।
> पुनर्नवातिबलयोगुडकाम्बलिकस्तथा ।
> मुख्यत्रिकटुयूषश्च लशुनैर्वास्तुकेन च।
> पञ्चविंशतिरित्येते यूषा: कश्यपनिर्मिता।
>
> (का. सं. खि. 4/19-23½)

1. मुद्गयूष	2. विरसिका	3. अनार यूष
4. चित्रक यूष	5. आमलकी यूष	6. पञ्चकोलसंग्राही यूष
7. पञ्चकोलदीपन यूष	8. धान्य यूष	9. कुलत्थ यूष
10. फल यूष	11. पुष्प यूष	12. पत्र यूष

Scanned with CamScanner

...जाती है। यथा -बाजरे की खिचड़ी, गेहूं का दलिया, मक्के का दलिया, उड़द व मसूर की खिचड़ी, तिलमिश्रित खिचड़ी आदि। कृशरा को त्रिशरा भी कहा गया है।

सर्वप्रथम सुश्रुत संहिता में कृशरा के गुण लिखे है, किन्तु निर्माण विधि सुश्रुत के टीकाकार डल्हण ने बताई है:-

कृशरा तिलतण्डुलमाषकृता यवागू:।

(सु. सू. 46/346 पर डल्हण टीका)

कफपित्तकरी बल्या कृशराऽनिलनाशनी ।।

(सु. सू. 46/346)

अर्थात् तिल, चावल और उड़द की दाल को चार गुना जल में पकायी हुई कल्पना को कृशरा कहते हैं। जो कफपित्त को बढ़ाने वाली, बलदायक और वातनाशक होती है।

तण्डुलादालिसम्मिश्रा लवणार्द्रकहिङ्गुभि:।
संयुक्ता: सलिले सिद्धा: कृशरा कथिता बुधै:।।
कृशरा शुक्रला बल्या गुरु: पित्तकफप्रदा।
दुर्जरा बुद्धिविष्टम्भिमलमूत्रकरी स्मृता।।

(भा. प्र. पू. कृतान्न वर्ग /9-10)

अर्थात् चावल, मूँग की दाल, लवण, आर्द्रक, हिङ्गु को किसी स्टील के पात्र में चार गुना पानी के साथ पकाकर बनायी गई कल्पना को कृशरा कहते हैं। कृशरा शुक्रवर्द्धक, बलप्रद, गुरु, पित्तकफवर्द्धक, पचने में कठिन, बुद्धि वर्धक, विष्टम्भी और मलमूत्रोत्पादक होती है।

कृशरा निर्माण चावल से समान, अर्ध या चतुर्थांश मूँग की दाल, लवण, आर्द्रक, हिंगु एवं जल यथावश्यक मात्रा में डालकर किया जाता है। चावल और मूँग की दाल का अनुपात रोगी तथा रोग की तीव्रता के आधार पर कम या अधिक किया जा सकता है।

मांसरस:-

मांसरस भी क्वाथ कल्पना की तरह ही बनाया जाता है। औषधि द्रव्य व मांस को जल में डालकर पकाने के पश्चात् छान लेते हैं, उसे मांसरस कहते हैं।

द्रव्यतो द्विगुणं मांसं सर्वतो द्विगुणं पय:।
पादस्थं संस्कृतं चाज्ये षडङ्गो यूष उच्यते।।

(वै. प. प्र. 2/67)

Scanned with CamScanner

अर्थात् औषधि द्रव्य से द्विगुण मात्रा में मांस को पात्र में डालकर अष्टगुण जल के साथ पकाकर चतुर्थांश शेष रहने पर छानकर घी का छौंक लगावें। इस प्रकार से सिद्ध कल्पना को षडङ्ग मांसयूष या मांसरस कहते हैं।

पलाष्टकं जले प्रस्थे घनेऽथ मध्यमे तु षट्।
मांसस्य वण्टनं कुर्यात् कुडवे तनुके रसे ।।

(द्र. गु. वि. उ. 2/31)

अर्थात् आचार्य यादवजी ने घन मांसरस, मध्यम मांसरस और पतला मांसरस भेद से वर्णन किया है:-

1. **घन मांसरस:**-एक प्रस्थ जल (768 मिली) में आठ पल (384 ग्राम) मांस डालकर पात्र को अग्नि के ऊपर रखकर सिद्ध किया हुआ घन मांसरस कहलाता है।

2. **मध्यम मांसरस:**-एक प्रस्थ (768 मिली) जल में 6 पल (288 ग्राम) मांस डालकर पात्र को अग्नि के ऊपर रखकर सिद्ध किया हुआ मध्यम मांसरस कहलाता है।

3. **पतला मांसरस:**-एक प्रस्थ (768 मिली) जल में एक कुडव (192 ग्राम) मांस डालकर पात्र को अग्नि के ऊपर रखकर सिद्ध किया हुआ पतला मांसरस कहलाता है।

कृत मांसरस निर्माण विधि:-

पाकपात्रे घृतं दद्यात्तैलञ्च तदभावत:।
तत्र हिङ्गु हरिद्रां च भर्जयेत्तदनन्तरम् ।।
छागादेरस्थिरहितं मांसं तत्खण्डितं ध्रुवम्।
धौतं निर्गालितं तस्मिन्घृते तद्भर्जयेच्छनै: ।।
सिद्धयोग्यं जलं दत्त्वा लवणन्तु पचेत्तत:।
सिद्धे जलेन सम्पिष्य वेसवारं परिक्षिपेत् ।।

(भा. प्र. पू. कृतान्न वर्ग / 80-82)

अर्थात् किसी भी स्टेनलेस स्टील के पात्र में घी या तैल को गर्म करके उसमें हिङ्गु एवं हरिद्रा का चूर्ण भूनकर बकरे के निरस्थि मांस को डालकर भूना जाता है। इसके बाद यथावश्यक मात्रा में जल एवं लवण को डालकर पाक किया जाता है। फिर सिद्ध जल से ही वेसवार (मांस के मसालों) को पीसकर एवं मिलाकर पुन: पाक किया जाता है। इसे मांसरस कहते हैं।

Scanned with CamScanner

…रस के गुण:-

प्रीणनः प्राणजननः श्वासकासक्षयापहः।
वातपित्तश्रमहरो हृद्यो मांसरस स्मृतः॥
स्मृत्योजः स्वरहीनानां ज्वरक्षीणक्षतोरसाम्।
भग्नविश्लिष्टसन्धीनां कृशानामल्परेतसाम्॥
आप्यायनः संहननः शुक्रदो बलवर्धनः।
(सु. सू. 46/359-360)

अर्थात् मांसरस का सेवन करने पर तृप्ति, प्राणदायी, हृद्य, श्रमहर, स्मरण …क्ति, ओज एवं स्वरवृद्धिकारक, शुक्रवर्धक, बलवर्द्धक, शरीर दार्ढ्यकर और क्षय, श्वास, कास, वातपित्तनाशक, ज्वर, क्षीण, उरःक्षत, अस्थिभग्न, सन्धिभ्रंश आदि रोग नष्ट हो जाते हैं।

…सवार:-

मांसं निरस्थि सुस्विन्नं पुनर्दृषदि पेषितम्।
पिप्पलीशुण्ठीमरिचगुडसर्पिः समन्वितम्॥
ऐकध्यं पाचयेत् सम्यग्वेसवार इति स्मृतः।
वेसवारो गुरुः स्निग्धो बल्यो वातरुजापहः॥
(सु. सू. 46/364-365½)

अर्थात् किसी भी स्टेनलेस स्टील के साफ पात्र में अस्थिरहित बकरे के मांस के टुकड़ों को चतुर्गुण जल के साथ मध्यमाग्नि पर पकाया जाता है। मांस पक जाने पर …ख को नीचे उतारकर मांस के टुकड़ों को पीसकर बारीक किया जाता है। फिर उसी पात्र में घी डालकर गर्म करके सैंधव लवण, पिप्पली चूर्ण, शुण्ठीचूर्ण, मरिच चूर्ण एवं गुड डालकर पकाया जाता है। जब मांस भली भाँति सिद्ध हो जाय, तो उसे वेसवार कहते हैं। यह गुरु, स्निग्ध, बल्य और वातरोगनाशक होता है।

आचार्य भावमिश्र ने समान मात्रा में मिलित नागवल्ली (पान के पत्र), तण्डुल, लवंग, विडंग और मरिच को वेसवार कहा है। इनको डालकर पकाया हुआ मांस सिद्धमांस कहा जाता है। यह वृष्य, बल्य, रुचिकारक, बृंहण, त्रिदोषशामक, श्रेष्ठ अग्निप्रदीपक और धातुवर्धक होता है:-

द्रव्याणि वेसवारस्य नागवल्लीदलानि च।
तण्डुलश्च लवङ्गानि मरिचानि समासतः॥
अनेन विधिना सिद्धं शुद्धमांसमिति स्मृतम्।

Scanned with CamScanner

गुडधान्यं परं वृष्यं बल्यं कफवातहृत् बृंहणम् ।।
त्रिदोषशमनं श्रेष्ठं दीपनं धातुवर्धनम् ।।

(भा. प्र. कृतान्न वर्ग / 83-85)

आत्रेय संहिता में चित्रक, पिप्पलीमूल, पिप्पली, चव्य, शुण्ठी, धान्यक, हरिद्रा और तण्डुल को समान भाग में मिलाने पर वेशवार कहा गया है :-

चित्रकं पिप्पलीमूलं पिप्पलीचव्यनागरम् ।
धान्यकं रजनीश्वेततण्डुलाश्च समांशकाः ।।
वेशवार इति ख्यातः शाकादिषु नियोजयेत् ।।

(आत्रेय संहिता)

खड काम्बलिक :-

सर्वप्रथम सुश्रुत संहिता में खड-काम्बलिक के गुणों का वर्णन किया है, लेकिन परिभाषा नहीं दी है। आचार्य डल्हण ने अन्य आचार्यों का उद्धरण देकर परिभाषा बतायी है। आचार्य डल्हण के अनुसार खड और काम्बलिक दोनों यूष विशेष है। खड और काम्बलिक दोनों के आधार रूप तक्र और दधिमस्तु है।

खड:-

खडकाम्बलिकौ यूषविशेषौ । तत्र खडो द्विविध:-सतक्रशमीधान्य, सतक्रशाकश्च । तथा हि ''सतक्राणि शमीधान्यानि स्निग्धानि संग्राहकानि खडानि'' इति, सतक्रशाकस्तु कपित्थतक्रचाङ्गेरीमरिचाजाजिचित्रकैः । सुपक्वखडयूषोऽयमथ काम्बलिकोऽपरः ।। दध्यम्ल लवणस्नेहतिलमाष समन्वितं इति ।

(सु. सू. 46/376 पर डल्हण)

दधिदाडिममाषकस्नेहयुक्तं व्यञ्जनं खड इत्युच्यते । (जेज्जट)

अर्थात् सुश्रुत संहिता के टीकाकार आचार्य डल्हण ने खड काम्बलिक को यूष विशेष कहकर खड के दो भेदों का उल्लेख किया है। यथा:-

1. सतक्रशमीधान्य:-किसी भी स्टील के पात्र में तक्र, शमीधान्य, छिलका रहित मूँग, मसूर, उड़द की दाल यथावश्यक मात्रा में डालकर पकायें। जब सम्यक् पाक हो जाय तब घृत को अलग पात्र में गर्म करके सैन्धव लवण, जीरक, शुण्ठी, मरिच आदि का छौंक लगाकर सिद्ध करने को सतक्रशमी धान्य खड कहते हैं।

2. सतक्रशाक:-किसी भी स्टील पात्र में तक्र, कपित्थ, चाङ्गेरी, मरिच, श्वेतजीरक और चित्रकमूल को यथावश्यक मात्रा में लेकर पकाकर छौंक लगाकर सिद्ध करने को सतक्रशाक खड कहते हैं।

Scanned with CamScanner

आचार्य जेज्जट ने दही, अनार, उड़द, शाक और तिल तैल को एकत्र मिलाकर पकाये हुए व्यंजन को खड कहा है।

तिलखड:–आचार्य डल्हण ने नल के मतानुसार तिलखड का भी वर्णन किया है–

तिलं गुलुञ्चितं कृत्वा पिष्टं क्षीरे व्यहोषितम्।
पटे पूतं पचेद्धीमानार्द्रकायापिते घृते॥
मरिचाजाजिसामुद्रैर्युक्तस्तिलखडो भवेत्॥

(सु. सू. 46/376 पर डल्हण)

अर्थात् किसी भी स्टील पात्र में कूटे हुए तिल-125 ग्राम को एक लीटर गोदुग्ध में मिलाकर एवं वस्त्रपूत कर आर्द्रक आवापित घृत को डालकर पकायें। फिर तीन दिन तक दही जमाकर रखें। अन्त में दही में मरिच, श्वेत जीरक एवं सामुद्र लवण मिलाकर मथने से तिलखड कहा जाता है।

काम्बलिक:–

दधिस्त्वम्लसिद्धस्तु यूष: काम्बलिक: स्मृत:।
पुन: सौवर्चलाजाजिबीजपूरकसौरभै:॥
संयोज्य मथित: स्वच्छ एष काम्बलिको भवेत्।
तक्राम्लसिद्ध: काम्बलिका अम्लानां बहुत्वात्॥

(सु. सू. 46/376 पर डल्हण)

अर्थात् दधिमस्तु (दही में से पृथक् किया हुआ पानी) एक लीटर पानी में 125 ग्राम मूंग की दाल को किसी स्टील के पात्र में उबालकर अर्धांश शेष यूष का निर्माण करें। फिर सौवर्चल लवण, श्वेतजीरक, बिजौरा नींबू और सुगन्धित द्रव्यों (दालचीनी, इलायची, तेजपात, लवङ्ग, जावित्री आदि) को मिलाकर बने हुए यूष को काम्बलिक कहा है।

खड काम्बलिक के गुण:–

खडकाम्बलिकौ हृद्यो तथा वातकफे हितौ।
बल्य: कफानिलौ हन्तिदाडिमाम्लोऽग्निदीपन:॥
दध्यम्ल कफकृद्बल्य: स्निग्धो वातहरो गुरु:।
तक्राम्ल: पित्तकृत्प्रोक्तो विषरक्तप्रदूषण:॥

(सु. सू. 46/376-377

अर्थात् खड एवं काम्बलिक दोनों ही हृद्य एवं वात, कफ दोष के हितकारी माने गये हैं। दोनों ही बल्य एवं वातकफ के रोगों को नष्ट करते

दाडिमाम्ल से सिद्ध काम्बलिक-खड अग्निदीपक, दध्याम्ल से सिद्ध खड-काम्बलिक बल्य कफकारक विबन्ध, गुरु एवं वातहर तथा तक्राम्ल से सिद्ध खड काम्बलिक पित्तकृत, विष्टम्भ एवं रक्त को दूषित करने वाले माने गये हैं।

रागषाडव:-

आचार्य सुश्रुत ने राग षाडव को एक ही कल्पना के नाम से वर्णित किया है। किन्तु टीकाकार डल्हण ने राग एवं षाडव को अलग-अलग कल्पना माना है। चरक संहिता के व्याख्याकार चक्रपाणि ने षाडव के लिए ''षाडवस्तु-मधुराम्ल द्रव्यकृत:'' कहा है।

ज्ञेय: पथ्यतमश्चैव मुद्गयूष कृताकृत: ।
स तु दाडिममृद्वीकायुक्त: स्याद्रागषाडव: ।।

(सु. सू. 46/367)

अर्थात् कृत एवं अकृत मुद्गयूष में अनार और द्राक्षा मिलाकर पीसने से बनने वाली कल्पना को रागषाडव कहते है।

आम्रमाम्रं त्वचाहीनं द्विस्त्रिर्वा खण्डितं तत: ।
सुपक्वं च समुत्तार्य मरिचैलेन्दुवासितम् ।
स्थापितं स्निग्धमृद्भाण्डे रागषाडवसंज्ञित: ।।

(वै. श. सि.)

अर्थात् अपक्व छिलका रहित आम्र के 2-3 टुकड़े करके चतुर्गुण जल के साथ किसी भी पात्र में डालकर अग्नि पर पकायें। सुपक्व होने पर मरिच, इलायची एवं कर्पूर को मिश्रित करें। इस प्रकार की कल्पना को भी रागषाडव कहते है।

राग:-

सितारूचक सिन्धूत्थै: सवृक्षाम्लपरूषकै: ।
जम्बूफलरसैर्युक्तो रागो राजिकयाकृत: ।।

(सु. सू. 46/388 पर डल्हण)

अर्थात् मिश्री, सैन्धव लवण, सौवर्चल लवण, वृक्षाम्ल रस, फालसा स्वरस, जामुन के फल का स्वरस और राजिका को पीसकर किसी पात्र में डालकर अच्छी तरह मिश्रित की गई कल्पना को राग कहते हैं।

षाडव:-

षाडवा: पुनर्मधुराम्ललवण संयोगजा नानाविधा: ।
स्पष्टाम्लमधुरोऽस्पष्टकषायलवणोषण: ।
अतिक्त खाडव: कोल कपित्थाद्युपबृंहित: ।।

(सु. सू. 46/383, 378 पर डल्हण)

Scanned with CamScanner

तक्र के गुण –

शोफार्शो ग्रहणीदोष मूत्र ग्रहोदरारुची।
स्नेहव्यापदि पाण्डुत्वे तक्रं दद्याद् गरेषु च॥

(च. सू. 27/229)

वातश्लेष्मार्श सां तक्रात् परं नास्तीह भेषजम्।

(च. चि. 14/77)

वातश्लेष्मविकाराणां शतं चापि निवर्तते।
नास्ति तक्रात् परं किञ्चिदौषधं कफवातजे॥

(च. चि. 14/88)

स्रोतःसु तक्रशुद्धेषु रसः सम्यगुपैति यः।
तेन पुष्टिर्बलं वर्णः प्रहर्षश्चोपजायते॥

(च. चि. 14/87)

शीतकालेऽग्निमांद्ये च कफोत्थव्वामयेषु च।
मार्गावरोधे दुष्टे च वायौ तक्रं प्रशस्यते॥

(सु. सू. 45/87)

नैव तक्रं क्षते दद्यान्नोष्णकाले न दुर्बले।
न मूर्च्छाभ्रमदाहेषु न रोगे रक्तपैत्तिके॥

(सु. सू. 45/86)

"तक्रं तु मधुरमम्लं कषायानुरसमुष्णवीर्यं लघुरूक्षमग्निदीपनं गरशोफातिसारग्रहणी पाण्डुरोगार्शः प्लीहगुल्मारोचकविषमज्वर तृष्णाच्छर्दिप्रसेकशूलमेदःश्लेष्मानिलहरं मधुरविपाकं हृद्यं मूत्रकृच्छ्रस्नेहव्यापत् प्रशमनमवृष्यं च"।

(सु. सू. 45/84)

अर्थात् तक्र मधुराम्ल रस प्रधान एवं कषाय अनुरस, उष्ण वीर्य, लघु, रूक्ष, मधुर विपाकी, अग्निदीपक, हृद्य, अवृष्य और शोफ, अर्श, ग्रहणी, मूत्रकृच्छ्र, उदररोग, अरुचि, पाण्डु, स्नेहव्यापद्, गरविषनाशक, वातश्लैष्मिक अर्श, कफ वातज रोग, ोतोशोधक, बल वर्ण–हर्ष की वृद्धिकर, पुष्टिदायक, शीतकाल, अग्निमान्द्य, स्रोतावरोध, ायुविकार, अतिसार, प्लीहारोग, गुल्म, विषमज्वर, तृष्णा, वमन, लालास्राव और रशूल को नाश करने में श्रेष्ठ है। उरःक्षत, ग्रीष्मऋतु, दौर्बल्य, मूर्च्छा, भ्रम, दाह र रक्तपित्त के रोगी को तक्र का सेवन नहीं करना चाहिए।

Scanned with CamScanner

त्रिदोषं मन्दकं जातं वातघ्नं दधि शुक्रलः।
सरः श्लेष्मानिलघ्नस्तु मण्डः स्रोतोविशोधनः॥

(च. सू. 27/225-228)

अर्थात् उत्तम रूप से जमा हुआ दही रुचिकारक, अग्निदीपक, पाचक, वृष्य, स्नेहजनन, बल्य, अम्ल विपाकी, उष्ण, वातनाशक, माङ्गल्य, मांसवर्धक और प्रतिश्याय, अतिसार, शीतज्वर, विषमज्वर, अरुचि, मूत्रकृच्छ्र और कार्श्य को दूर करने वाला माना गया है। दधि शरद्, ग्रीष्म एवं बसन्त ऋतु, रक्त, पित्त एवं कफजन्य रोगों में हानिकारक होता है। उत्तम रूप से जमा हुआ दही वातनाशक होता है। किन्तु उत्तम रूप से नहीं जमा हुआ दही त्रिदोषों को कुपित करने वाला होता है। दही की मलाई शुक्रल होती है। दही का जल वातकफनाशक और स्रोतोशोधक होता है।

इसी दही के द्वारा स्नेह के तरतम भेद से तथा जल के मिलाने की मात्रा के भेद से घोल, मथित, तक्र, उदश्वित, छच्छिका एवं कट्वर कल्पनायें बनायी जाती है।

चरक संहिता में तक्र तीन प्रकार का बताया है:-

रूक्षमर्धोद्धृतस्नेहं यतश्चानुद्धृतं घृतम्।
तक्रं दोषाग्निबलवित्त्रिविधं तत् प्रयोजयेत्॥

(च. चि. 14/84)

अर्थात् 1. रूक्षः-पूरा स्नेह निकाली हुई तक्र (स्नेहरहित)।

2. अर्धोद्धृत स्नेहः-जिस तक्र में से आधास्नेह (मक्खन) निकाल लिया गया हो।

3. अनुद्धृत स्नेहः-जिस तक्र में से मक्खन नहीं निकाला गया हो अर्थात् पूर्णस्नेहयुक्त।

आचार्य भावमिश्र ने दधि में स्नेह के तरतम भेद तथा जल मिलाने की मात्रा के भेद से तक्र के पाँच प्रकार बताये हैं:-

घोलं तु मथितं तक्रमुदश्विच्छच्छिकाऽपि च।
ससरं निर्जलं घोलं मथितं त्वसरोदकम्॥
तक्रं पादजलं प्रोक्तमुदश्वित्त्वर्धवारिकम।
छच्छिका सारहीना स्यात्स्वच्छा प्रचुरवारिका॥

(भा. प्र. पू. तक्रवर्ग / 1-2)

अर्थात् तक्र घोल, मथित, तक्र, उदश्वित और छच्छिका पाँच प्रकार की होती है।

Scanned with CamScanner

1. घोल:- मलाई (सर) के साथ और बिना जल मिलाये दही को मथ लेने पर घोल कहलाता है। सुश्रुत संहिता में भी दही को स्नेहसहित बिना जल के मथ लेने को घोल कहा है:-

"यत्तु सस्नेहमजलं मथितं घोलमुच्यते।" (सु. सू. 45/85)

घोल के गुण:-

घोलं तु शर्करायुक्तं गुणैर्ज्ञेयं रसालवत्।
वातपित्तहरं ह्लादि..................।।

(भा. प्र. पू. तक्र वर्ग/3)

अर्थात् शर्करा मिलाकर घोल का प्रयोग रसाल (श्रीखण्ड) के समान गुणकारी, वातपित्त नाशक तथा आल्हाद कारक होता है। घोल शुक्रल, बल्य, रुचिकर, दीपन, बृंहण, स्निग्ध और शीतगुणयुक्त होता है। रक्तपित्त, तृषा, दाह एवं प्रतिश्याय नाशक है।

2. मथित:-जब दही से मलाई (सर) अलग करके बिना जल मिलाये मथ लिया जाये तो उसे मथित कहते हैं।

गुण:- मथितं कफपित्तनुत्............। (भा. प्र. पू. तक्रवर्ग/3)

अर्थात् मथित कफपित्तनाशक है।

3. तक्र:- दही में चतुर्थांश जल मिलाकर मथ लेने पर तक्र कहलाता है। इसमें से मक्खन अलग नहीं करते हैं।

सुश्रुत संहिता में दही में आधा जल मिलाकर मथकर मक्खन अलग कर लेते हैं, उसे तक्र कहा है। यह मधुराम्लकषाय रस युक्त तथा न अधिक गाढ़ा और न अधिक पतला होता है। यथा:-

मन्थनादिपृथग्भूतस्नेहमर्धोदकं च यत्।
नातिसान्द्रं द्रवं तक्रं स्वाद्वम्लं तुवरं रसे।।

(सु. सू. 45/85)

तक्र में प्रक्षेप:-

वातेऽम्लं सैन्धवोपेतं, स्वादुपित्ते सशर्करम्।
पिबेत्तक्रं कफे चापि व्योषक्षारसमन्वितम्।।

(सु. सू. 45/89)

अर्थात् तक्र का उचित प्रकार से सेवन करने के लिए वात रोग में अम्ल तक्र को सैंधव लवण, पित रोग में मधुर तक्र को शर्करा और कफज रोग में त्रिकटु चूर्ण एवं यवक्षार मिलाकर तक्र को पीना चाहिए।

Scanned with CamScanner

तक्र के गुण:-

शोफार्शो ग्रहणीदोष मूत्र ग्रहोदरारुची।
स्नेहव्यापदि पाण्डुत्वे तक्रं दद्याद् गरेषु च॥

(च. सू. 27/229)

वातश्लेष्मार्श सां तक्रात् परं नास्तीह भेषजम्।

(च. चि. 14/77)

वातश्लेष्मविकाराणां शतं चापि निवर्तते।
नास्ति तक्रात् परं किञ्चिदौषधं कफवातजे॥

(च. चि. 14/88)

स्रोत:सु तक्रशुद्धेषु रस: सम्यगुपैति य:।
तेन पुष्टिर्बलं वर्ण: प्रहर्षश्चोपजायते॥

(च. चि. 14/87)

शीतकालेऽग्निमांद्ये च कफोत्थव्यामयेषु च।
मार्गावरोधे दुष्टे च वायौ तक्रं प्रशस्यते॥

(सु. सू. 45/87)

नैव तक्रं क्षते दद्यान्नोष्णकाले न दुर्बले।
न मूर्च्छाभ्रमदाहेषु न रोगे रक्तपैत्तिके॥

(सु. सू. 45/86)

"तक्रं तु मधुरमम्लं कषायानुरसमुष्णवीर्यं लघुरूक्षमग्निदीपनं गरशोफा-तिसारग्रहणी पाण्डुरोगार्श: प्लीहगुल्मारोचकविषमज्वर तृष्णाच्छर्दिप्रसेकशूलमेद: श्लेष्मानिलहरं मधुरविपाकं हृद्यं मूत्रकृच्छ्रस्नेहव्यापत् प्रशमनमवृष्यं च"।

(सु. सू. 45/84)

अर्थात् तक्र मधुराम्ल रस प्रधान एवं कषाय अनुरस, उष्ण वीर्य, लघु, रूक्ष, मधुर विपाकी, अग्निदीपक, हृद्य, अवृष्य और शोफ, अर्श, ग्रहणी, मूत्रकृच्छ्र, उदररोग, अरुचि, पाण्डु, स्नेहव्यापद्, गरविषनाशक, वातश्लैष्मिक अर्श, कफ वातज रोग, स्रोतोशोधक, बल वर्ण-हर्ष की वृद्धिकर, पुष्टिदायक, शीतकाल, अग्निमान्द्य, स्रोतावरोध, वायुविकार, अतिसार, प्लीहारोग, गुल्म, विषमज्वर, तृष्णा, वमन, लालास्राव और उदरशूल को नाश करने में श्रेष्ठ है। उर:क्षत, ग्रीष्मऋतु, दौर्बल्य, मूर्च्छा, भ्रम, दाह और रक्तपित्त के रोगी को तक्र का सेवन नहीं करना चाहिए।

Shot on realme 3

Scanned with CamScanner

चरक संहिता के अनुसार वातकफज रोगों में तक्र सर्वश्रेष्ठ औषध है।

कट्वरः- दध्नः ससारकस्यात्र तक्रं कट्वरमिष्यते।

(वै. श. सि. 3/167)

अर्थात् किसी पात्र में दही एवं चतुर्थांश जल को मिलाकर मक्खन सहित मथने पर कट्वर कहलाता है। भावप्रकाश के अनुसार कट्वर तक्र का पर्याय है।

उदश्वित्:- ....प्रोक्तमुदश्वित्त्वर्धवारिकम्।
उदश्वित् कफकृद् बल्यमामघ्नं परमं मतम्।।

(भा. प्र. पू. तक्र वर्ग/४)

अर्थात् किसी पात्र में दही से आधा भाग जल मिलाकर मथानी से मथा जाता है। मक्खन (स्नेह) सहित रहने पर उदश्वित् कहा जाता है।

गुणः–यह कफकारक, बल्य और आमनाश में श्रेष्ठ होता है।

छच्छिका:- छच्छिका शीतलालघ्वी पित्तश्रमतृषाहारी।
वातनुत् कफकृत् सा तु दीपनी लवणान्विता।।

(भा. प्र. पू. तक्र वर्ग/४)

अर्थात् दही में प्रचुर मात्रा में स्वच्छ जल डालकर सारहीन (मक्खन रहित) कर मथने को छच्छिका कहते हैं। यह शीत, लघु, पित्त, श्रम, तृषानाशक, वातहर, कफवर्धक और सैंधव लवण के साथ पीने पर दीपन, पाचन का कार्य करती है।

इस प्रकार दही में चौथाई जल मिलाकर मथने पर तक्र, आधा जल मिलाकर मथने पर उदश्वित्, मक्खन सहित बिना जल के मथने पर घोल, मक्खन हटाकर बिना जल के मथने पर मथित और प्रचुर मात्रा में जल के साथ मथने पर छच्छिका कहा जाता है।

✻ ✻ ✻

Scanned with CamScanner

अर्थात् आचार्य सुश्रुत ने प्रलेप, प्रदेह एवं आलेप भेद से लेप को तीन प्रकार का माना है। प्रलेप शीत, तनु, विशोषी (आर्द्रता को सुखाने वाला) या अविशोषी होता है, जो रक्त एवं पित्तज रोगों में उपयोगी होता है। जबकि प्रदेह शीत या उष्ण, तनु या मोटा और अविशोषी होता है, जो वातकफनाशक होता है। इससे संधान, शोधन, रोपण, शोथ एवं वेदना का नाश होता है। प्रलेप एवं प्रदेह दोनों का सम्मिलित लक्षणों वाला आलेप होता है, अर्थात् आलेप न अधिक गाढ़ा, न अधिक पतला, न अधिक शीतल और न अधिक उष्ण होता है।

लेप के गुण:-

यथा प्रज्वलिते वेश्मन्यम्भसा परिषेचनम्।
क्षिप्रं प्रशमयत्यग्निमेवमालेपनं रुजः॥
प्रह्लादने शोधने च शोफस्य हरणे तथा।
उत्सादने रोपणे च लेपः स्यात्तु तदर्थकृत्॥

(सु. चि. 1/15-16)

अविदग्धेषु शोफेषु हितमालेपनं भवेत्।
यथास्वं दोषशमनं दाहकण्डूरुजापहम्॥
त्वक्प्रसादनमेवाग्र्यम् मांसरक्तप्रसादनम्।
दाहप्रशमनं श्रेष्ठं रुजाकण्डूविनाशनम्॥
मर्मदेशेषु ये रोगा गुह्येष्वपि तथा नृणाम्।
संशोधनाय तेषां हि कुर्यादालेपनं भिषक्॥

(सु. सू. 18/7-9)

अर्थात् जिस प्रकार जलते हुए घर पर जल डालने से शीघ्र ही अग्नि शान्त हो जाती है उसी प्रकार व्रण पर लेप करने से शीघ्र ही पीड़ा शान्त हो जाती है। लेप करने से प्रह्लादन, शोधन, शोथहर, उत्सादन और व्रण का रोपण हो जाता है। अविदग्ध शोथ में लेप हितकर, दोषशामक, दाहकण्डूरूजाहर, त्वक्मांसरक्त प्रसादन, दाहशमन, तोद और कण्डूनाशक होता है। मर्मस्थान एवं गुप्तस्थान के रोगों में संशोधन के लिए लेप किया जाना चाहिए।

लेप में स्नेह प्रमाण:-

षड्भागं पैत्तिके स्नेहं चतुर्भागं तु वातिके।
अष्टभागं तु कफजे स्नेहमात्रां प्रदापयेत्॥

(सु. सू. 18/10)

Scanned with CamScanner

अर्थात् लेप में स्नेह का निर्देश होने पर पित्तज शोथ में कल्क का षड्भाग ($\frac{1}{6}$ भाग) वातज शोथ में कल्क का चतुर्थ भाग ($\frac{1}{4}$ भाग) और कफज शोथ में कल्क का अष्टम भाग ($\frac{1}{8}$ भाग) मिलाया जाना चाहिए।

...के नियमः-

"न चालेपं रात्रौ प्रयुञ्जीत, मा भूच्छैत्यपिहितोष्मणः तदनिर्गमाद् विकार प्रवृत्तिरिति।।

(सु. सू. 18/12)

"न च शुष्यमाणमुपेक्षेत् अन्यत्र पीडयितत्व्यात् शुष्को ह्यपार्थकोऽरुक्करश्च"।। (सु. सू. 18/5)

न रात्रौ लेपनं कुर्याच्छुष्यमाणं न धारयेत्।
शुष्यमाणमुपेक्षेत् प्रदेहं पीडनं प्रति।।

(शा. सं. उ. ख. 11/74)

अर्थात् रात्रि में लेप लगाने से उसकी शीतलता से उस स्थान की दबी हुई उष्मा नहीं निकलने से विकार बढ़ जाता है, अतः रात्रि में लेप का प्रयोग नहीं करना चाहिए। जिस व्रण शोथ में पीडन करना हो वहाँ लेप को सूखने देना चाहिए। इसके अतिरिक्त अन्य सभी स्थानों पर प्रयुक्त किए गए लेप को सूखने नहीं दिया जाना चाहिए। क्योंकि लेप के सूख जाने पर वह निरर्थक और पीड़ादायक होता है।

न च पर्युषितं लेपं कदाचिदवचारयेत्।
उपर्युपरि लेपं तु न कदाचित् प्रदापयेत्।।
उष्माणं वेदनां दाहं घनत्वाज्जनयेत् स हि।।

(सु. सू. 18/14-14½)

न च तेनैव लेपेन प्रदेहं दापयेत् पुनः।
शुष्कभावात् स निर्वीर्योयुक्तोऽपि स्यादपार्थकः।।

(सु. सू. 18/15)

अर्थात् पर्युषित (बासी) लेप अर्थात् पूर्व दिन में पिसा हुआ लेप को दूसरे दिन नहीं लगाया जाना चाहिए। पहले किए गए लेप को हटाये बिना उस पर दूसरा लेप नहीं लगाया जाना चाहिए। क्योंकि घनता के कारण उष्मा, वेदना और दाह हो जाता है। एक बार किए गए लेप के अवशिष्ट लेप को बाद में नहीं लगायें, क्योंकि सूख जाने से वह निर्वीर्य और निरर्थक हो जाता है।

Scanned with CamScanner

प्रदेहसाध्ये व्याधौ तु हितमालेपनं दिवा।
पित्तरक्ताभिघातोत्थे सविषे च विशेषतः॥

(सु. सू. 18/13)

रात्रावपि प्रलेपादिविधिः कार्यो विचक्षणैः।
अपक्वशोथे गंभीरे रक्तश्लेष्मसमुद्भवे॥

(शा. सं. 3. ख. 11/76)

अर्थात् प्रदेह साध्य रोगों में विशेषतः पित्त, रक्त, अभिघात और विषज रोगों में दिन में किया लेप हितकारी होता है। अपक्व शोथ, गंभीर शोथ, रक्तज और श्लेष्मज शोथ में रात्रि में किया गया लेप हितकारी होता है। क्योंकि इनमें अधिक ऊष्मा की आवश्यकता होती है।

शोथघ्न लेप (शोथनाशक लेप):-

पुनर्नवां दारू शुण्ठीं सिद्धार्थं शिग्रुमेव च।
पिष्ट्वा चैवारनालेन प्रलेपः सर्वशोथजित्॥

(शा. सं. 3. ख. 11/3)

घटक द्रव्य:-

1. पुनर्नवा	- 12 ग्राम	2. देवदारू	- 12 ग्राम
3. सोंठ	- 12 ग्राम	4. सर्षप बीज	- 12 ग्राम
5. शिग्रुमूलत्वक्	- 12 ग्राम		

द्रव द्रव्य:-आरनाल (काञ्जी)-यथावश्यक

निर्माण विधि:-सर्वप्रथम उपरोक्त द्रव्यों का सूक्ष्म चूर्ण कर काञ्जी के साथ पीसकर लेप का निर्माण किया जाना चाहिए।

मात्रा:-यथावश्यक लेपनार्थ

मुख्य उपयोग:-सर्वशोथनाशक

दशाङ्गलेप:-

शिरीषं मधुयष्टी च तगरं रक्तचन्दनम्॥
एला मांसी निशायुग्मं कुष्ठं बालकमेव च।
इति सञ्चूर्ण्य लेपोऽयं पञ्चमांशघृतप्लुतः॥
जलेन क्रियते सुज्ञैर्दशाङ्ग इति संज्ञितः।
विसर्पान् विषविस्फोटाञ्छोथान् दुष्टव्रणाञ्जयेत्॥

(शां. सं. 3.

...क द्रव्य:-

1. शिरीष - 12 ग्राम
2. मुलेठी
3. तगर - 12 ग्राम
4. रक्तचन्दन - 12 ग्राम
5. सूक्ष्मैला - 12 ग्राम
6. जटामांसी - 12 ग्राम
7. हरिद्रा - 12 ग्राम
8. दारूहरिद्रा - 12 ग्राम
9. कुष्ठ - 12 ग्राम
10. सुगन्धबाला - 12 ग्राम

द्रव द्रव्य:- गोमूत्र-24 ग्राम, जल:-यथावश्यक

निर्माण विधि:-सर्वप्रथम उपरोक्त वानस्पतिक द्रव्यों का सूक्ष्म चूर्ण करके जल के साथ सिलबट्टे पर पीसकर लेप का निर्माण करें। फिर इसमें उक्त मात्रा में गोमूत्र मिलाकर प्रयोग में लेना चाहिए।

मात्रा:-यथावश्यक लेपनार्थ

मुख्य उपयोग:-विसर्प, विषरोग, विस्फोट, शोथनाशक, दुष्टव्रण।

मुखकान्तिकर लेप (वर्ण्यकर रक्तचन्दनादि लेप)

रक्तचन्दनमञ्जिष्ठालोध्रकुष्ठप्रियङ्गवः।
वटाङ्कुरा मसूराश्च व्यङ्गघ्ना मुखकान्तिदा ।।

(शा. सं. उ. ख. 11/9)

घटक द्रव्य:-

1. रक्त चन्दन - 12 ग्राम
2. मञ्जिष्ठा - 12 ग्राम
3. लोध्रत्वक् - 12 ग्राम
4. कुष्ठ - 12 ग्राम
5. प्रियङ्गुपुष्प - 12 ग्राम
6. वटाङ्कुर - 12 ग्राम
7. मसूर - 12 ग्राम

द्रव द्रव्य:-जल यथावश्यक

निर्माण विधि:-सर्वप्रथम उपरोक्त वानस्पतिक द्रव्यों का सूक्ष्म चूर्ण कर जल के साथ सिलबट्टे पर पीसकर लेप का निर्माण करना चाहिए।

मात्रा:-यथावश्यक लेपनार्थ

मुख्य उपयोग:-मुखकान्तिवर्धक एवं मुखदूषिका, व्यङ्ग, नीलिका, पिडिका, रक्तक।

उद्वर्तन:-

जौ या चने के आटे में दही एवं तैल मिश्रित कर शरीर पर मलने को उद्वर्तन कहते हैं। और केवल जौ या चने के आटे से शरीर पर मलना उद्घर्षण कहलाता है

Scanned with CamScanner

उद्वर्तन के गुण :-

सिरामुखविविक्तत्वं त्वक्स्थस्याग्नेश्च तेजनम् ।
उद्घर्षणोत्सादनाभ्यां जायेयातामसंशयम् ।।
उत्सादनाद्भवेत् स्त्रीणां विशेषात् कान्तिमद्वपुः ।
प्रहर्षसौभाग्यमृजालाघवादिगुणान्वितम् ।।
उद्घर्षणं तु विज्ञेयं कण्डूकोठानिलापहम् ।।

(सु. चि. 24/52-54)

उद्वर्तनं कफहरं मेदसः प्रविलायनम् ।
स्थिरीकरणमङ्गानां त्वक्प्रसादकरं परम् ।।

(अ. सं. सू. 3/67)

अर्थात् उद्घर्षण और उत्सादन करने पर त्वचा में स्थित सिराओं का मुख खुलकर भ्राजक पित्त दीप्त हो जाता है। उत्सादन से स्त्रियों का शरीर कान्तियुक्त, प्रहर्ष, सौभाग्य, शुद्धि एवं लघुता हो जाती है। उद्घर्षण से कण्डू, कोठ एवं वायु विकार नष्ट होता है। उद्वर्तन से कफनाश, मेदहर, शरीर के अङ्ग दृढ़ और त्वचा स्वच्छ कान्तिमान् हो जाती है।

अवचूर्णन योग (Dusting powder) :-

अवचूर्णन योग (Dusting powder) का त्वचा पर बाह्य प्रयोग antiseptic, antipruritic, astringent, antiperspirant, absorbent, protective and lubricant उद्देश्य से किया जाता है। ये चूर्ण अत्यन्त सूक्ष्म और एक समान मिश्रित (Uniform mix) होने चाहिए, जिससे इनका प्रभाव अधिक तथा स्थानिक क्षोभ न्यून हो। इसके लिए ये चूर्ण 120 न. की छलनी से छना हुआ होना चाहिए। इसके अलावा अवचूर्णन प्रयोग करने पर एक समान फैलकर त्वचा पर लगा रहना चाहिए। इनको प्रयोग करने पर घर्षण, नमी और रासायनिक प्रतिक्रिया से त्वचा को सुरक्षा देनी चाहिए।

औषधीय अवचूर्णन योग (Medicated dusting powder) talc (hydrous magnesium silicate) के सूक्ष्मचूर्ण में सुगन्धित औषध द्रव्य जैसे चन्दन, उशीर, वचा आदि का सूक्ष्म चूर्ण मिलाकर बनाये जाते हैं। इनको airtight plastic या galvanized tin containers में संग्रह करना चाहिए।

सिक्थ तैल निर्माण:–

भागैकं विमलं सिक्थं तैलन्तु रसभागिकम्।
आदाय वह्निलिमायां स्थालिकायां निधापयेत्॥
पचेतावन्मन्दवह्नौ यावत् सिक्थं द्रवीभवेत्।
स्थालीकामथ यत्नेन धरण्यामवतारयेत्॥
तावत्प्रचालयेद्दर्व्या यावदेति प्रगाढताम्।
सिक्थतैलसमायोगात् सिक्थतैलमिदं स्मृतम्॥

(र. त. 4/59-61)

भागैकं विमलं सिक्थं तैलन्तु शरभागिकम्।
पूर्वोद्दिष्ट विधानेन पचेद्रसविशारदः॥
जायते नवनीताभं यामं दर्व्या प्रचालितम्।
रसज्ञैः कीर्तितमिदं सिक्थतैलं द्वितीयकम्॥

(र. त. 4/62-63)

घटक द्रव्य:–

1. सिक्थ (मोम) – 1 भाग, 2 तिलतैल – छः भाग/पाँच भाग

निर्माण विधि:–सर्वप्रथम एक भाग मोम एवं तिल तैल छ:भाग/पाँच भाग को स्टील पात्र में रखकर मन्दाग्नि द्वारा पकाया जाता है। जब संपूर्ण मोम पिघलकर तैल में घुल जाये, तब पात्र को नीचे उतारकर शीतल होने तक कड़छुल से चलाते रहते हैं। जब थोड़ा गाढ़ा हो जाय तो किसी उपयुक्त पात्र में भरकर ढक्कन बंद कर दिया जाता है। मोम एवं तैल से निर्मित होने से इसको सिक्थ तैल कहते हैं।

उपयोग:–

आद्यं तु शीतसमये ग्रीष्मर्तौ तु द्वितीयकम्।
सिक्थतैलं मलहरप्रयोगेषु नियोजयेत्॥

(र. त. 4/64)

अर्थात् छः भाग तैल से निर्मित सिक्थ तैल को शीत ऋतु एवं पाँच भाग तैल से निर्मित सिक्थ तैल को ग्रीष्म ऋतु में निर्माण किए जाने वाले मलहमों में प्रयोग किया जाना चाहिए। आधुनिक चिकित्सा में मलहमों में प्रायः वेसलीन, पैराफीन आदि का प्रयोग किया जाता है।

मलहर :–

यूनानी चिकित्सा में मरहम या मलहम के नाम से प्रचलित है। योगरत्नाकर में इसको मलहर नाम से कहा गया है। जिसको अंग्रेजी भाषा में Ointment कहा जाता है।

Scanned with CamScanner

व्रण, विद्रधि, अर्श, [illegible] आदि के मल दूर (हरण) करने के कारण इसे मलहर कहते हैं। मलहर कल्पना में घृत, तैल, मोम, गन्धविरोजा, राल, तुत्थ, फिटकरी आदि द्रव्यों का प्रमुख रूप में प्रयोग किया जाता है। आधुनिक चिकित्सा पद्धति में वेसलीन, पैराफीन आदि द्वारा मरहम बनाया जाता है। उपरोक्त चिकनाई युक्त द्रव्यों में पारद, गन्धक, जिंक आक्साइड, सिन्दूर, कपूर, तुत्थ आदि का मिश्रण करके विविध मलहर बनाये जाते हैं। मलहर द्रव्यों का केवल बाह्य प्रयोग ही किया जाता है। आयुर्वेद में मलहर प्रायः सिक्थ तैल से बनाये जाते हैं।

सर्जरस मलहरः–(र. त. सा. एवं सि. प्र. सं.)

घटक द्रव्यः–

1. तिल तैल – 16 भाग
2. सर्जरस (राल) – 4 भाग
3. तुत्थ – 1 भाग
4. फिटकरी – 1 भाग

निर्माण विधिः–सर्वप्रथम सर्जरस, तुत्थ एवं फिटकरी का सूक्ष्म चूर्ण करते हैं। फिर किसी स्टील के पात्र में तिल तैल डालकर अग्नि पर गर्म किया जाता है। तैल के निष्फेन होने पर उपरोक्त द्रव्यों का चूर्ण डालकर खूब चलावें। जब सभी द्रव्य घुलकर एकाकार हो जाय तब पात्र को नीचे उतारकर कपड़े से दूसरे पात्र में छान लेवें। फिर शीतल होने पर थोड़ा-थोड़ा पानी डालकर हाथ से अच्छी प्रकार से इसी प्रकार मसलकर पानी गिराते जाये। 15-20 बार करने पर सर्जरस फूलना बन्द हो जाता है। इस प्रकार पीताभ श्वेत वर्ण का सर्जरस मलहर का निर्माण हो जाता है। जब पानी मिलाकर मथकर पानी बाहर फेंकते हैं तो हर बार तुत्थ बाहर निकलने के कारण पानी हरे रंग का दिखाई देता है। जब हरा वर्ण आना बन्द हो जाय तो मलहर सिद्ध माना जाता है। इस मलहर को काँच के जार में रखकर ऊपर से स्वच्छ पानी भरकर रखा जाता है, अन्यथा मलहर काला होकर सड़ जाता है।

मुख्य उपयोगः–सामान्य व्रण, अग्निदग्ध व्रण, दाह, दुर्गन्धित व्रण, गुदपाक, अर्श, दुष्टव्रण, नाडीव्रणनाशक। इसका बाह्य प्रयोग ही किया जाता है।

गन्धकाद्य मलहरः–

सिक्थतैलं सुविमलं रसतोलकसम्मितम्।
गन्धकं गिरिसिन्दूरं तोलकार्द्धमितं पृथक्।।
टङ्कणं घनसारं च पृथक् माषद्वयोन्मितम्।
दत्त्वा सम्मेल्य यत्नेन काचकुप्यां निधापयेत्।।

Scanned with CamScanner

भतो मलहरोऽयं तु गन्धकाद्यसमाह्वयः।
विनाशयत्याशु भृशं पामामत्यर्थदारुणाम्॥

(र. त. 8/63-65)

घटक द्रव्य:-

1. सिक्थ तैल - 72 ग्राम
2. गन्धक - 6 ग्राम
3. सिन्दूर - 6 ग्राम
4. टङ्कण - 2 ग्राम
5. कर्पूर - 2 ग्राम

निर्माण विधि:-सर्वप्रथम गन्धक, सिन्दूर, टङ्कण एवं कर्पूर के सूक्ष्म चूर्ण को खरल में डालकर पीस लिया जाता है। फिर सिक्थ तैल मिलाकर भलीभांति मर्दन किया जाता है। जब चिकना मलहर हो जाय तो काँच के पात्र में रखकर सुरक्षित स्थान पर रखें। इस प्रकार गन्धकाद्यमलहर का निर्माण हो जाता है।

मुख्य उपयोग:-त्वक् विकार यथा- पामा, दद्रु, कण्डू, सभी व्रण।

उपनाह (Poultice):-

स चेदेवमुपक्रान्तः शोफो न प्रशमं व्रजेत्।
तस्योपनाहैः पक्वस्य पाटनं हितमुच्यते॥

(च. चि. 25/48)

शोफयोरूपनाहं तु कुर्यादामविदग्धयोः।
अविदग्धं शमं याति विदग्धं पाकमेति च॥

(सु. चि. 1/23)

अर्थात् आचार्य चरक ने व्रणशोथ के उपचारार्थ उपनाह द्वारा व्रणशोथ को पकाकर पाटन कर्म (चीरा लगाने) का उल्लेख किया है। आचार्य सुश्रुत ने शोथ की आम एवं अपक्व अवस्था में उपनाह से शोथ का शमन तथा विदग्ध या पक्व अवस्था में उपनाह से शोथ को पकाने का निर्देश दिया है।

इस प्रकार आम एवं पक्व द्विविध प्रकार के व्रणशोथ में अतसी आदि उष्णवीर्य द्रव्यों को द्रव पदार्थ के साथ पीसकर उसको वस्त्र पर रखकर पुन वस्त्र से आच्छादित कर शोथ पर बाँधने को उपनाह कहते हैं।

अतस्यादि उपनाह:-

अतसीयवगोधूम चूर्णमालोडितं द्रवैः।
सम्पक्वं सौषधस्नेहं वस्त्रेणान्तरितं तथा॥
बध्यते व्रणशोथादावुपनाहः स उच्यते॥

(द्र. गु. वि. उ. 2/106-107)

Scanned with CamScanner

घटक द्रव्य:-

1. अतसी बीज	- 2 भाग	2. जौ या गेहूँ	- 2 भाग
3. हरिद्रा चूर्ण	- 1 भाग	4. दशाङ्ग लेप चूर्ण	- 1 भाग
5. गोमूत्रादि द्रव	- 8 भाग	6. तिल तैल	- 1 भाग
7. गोघृत	- 1 भाग		

निर्माण विधि:-सर्वप्रथम अतसी, जौ या गेहूँ, हरिद्रा एवं दशाङ्ग लेप का सूक्ष्म चूर्ण करके स्टील के पात्र में डालकर और उसमें सभी द्रव द्रव्यों को अच्छी प्रकार से मिलाकर चम्मच से हिलाते हुए गर्म किया जाता है। जब भलीभाँति पककर लाप्सी (Paste) जैसी हो जाय तो स्वच्छ गाढ़े वस्त्र पर फैलाकर शोथ पर बाँध दिया जाता है। जिससे व्रण शोथ मृदु होकर फूटकर बैठ जाता है। इस प्रकार से उपनाह स्वेद में वर्णित द्रव्यों द्वारा भी उपनाह बनाया जा सकता है।

मुख्य उपयोग:-आमशोथ, पक्वशोथ, व्रणनाशक।

शतधौत और सहस्रधौत घृत:-

''शतधौत घृतम्'' क्ली यत् पुनः पुनः सन्ताप्य
शीताम्भसा निर्वाप्यते तथाविध सर्पिषि।
'शतं वारान् शीततोयेन धौतं फेनितं घृतम्' इति ईशानदेव।
तद्गुणाः-वातपित्तदाहक्षतनाशित्वम्।। (वै. श. सि.)

अर्थात् गोघृत को सौ बार जल से मथकर धोने से शतधौत घृत और एक हजार बार धोने से सहस्रधौत घृत कहा जाता हैं।

निर्माण विधि:-किसी स्टील के पात्र में 500 ग्राम गोघृत डालकर उसमें दुगुनी मात्रा में स्वच्छ मधुर जल मिलाकर दोनों हाथों से अच्छी प्रकार से मथकर पानी को अलग पात्र में निथार लिया जाता है। इस प्रकार 8-10 बार मथने तक घी फूलता जाता है। इसके पश्चात् घृत का फूलना बन्द हो जाता है। इस प्रकार पात्र में स्थित घृत के ऊपर शीतल स्वच्छ मधुर जल डालकर धोने और निथारने की प्रक्रिया को सौ बार करने से शतधौत घृत का निर्माण हो जाता है। इसी तरह स्वच्छ मधुर शीतल जल डालकर घृत को धोने और निथारने की प्रक्रिया को एक हजार बार करने से सहस्रधौत घृत का निर्माण हो जाता है।

मुख्य उपयोग:-शतधौत घृत एवं सहस्रधौत घृत क्रमशः अत्यन्त शीतल एवं सौम्य हो जाने से ओष, चोष, दाह, दग्धवेदना, मसूरिका, व्रण, विस्फोट, कुष्ठादि अनेक विकारों को बाह्य लेप से नष्ट करता है। इसके द्वारा मलहर भी बनाया जाता है।

Scanned with CamScanner

ऑईन्टमेन्ट (Ointments) :-

ऑईन्टमेन्ट त्वचा या श्लेष्मकला के लिए प्रयुक्त बाह्य प्रयोगार्थ मृदु एवं अर्द्धघन औषध कल्पना है। इनमें आधार द्रव्य (Base) के रूप में घुलनशील, अघुलनशील या इमल्सीफाईड औषध प्रयुक्त होती है। ऑईन्टमेन्ट का प्रयोग त्वचा को स्नेहन करने एवं सुरक्षात्मक कार्यों हेतु किया जाता है। इनको औषधियों के बाह्य प्रयोगार्थ भी आधार रूप में प्रयुक्त किया जाता है।

त्वचा द्वारा ऑईन्टमेन्ट या अन्य अर्द्धघन कल्पना में प्रयुक्त औषधियों का अवशोषण अनेक कारणों यथा:- औषध द्रव्य के गुणों पर, भेषजीय कल्पना में प्रयुक्त आधार (Base) के गुण धर्मों पर, आतुर की त्वचा की स्थिति पर, उपयोग स्थान पर, प्रयोग की अवधि एवं प्रयोग के समय प्रयुक्त घर्षण की श्रेणी पर निर्भर करता है।

क्रीम (Creams) :-

क्रीम ऑईन्टमेन्ट के सदृश ही होती है, किन्तु इनमें जलीय विलेय आधार (Water soluble base) होने के कारण ये त्वचा पर से सुगमता से हटायी जा सकती है। ये ऑईन्टमेन्ट की अपेक्षा अधिक मृदु एवं हल्की होती है। त्वचा पर प्रयुक्त होने के बाद भी इसकी उपस्थिति दृष्टिगोचर नहीं होती।

पेस्ट (Paste) :-

पेस्ट त्वचा पर बाह्य प्रयोग की जाने वाली अर्द्धघन औषधि कल्पना है। ये ऑईन्टमेन्ट से भिन्न इसलिए होते हैं क्योंकि इनमें सूक्ष्म चूर्णित ठोस घटक (Solids) जैसे-स्टार्च, जिंक ऑक्साईड, कैल्शियम कार्बोनेट आदि अधिक मात्रा में होते हैं। इनकी उपस्थिति के कारण ये ऑईन्टमेन्ट से अधिक गाढ़े किन्तु कम चिकने होते हैं।

अधिक कठोर होने के कारण पेस्ट आसानी से साधारण तापमान पर पिघलते नहीं है तथा ये जिस स्थान पर प्रयोग किये जाते हैं, वहाँ ये झाग और सुरक्षात्मक लेप का कार्य करते हैं। पेस्ट बालों पर प्रयोग के लिए उपयुक्त नहीं है, क्योंकि इनको वहाँ से हटाना अत्यधिक कठिन है।

जैली (Jellies) :-

जैली त्वचा पर बाह्य प्रयोग की जाने वाली, पारदर्शक या अर्द्धपारदर्शक कल्पना है, जो चिकनी नहीं होती है। ये म्यूसिलेज (लसदार) के समान होती है, क्योंकि इनके निर्माण में गोंद (Gum) का प्रयोग होता है किन्तु ये अपनी जैली समान अवस्था के कारण लसदार द्रव्यों से भिन्न होती है। ये मुख्यतया श्लेष्मल कला (Moucous membrane) के स्नेहन, विसंक्रमण या शुक्राणुनाश हेतु प्रयुक्त होती है। वेजाईनल (Vaginal) जैली एवं गर्भ निरोधक जैली साधारणतया प्रयोग की जा

Shot on [illegible]

Scanned with CamScanner

है। ये सर्जिकल ग्लव्ज, कैथेटर और रेक्टल थर्मामीटर के स्नेहन हेतु भी प्रयुक्त होती है। जैली में कार्बोहाइड्रेट एवं अधिक मात्रा में जलीय अंश होने के कारण इनमें जीवाणुवर्धन की अधिक आशंका रहती है। अतः इनको अच्छी प्रकार से सुरक्षित रखने की अधिक आवश्यकता होती है। जैली निर्माण हेतु साधारणतया प्रयुक्त होने वाले द्रव्य :-ट्रेगाकेन्थ (Tragacanth), सोडियम एल्गीनेट (Sodium alginate), स्टार्च, पेक्टिन, जिलेटिन, मिथाईल सैल्यूलोज (Methyl cellulose), कार्बोमर (Carbomer), पॉलिविनाईल एल्कोहोल (Polyvinyl alcohol) आदि है।

जैली निर्माण हेतु पूरा गोंद (Whole gum) को चूर्णित गोंद (Powdered gum) से वरीयता दी जाती है, क्योंकि पूरा गोंद (Whole gum) से एक समान पारदर्शक या क्लीयर जैली प्राप्त होती है। एकेशिया (Acacia), ट्रैगेकेन्थ (Tragacanth), जिलेटिन, कार्बोक्सिमिथाईल सेल्यूलोज या इसी तरह के द्रव्य जैली निर्माण हेतु प्रयुक्त होते हैं। जैली में बैक्टीरियल और मोल्ड वृद्धि (Mould grouth) की संभावना अधिक होने के कारण उनमें एक उपयुक्त संरक्षक (Preservative) मिलाना चाहिए। एक उपयुक्त सुगन्धित द्रव्य भी निर्माण में वांछनीय गन्ध देने हेतु सम्मिलित किया जा सकता है।

आदर्श ऑइन्टमेन्ट के विशिष्ट लक्षण:-

1. रासायनिक एवं भौतिक स्तर पर स्थायी रहना चाहिए।
2. चिकना एवं घर्षणरहित होना चाहिए।
3. शारीरिक तापक्रम पर द्रवित या मृदु होना चाहिए एवं आसानी से प्रयुक्त होना चाहिए।
4. आधार द्रव्य (Base) क्षोभक स्वभाव का न हो तथा उसका (बेस का) स्वयं का कोई औषधिय कर्म नहीं होना चाहिए।
5. इसमें प्रयुक्त औषध (सूक्ष्म चूर्ण) एक समान रूप से आधार द्रव्य (Base) में वितरित होनी चाहिए।

ऑइन्टमेन्ट के आधार द्रव्य (Ointment Bases):-

ऑइन्टमेन्ट का आधार द्रव्य (Base) उसका वह अंश होता है जो औषध के संवाहक का कार्य करता है। एक आदर्श ऑइन्टमेन्ट आधार द्रव्य को निष्क्रिय, स्थिर, चिकना, त्वचा के अविरूद्ध एवं अक्षोभक होना चाहिए तथा उसे उसमें समाविष्ट औषधियों को शीघ्र छोड़ना चाहिए।

एक ऑइन्टमेन्ट आधार द्रव्य में उपर्युक्त समस्त गुण प्राप्त नहीं होते हैं, अतः ऑइन्टमेन्ट निर्माणार्थ एक से अधिक ऑइन्टमेन्ट आधार द्रव्यों की आवश्यकता होती है।

Scanned with CamScanner

...अध्याय

ऑइन्टमेन्ट बेसों का वर्गीकरण:-

ऑइन्टमेन्ट बेसों को निम्न प्रकार से वर्गीकृत किया जा सकता है:-

1. ओलियेजिनस बेस (Oleaginous bases)
2. अवशोषण बेस (Absorption bases)
3. इमल्सन बेस (Emulsion bases)
4. जलीय घुलनशील बेस (Water soluble bases)

1. Oleaginous bases (आलियेजिनस बेस):-

(i) मृदु पैराफिन (Soften paraffin) Petrolatum

(ii) कठोर पैराफिन (Hard Paraffin)

(iii) लिक्विड पैराफिन (Liquid Paraffin)

2. अवशोषण बेस (Absorption Bases):-

(i) वुल फैट (Wool Fat)

(ii) हाइड्रस वुल फैट (Hydrous wool fat)

(iii) वुल एल्कोहॉल (Wool alcohol)

(iv) बी वेक्स (Bees wax)

(v) कोलेस्ट्रॉल (Cholestrol)

3. इमल्सन बेस (Emulsion base):-

ये अर्द्धघनीय क्रीम समान अवस्था के होते हैं। ये दो प्रकार के होते हैं। जल में तैलीय (Oil in water) या तैल में जलीय (Water in oil) इमल्सन।

ऑइन्टमेन्ट निर्माण:- ऑइन्टमेंट निर्माण की दो विधियाँ हैं:-

1. ट्राईट्यूरेशन निर्माण प्रक्रिया (Trituration)
2. फ्यूजन निर्माण प्रक्रिया (Fusion)

1. ट्राईट्यूरेशन निर्माण प्रक्रिया:-यह विधि ऑईन्टमेन्ट के निर्माण हेतु ... पर प्रयुक्त होती है। इसमें प्रयुक्त औषध अधिकांशत: अघुलनशील होने के कारण औषधियों को सूक्ष्म रूप से चूर्णित करना आवश्यक होता है, अन्यथा बेस में औषध वितरण एक समान नहीं होता है।

अच्छे परिणामार्थ ऑईन्टमेन्ट स्लैब पर औषध को बेस (Base) की थोड़ी मात्रा के साथ पीसा जाता है। इस हेतु एक स्टेनलस स्टील का लम्बा चौड़ा फलक ... मंचुला (Spatula) प्रयुक्त किया जाता है। फिर इसमें बेस को पुन: उत्तरोत्तर अधिक मात्रा में मिलाकर तब तक पीसा जाता है जब तक औषध बेस में समान रूप से मिल न जाए।

2. ऑइंटमेन्ट निर्माण प्रक्रिया:- जब किसी ऑईन्टमेन्ट बेस में बेस घटक के रूप में अधिक मात्रा में ठोस (Solids) घटक प्रयुक्त होते हैं, यथा:- श्वेत बी वेक्स (White bees wax), सिटाईल एल्कोहॉल (Cetyl alcohol), स्टिराईल एल्कोहॉल (Stearyl alcohol), स्टेरिक एसिड (Stearic acid), कठोर पैराफिन (Hard paraffin) आदि। तब इन्हें पिघलाना आवश्यक हो जाता है। इन द्रव्यों को उनके गलनांक (Melting point) के घटते हुए क्रम में पिघलाना चाहिए, अर्थात जिन द्रव्यों का अधिकतम गलनांक है, उन्हें सबसे पहले पिघलाना चाहिए, फिर अन्य जिनका इससे कम हो। इससे कम गलनांक वाले द्रव्यों को अधिक गर्म करने से बच सकते है। इसके उपरान्त औषधियों को धीरे-धीरे द्रवित द्रव्यों में डालकर यह मिश्रण ठंडा एवं एकरूप होने तक अच्छी प्रकार से मिलाना चाहिए।

पोलटिस या कैटाप्लाज्म (Poultices or cataplasms):-

पोलटिस बाह्य त्वचा पर प्रयोगार्थ दर्द निवारण या शोथ कम करने या काउंटर क्षोभक रूप में कार्य करने वाला चिपचिपा गीला पदार्थ है। सामान्यत: उनको भारी केओलिन (Heavy kaolin) के समान clay का उपयोग कर तैयार किया जाता है। ग्लिसरीन को भी हाइग्रोस्कोपिक प्रकृति के कारण सम्मिलित किया जाता है। इनको गर्म कर कपड़े या अन्य उपयुक्त द्रव्य पर फैलाकर प्रयुक्त किया जाता है।

पैकिंग (Packing):-

ऑईन्टमेन्ट (मलहम) को सामान्यत: मरहम पात्र (जार) या ट्यूबों में पैक किया जाता है।

बाह्य प्रयोगार्थ तरल पदार्थ (Liquids for external use):-

त्वचा पर तरल पदार्थ यथा-लिनिमेन्ट्स (Liniments), लोशन आदि का प्रयोग किया जाता है।

लिनिमेन्ट्स (Liniments):-

लिनिमेन्ट्स त्वचा पर बाह्य प्रयोगार्थ प्रयुक्त होने वाली तरल या अर्द्धघन भैषजीय कल्पनाएं हैं। इनमें दर्द निवारक, शामक या उत्तेजक गुण वाले औषधि द्रव्य सम्मिलित किए जाते हैं। सामान्यत: इनको त्वचा पर मलकर तथा घर्षण द्वारा त्वचा पर प्रयुक्त किया जाता है। इनका कटी हुई त्वचा पर प्रयोग नहीं किया जाता है। लिनिमेन्ट्स (Liniments) को आन्तरिक प्रयोगार्थ औषध बोतलों से पृथक् करने हेतु रंगीन बोतलों में रखना चाहिए।

बोतलों पर ''केवल बाहरी उपयोग के लिए'' (For external use only) का लेबल लगाया जाना चाहिए।

Scanned with CamScanner

...शन (Lotions):-

लोशन (Lotions) त्वचा पर बाह्य प्रयोगार्थ प्रयुक्त होने वाले तरल निलम्बन (Liquid suspension) या डिस्परशन (Dispersion) है। इनको बिना घर्षण किए ... या गॉज (Gauze) आदि शोषक पदार्थ (Absorbent material) के माध्यम ... त्वचा पर उपयुक्त स्थान पर प्रयुक्त किया जाता है। लोशन (Lotions) स्थानीय शीतलता, सुखदायक या सुरक्षात्मक प्रयोजन के लिए प्रयुक्त किए जाते हैं। त्वचा ...विशेषज्ञ अधिकतर संवेदनाहरण (anaesthetic) या एंटीसेप्टिक कार्यों के लिए लोशन की सलाह देते हैं। लोशन में एल्कोहॉल को सम्मिलित करने से शीघ्र सूखना तथा शीतल प्रभाव प्राप्त होता है। जबकि ग्लिसरीन को सम्मिलित करने से त्वचा दीर्घ काल तक नम रहती है तथा औषध शीघ्र शुष्क नहीं होती है। लोशन में संरक्षक (Preservative) सम्मिलित नहीं करने से बैक्टीरिया एवं मोल्ड (Molds) की वृद्धि संभव है। संरक्षक (Preservative) सम्मिलित करने के उपरान्त भी औषध योग निर्माण के समय संक्रमण से बचाव करना चाहिए। इनको आन्तरिक प्रयोगार्थ औषध बोतलों से पृथक करने हेतु रंगीन बोतलों में रखना चाहिए। बोतलों पर "केवल बाहरी उपयोग के लिए" (For external use only) लेबल लगाया जाना चाहिए। दीर्घ काल तक रखने के पश्चात् लोशन (Lotion) में पृथक् होने की प्रवृति होने के कारण इन पर "उपयोग करने से पहले हिलाएँ" (Shake well before use) का लेबल लगाया जाना चाहिए।

दशम अध्याय

नेत्रोपचारार्थ कल्पना

आयुर्वेद में नेत्र रोगों की चिकित्सा के लिए सेक, आश्चयोतन, पिण्डी, विडालक, तर्पण, पुटपाक और अञ्जन का उल्लेख किया गया है। जिनके द्वारा विविध प्रकार के नेत्र रोगों का उपचार किया जाता है।

तर्पणं पुटपाकश्च सेक आश्च्योतनाञ्जने।
तत्र तत्रोपदिष्टानि तेषां व्यासं निबोध मे।।

(सु. सं. उ. 18/4)

सेक आश्च्योतनं पिण्डी विडालस्तर्पणं तथा।
पुटपाकोऽञ्जनं चैभिः कल्पैर्नेत्रमुपाचरेत्।।

(शा. सं. उ. ख. 13/1)

अर्थात् आचार्य सुश्रुत ने नेत्ररोगों में उपचार के लिए तर्पण, पुटपाक, सेक, आश्च्योतन एवं अञ्जन पाँच प्रकार के उपक्रमों का वर्णन किया है। जबकि आचार्य शार्ङ्गधर ने सेक, आश्च्योतन, पिण्डी, विडालक, तर्पण, पुटपाक और अञ्जन सात प्रकार के उपक्रमों का वर्णन किया है।

1. सेक:-

सेकस्तु सूक्ष्मधाराभिः सर्वस्मिन्नयने हितः।
मीलिताक्षस्य मर्त्यस्य प्रदेयश्चतुरङ्गुलात्।।

(शा. सं. उ. ख. 13/2)

अर्थात् अभिष्यन्द आदि समस्त प्रकार के नेत्ररोगों में जिस विधि द्वारा सूक्ष्मधारा से सिंचन किया जाता है, उसे सेक कहते हैं। इसके लिए रोगी को उचित स्थान पर उत्तान लिटाकर बन्द की हुई आँखों पर रोगानुसार उपयुक्त द्रव को सूक्ष्मधारा के रूप में चार अङ्गुल ऊपर से गिराया जाता है। इस क्रिया के लिए चोंचनुमा पात्र प्रयोग में लिया जाता है।

सेक के भेदः-

स चापि स्नेहनो वाते रक्ते पित्ते च रोपणः।
लेखनश्च कफे कार्यस्तस्य मात्राऽधुनोच्यते।।

(शा. सं. उ. ख. 13/3)

अर्थात् वातज नेत्र रोगों में स्नेहन, पित्तज एवं रक्तज नेत्ररोगों में रोपण और कफज नेत्ररोगों में लेखन भेद से सेक को तीन प्रकार का माना गया है।

सेक की मात्राः-

षड्वाक्शतैः स्नेहनेषु चतुर्भिश्चैव रोपणे।
वाक्शतैश्च त्रिभिः कार्यः सेको लेखनकर्मणि।।

(शा. सं. उ. ख. 13/4)

अर्थात् वातज रोगों में स्नेह द्रव का सेक 600 की गिनती (6 मिनट), पित्तज एवं रक्तज रोगों में रोपण द्रव का सेक 400 की गिनती (4 मिनट) और कफज रोगों में लेखन द्रव का सेक 300 की गिनती (3 मिनट) तक किया जाता है।

सेक का प्रयोगः-

पूर्वापराह्ने मध्याह्ने रूजाकालेषु चोभयोः।।

(सु. उ. 18/47)

कार्यस्तु दिवसे सेको रात्रौ चात्ययिके गदे।

(शा. सं. उ. ख. 13/4½)

अर्थात् आचार्य सुश्रुत ने कफज नेत्ररोगों में प्रातःकाल, वातज नेत्ररोगों में सायंकाल और पित्तज एवं रक्तज नेत्ररोगों में मध्याह्न काल तथा वेदना होने पर तुरन्त किसी भी समय में सेक करने का निर्देश दिया है। जबकि आचार्य शार्ङ्गधर ने दिन में ही सेक का निर्देश देते हुए आत्ययिक अवस्था में रात्रि में भी सेक करने का निर्देश किया है।

नेत्रशूलनाशक सेकः-

श्वेतलोध्रं घृते भृष्टं चूर्णितं पटविस्रुतम्।
उष्णाम्बुना विमृदितं सेकाच्छूलघ्नमम्बके।।

(शा. सं. उ. ख. 13/11)

अर्थात् किसी भी प्रकार की नेत्र वेदना को दूर करने के लिए श्वेत लोध्र को गोघृत में भृष्ट करके चूर्ण का निर्माण किया जाता है। फिर उसे उष्ण जल में भिगोकर भलीभांति मथकर कपड़े से छान लिया जाता है। अब इसको रोगी को लिटाकर आँखें बन्द करवाकर रोगानुसार सेक की उचित मात्रा का प्रयोग करने पर नेत्रशूल दूर हो जाता है।

2. आश्च्योतनः-

नेत्रों में द्रव औषध को बूँद के रूप में डालने को आश्च्योतन कहते हैं।

यथादोषोपयुक्तं तु नातिप्रबलमोजसा।
रोगमाश्च्योतनं हन्ति सेकस्तु बलवत्तरम्।।

(सु. उ. 18/44)

अर्थात् रोग के अतिप्रबल नहीं होने पर दोषों के अनुसार किया हुआ आश्च्योतन रोग को नष्ट करता है। और रोग के अतिप्रबल होने पर सेक कर्म द्वारा रोग को दूर किया जाता है।

आश्च्योतन भेदः-

तौ त्रिधैवोपयुज्येते रोगेषु पुटपाकवत्।
लेखने सप्त चाष्टौ वा बिन्दवः स्नैहिक दश।।
आश्च्योतने प्रयोक्तव्या द्वादशैव तु रोपणे।।

(सु. उ. 18/45-45½)

बिन्दवोऽष्टौ लेखनेषु स्नेहने दशबिन्दवः।।
रोपणे द्वादश प्रोक्तास्ते शीते कोष्णरुपिणः।
उष्णे च शीतरूपाः स्युः सर्वत्रैवैष निश्चयः।।

(शा. सं. उ. ख. 13/13-14)

अर्थात् आचार्य सुश्रुत एवं शार्ङ्गधर ने आश्च्योतन को भी पुटपाक के समान स्नेहन, लेखन एवं रोपण भेद से तीन प्रकार का माना है।

आश्च्योतन

लेखन	स्नेहन	रोपण
7-8 बूँद	10 बूँद	12 बूँद

आश्च्योतन शीत काल में उष्ण (गुनगुना) और उष्णकाल में शीतल द्रव से करना चाहिए।

आश्च्योतन विधिः-

निवातशरणशयनस्थस्यविशोध्य नेत्रमपाङ्गे भाजनं कृत्वा वाम हस्तेनोन्मील्य दक्षिणहस्तेन शुक्त्यवसक्तया पिचु वर्त्या दश द्वादशाष्टौ बिन्दून कनीनक देशे द्वयङ्गुलाद् अवसेचयेत्। आश्च्योतितं च मृदुना चैलेन शोधयेत्। आश्च्योतनं वातकफयोःकोष्णं, सुशीतं पित्तरक्त विषेषु। (अ.सं.सू. 32/3)

उन्मीलितेऽक्षिण दृङ्मध्ये बिन्दुभिर्द्व्यङ्गुलाद् हितम्।

(शा. सं. उ. ख. 13/13)

अर्थात् निर्वात स्थान में रोगी को टेबल पर लिटाकर बाँये हाथ की दो अंगुलियों से नेत्र को खोलकर ड्रोपर या रूई के फोहे से औषध द्रव को दाहिने हाथ से दो अंगुल ऊपर से कनीनक से (नाक की ओर से) आठ, दस या बारह बूँद को डाला जाना चाहिए। इस प्रकार आश्च्योतन करने के पश्चात् स्वच्छ कोमल कपड़े से आँख को साफ किया जाना चाहिए।

वातादि भेद से आश्च्योतनः-

वाते तिक्तं तथा स्निग्धं पित्ते मधुरशीतलम्।
तिक्तोष्णरूक्षं च कफे क्रमादाश्च्योतनं हितम्।।

(शा. सं. उ. ख. 13/15)

अर्थात् वातज नेत्र रोगों में तिक्त, स्निग्ध, पित्तज नेत्र रोगों में मधुर, शीतल एवं कफज नेत्ररोगों में तिक्त, उष्ण एवं रूक्ष द्रव्यों से किया गया आश्च्योतन हितकारी होता है।

वातज आश्च्योतनः-

बिल्वादिपञ्चमूलेन बृहत्येरण्डशिग्रुभिः।।
क्वाथ आश्च्योतने कोष्णो वाताभिष्यन्दनाशनः।।

(शा. सं. उ. ख. 13/17)

अर्थात् बिल्व, अग्निमन्थ, श्योनाक, पाटला, गम्भारी, बृहती, एरण्ड और सहजन का क्वाथ बनाकर गुनगुना आँख में डालने पर वाताभिष्यन्द रोग को नष्ट करता है।

पित्तज आश्च्योतनः-

अम्बुपिष्टैर्निम्बपत्रैस्त्वचं लोध्रस्य लेपयेत्।।
प्रताप्य वह्निना पिष्ट्वा तद्रसो नेत्रपूरणात्।
वातोत्थं रक्तपित्तोत्थमभिष्यन्दं विनाशयेत्।।

(शा. सं. उ. ख. 13/18-19)

अर्थात् निम्ब पत्रों को जल से पीसकर लोध्र की छाल पर लेपकर अग्नि में तपाकर पीसकर रस को निकालने के बाद आँख में डालने से वातज, रक्तज एवं पित्तज अभिष्यन्दों को दूर करता है।

त्रिफला आश्च्योतनः-

त्रिफलाश्च्योतनं नेत्रे सर्वाभिष्यन्दनाशनम् ।।

(शा. सं. उ. ख. 13/20)

अर्थात् सभी प्रकार के अभिष्यन्दों को त्रिफला का आश्च्योतन क्वाथ नष्ट करता है।

आश्च्योतन कालः-

आश्च्योतनानां सर्वेषां मात्रा स्याद्वाक् शतं हिता।
निमेषोन्मेषणं पुंसामङ्गुल्योच्छोटिकाऽथवा ।।
गुर्वक्षरोच्चारणं वा वाङ्मात्रेयं स्मृता बुधैः ।।

(शा. सं. उ. ख. 13/17)

अर्थात् त्रिविध आश्च्योतन को 100 मात्रा (एक मिनट) तक धारण करना चाहिए। आँखों के निमेषोन्मेष (बन्द कर खोलना) अथवा घुटनों के चारों ओर एक बार हाथ को घुमाकर चुटकी बजाने या गुरु अक्षर के उच्चारण में जितना समय लगता है, उसे एक मात्रा कहते हैं।

आश्च्योतन का प्रयोगः-

सर्वेषामक्षिरोगाणां आदावाश्च्योतनं हितम्।
रुक्तोदकण्डूहर्षाश्रु दाहरोगनिबर्हणम् ।।

(अ. हृ. सू. 23/1)

अथाश्च्योतनकं कर्म निशायां न कथञ्चन ।।

(शा. सं. उ. ख. 13/12)

तयोरकालो रात्रिः । कालस्तु सर्वमहर्वेदनोत्पत्तिर्वा ।

(अ. सं. सू. 32/3)

अर्थात् सभी प्रकार के नेत्र रोगो में वेदना, तोद, कण्डू, हर्ष, अश्रु, दाह आदि को दूर करने के लिए आश्च्योतन का प्रयोग करना चाहिए। आश्च्योतन का रात्रि के समय में प्रयोग निषेध माना गया है। अतः दिन के समय एवं नेत्र में वेदना होने पर आश्च्योतन का प्रयोग करना चाहिए।

3. पिण्डीः-

पिण्डी कवलिका प्रोक्ता बद्ध्यते पट्टवस्त्रकैः ।।
नेत्राभिष्यन्दयोग्या सा व्रणेष्वपि निबध्यते।
अभिष्यन्देषु सर्वेषु बध्नीयात्पिण्डीकां बुधः।

(शा. सं. उ. ख. 13/21,25)

अर्थात् औषधि के सूक्ष्म चूर्ण से कल्क का निर्माण करके स्वच्छ कपड़े में पोट्टली बनाकर नेत्राभिष्यन्द और नेत्रव्रणों में आँखों पर बाँधने को पिण्डी या कवलिका कहते हैं। सभी प्रकार के अभिष्यन्द में पिण्डी का प्रयोग किया जाता है। पिण्डी और कवलिका पोट्टली के पर्यायवाची है।

वाताभिष्यन्दशान्त्यर्थं स्निग्धोष्णा पिण्डिका भवेत्।
एरण्डपत्रमूलत्वङ्निर्मिता वातनाशिनी।।
पित्ताभिष्यन्दनाशाय धात्रीपिण्डी सुखावहा।
शिग्रुपत्रकृतापिण्डी श्लेष्माभिष्यन्दनाशिनी।।

(शा. सं. उ. ख. 13/25-27)

अर्थात् वातज अभिष्यन्द में स्निग्ध एवं उष्ण द्रव्यों एरण्डपत्र, मूल एवं त्वक् से निर्मित, पित्तज अभिष्यन्द में आँवलों की पिण्डी और कफज अभिष्यन्द में शिग्रुपत्रों की पिण्डी का प्रयोग करने पर लाभकारी होती है। उपरोक्त द्रव्यों की पोट्टली को आँख बन्द करके बाँधा जाता है।

4. विडालकः-

विडालको बहिर्लेपो नेत्रे पक्ष्मविवर्जितः।
तस्य मात्रा परिज्ञेया मुखलेपविधानवत्।।

(शा. सं. उ. ख. 13/30)

पक्ष्मपरिहारेणाक्षिकोशालेपनम्। तच्च पुनर्विडालकसंज्ञम्।।

(अ. सं. सू. 32/2)

अर्थात् नेत्र पक्ष्मों को छोड़कर नेत्र के दोनों पलकों के ऊपर औषधियों को पीसकर पिष्टी (कल्क) का बाह्य लेप किया जाता है। इसे विडालक कहते हैं। इसकी मात्रा मुखलेप सदृश होती है। इस लेप को लगाने से नेत्र बिल्ली के नेत्रों की तरह दिखाई देने के कारण विडालक का नाम दिया गया है।

विडालक योग:-

यष्टीगैरिक सिन्धूत्थदार्वीतार्क्ष्यैः समांशकैः।
जलपिष्टैर्बहिर्लेपः सर्वनेत्रामयापहः।।

(शा. सं. उ. ख. 13/31)

अर्थात् मुलेठी, शुद्ध गैरिक, सैंधवलवण, दारूहरिद्रा, और रसाञ्जन को समान मात्रा में लेकर इनका सूक्ष्म चूर्ण करके जल के साथ पीसकर पिष्टी बनाकर नेत्र के दोनों पलकों पर बाहर की ओर पक्ष्मों को छोड़कर लेप किया जाता है। इस लेप के प्रयोग से समस्त नेत्ररोगों का नाश हो जाता है।

विडालक योगः-

सञ्चूर्ण्य मरिचं केशराजस्वरसमर्दनात्।
लेपनादर्मणां नाशं करोत्येष प्रयोगराट्।।
(शा. सं. उ. ख. 13/36)

अर्थात् मरिच के सूक्ष्म चूर्ण को भृंगराज स्वरस के साथ पीसकर लेप का निर्माण किया जाता है। इस लेप का प्रयोग करने पर सम्पूर्ण अर्म रोगों का नाश हो जाता है।

5. तर्पणः-

संशुद्धदेहशिरसो जीर्णान्नस्य शुभे दिने।
पूर्वाह्णे वापराह्णे वा कार्य्यमक्ष्णोश्च तर्पणम्।।
वातातपरजोहीने वेश्मन्युत्तानशायनः।
आधारौ माषचूर्णेन क्लिन्नेन परिमण्डलौ।।
समौ दृढ़ावसंबाधौ कर्त्तव्यौ नेत्रकोशयोः।
पूरयेद् घृतमण्डस्य विलीनस्य सुखोदके।।
(सु. उ. 18/5-7)

वातातपरजोहीने देशे चोत्तानशायिनः।
आधारौ माषचूर्णेन क्लिन्नेन परिमण्डलौ।।
समौ दृढ़ावसम्बाधौ कर्त्तव्यौ नेत्र कोशयोः।
पूरयेद् घृतमण्डेन विलीनेन सुखोदकैः।।
अथवा शतधौतेन सर्पिषा क्षीरजेन वा।
निमग्नान्यक्षिपक्ष्माणि यावत्स्युस्तावदेव हि।।
पूरयेन्मीलिते नेत्रे तत उन्मीलयेच्छनैः।
(शा. सं. उ. ख. 13/42-44)

अर्थात् सर्वप्रथम रोगी व्यक्ति के शरीर को वमन, विरेचन द्वारा शुद्ध करके शिरोविरेचन से शिर का शोधन करें। इसके पश्चात् भोजन के पच जाने के बाद शुभ दिन में पूर्वाह्ण या अपराह्ण काल में नेत्रों का तर्पण करना चाहिए।

वायु, आतप एवं धूलरहित स्थान पर रोगी को उत्तान शयन करवाकर दोनों आँखों के चारों तरफ उड़द के आटे की पिष्टी से मण्डालाकार, एक समान, दो अंगुल ऊँची छिद्र रहित, दीवार (आलवाल) बनायी जाती है। इस आलवाल में घृतमण्ड,

अथवा शतधौत घृत या दुग्ध से निष्कासित मक्खन को सुखोष्ण जल में मिश्रित करके नेत्रपक्ष्म के अग्रभाग तक भर दिया जाता है। इसमें घृतमण्डादि भरते समय पलकें डूबने तक आँखो को बन्द रखें। नेत्रमण्डलों में घृतमण्ड आदि भरले के बाद धीरे-धीरे नेत्रों को खोलना चाहिए।

तर्पण कालः-

धारयेद् वर्त्मरोगेषु वाङ्मात्राणां शतं बुधः
स्वच्छे कफे सन्धिरोगे मात्रापञ्चशतं हितम्।
शुक्ले च षट्शतं कृष्णेरोगे सप्तशतं मतम्।।
दृष्टिरोगेष्वष्टशतमधिमन्थे सहस्रकम्।
सहस्रं वातरोगेषु धार्यमेवं हि तर्पणम्।।
(शा. सं. उ. ख. 13/45-47)

अर्थात् वर्त्मगत रोगों में 100 मात्रा (1 मिनट) कफज एवं संधिगत रोगों में 500 मात्रा (5 मिनट), शुक्लगत रोगों में 600 मात्रा (6 मिनट), कृष्णगत रोगों में 700 मात्रा (7 मिनट), दृष्टिगत रोगों में 800 मात्रा (8 मिनट) तथा अधिमन्थ एवं वातज रोगों में 1000 मात्रा (10 मिनट) तक तर्पण को धारण किया जाना चाहिए।

आपक्ष्माग्रात्ततः स्थाप्यं पञ्च तद्वाक् शतानि तु।
स्वस्थे कफे षट् पित्तेऽष्टौ दशवाते तदुत्तमम्।।
(सु. उ. 18/8)

अर्थात् स्वस्थ नेत्र में 500 मात्रा (5 मिनट), कफज नेत्र रोगों में 600 मात्रा (6 मिनट), पित्तज नेत्र रोगों में 800 मात्रा (8 मिनट) और वातज नेत्र रोगों में 1000 मात्रा उच्चारण (10 मिनट) तक तर्पण कर्म करना चाहिए।

एकाहं वा त्र्यहं वाऽपि पञ्चाहं चेष्यते परम्।। (सु. उ. 18/12)

अर्थात् वातज रोगों में एक दिन, पित्तज रोगों में तीन दिन और कफज रोगों में पाँच दिन तक नेत्र तर्पण करना चाहिए।

पश्चात कर्मः-

ततश्चापाङ्गतः स्नेहं स्रावयित्वाक्षि शोधयेत्।
स्विन्नेन यवपिष्टेन स्नेहवीर्येरितं ततः।।
यथास्वं धूमपानेन कफमस्य विशोधयेत्।।
(सु. उ. 18/10-11)

अर्थात् तर्पण का समय पूर्ण हो जाने पर अपाङ्ग की तरफ छिद्र करके घृतमण्डादि को निकालकर नेत्र को साफ करके उष्णोदक से प्रक्षालन किया जाता है। स्नेह के वीर्य

से उत्क्लिष्ट हुए कफ को स्विन्न यवपिष्टी का प्रयोग या कफघ्न धूमपान से शोधन करना चाहिए।

सम्यक् तर्पण लक्षण:-

सुखस्वप्नावबोधत्वं वैशद्यं वर्णपाटवम्।
निर्वृत्तिर्व्याधिविध्वंसः क्रियालाघवमेव च।।

(सु. उ. 13/13)

अर्थात् सम्यक् तर्पण होने पर सुखपूर्वक निद्रा, समय पर निद्रात्याग, नेत्रलघुता, वर्ण निर्मलता, विशदता, व्याधि नाश और नेत्र निमीलन एवं उन्मीलन में कष्ट नहीं होता है।

तर्पण निषेध:-

दुर्दिनात्युष्णशीतेषु चिन्तायासभ्रमेषु च।
अशान्तोपद्रवे चाक्षिण तर्पणं न प्रशस्यते।।

(सु. उ. 18/18)

अर्थात् आकाश में बादल होने, अत्यन्त उष्ण, अत्यन्त शीत, चिन्ता, परिश्रम, भ्रम से क्लान्त रोगी, नेत्र शोथ, राग, वेदना आदि उपद्रवों के रहने पर तर्पण कर्म नहीं करना चाहिए।

तर्पण का उपयोग:-

ताम्यत्यतिविशुष्कं यद्रूक्षं यच्चातिदारूणम्।
शीर्णपक्ष्मानिलं जिह्मं रोगक्लिष्टं च यद्भृशम्।।
तदक्षि तर्पणादेव लभेतोजमिसंशयम्।।

(सु. उ. 18/17)

अथ तर्पणकं वच्मि नेत्रतृप्तिकरं परम्।
यद्रूक्षं परिशुष्कं च नेत्रं कुटिलमाविलम्।
शीर्णपक्ष्मशिरोत्पात कृच्छ्रोन्मीलनसंयुतम्।।
तिमिरार्जुनशुक्राद्यैरभिष्यन्दाधिमन्थकैः।
शुष्काक्षिपाकशोथाभ्यां युक्तं वातविपर्ययैः।।
तन्नेत्रं तर्पणे योज्यं नेत्ररोगविशारदैः।।

(शा. सं. उ. ख. 13/38-40)

अर्थात् शुष्क, रूक्ष, अतिदारुण, कुटिल एवं आविल नेत्र, शीर्ण पक्ष्म, वातरोग, जिह्म रोग, क्लिष्ट, सिरोत्पात, कृच्छ्रोन्मीलन, तिमिर, अर्जुन, शुक्र, अभिष्यन्द,

अधिमन्थ, शुष्काक्षिपाक, अक्षिशोथ, वातविपर्यय आदि नेत्र रोगों के नाश हेतु तर्पण का प्रयोग करना चाहिए। तर्पण नेत्रों को तृप्त करने में परमोत्तम उपाय है।

6. पुटपाकः-

आद्यन्तयोश्चाप्यनयोः स्वेद उष्णाम्बुचैलिकः।
तथा हितोऽवसाने च धूमश्लेष्मसमुच्छ्रितौ।।

(सु. उ. 18/43)

अर्थात् तर्पण कर्म के समान ही इसमें भी नेत्रों के चारों तरफ उड़द की पिष्टी का आलबाल बनाकर पुटपाक विधि से प्राप्त मांसरस या औषधि स्वरस को पक्ष्म के अग्रभाग तक भर दिया जाता है। फिर निर्धारित समय के बाद अपाङ्ग की तरफ आलबाल में छिद्र करके द्रव्य को बाहर निकालकर उष्ण जल में भीगे कपड़े को निचोड़कर नेत्र का स्वेदन एवं धूमपान कराया जाता है। इसे ही पुटपाक कहते हैं।

पुटपाक भेदः-

पुटपाक प्रयोक्तव्यो नेत्रेषु भिषजा भवेत्।
स्नेहनो लेखनीयश्च रोपणीयश्च स त्रिधा।

(सु. उ. 18/20)

स्नेहनो लेखनश्चैव रोपणश्चेति स त्रिधा।

(शा. सं. उ. ख. 13/56)

अर्थात् स्नेहन, लेखन एवं रोपण भेद से आचार्यों ने पुटपाक को तीन प्रकार का माना है।

स्नेहन पुटपाकः-

सर्पिमांसवसामज्जामेदः स्वाद्वौषधैः कृतः।
स्नेहनः पुटपाकस्तु धार्यो द्वे वाक्शते दृशोः।।

(शा. सं. उ. ख. 13/57)

अर्थात् घी, मांस, वसा, मज्जा, मेद और मधुर द्रव्यों (शतावरी, मुलेठी आदि) से निर्मित स्नेहन पुटपाक को 200 मात्रा (2 मिनट) तक धारण करना चाहिए।

लेखन पुटपाकः-

जाङ्गलानां यकृन्मांसैर्लेखनद्रव्यसंयुतैः।।
कृष्णलोहरजस्ताम्रशङ्खविद्रुमसिन्धुजैः।
समुद्रफेनकासीसस्रोतोजदधिमस्तुभिः।।
लेखनोवाक्शतं धार्यस्तस्यैतावद् विधारणम्।

(शा. सं. उ. ख. 13/58-59½)

अर्थात् जांगल प्राणियों का यकृत, मांस तथा लेखन द्रव्यों (लौह चूर्ण या भस्म, ताम्रभस्म, शंखभस्म, प्रवाल भस्म, सैंधवलवण, समुद्रफेन, कासीस, स्रोतोञ्जन, दधिमस्तु) से निर्मित लेखन पुटपाक को 100 मात्रा (एक मिनट) तक धारण करना चाहिए।

रोपण पुटपाकः-

स्तन्यजाङ्गलमध्वाज्यतिक्तकद्रव्यपाचितः ।।
लेखनात् त्रिगुणो धार्यः पुटपाकस्तु रोपणः ।

(शा. सं. उ. ख. 13/60-60 ½)

अर्थात् स्त्री का दूध, जांगल प्राणियों का मांस, मधु, घृत और तिक्त द्रव्यों से निर्मित रोपण पुटपाक को 300 मात्रा (3 मिनट) तक धारण करना चाहिए। इस प्रकार नेत्रों के पुटपाक कर्म में उपयोगी द्रव्यों का पुटपाक विधि से स्वरस निकालकर नेत्रों में प्रयुक्त किया जाता है।

पुटपाक विधिः-

द्वौ बिल्वमात्रौ श्लक्ष्णस्य पिण्डौ मांसस्य पेषितौ ।
द्रव्याणां बिल्वमात्रन्तु द्रवाणां कुडवो मतः ।।
तदैकध्यं समालोड्य पत्रैः सुपरिवेष्टितम् ।
काश्मरीकुमुदैरण्डपद्मिनीकदलीभवैः ।।
मृदावलिप्तमङ्गारैः खादिरैरवकूलयेत् ।
कतकाश्मन्तकैरण्ड पाटलावृषबादरैः ।।
सक्षीरद्रुमकाष्ठैर्वा गोमयैर्वाऽपि युक्तितः ।
स्विन्नमुद्धृत्य निष्पीड्य रसमादाय तं नृणाम् ।।
तर्पणोक्तेन विधिना यथावदवचारयेत् ।
कनीनके निषेच्यः स्यान्नित्यमुत्तानशायिनः ।।

(सु. उ. 18/33-37)

द्वौ बिल्वमात्रौ मांसस्य पिण्डौ स्निग्धौ सुपेषितौ ।
द्रव्याणां बिल्वमात्रं तु द्रवाणां कुडवो मतः ।।
तदेकस्थं समालोडय पत्रैः सुपरिवेष्टितम् ।
पुटपाकेन तत् पक्त्वा गृह्णीयात् तद् रसं बुधः ।।
तर्पणोक्तविधानेन यथावदुपचारयेत् ।
दृष्टिमध्ये निषेच्यः स्यान्नित्यमुत्तानशायिनः ।।

(शा. सं. उ. ख. 13/53-55)

अर्थात् 2 पल (96 ग्राम) अस्थिरहित मांस को स्नेहन, लेखन या रोपण पुटपाक के द्रव्य प्रत्येक 48-48 ग्राम के साथ एक कुँडव (192 मि.ली.) जल, क्षीर या कषाय में मिलाकर पिष्टी (कल्क) बनायी जाती है। इस कल्क को गम्भारी, कुमुद, एरण्ड पत्र, कदली पत्र आदि में रखकर चारों तरफ चिकनी मिट्टी का दो अङ्गुल मोटा लेप करके सुखाकर खदिराङ्गार पर पकाया जाता है। मिट्टी का वर्ण रक्त तम हो जाने पर अग्नि से उतार कर मिट्टी, पत्रादि को दूर करके निचोड़कर पुटपाक स्वरस निकाल कर रख लिया जाता है। इसके पश्चात् रोगी को उतान शयन करवाकर धूल, धूम, वायुरहित स्थान पर नेत्रों के चारों तरफ आलबाल बनाकर उक्त स्वरस को निर्धारित समय तक धारण करवाया जाता है। फिर अपाङ्ग की तरफ छिद्र करके स्वरस को बाहर निकालकर नेत्रों को स्वच्छ करके स्वेदन एंव धूमपान करवाकर श्लेष्मा को नष्ट किया जाता है।

पुटपाक समय:-

एकाहं वापि वा द्वयहं त्र्यहं वाप्यवचारणम्।
मन्त्रणा तु क्रियाकालाद् द्विगुणं कालमिष्यते ।।

(सु. उ. 18/28)

अर्थात् स्नेहन पुटपाक 200 मात्रा (2 मिनट) तक दो दिन, लेखन पुटपाक 100 मात्रा (एक मिनट) तक एकदिन और रोपण पुटपाक 300 मात्रा (तीन मिनट) तक तीन दिन धारण किया जाना चाहिए।

पुटपाक का प्रयोग:-

हितः स्निग्धोऽतिरूक्षस्य स्निग्धस्यापि लेखनः।
दृष्टेर्बलार्थमितरः पित्तासृग्व्रणवातनुत् ।।

(शा. सं. उ. ख. 13/56)

रक्ते पित्ते च तौ शीतौ कोष्णौ वातकफापहौ।
अत्युष्णतीक्ष्णौ सततं दाहपाककरौ स्मृतौ ।।
अप्लुतौ शीतलौ चाश्रुस्तम्भरुग्धर्षकारकौ ।।

(सु. उ. 18/39)

अर्थात् अतिरूक्ष नेत्र में स्नेहन, अतिस्निग्ध में लेखन और दृष्टि बलवर्धन, पित्तज एवं रक्तजव्रणों में रोपण पुटपाक का प्रयोग हितकारी होता है। रक्तज एवं पित्तज रोगों में शीत पुटपाक स्वरस तथा वातज एवं कफज रोगों में किञ्चिद् उष्ण पुटपाक स्वरस का प्रयोग किया जाता है। अतः अति उष्ण और तीक्ष्ण पुटपाक का प्रयोग नहीं

करें। क्योंकि इससे दाह एवं पाक हो जाता है। इसी प्रकार अतिशीत पुटपाक का प्रयोग करने पर अश्रु, वेदना, स्तम्भ, हर्ष आदि नेत्र के विकार उत्पन्न हो जाते हैं। अतः रोगानुसार निर्धारित मात्रा एवं काल का ध्यान रखते हुए शीत एवं उष्ण स्वरस का पुटपाक में प्रयोग करना चाहिए।

7. अञ्जनः-

अंगुली या शलाका द्वारा आँखों में औषध लगाने को अञ्जन कहते हैं।

अञ्जन भेदः-

1. कल्पना भेद सेः-

गुटिकारसचूर्णानि त्रिविधान्यञ्जानि तु।
यथापूर्वं बलं तेषां श्रेष्ठमाहुर्मनीषिणः ।।

(सु. उ. 18/58)

अर्थात् कल्पना भेद से आचार्य सुश्रुत ने गुटिका, रसक्रिया और चूर्ण तीन प्रकार का अञ्जन माना है। रोग प्रबल होने पर गुटिका, रोग मध्यबल होने पर रस क्रिया एवं रोग अल्प बल होने पर चूर्ण अञ्जन का प्रयोग किया जाता है।

2. कर्म भेद सेः-

व्यक्तरूपेषु दोषेषु शुद्धकायस्य केवले।
नेत्र एव स्थिते दोषे प्राप्तमञ्जनमाचरेत् ।।
लेखनं रोपणं चापि प्रसादनमथापि वा ।।

(सु. उ. 18/51-52)

लेखनं रोपणं चैव तथा स्यात् स्नेहनाञ्जनम्।
लेखनं क्षारतीक्ष्णाम्लरसैरञ्जनमिष्यते ।।
कषायतिक्तरसयुक् सस्नेहं रोपणं मतम्।
मधुरं स्नेहसम्पन्नमञ्जनं च प्रसादनम् ।।

(शा. सं. उ. ख. 13/64-65)

अर्थात् कर्म भेद से लेखन, रोपण एवं स्नेहन तीन प्रकार का अञ्जन भी आचार्यों ने माना है। क्षार, तीक्ष्ण एवं अम्ल द्रव्यों का अञ्जन लेखन, कषाय, तिक्त रस युक्त द्रव्यों का स्नेहयुक्त अञ्जन रोपण और मधुर द्रव्यों का स्नेहयुक्त अञ्जन प्रसादन या स्नेहन कहलाता है।

"तत्तु लेखनं रोपणं स्नेहनं प्रसादनमिति चतुर्विधं भवति"।

(अ. सं. सू. 32/6)

"द्विविधमेव वा तीक्ष्णं मृदु च"। (अ. सं. सू.32/10)

अर्थात् आचार्य वृद्ध वाग्भट ने लेखन, रोपण, स्नेहन एवं प्रसादन भेद से चार प्रकार तथा तीक्ष्ण एवं मृदु भेद से अञ्जन को दो प्रकार का भी माना है।

चन्द्रोदयवर्ति (गुटिकाञ्जन):–

शङ्खनाभिर्बिभीतकस्य मज्जा पथ्या मनःशिला।
पिप्पली मरिचं कुष्ठं वचा चेति समांशकम्।।
छागीक्षीरेण सम्पिष्य वर्तिं कृत्वा यवोन्मिताम्।
हरेणुमात्रां सङ्घृष्य जलैः कुर्यादथाञ्जनम्।।

(शा. सं. उ. ख. 13/75-76)

अर्थात् शंखनाभि, बिभीतकी मज्जा, हरीतकी, मनःशिला, पिप्पली, मरिच, कुष्ठ और वचा-इन सभी द्रव्यों को समान मात्रा में लेकर अतिसूक्ष्म चूर्ण बनाकर बकरी के दूध में पीसकर यवाकृति वर्ति का निर्माण किया जाता है। इसको एक हरेणु की मात्रा में घिसकर प्रयोग करें।

तिमिरं मांसवृद्धिं च काचं पटलमर्बुदम्।
रात्र्यन्ध्यं वार्षिकं पुष्पं वर्तिश्चन्द्रोदया जयेत्।।

(शा. सं. उ. ख. 13/77)

अर्थात् तिमिर, मांसवृद्धि, मोतियाबिन्द, पटलगतदोष, नेत्रार्बुद, रतौंधी एवं एक वर्ष के पुष्प (फूले) का इस वर्ति से नाश हो जाता है।

गुटिकाञ्जन मात्रा:–

हरेणुमात्रां कुर्वीत वर्तिं तीक्ष्णाञ्जने भिषक्।
प्रमाणं मध्यमेऽध्यर्धं द्विगुणं तु मृदौ भवेत्।।

(शा. सं. उ. ख. 13/68)

अर्थात् चिकित्सक द्वारा तीक्ष्ण द्रव्यों वाली लेखन गुटिकाञ्जन की वर्ति हरेणु (मटर) के समान, मध्यम (रोपण) द्रव्यों वाली गुटिकाञ्जन की वर्ति डेढ़ हरेणु (मटर) के समान और मृदु द्रव्यों वाली स्नेहन गुटिकाञ्जन की वर्ति दो हरेणु (मटर) के समान बनाकर नेत्ररोगों में प्रयोग की जानी चाहिए।

रसक्रियाञ्जन:–

रसाञ्जनं सर्जरसो जातीपुष्पं मनःशिला।
समुद्रफेनो लवणं गैरिकं मरिचानि च।।
एतत् समांशं मधुना पिष्ट्वा प्रक्लिन्नवर्त्मनि।
अञ्जनं क्लेदकण्डूघ्नं पक्ष्मणां च प्ररोहणम्।।

(शा. सं. उ. ख. 13/96-97)

अर्थात् रसौंत, राल, चमेली पुष्प, मनःशिला, समुद्रफेन, सैंधव लवण, गैरिक एवं मरिच-इन सभी द्रव्यों को समान मात्रा में लेकर इनका सूक्ष्मचूर्ण बनाकर मधु के साथ अञ्जन करना चाहिए। इससे प्रक्लिन्नवर्त्मरोग, क्लेद, कण्डू का नाश हो जाता है तथा पक्ष्मों का पुनः प्रोहण (उत्पन्न) हो जाता हैं।

रसक्रियाञ्जन मात्राः-

रसक्रिया तूत्तमा स्यात् त्रिविडङ्गमिता हिता।
मध्यमा द्विविडङ्गा स्यात् हीना त्वेकविडङ्गिका ।।

(शा. सं. उ. ख. 13/69)

अर्थात् रसक्रिया अञ्जन की श्रेष्ठ मात्रा तीन विडङ्ग के समान, मध्यम मात्रा दो विडङ्ग के समान और हीन मात्रा एक विडङ्ग के समान होती है।

अञ्जनं क्लेदकण्डूघ्नं पक्ष्मणां च प्रोहणम् ।।

(शा. सं. उ. ख. 13/97)

अर्थात् उपरोक्त रसक्रियाञ्जन के प्रयोग से प्रक्लिन्न वर्त्मरोग, क्लेद एवं कण्डू के नाश के साथ ही आँख के पक्ष्म पुनः उत्पन्न हो जाते हैं।

चूर्णाञ्जन (लेखन):-

शाणार्ध मरिचं द्वौ च पिप्पल्यर्णवफेनयोः।
शाणार्ध सैन्धवं शाणा नव सौवीरकाञ्जनात् ।।
पिष्टं सुसूक्ष्मं चित्रायां चूर्णाञ्जनमिदं शुभम्।
कण्डूकाच कफार्तानां मलानां च विशोधनम् ।।

(शा. सं. उ. ख. 13/108-109)

अर्थात् दो ग्राम मरिच चूर्ण, पीपल एवं समुद्रफेन चूर्ण आठ आठ ग्राम, सैंधवलवण दो ग्राम और 36 ग्राम सौवीराञ्जन-इन द्रव्यों को चित्रा नक्षत्र में अतिसूक्ष्म पीसकर चूर्णञ्जन बनाना चाहिए। इसके प्रयोग से कण्डू, मोतियाबिन्द, कफजविकार और आँखों का मल दूर हो जाता है।

चूर्णाञ्जन (रोपण):-

1. **शिलाया रसकं पिष्ट्वा सम्यगापलाव्य वारिणा।**
गृहणीयात् तज्जलं सर्वं त्यजेच्चूर्णमधोगतम् ।।
शुष्कं च तज्जलं सर्वं पर्पटीसन्निभं भवेत्।
विचूर्ण्य भावयेत् सम्यक् त्रिवेलं त्रिफलारसैः ।।

कर्पूरस्य रजस्तत्र दशमांशेन निक्षिपेत्।
अञ्जयेन्नयने तेन सर्वदोषहरं हि तत्।।
सर्वरोगहरं चूर्णं चक्षुषो सुखकारि च।
(शा. सं. उ. ख. 13/110-112½)

अर्थात् सर्वप्रथम खर्पर को शिला पर चूर्ण करके जल में घोलकर रखा जाता है। फिर मात्र जल को निथारकर धूप में सुखाया जाता है। शेष चूर्ण भाग को फेंक दिया जाता है। धूप में जल के शुष्क हुए पपड़ी भाग में त्रिफला स्वरस की तीन भावना देकर अन्त में दशमांश कर्पूर मिलाकर सुरक्षित रखा जाता है। इस अञ्जन को नेत्र में लगाने से संपूर्ण नेत्रदोष एवं नेत्ररोग दूर होकर आँखों के लिए सुखदायक होता है।

चूर्णाञ्जन (प्रसादन):-

अग्नितप्तं हि सौवीरं निषिञ्चेत् त्रिफलारसैः।
सप्तवेलं तथा स्तन्यैः स्त्रीणां सिक्तं विचूर्णितम्।।
अञ्जयेत् तेन नयने प्रत्यहं चक्षुषोर्हितम्।
सर्वानक्षिविकारांस्तु हन्यादेतन्न संशयः।।
(शा. सं. उ. ख. 13/113-114½)

अर्थात् सौवीराञ्जन को अग्नि पर तपाकार त्रिफला स्वरस एवं स्त्री दूध में सात-सात बार बुझाकर पीसकर सुरक्षित रखना चाहिए। इसको प्रतिदिन नेत्रों में लगाने से समस्त नेत्ररोगों का नाश हो जाता है।

चुर्णाञ्जन मात्राः-

वैरेचनिकचूर्णं तु द्विशलाकं विधीयते।
मृदौ तु त्रिशलाकं स्याच्चतस्रः स्नैहिकेऽञ्जने।।
(शा. सं. उ. ख. 13/70)

अर्थात् विरेचन (लेखन) चूर्णाञ्जन की मात्रा दो शलाका, मृदु (रोपण) चूर्णाञ्जन की मात्रा तीन शलाका और स्नेहन चूर्णाञ्जन की मात्रा चार शलाका के समान प्रयुक्त की जानी चाहिए।

शलाकाः-

त्रिफलाभृङ्गशुण्ठीनां रसैस्तद्वच्च सर्पिषा।।
गोमूत्रमध्वजाक्षीरैः सिक्तो नागः प्रतापितः।
तच्छलाका हरत्येव सर्वान्नेत्रभवान् गदान्।।
(शा. सं. उ. ख. 13/115-116)

अर्थात् नाग को पिघलाकर त्रिफला स्वरस, भृङ्गराज स्वरस, शुण्ठी स्वरस, घृत, गोमूत्र, मधु एवं अजा दुग्ध में बुझाकर आठ अंगुल लम्बी, दोनों ओर गोल मुख वाली और चिकनी शलाका का निर्माण करना चाहिए। इस नाग धातु की शलाका से समस्त नेत्र रोग दूर हो जाते हैं। इसी प्रकार अन्य धातुओं से भी शलाका बनायी जा सकती है।

अञ्जन पात्रः-

तेषां तुल्यगुणान्येव विदध्याद्भाजनान्यपि।
सौवर्णं रजतं शार्ङ्गं ताम्रं वैदूर्य्यकांस्यजम्।।
आयसानि च योज्यानि शलाकाश्च यथाक्रमम्।
वक्त्रयोर्मुकुलाकारा कलायपरिमण्डला।।
अष्टाङ्गुला तनुर्मध्ये सुकृता साधुनिग्रहा।
औदुम्बर्यश्मजा वाऽपि शरीरी वा हिता भवेत्।।

(सु. उ. 18/61-63)

अर्थात् स्वर्ण, रजतादि शलाकाओं के अनुसार अञ्जन पात्र भी अञ्जनों के समान गुण वाले बनाये जाने चाहिए। यथा-स्वर्णपात्र में मधुर अञ्जन, रजत पात्र में अम्ल अञ्जन, मेषश्रृङ्ग पात्र में लवण अञ्जन, ताम्र या लौह पात्र में कषाय अञ्जन, वैदूर्यपात्र में कटु अञ्जन, कांस्य पात्र में तिक्त अञ्जन और नलादि से निर्मित पात्र में शीतल अञ्जनों को रखा जाना चाहिए। स्वर्णादि धातुओं से आठ अंगुल लम्बी, मध्य में पतली, मुकुल के समान मुखवाली और दोनों ओर गोल मुख वाली शलाका बनायी जानी चाहिए। इस शलाका के अग्रभाग पर जितना अञ्जन लगता है। उसे एक शलाका कहते हैं।

अञ्जन विधिः-

वामेनाक्षि विनिर्युज्य हस्तेन सुसमाहितः।
शलाकया दक्षिणेन क्षिपेत् कानीनमञ्जनम्।।
आपाङ्ग्यं वा यथायोगं कुर्याच्चापि गतागतम्।
वर्त्मोपलेपि वा यत्तदङ्गुल्यैव प्रयोजयेत्।।

(सु. उ. 18/64-65)

अर्थात् वाम हस्त से आँख को खोलकर शलाका के मुख पर अञ्जन लेकर दाहिने हाथ से शलाका के द्वारा कनीनिका से अपाङ्ग की ओर एवं अपाङ्ग से कनीनिका की तरफ घुमाकर अञ्जन लगाया जाना चाहिए। केवल वर्त्म पर लगाये जाने वाले अञ्जन को हाथ की अंगुली से लगाना चाहिए।

अञ्जन कालः-

यथादोषं प्रयोज्यानि तानि रोगविशारदैः।
अञ्जनानि यथोक्तानिप्राह्णसायाह्नरात्रिषु ।।

(सु. उ. 18/57)

सायं प्रातर्वाञ्जनं स्यात् तत्सदा नैव कारयेत्।
नातिशीतोष्णवाताभ्रवेलायां सम्प्रशस्यते ।।

(शा. सं. उ. ख. 13/73)

अर्थात् चिकित्सक को दोषों के अनुसार ही प्रातः, सायं और रात्रि में अञ्जन का प्रयोग उचित समय में करना चाहिए। अतिशीत, अतिउष्ण, प्रवात एवं आकाश में बादल छाने पर अञ्जन का प्रयोग नहीं किया जाना चाहिए।

अञ्जन निषेधः-

श्रमोदावर्तरुदितमद्यक्रोधभयज्वरैः ।
वेगाघातशिरोदोषैश्चार्त्तानां नेष्यतेऽञ्जनम् ।।

(सु. उ. 18/68)

श्रान्ते प्ररुदिते भीते पीतमद्ये नवज्वरे।
अजीर्णे वेगघाते च नाञ्जनं सम्प्रशस्यते ।।

(शा. सं. उ. ख. 13/67)

अर्थात् परिश्रम, उदावर्त, रुदन, मद्यपी, क्रोधी, भय, ज्वर, वेगावरोध, शिरोरोग और अजीर्ण से पीड़ित रोगियों में अञ्जन का प्रयोग नहीं करना चाहिए।

नेत्र कल्पना (Ophthalmic preparations)

नेत्रों में औषध का प्रयोग Drops (बूँद), Ointments (मलहम), Lotions आदि के रूप में किया जाता है। इनका प्रयोग नेत्र के विभिन्न भागों में Injection के द्वारा भी किया जाता है। Ophthalmic preparation विसंक्रमित (Sterile) होने चाहिए तथा इनका निर्माण Sterile conditions में होना चाहिए।

नेत्र कल्पना (Ophthalmic preparations) निम्न रूपों में निर्मित की जाती है:-

(i) Eye drops
(ii) Eye ointments
(iii) Eye lotions
(iv) Eye suspensions
(v) Contact lens solutions
(vi) Ophthalmic inserts

(i) नेत्र बिन्दु (Eye drops):- Eye drops नेत्रों में प्रयुक्त की जाने वाले Sterile aqueous या Oily solutions या Suspension है। इनमें मुख्य रूप से

antiseptic, anaesthetic, anti-inflammatory, mydriatic या miotic properties वाले द्रव्य होते हैं या diagnostic purpose के लिए प्रयुक्त द्रव्य होते हैं। Eye drops को sterile, usually isotonic, buffered होना चाहिए एवं foreign particles से मुक्त होना चाहिए, जिससे नेत्रों में irritation नहीं हो।

Aqueous eye drops bacterial and fungal growth में सहायक होता है, इसलिए इनमें उपयुक्त संरक्षक द्रव्य मिलाना आवश्यक होता है, जिसके लिए Phenylmercuric nitrate or acetate 0.002%, benzalkonium chloride 0.01% and chlorhexidine acetate 0.01% का प्रयोग किया जाता है।

Eye drops प्रयोग करते समय संक्रमण से सुरक्षित रहनी चाहिए तथा Eye drop container को खोलने के 15 दिन के भीतर ही प्रयोग कर लेना चाहिए, इसलिए Eye drops को छोटी मात्रा 5 मि.ली. से 10 मि.ली. में ही पैकिंग करनी चाहिए।

Eye drops को glass या उपयुक्त प्लास्टिक कन्टेनर में पैकिंग करनी चाहिए, जिसमें Screw cap लगी होनी चाहिए तथा आसानी से प्रयोग करने के लिए dropper होना चाहिए या nozzle लगा होना चाहिए।

(ii) Eye Ointment :- Eye ointment sterile और क्षोभकरहित होना चाहिए। Ointment base नेत्र के लिए क्षोभकरहित (non-irritating) तथा नेत्र स्राव के द्वारा औषध को प्रसारित करने वाला चाहिए और शारीरिक तापमान पर द्रवित होना चाहिए। ब्रिटिश फार्मेकोपिया (B.P.) के अनुसार Eye ointment base में yellow soft paraffin 80%, Liquid paraffin-10% तथा Wool fat 10% होना चाहिए।

Eye ointment निर्माण में सभी घटक द्रव्य को water bath पर द्रवित कर filter paper से छानते हैं और उसके बाद एक घंटे तक 150° C तापमान पर विसंक्रमित करते हैं। जो घटक द्रव्य जल में घुलनशील है, उनको शुद्ध जल में घोलकर autoclave में heating द्वारा विसंक्रमित करते हैं। फिर पहले द्रवित किये हुए base में शीतल होने तक stirring करते हुए मिलाते हैं। उसके बाद विसंक्रमित ointment tube में भरकर तुरन्त बन्द कर देते हैं।

जो घटक द्रव्य जल में घुलनशील नहीं है, उनका सूक्ष्म चूर्ण बनाते हैं, फिर चूर्ण को द्रवित Ointment base में मिलाते हैं और तुरन्त Ointment tubes में भरकर पैकिंग कर देते हैं।

Eye ointment दो विधियों से निर्मित किये जाते हैं:-

(i) Trituration method (ii) Fusion method.

Eye ointment का निर्माण aseptic condition में होना चाहिए तथा पैकिंग भी sterile container में होनी चाहिए। इनकी packing के लिए sterilized tin, aluminium or plastic collapsible tube का प्रयोग किया जाता है।

नस्योपचारार्थ कल्पना

औषधद्रव्यों का चूर्ण, स्वरस, क्वाथ, स्नेह (औषध सिद्ध या असिद्ध), क्षीरपाक तथा औषध द्रव्यों का धूमपान नासा से लेने को नस्य कर्म (नासा कर्म) कहते हैं। जो नासा के लिए हितकर हो, उसे नस्य कहते हैं। नासा से सम्बन्धित विकारों में नस्य का प्रयोग किया जाता हैं। नावन और नस्तः कर्म नस्य के पर्याय है।

शिरो रोगों में नस्य प्रयोग लाभकारी होता है, क्योंकि नासा को शिर का द्वार कहा गया है–

नस्तः कर्म च कुर्वीत शिरोरोगेषु शास्त्रवित्।
द्वारं हि शिरसो नासा तेन तद्व्याप्य हन्ति तान्।। (च. सि. 9/88)
औषधमौषधसिद्धो वा स्नेहो नासिकाभ्यां दीयत इति नस्यम्।
(सु. चि. 40/21)

नासायां प्रणीयमानमौषधं नस्यम्, नावनं, नस्तः कर्मेति च संज्ञा लभते।
(अ. सं. सू. 29/2)

नस्यं तत् कथ्यते धीरैर्नासाग्राह्यं यदौषधम्।
नावनं नस्यकर्मेति तस्य नामद्वयं मतम्।। (शा. सं. उ. ख. 8/1)

नस्य के भेदः–

तद् द्विविधम् शिरोविरेचनं स्नेहनं च। (सु. चि. 40/21)
नस्यभेदो द्विधाप्रोक्तो रेचनः स्नेहनस्तथा।
रेचनं कर्षणं प्रोक्तं स्नेहनं बृंहणं मतम्।। (शा. सं. उ. ख. 8/2)

अर्थात् कर्म भेद से नस्य को स्नेहन एवं शिरोविरेचन दो प्रकार का माना है। शिरोविरेचन नस्य कर्षण (अपतर्पण) और स्नेहन नस्य को बृंहण कहा जाता है।

नावनं चावपीडश्च ध्मापनं धूम एव च।
प्रतिमर्शश्च विज्ञेयं नस्तः कर्म तु पञ्चधा।। (च. सि. 9/89)

तद् द्विविधमपि पञ्चधा। तद्यथा–नस्यं, शिरोविरेचनं, प्रतिमर्शो, अवपीड, प्रधमनं च। तेषु नस्यं प्रधानं शिरोविरेचनं च। नस्यविकल्पः प्रतिमर्शः, शिरोविरेचन विकल्पोऽवपीडः प्रधमनं च, ततो नस्यशब्द पञ्चधानियमितः।

(सु. चि. 40/21)

अर्थात् आचार्य चरक ने नावन, अवपीड, ध्मापन, धूम और प्रतिमर्श भेद से नस्य के पाँच प्रकार बतलाये हैं। इसी प्रकार आचार्य सुश्रुत ने भी द्विविध (शिरोविरेचन एवं स्नेहन) नस्य के ही नस्य, शिरोविरेचन, प्रतिमर्श, अवपीड एवं प्रधमन पाँच प्रकार बतलाये है। जिनमें नस्य एवं शिरोविरेचन को प्रधान माना गया है। नस्य का विकल्प प्रतिमर्श और शिरोविरेचन का विकल्प अवपीड एवं प्रधमन मानकर नस्य को पाँच प्रकार का माना गया है।

एवं तद्रेचनं कर्म तर्पण शमनं त्रिधाः।
स्तम्भ सुप्तिगुरुत्वाद्याः श्लैष्मिका ये शिरोगदा : ।।
शिरोविरेचनं तेषु नस्तः कर्म प्रशस्यते।
ये च वातात्मका रोगाः शिरः कम्पार्दितादय : ।।
शिरसस्तर्पणं तेषु नस्तः कर्म प्रशस्यते।
रक्तपित्तादिरोगेषु शमनं नस्यमिष्यते ।।

(च. सि. 9/92-94)

अर्थात् आचार्य चरक ने कर्म भेद से रेचन (शिरोविरेचन), तर्पण और शमन भेद से भी नस्य को तीन प्रकार का माना है। शिरःस्तम्भ, शून्यता, गुरुता आदि कफज विकारों में शिरोविरेचन, शिर कम्प, अर्दित आदि वातज रोगों में तर्पण (स्नेहन) और रक्तज एवं पित्तज रोगों में शमन नस्य के प्रयोग का निर्देश दिया है।

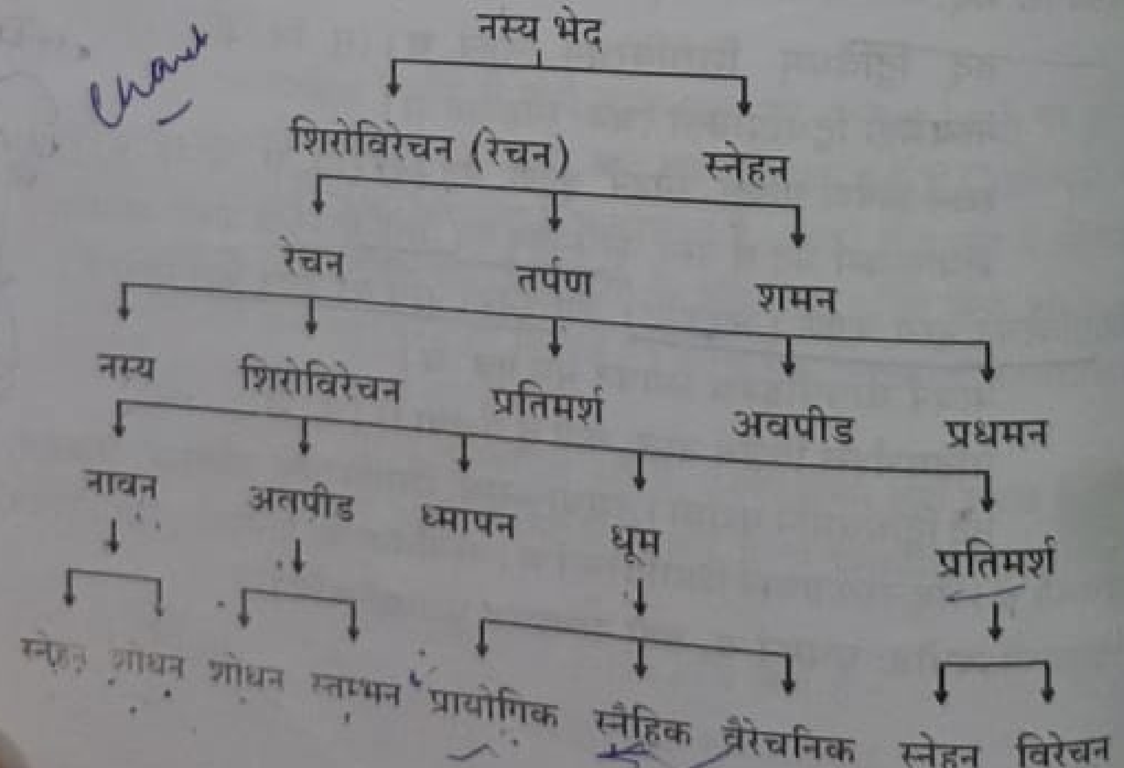

नस्यः-

"तत्र यः स्नेहार्थ शून्यशिरसां ग्रीवास्कन्धोरसां च बलजननार्थं दृष्टि-प्रसादजननार्थं वा स्नेहो विधीयते तस्मिन् वैशेषिको नस्यशब्दः ।।"

(सु.चि.40/22)

अर्थात् शून्यशिर, ग्रीवा, स्कन्ध, वक्षभाग पर बलवर्धन और नेत्रों को निर्मल करने के लिए सामान्यतया नस्य या नावन शब्द सभी प्रकार के नस्यों के लिए प्रयुक्त होता है। सिद्ध स्नेह का प्रयोग करने को विशेष रूप से नस्य कहा जाता है। सामान्यतया नस्य या नावन शब्द सभी प्रकार के नस्यों के लिए प्रयुक्त होते हैं।

शिरोविरेचनः-

"शिरोविरेचनद्रव्यैर्यो दीयते स शिरोविरेचनः ।।"

(सु. चि. 40/21डल्हण)

अर्थात् पिप्पली, विडङ्ग आदि शिरोविरेचन द्रव्यों या उनसे सिद्ध स्नेह से दिया गया नस्य शिरोविरेचन कहा जाता है।

नावनः-

इह तु नावनशब्देनैव शिरोविरेचनमपि गृहीतं,
यदुक्तं- स्नेहनं शोधनं चैव नावनं द्विविधं स्मृतम् ।।

(च. सि. 9/90)

अर्थात् आचार्य चरक के नावन शब्द से आचार्य सुश्रुत के नस्य और शिरोविरेचन दोनों का समावेश हो जाता है। नावन के स्नेहन और शोधन दो भेद माने गए हैं।

अवपीडः-

"अवपीड्य यत्र कल्कादीनि दीयन्ते इत्यवपीडः ।"

(च. सि. 9/90-92 पर चक्रपाणि टीका)

"श‍ृतशीतस्वरसादीनां पिचुनाऽवपीडनात् अवपीडः ।"

(सु. चि. 40/21 डल्हण)

कल्कीकृतादौषधाद्यः पीडितो निःसृतो रसः ।
सोऽवपीडः समुद्दिष्टस्तीक्ष्णद्रव्य समुद्भवः ।।

(शा. सं. उ. ख. 8/12)

अर्थात् तीक्ष्ण औषधियों के कल्क को यन्त्र या वस्त्र से निचोड़कर प्राप्त स्वरस अथवा उनके क्वाथ, शीत आदि के द्वारा दिये गये नस्य को अवपीड कहते हैं। यह शोधन एवं स्तम्भन भेद से दो प्रकार का होता है।

(5) प्रधमन या ध्मापनः-

"प्रध्मापनस्य तु। तत् षडङ्गुलया नाड्या ध्मेच्चूर्णं मुखेन तु।"

(च. सि. 9/107)

"चूर्णस्य मुखेन नाड्या वा प्रध्मापनात् प्रधमनम्।।"

(सु. चि. 40/21 डल्हण)

षडङ्गुला द्विवक्त्रा वा नाडी चूर्णं तथा धमेत्।
तीक्ष्णं कोलमितं वक्त्रवातैः प्रधमनं हि तत्।।

(शा. स. उ. ख. 8/13)

अर्थात् छः अंगुल लम्बी, दोनों ओर खुले मुख वाली नली के अन्दर एक कोल (6 ग्राम) तीक्ष्णौषधियों का चूर्ण भरकर नली के एक सिरे को नाक के छिद्र में लगाकर दूसरे सिरे के मुख से फूँक मारने को प्रधमन नस्य कहते हैं।

प्रधमन का उपयोगः-

चेतोविकारकृमिविषाभिपन्नानां चूर्णं प्रधमेत्।

(सु. चि. 40/46)

अर्थात् इस नस्य का उपयोग चेतना की विकृति, कृमि और विष से पीड़ित रोगियों का विरेचन द्वारा स्रोतोशोधन करने में किया जाता है।

प्रधमन नस्यः-

रोहितमत्स्यपित्तेन भावितं सैन्धवं वचा।।
मरिचं पिप्पली शुण्ठी कङ्कोलं लशुनं पुरम्।
कट्फलं चेति तच्चूर्णं देयं प्रधमनं बुधैः।।

(शा. सं. उ. ख. 8/22-23)

अर्थात् सैंधलवण, वचा, मरिच, पिप्पली, सोंठ, शीतलचीनी, रसोन, गुग्गुलु और कायफल का सूक्ष्म चूर्ण करके रोहित मछली के पित्त की भावना देकर प्रधमन नस्य का निर्माण करके प्रयोग किया जाता है। इसके द्वारा उन्माद, अपस्मार, अपतन्त्रक आदि रोग दूर हो जाते हैं।

(6) (1) **मर्श एवं प्रतिमर्शः-**

"प्रतिमर्शो भवेत्स्नेहो निर्दोष उभयार्थकृत्।"

(च. सि. 9/92)

"तत्र स्नेहो मात्राभेदाद् द्विधा। मर्शः प्रतिमर्शश्च।"

(अ. सं. सू. 29/8)

प्रतिमर्शस्तु नस्यार्थं करोति न च दोषवान्।।
ततः स्नेहाङ्गुलिं दद्यात् प्रातर्निशि च सर्वदा।
न चोच्छिङ्घेदरोगाणां प्रतिमर्शः स दार्ढ्यकृत्।।

(च. सि. 9/117)

अर्थात् मर्श एवं प्रतिमर्श नस्य में मात्रा भेद से स्नेहों को नाक द्वारा प्रयोग में लिया जाता है। मर्श नस्य को विशेषरूप से रोगों में प्रयुक्त किया जाता है। जबकि प्रतिमर्श नस्य को प्रतिदिन लिया जा सकता है। आचार्य चरक ने प्रतिमर्श को प्रातः एवं सायं लेने का निर्देश दिया है। यह दोष वर्धक नहीं होने से शरीर को दृढ़ करने का कार्य करता है।

प्रतिमर्श विधिः-

प्रतिमर्शस्य मात्रा तु द्विद्विबिन्दुमिता मता।
प्रत्येकशो नस्तकयोः स्नेहेनेति विनिश्चितम्।।

(शा. सं. उ. ख. 8/37)

अर्थात् प्रतिमर्श नस्य की दो-दो बूँद की मात्रा में दोनों नाक में विधिपूर्वक प्रयुक्त किया जाता है।

ईषदुच्छिक्कनात् स्नेहो यदा वक्त्रं प्रपद्यते।
नस्ये निषिक्तं तं विद्यात् प्रतिमर्श प्रमाणतः।।
उच्छिन्दन्न पिबेच्चैतन्निष्ठीवेन्मुखमागतम्।

(शा. सं. उ. ख. 43-43½)

अर्थात् नाक में स्नेह डालने पर कुछ स्नेह मुख में पहुँच जाये इतना स्नेह प्रतिमर्श की एक मात्रा होती है। इसको पीना नहीं चाहिए, बल्कि मुख में गये हुए स्नेह को थूँक देना चाहिए।

मर्श एवं प्रतिमर्श में भेदः-

आशुकृच्चिरकारित्वं गुणोत्कृष्टावकृष्टता।।
मर्शे च प्रतिमर्शे च न विशेषो भवेद्यदि।
को मर्श सपरिहारं सापदं च भजेत्ततः।।
अच्छपानविचाराख्यौ कुटीवातातपस्थिती।
अन्वासमात्राबस्ति च तद्वदेव विनिर्दिशेत्।।

(अ. सं. सू. 29/25-27)

क्र.सं.	मर्श	प्रतिमर्श
1	मात्रा 8 बिन्दु	मात्रा 2 बिन्दु
2	विशेषकर रोगनाशक	स्वस्थावस्था में प्रयुक्त
3	शीघ्रप्रभावकारी	देर से प्रभावकारी
4	उत्तम गुणयुक्त	अल्पगुणयुक्त
5	पथ्यापथ्यपालन	पथ्यापथ्यपालन नहीं
6	उपद्रवकारक	निरूपद्रवकारक

मर्श एवं प्रतिमर्श मात्राः-

स्नेहे ग्रन्थिद्वयं यावन्निमग्ना चोद्धृता ततः ।।
तर्जनीयं स्रवेद् बिन्दुं सा मात्रा बिन्दुसंज्ञिता ।
एवं विधैर्बिन्दुसंज्ञैरष्टभिः शाण उच्यते ।।
स देयो मर्शनस्ये तु प्रतिमर्शो द्विबिन्दुकः ।

(शा. सं. उ. ख. 8/38-39)

अर्थात् तर्जनी अंगुली के दो पर्वों को स्नेह में डुबोकर बाहर निकालने पर जो बूँद गिरती है, उस मात्रा को एक बिन्दु कहा जाता है। इस प्रकार की आठ बिन्दुओं का एक शाण होता है, जो मर्शनस्य में प्रयोग के लिए लिया जाता है। जबकि प्रतिमर्श की मात्रा दो बिन्दु ही होती है।

नस्य विधिः-

अथ पुरुषाय शिरोविरेचनीयाय त्यक्तमूत्रपुरीषाय भुक्तवते व्यभ्रे काले दन्तकाष्ठधूमपानाभ्यां विशुद्धवक्त्रस्रोतसेपाणिताप परिस्विन्नमृदितगलकपोल-ललाटप्रदेशाय वातातपरजोहीने वेश्मन्युत्तानशायिने प्रसारितकरचरणाय किञ्चित् प्रविलम्बित शिरसे वस्त्राच्छादितनेत्राय वामहस्तप्रदेशिन्यग्रोन्नामित नासाग्राय विशुद्धस्रोतसि दक्षिणहस्तेन स्नेहमुष्णाम्बुना प्रतप्तं रजतस्वर्णताम्रमणिमृत्पात्र-शुक्तीनामन्यतमस्थं शुक्त्या पिचुना वा सुखोष्णं स्नेहमद्रुतमासिञ्चेदव्यवच्छिन्न धारं यथा नेत्रे न प्राप्नोति ।।(सु. चि. 40/25)

अर्थात् पुरुष को नस्य के लिए मेघरहित साफ आकाश के समय वायु, धूल, धूम रहित स्थान पर मलमूत्रादि से निवृत्त, धूमपान द्वारा मुखं स्रोतों का शोधन किये हुए, ललाट, गल, कपोल को स्विन्न किये हुए रोगी को शय्या पर उत्तान सुलाया जाता है। हाथ पैरों को फैलाकर पैरों को ऊँचा एवं शिर भाग को नीचा रखकर उसके आँखों को स्वच्छ वस्त्र से ढ़ककर बायें हाथ की प्रदेशिनी अंगुली से नासाग्र को ऊपर उठाकर दाहिने हाथ से नासारन्ध्र में शुक्ति या पिचु द्वारा धीरे-धीरे एक धारा में सुखोष्ण स्नेह

को डाला जाता है। यह स्नेह उष्ण जल से गर्म किया हुआ और स्वर्ण, रजत, ताम्र, मणि, मृत्तिका पात्र एवं शुक्ति में रखा होना चाहिए।

स्नैहिक नस्य मात्रा:-

तस्यप्रमाणमष्टौ बिन्दवः प्रदेशिनीपर्वद्वयनिःसृता प्रथम मात्रा, द्वितीया शुक्तिः, तृतीया पाणिशुक्ति, इत्येतास्तिस्रो मात्रा यथाबलं प्रयोज्याः ।।

(सु. चि. 40/28)

अर्थात् प्रदेशिनी अंगुली के दो पर्वों से टपके हुये 8 बिन्दुओं की प्रथम मात्रा, 32 बूँद की द्वितीय मात्रा और 64 बूँद की तृतीय मात्रा को बल के अनुसार प्रयोग किया जाना चाहिए।

शिरोविरेचन स्नेह मात्रा:-

चत्वारो बिन्दवः षड्वा तथाऽष्टौ वा यथाबलम्।
शिरोविरेकस्नेहस्य प्रमाणमभिनिर्दिशेत् ।।

(सु. चि. 40/36)

अर्थात् चार बिन्दु, छः बिन्दु और आठ बिन्दु शिरोविरेचन स्नेह नस्य को बल के अनुसार प्रयोग किया जाना चाहिए।

नस्य काल:-

कफपित्तानिलध्वंसे पूर्वमध्यापराह्णके।
दिने तु गृह्यते नस्यं रात्रावप्युत्कटे गदे ।।

(शा. सं. उ. ख. 8/3)

अर्थात् कफ को दूर करने के लिए प्रातःकाल, पित्त को दूर करने के लिए दोपहर और वात को दूर करने के लिए सायंकाल में नस्य का प्रयोग किया जाना चाहिए। सन्यास आदि जटिल रोगों में रात्रि में भी नस्य का प्रयोग किया जा सकता है।

नस्यार्थ द्रव्यों का परिमाण:-

नस्यकर्मणि दातव्यं शाणैकं तीक्ष्णमौषधम् ।।
हिङ्गु स्याद्यवमात्रं तु माषैकं सैन्धवं मतम्।
क्षीरं चैवाष्टशाणं स्यात् पानीयं च त्रिकार्षिकम् ।।
कार्षिकं मधुरं द्रव्यं नस्यकर्मणि योजयेत्।

(शा. सं. उ. ख. 8/9-10½)

अर्थात् त्रिकटु आदि तीक्ष्णौषध द्रव्य एक शाण (3 ग्राम), हिंगु एक यव, सैन्धवलवण एक माशा, दूध दो तोला (24 मि. ली.), जल तीन तोला (36 मि.

ली.) और शर्करा, मधु आदि मधुर द्रव्य एक तोला (12 ग्राम) की मात्रा में लेकर बनाये गये द्रव का नस्य में प्रयोग करना चाहिए।

नस्यधारण काल:-

पञ्चसप्तदशैव स्युर्मात्रा नस्यस्य धारणे ।।
उपविश्याथ निष्ठीवेन्नासावक्त्रगतं द्रवम् ।
वामदक्षिणपार्श्वाभ्यां निष्ठीवेत् सम्मुखे न हि ।।
नीते नस्ये मनस्तापं रजः क्रोधं च सन्त्यजेत् ।
शयीत निद्रां त्यक्त्वा च प्रोत्तानो वाक्शतं नरः ।।
तथा विरेचनश्चान्ते धूमो वा कवलो हितः ।

(शा. सं. उ. ख. 8/53-55½)

अर्थात् नस्य को पाँच मात्रा, सात मात्रा अथवा दश मात्रा तक ही धारण करना चाहिए। इसके पश्चात् रोगी को उठकर नाक या मुख में गये हुए द्रव को बायें या दायें थूँक देना चाहिए। सामने की तरफ नहीं थूँके। नस्य के पश्चात् मानसिक सन्ताप, धूल और क्रोध का त्याग करें। फिर रोगी निद्रा को त्यागकर 100 मिनट तक केवल चित्त ही लेटा रहे। अन्तः में विरेचन धूम अथवा कवल का प्रयोग हितकारी होता है।

नस्य निषेध:-

नस्येष्वासिच्यमानेषु शिरोनैव प्रकम्पयेत् ।
न कुप्येन्न प्रभाषेत नोच्छिन्देन्न हसेत्तथा ।
एतै हि विहितः स्नेहो नैवान्तः संप्रपद्यते ।
ततः कासप्रतिश्यायशिरोऽक्षिगदसम्भवः ।।
शृङ्गाटकमभिप्लाव्य स्थापयेन्न गिलेद् द्रवम् ।।

(शा. सं. उ. ख. 8/51-52½)

अर्थात् नस्य प्रयोग के समय शिर हिलाना, क्रोध करना, बात करना, सड़कना, हँसना त्यागकर सम्यक् विधि से शान्त चित्त लेटा रहना चाहिए। इन वर्जित कार्यों को करने पर स्नेह के शिर में नहीं पहुँचने के कारण कास, प्रतिश्याय, शिरोरोग, नेत्ररोग उत्पन्न हो सकते हैं। इसलिए स्नेह को शृङ्गाटक तक ले जाकर स्थिर रखने का प्रयत्न करे और इसको निगलना नहीं चाहिए।

नस्य गुणः-

नस्येन रोगाः शाम्यन्ति नराणामूर्ध्वजत्रुजाः।
इन्द्रियाणां च वैमल्यं कुर्यादास्यं सुगन्धि च।।
हनुदन्तशिरोग्रीवात्रिकबाहूरसां बलम्।
वलीपलितखालित्यव्यङ्गानां चाप्यसंभवम्।।

(सु. चि. 40/54-55)

अर्थात् नस्य का प्रयोग करने पर ऊर्ध्वजत्रुगत रोग नष्ट होकर इन्द्रियां निर्मल एवं मुख सुगन्धित हो जाता है। हनु, दाँत, शिर, ग्रीवा, कटि, बाहु और वक्ष बलवान् हो जाते हैं और वली, पलित, खालित्य और व्यङ्ग रोगों की उत्पत्ति नहीं होती है।

सम्यक् नस्य लक्षणः-

लाघवं शिरसो योगे सुखस्वप्नप्रबोधनम्।
विकारोपशमः शुद्धिरिन्द्रियाणां मनः सुखम्।।

(सु. चि. 40/33)

अर्थात् नस्य के सम्यक् रूप से होने पर शिर में हल्कापन, सुखपूर्वक सोना और जागना, विकारोपशमन, इन्द्रियों की शुद्धि और मन का सुखपूर्वक प्रसन्न रहना ये लक्षण होते हैं।

धूमपानार्थ कल्पना

औषध द्रव्यों के धूम का शरीर पर प्रयोग दो प्रकार से किया जाता है :-1. धूमपान 2. धूपन।

धूमपान:-

ऊर्ध्वजत्रुगत रोगों में नासा या मुख द्वारा औषध द्रव्यों का धूम प्रवेश कराना धूमपान कहलाता है। औषध द्रव्यों की वर्ति बनाकर जलाने से उत्पन्न धूम का नासा या मुख द्वारा ग्रहण किया जाता है। नस्य कर्म के पश्चात् जब कफ विलयीभूत होकर गल-नासा व शिर के स्रोतसों में स्थिर हो जाता है और रोगों के उत्पन्न होने की सम्भावना हो सकती है, इसलिए कफनाशक धूमपान कराया जाता है।

नस्य, अञ्जन, निद्रा आदि के अन्त में कफनाशक धूमपान करना हितकारी होता है।

धूमपान भेदः-

विज्ञेयस्त्रिविधो धूमः प्रागुक्तः शमनादिकः ।।

(च. सि. 9/91)

धूमः पञ्चविधो भवतिः तद्यथा प्रायोगिकः, स्नेहिको, वैरेचनिकः, कासघ्नो, वामनीयश्चेति ।। (सु. चि. 40/3)

स त्रिविधो भवति शमनो बृंहणः शोधनश्च। तथा कासघ्नो वामनो व्रणधूपनश्च ।। तत्र शमनः प्रायोगिको मध्यम इति पर्यायः। बृंहणः स्नेहनो मृदुरिति। शोधनो विरेचनस्तीक्ष्ण इति च। (अ. सं. सू. 30/2)

धूमस्तु षड्विधः प्रोक्तः शमनो बृंहणस्तथा।
रेचनः कासहा चैव वामनो व्रणधूपनः ।।
शमनस्य तु पर्यायौ मध्यः प्रायोगिकस्तथा।
बृंहणस्यापि पर्यायौ स्नेहनो मृदुरेव च ।।
रेचनस्यापि पर्यायौ शोधनस्तीक्ष्ण एव च।

(शा. सं. उ. ख. 9/1-2)

अर्थात् आचार्य **चरक** ने प्रायोगिक, स्नैहिक एवं वैरेचनिक भेद से धूमपान को तीन प्रकार का माना है। आचार्य **सुश्रुत** ने प्रायोगिक, स्नैहिक, वैरेचनिक, कासघ्न और वामनीय भेद से धूमपान को पाँच प्रकार का माना है। आचार्य **वाग्भट** एवं आचार्य शार्ङ्गधर ने शमन, बृंहण, शोधन (रेचन), कासघ्न, वामन और व्रणधूपन भेद से धूमपान को छः प्रकार का माना है। आचार्य सुश्रुत ने व्रणधूपन को भेद नहीं मानते हुए इसका पृथक् अध्याय में वर्णन किया है। शमन धूमपान के पर्याय मध्यम एवं प्रायोगिक, बृंहण धूमपान के पर्याय स्नैहिक एवं मृदु तथा रेचन धूमपान के पर्याय शोधन एवं तीक्ष्ण माने गये हैं।

1. प्रायोगिक धूमपानः-(हरेणुकादि प्रायोगिक धूमवर्ति)

हरेणुकां प्रियङ्गुं च पृथ्वीकां केशरं नखम् ।।
ह्रीवेरं चन्दनं पत्रं त्वगेलोशीरपद्मकम्।
ध्यामकं मधुकं मांसी गुग्गुल्वगुरुशर्करम् ।।
न्यग्रोधोदुम्बराश्वत्थप्लक्षलोध्रत्वचःशुभाः ।
वन्यं सर्जरसं मुस्तं शैलेयं कमलोत्पले ।।
श्रीवेष्टकं शल्लकीं च शुकबर्हमथापि च।
पिष्ट्वा लिम्पेच्छरेषीकां तां वर्तिं यवसन्निभाम् ।।

अङ्गुष्ठसंमितां कुर्यादष्टाङ्गुलसमां भिषक्।
शुष्कां निगर्भां तां वर्तिं धूमनेत्रार्पितां नरः।।
स्नेहाक्तामग्निसंप्लुष्टां पिबेत्प्रायोगिकीं सुखाम्।।

(च. सू. 5/20-24½)

अर्थात् हरेणुक, प्रियङ्गु, कृष्णजीरक, नागकेशर, नख, सुगन्धबाला, चन्दन, तेजपत्र, दालचीनी, इलायची, खस, पद्मकाष्ठ, गन्धतृण विशेष, मुलेठी, जटामांसी, गुग्गुलु, अगुरु, शर्करा, वटत्वक्, उदुम्बरत्वक्, पीपलत्वक्, प्लक्ष त्वक्, लोध्रत्वक्, सर्जरस, नागरमोथा, शैलेय, कमलनाल, नीलकमल, गन्धविरोजा, शल्लकी और शुकबर्ह (ग्रन्थिपर्णीः) इन संपूर्ण औषधि द्रव्यों का सूक्ष्म चूर्ण करके जल के साथ पीसकर आठ अंगुल लम्बे शरकण्डे पर लेप किया जाता है। जिसकी मोटाई यव के समान होती है। फिर सूखने पर शरकण्डी को बाहर निकाल स्नेहलिप्त करके धूमनेत्र में रखकर अग्नि से जलाकर धूमपान का प्रयोग किया जाता है।

तत्र स्नैहिको वातं शमयति, स्नेहादुपलेपाच्चः वैरेचनः श्लेष्माणमुत्क्ले-श्यापकर्षति, रौक्ष्यातैक्ष्ण्यादौष्ण्या द्वैशद्याच्च, प्रायोगिकः श्लेष्माणमुत्क्लेशयत्यु-त्क्लिष्टं चापकर्षति शमयति वातं साधारणत्वात् पूर्वाभयामिति।।

(सु. चि. 40/14)

अर्थात् स्नेह और उपलेप से स्नैहिक धूमपान वातशामक, रूक्ष, तीक्ष्ण, उष्ण और विशद होने से वैरेचनिक धूम श्लेष्मा को उत्क्लेशित करके बाहर निकाल देता है। प्रायोगिक धूमपान स्नैहिक एवं वैरेचनिक साधारण धूमपान के तुल्य गुणधर्मों के कारण कफ को उत्क्लेशित करता है। और उत्क्लेशित कफ को बाहर निकालकर वात का शमन करता है। यह स्वस्थ व्यक्ति में प्रयोग किया जाता है।

2. स्नैहिक धूमपानः-(वसादि स्नैहिकी धूम वर्तिः)

वसाघृतमधूच्छिष्टैर्युक्तियुक्तैर्वरौषधैः।
वर्तिमधुरकैः कृत्वा स्नैहिकीं धूममाचरेत्।।

(च. सू. 5/25)

स्नेहफलसारमधूच्छिष्टसर्जरसगुग्गुलु प्रभृतिभिः स्नेहमिश्रैः स्नेहिके।।

(सु. चि. 40/4)

अर्थात् वसा, घृत, मोम, मधुरक द्रव्य (जीवनीयगुण की औषधियाँ) सर्जरस, एरण्डबीज, देवदारु, गुग्गुलु आदि द्रव्यों को युक्तिपूर्वक पूर्वविधि से स्नैहिक वर्ति का निर्माण करके स्नैहिक धूमपान का प्रयोग करना चाहिए।

3. **वैरेचनिक धूमपानः-(अपराजितादि वैरेचनिक धूमवर्ति)**

श्वेता ज्योतिष्मती चैव हरितालं मनःशिला।
गन्धाश्चागुरुपत्राद्या धूमं मूर्धविरेचने ।।

(च. सू. 5/26)

नतकुष्ठे स्त्रावयतो धूमवर्ति प्रयोजिते।
मस्तुलुङ्गं विशेषेण तस्मात्तं नैव योजयेत् ।।

(च. सू. 5/26 चक्रपाणि)

अर्थात् श्वेत अपराजिता, मालकांगनी, शुद्ध हरताल, शुद्ध मनःशिला, अगुरु, तेजपत्र आदि सुगन्धित औषधि द्रव्यों को समान मात्रा में लेकर इनका चूर्ण बनाकर जल के साथ पीसकर धूमवर्ति बनाकर शिरोवैरेचनिक धूमपान का प्रयोग करना चाहिए। आचार्य चक्रपाणि ने तगर एवं कुष्ठ का धूमपान में प्रयोग करने से मस्तुलुङ्ग का स्राव होने के कारण निषेध किया है। अन्य आचार्यों सुश्रुत एवं वाग्भट ने भी तगर एवं कुष्ठ का निषेध किया है।

4. **कासघ्न धूमपानः-(बृहत्यादि कासघ्न धूमवर्ति)**

बृहतीकण्टकारिकात्रिकटुकासमर्द हिंग्विङ्गुदीत्वङ्मनःशिलाच्छिन्नरूहाकर्कटशृङ्गी प्रभृतिभिः कासहरैश्च कासघ्ने ।। (सु. चि. 40/4)

अर्थात् बृहती, कण्टकारी, शुण्ठी, मरिच, पिप्पली, कासमर्द, हिंङ्गु, इंगुदी, दालचीनी, शुद्ध मनःशिला, गुडूची, कर्कटशृङ्गी आदि औषधियों के सूक्ष्म चूर्ण को जल के साथ पीसकर धूमवर्ति बनाकर धूमपान का प्रयोग करना चाहिए।

5. **वामनीय धूमपानः-**

स्नायुचर्मखुरशृङ्गकर्कटकास्थिशुष्कमत्स्यवल्लूरकृमि प्रभृतिभिर्वामनीयैश्च वामनीये ।। (सु. चि. 40/4)

अर्थात् स्नायु, चर्म, खुर, शृङ्ग (सींग) कर्कटास्थि, शुष्क मछली, शुष्क मांस, शुष्क केंचुआ आदि को सूक्ष्म चूर्ण कर जल से पीसकर धूमवर्ति बनाकर धूमपान का प्रयोग किया जाना चाहिए। उपरोक्त वामक द्रव्यों की वर्ति से उत्क्लेश होकर वमन हो जाता है।

धूमनेत्रः-

धूमनेत्रं तु कनिष्ठिका परिणाहमग्रे कलायमात्रस्रोतो मूलेऽङ्गुष्ठपरिणाहं धूमवर्तिप्रवेशस्रोतोऽङ्गुलान्यष्ट चत्वारिंशत् प्रायोगिके, द्वात्रिंशत् स्नेहने, चतुर्विंशतिः वैरेचने, षोडशाङ्गुलं कासघ्ने वामनीये च। एतेऽपि कोलास्थिमात्रच्छिद्रे भवतःव्रणनेत्रमष्टाङ्गुलं व्रण धूपनार्थं कलायपरिमण्डलं कुलत्थवाहिस्रोत इति।।

(सु. चि. 40/5)

अर्थात् स्वर्ण, रजत, नाग, वंग, कांस्य, ताम्र आदि बस्तिनेत्र निर्माण द्रव्यों से ही धूमनेत्र का निर्माण करना चाहिए। प्रायोगिक धूमनेत्र कनिष्ठिका अंगुली के बराबर मोटा, जिसका आगे का भाग मटर के बराबर छेद वाला और मूल अंगुष्ठ के समान मोटा एवं 48 अंगुल लम्बी धूमवर्ति प्रवेश योग्य होना चाहिए। इसी प्रकार स्नैहिक धूमनेत्र 32 अंगुल लम्बी, वैरेचनिक 24 अंगुल लम्बी, कासघ्न एवं वामनीय 16 अंगुल लम्बी धूमवर्ति प्रवेश योग्य होनी चाहिए। इनका छिद्र बेर की गुठली के समान होना चाहिए। व्रणधूपनार्थ व्रणनेत्र आठ अंगुल लम्बा, मटर की मोटाई वाला और कुलत्थ बीज प्रवेश योग्य छिद्र वाला होना चाहिए।

धूमपान विधि:-

अथ सुखोपविष्टः सुमना ऋज्वधोदृष्टिरतन्द्रित स्नेहाक्त दीप्तायां वर्ति नेत्र स्रोतसि प्रणिधाय धूमं पिबेत्।। (सु. चि. 40/6)

मुखेन तं पिबेत् पूर्वं नासिकाभ्यां ततः पिबेत्।
मुखपीतं मुखेनैव वमेत् पीतं च नासया।।
मुखेन धूममादाय नासिकाभ्यां न निर्हरेत्।
तेन हि प्रतिलोमेन दृष्टिस्तत्र निहन्यते।।
विशेषस्तु प्रायोगिकं घ्राणेनाददीत, स्नैहिकं
मुखनासाभ्यां, नासिकया वैरेचनिकं मुखेनैवेतरौ।।

(सु. चि. 40/7-9)

अर्थात् प्रसन्नचित्त से सुखपूर्वक बैठकर शरीर सीधा एवं दृष्टि नीचे रखकर, आलस्य त्यागकर स्नेहाक्त अग्रभाग वाली धूमवर्ति को धूमनेत्र में रखकर प्रज्वलित करके धूमपान करना चाहिए। सर्वप्रथम मुख और फिर नाक से धूमपान करना चाहिए। मुख एवं नाक दोनों द्वारा पीये गये धूमपान को केवल मुख से ही बाहर निकाला जायें। मुख से धूमपान करके नाक द्वारा प्रतिलोम धूम निकालने पर दृष्टि का नाश हो जाता है। विशेष रूप से प्रायोगिक धूमपान नाक द्वारा, स्नैहिक धूमपान मुख एवं नाक द्वारा, वैरेचनिक नाक द्वारा और कासघ्न एवं वामक धूमपान मुख द्वारा ही सेवन किया जाना चाहिए।

धूमपान काल:-

प्रयोगपाने तस्याष्टौ कालाः संपरिकीर्तिताः।।
वातश्लेष्मसमुत्क्लेशः कालेष्वेषु हि लक्ष्यते।
स्नात्वा भुक्त्वा समुल्लिख्य क्षुत्वा दंतान्निघृष्य च।।

नावनाञ्जननिद्रान्ते चात्मवान् धूमपो भवेत्।
तथा वातकफात्मानो न भवन्त्यूर्ध्वजत्रुजाः।।
रोगास्तस्य तु पेयाः स्युरापानास्त्रिस्त्रयस्त्रयः।
परं द्विकालपायी स्यादह्नः कालेषु बुद्धिमान्।।
प्रयोगे स्नैहिके त्वेकं वैरेच्यं त्रिचतुः पिबेत्।

(च. सू. 5/33-36½)

अर्थात् धूमपान से वातकफ का उत्क्लेश होकर निर्हरण होने के लिए प्रायोगिक धूमपान के आठ कालों का आचार्य चरक ने निर्देश दिया है। यथाः-

1. स्नान के बाद
2. भोजन के बाद
3. वमन के बाद
4. छींक के बाद
5. दातौन के बाद
6. नस्य के बाद
7. अञ्जन के बाद
8. निद्रा के बाद

इस प्रकार धूमपान करने से वातकफजरोग उत्पन्न नहीं होते हैं। इस प्रकार प्रायोगिक धूमपान को एक बार में तीन घूंट पीकर यह प्रक्रिया तीन बार अर्थात् कुल नौ घूंट का प्रयोग किया जाना चाहिए।

धूमपान के आठ कालों में दिन के समय प्रायोगिक धूमपान दो बार, स्नैहिक धूमपान एक बार और वैरेचनिक धूमपान तीन या चार बार पिया जाना चाहिए। रात्रि के समय धूमपान का प्रयोग नहीं करना चाहिए।

आद्यास्तु त्रयो धूमा द्वादशसु कालेषूपादेयाः। तद्यथा क्षुतदन्तप्रक्षालन-नस्यस्नान भोजनदिवास्वप्नमैथुनच्छर्दि मूत्रोच्चारहसितरुषितशस्त्रकर्मान्तेष्विति। तत्र विभागो मूत्रोच्चार क्षवथुहसितरुषित मैथुनान्तेषु स्नैहिकः स्नानः छर्दनदिवा-स्वप्नान्तेषु वैरेचनिकः दन्तप्रक्षालननस्य स्नान भोजनशस्त्रकर्मान्तेषु प्रायोगिक इति।। (सु. चि. 40/13)

अर्थात् आचार्य सुश्रुत ने स्नैहिक, वैरेचनिक और प्रायोगिक इन तीनों धूमपानों के बारह सेवनकाल बतलाये हैं। छींक, दातौन, नस्य, स्नान, भोजन, दिवास्वप्न, मैथुन, छर्दि, मूत्रत्याग, हंसना, क्रोध और शस्त्रकर्म के बाद इस प्रकार बारह सेवनकाल होते हैं। स्नैहिक धूमपान मूत्रत्याग, छींक, हंसना, क्रोध और मैथुन के अन्त में, वैरेचनिक धूमपान स्नान, छर्दि और दिवास्वप्न के अन्त में तथा प्रायोगिक धूमपान दातौन, नस्य, स्नान, भोजन और शस्त्रकर्म के अन्त में करना चाहिए।

धूमपान उपयोग :-

गौरवं शिरसः शूलं पीनसार्धावभेदकौ।
कर्णाक्षिशूलं कासश्च हिक्काश्वासौ गलग्रहः।।
दन्तदौर्बल्यमास्रावः श्रोत्रघ्राणाक्षिदोषजः।
पूतिघ्राणास्यगन्धश्च दन्तशूलमरोचकः।।
हनुमन्याग्रहः कण्डू क्रिमयः पाण्डुता मुखे।
श्लेष्मप्रसेको वैस्वर्य गलशुण्ड्युपजिह्विका।।
खालित्यं पिञ्जरत्वं च केशानां पतनं तथा।
क्षवथुश्चातितन्द्रा च बुद्धेर्मोहोऽतिनिद्रता।।
धूमपानात् प्रशाम्यन्ति बलं भवति चाधिकम्।
शिरोरुहकपालानामिन्द्रियाणां स्वरस्य च।।
न च वातकफात्मानो बलिनोऽप्यूर्ध्वजत्रुजाः।
धूमवक्त्रकपानस्य व्याधयः स्युः शिरोगताः।।

(च. सू. 5/27-32)

कासश्वासारोचकास्योपलेपस्वरभेद मुखास्रावक्षवथुवमथुक्रथतन्द्रा-निद्राहनुमन्या स्तम्भाःपीनसशिरोरोगकर्णाक्षिशूला वातकफ निमित्ताश्चास्य मुख-रोगा न भवन्ति।। (सु. चि. 40/16)

अर्थात् धूमपान का सम्यक् प्रयोग करने पर शिरोगौरव, शिरःशूल, प्रतिश्याय, अर्धावभेदक, कर्णशूल, नेत्रशूल, कास, श्वास, हिक्का, गलग्रह, दन्तदौर्बल्य, लालास्राव, कान एवं नाक विकार, पूतिनासा, मुखदुर्गन्धि, दन्तशूल, अरोचक, हनुस्तम्भ, मन्यास्तम्भ, कृमि, कण्डु, मुख पाण्डुता, कफप्रसेक, स्वरभेद, गलशुण्डी, उपजिह्विका, खालित्य, पालित्य, केशापतन, क्षवथु, अतितन्द्रा, अतिनिद्रा, और वातकफज रोगों का नाश हो जाता है।

धूमपान निषेधः-

परं त्वतः प्रवक्ष्यामि धूमो येषां विगर्हितः।
न विरिक्तः पिबेद् धूमं न कृते बस्तिकर्मणि।।
न रक्ती न विषेणार्तो न शोचन्न च गर्भिणी।
न श्रमे न मदे नामे न पित्ते न प्रजागरे।।
न मूर्च्छाभ्रमतृष्णासु न क्षीणे नापि च क्षते।
न मद्यदुग्धे पीत्वा च न स्नेहं न च माक्षिकम्।।

धूमं न भुक्त्वा दध्ना च न रूक्षः क्रुद्ध एव च।
न तालुशोषे तिमिरे शिरस्यभिहते न च।।
न शंखके न रोहिण्यां न मेहे न मदात्यये।
एषु धूममकालेषु मोहात्पिबति यो नरः।।
रोगास्तस्य प्रजायन्ते दारूणा धूमविभ्रमात्।।

(च. सू. 5/41-45)

अर्थात् विरेचन के पश्चात्, बस्ति के पश्चात्, रक्तपित्त, विष, शोक, गर्भिणी, श्रम, मद, आमदोष, पित्तजरोग, रात्रि जागरण, मूर्च्छा, भ्रम, तृष्णा, क्षीण, क्षतज रोग, मद्य एवं दुग्धपान के पश्चात्, स्नेहपान के पश्चात्, मधु सेवन के पश्चात्, दही युक्त भोजन के पश्चात्, रूक्ष देह, क्रोधी, तालुशोष, तिमिर, शिरोघात, शंखक, रोहिणी, प्रमेह और मदात्यय की अवस्था में धूमपान के प्रयोग को निषिद्ध माना है। उपरोक्त परिस्थितियों या अकाल में धूमपान का सेवन करने पर धूमविभ्रजन्य दारूण रोग हो जाते है।

उचित धूमपान लक्षणः-

हृत्कण्ठेन्द्रियसंशुद्धिर्लघुत्वं शिरसः समः।
यथेरितानां दोषाणां सम्यक् पीतस्य लक्षणम्।।

(च. सू. 5/37)

नरो धूमोपयोगाच्च प्रसन्नेन्द्रियवाङ्मनाः।
दृढ़केशद्विजश्मश्रुः सुगन्धिविशदाननः।।

(सु. चि. 40/15)

अर्थात् हृदय, कण्ठ, ज्ञानेन्द्रिय की शुद्धि, शिर में लघुता, बढ़े हुए दोषो का शमन और केश, दाँत, दाढ़ी, मूँछ दृढ़ होकर मुख सुगन्धित एवं निर्मल हो जाता है।

धूपनः-

किसी भी रोग में उपयुक्त द्रव्यों का कल्क सम्पुट में रखकर उसको अग्नि पर रखकर सम्पुट के छिद्र में नलिका लगाकर धूप देने की प्रक्रिया को धूपन कहते हैं।

औषध द्रव्यों के चूर्ण या वर्ति को सकोरे या धूपदान में अग्नि पर डालकर व्रण, योनि-गुदा-कर्ण आदि शरीर के अङ्ग या सर्वाङ्ग शरीर या रोग के स्थान आदि में जो धूम दिया जाता है, उसको सामान्यतः धूपन कहते हैं। या जिस स्थान के लिए धूपन दिया जाता है, उस स्थान के साथ 'धूपन' शब्द लगाकर व्रणधूपन, योनिधूपन, कर्णधूपन, गृहधूपन आदि शब्दों का प्रयोग किया जाता है।

व्रणधूपनः-

व्रण में रहे हुए कृमियों को नष्ट करने तथा व्रण की पीड़ा कम करने के लिए जो धूम दिया जाता है, उसको व्रणधूपन कहते हैं।

ततो गुग्गुल्वगुरुसर्जरसवचागौरसर्षपचूर्णैः लवणनिम्बपत्रविमिश्रैराज्य-युक्तैर्धूपयेत् ।। (सु. सू. 5/18)

व्रणधूमं शरावसंपुटोपनीतेन नेत्रेण व्रणमानयेत्, धूमपानाद्वेदनोपशमो व्रणवैशद्यमास्रावोपशमश्च भवति ।।(सु. चि. 40/19)

शरावसम्पुटे क्षिप्त्वा कल्कमङ्गारदीपितम् ।
छिद्रे नेत्रं निवेश्याथ व्रणं तेनैव धूपयेत् ।।
व्रणे निम्बवचाद्यं च धूपनं सम्प्रशस्यते।।

(शा. सं. उ. ख. 9/19,21)

अर्थात् गुग्गुलु, अगुरु, राल, वचा, गौरसर्षप, सैंधवलवण, निम्बपत्र और घृत से मिश्रित द्रव्यों का कल्क शरावसम्पुट में रखकर अग्नि जलाकर सम्पुट के छिद्र में नलिका लगाकर व्रण पर धूपन देने को व्रण के लिए प्रशस्त माना गया है।

अर्शोधूपनः-

कुटजफलबिल्वचित्रकमहौषधप्रतिविषावचाचविकाः।
धन्वयवासं पथ्या दारुहरिद्रा गणोऽयमार्शोघ्नः ।।

(अ. सं. सू. 15/17)

अर्थात् कुटज, बिल्व, चित्रक, सोंठ, अतीस, वचा, चव्य, दुरालभा, हरीतकी और दारुहरिद्रा द्रव्यों के सूक्ष्म चूर्ण का कल्क शरावसम्पुट में रखकर अग्नि जलाकर सम्पुट के छिद्र में नलिका लगाकर अर्श में धूपन करने पर हितकारी होता है।

मुखप्रयोगार्थ कल्पना

मुख अर्थात् ओष्ठ से लेकर गले तक स्थानिक क्रियाओं के लिए जो औषध का प्रयोग किया जाता है, उसे मुख प्रयोगार्थ कल्पना कहते हैं। इसके मुख्य रूप से दो प्रकार है-1 गण्डूष और कवलग्रह 2 प्रतिसारण।

कषायतिक्तकाः शीताः क्वाथाश्च मुखधावनाः ।। (च. चि. 26/205)

अर्थात् कषाय, तिक्त रस युक्त औषधियों के क्वाथ, स्वरस, कल्क, शीत, उष्णोदक आदि पदार्थों को मुख में धारण या कुल्ला करने को मुख प्रयोगार्थ कल्पना कहते हैं। यथाः- गण्डूष, कवल।

गण्डूषः-

असञ्चार्या तु या मात्रा गण्डूषः स प्रकीर्तितः ।।

(सु. चि. 40/62)

असञ्चारा तु या मात्रा स गण्डूषः प्रकीर्तितः ।।

(अ. सं. सू. 31/11)

असञ्चारी मुखे पूर्णे गण्डूषः कवलश्चरः।
तत्र द्रवेण गण्डूषः कल्केन कवलः स्मृतः ।।

(शा. सं. उ. ख. 10/4)

अर्थात् औषधियों के क्वाथ, स्वरस, उष्णोदक, मधु, घृत, तैल, गोमूत्र, गोदुग्ध आदि द्रव पदार्थों को मुख में इतना अधिक भरा जाता है। जिससे द्रव पदार्थों को मुख में अन्दर घुमाया फिराया नहीं जा सकता हो, उसे गण्डूष कहते हैं। आचार्य शार्ङ्गधर ने गण्डूष को द्रव पदार्थ से ही भरने का निर्देश दिया है।

गण्डूष के भेद:-

चतुर्विधो भवति गण्डूषः। स्नैहिक शमनः शोधनो रोपणश्च। तेषामाद्यास्त्रयः क्रमेण वातपित्तकफामयघ्नाः। रोपणस्त्वास्य व्रणघ्न, शमनः स्तम्भनः प्रसादनो निर्वापण इति पर्यायाः ।। (अ. सं. सू. 31/3)

चतुर्विधः स्याद् गण्डूषः स्नैहिकः शमनस्तथा।
शोधनो रोपणश्चैव कवलश्चापि तद्विधः ।।
स्निग्धैस्तु स्नेहिको वाते स्वादुशीतैः प्रसादनः।
पित्ते कट्म्ललवणैरुष्णैः संशोधनः कफे।।
कषायतिक्तमधुरैः कदुष्णो रोपणो व्रणे।
चतुष्प्रकारो गण्डूषः कवलश्चापि कीर्तितः ।।

(शा. सं. उ. ख. 10/1-3)

अर्थात् आचार्यों ने गण्डूष को स्नैहिक, शमन, शोधन एवं रोपण भेद से चार प्रकार का माना है। इनमें शमन गण्डूष को स्तम्भन ओर प्रसादन भी कहा जाता है।

1. **स्नैहिक गण्डूष:**-स्नेह द्रव्यों से तैयार किया हुआ स्निग्ध गण्डूष मुख में धारण करने पर वातज विकार नष्ट हो जाते हैं।

2. **शमन गण्डूष:**-मधुर और शीत गुण युक्त द्रव्यों से तैयार किया हुआ शमन (प्रसादन) गण्डूष मुख में धारण करने पर पित्तज विकार नष्ट हो जाते हैं।

3. **शोधन गण्डूष:**-कटु, अम्ल, लवण और उष्ण गुण युक्त द्रव्यों से तैयार किया हुआ शोधन गण्डूष मुख में धारण करने पर कफज विकार नष्ट हो जाते हैं।

4. **रोपण गण्डूष:**-कषाय, तिक्त, मधुर, कटु (सुश्रुत) और उष्ण गुणों से युक्त द्रव्यों से तैयार किया हुआ रोपण गण्डूष मुख में धारण करने पर व्रणों का रोपण हो जाता है।

तिलादि गण्डूषः-

तिला नीलोत्पलं सर्पिः शर्करा क्षीरमेव च।
सक्षौद्रो हनुवक्त्रस्थो गण्डूषो दाहनाशनः ।।

(शा. सं. उ. ख. 19/9)

अर्थात् तिल, नीलकमल, गोघृत, चीनी, गोदुग्ध और मधु को आवश्यक मात्रा में लेकर गण्डूष को धारण करने पर मुख का दाह नष्ट हो जाता है।

गण्डूष में प्रक्षेप मात्राः-

दद्याद् द्रवेषु चूर्णं च गण्डूषे कोलमात्रम्। (शा. सं. उ. ख. 10/5)

अर्थात् गण्डूष के लिए निर्मित द्रव में रोगनाशक औषधियों के चूर्ण को एक कोल (6 ग्राम) की मात्रा में मिलाना चाहिए।

गण्डूष से लाभः-

हन्वोर्बलं स्वरबलं वदनोचयः परः।
स्यात्परं च रसज्ञानमन्ने च रुचिरुत्तमा।।
न चास्य कण्ठशोषः स्यान्नौष्ठयोः स्फुटनाद्भयम्।
न च दन्ताः क्षयं यान्ति दृढमूला भवन्ति च ।।
न शूल्यन्ते न चाम्लेन हृष्यन्ते भक्षयन्ति च।
परानपि खरान् भक्ष्यांस्तैलगण्डूषधारणात्।।

(च. सू. 5/78-80)

अर्थात् स्नेह तैल का गण्डूष मुख में धारण करने से हनु और स्वर बलवर्द्धक, मुखमांसवर्द्धक, जिह्वाशोधक होने से रसबोधक एवं रुचिकारक, मुख एवं कण्ठ का अशोषक, ओष्ठों का फटना बन्द होना, दाँत एवं मसूड़ों के लिए बल्य, मसूढ़ों के लिए पीड़ानाशक, अम्ल पदार्थों से दन्तहर्ष नहीं होना और दाँतों के लिए बलवर्धक होने के कारण कठिन खाद्य पदार्थों को खाने में दाँत समर्थ हो जाते हैं।

कवलः-

मूत्रतैलघृतक्षौद्रक्षीरैश्च कवलग्रहाः।।

(च. चि. 26/204)

मुखं सञ्चार्यते या तु मात्रा सा कवलः स्मृतः।

(सु. चि. 40/62)

मुखे सञ्चर्यते या तु सा मात्रा कवलः स्मृतः ।।
कवले तु पर्यायेण कपोलौ कण्ठं सञ्चारयेत् ।

(अ. सं. सू. 31/11)

कवलश्चरः कल्केन कवलः स्मृतः ।।

(शा. सं. उ. ख. 10/4)

अर्थात् औषधियों के कल्क, क्वाथ, स्वरस, मधु, गोघृत, तैल, गोमूत्र, गोदुग्ध आदि पदार्थों को मुख में इतना भरा जाता है। जिससे धारित पदार्थ को मुख में आसानी से घुमाया फिराया जा सकता हो, उसे कवल या कवलग्रह कहते हैं। आचार्य शार्ङ्गधर ने कवल में कल्क से ही मुख धारण का निर्देश दिया है।

कवल के भेद :-

चतुर्धा कवलः स्नेही प्रसादी शोधिरोपिणौः ।
स्निग्धोष्णः स्नैहिको वाते स्वादुशीतैः प्रसादनः ।।
पित्ते कट्वम्ललवर्णैरूक्षोष्णैः शोधनः कफे ।
कषायतिक्तमधुरैः कटूष्णै रोपणो व्रणे ।।
चतुर्विधस्य चैवास्य विशेषोऽयं प्रकीर्तितः ।।

(सु. चि. 40/59-60)

चतुर्विधः स्याद् गण्डूषः स्नैहिकः शमन स्तथा ।
शोधनो रोपणश्चैव कवलश्चापि तद्विधः ।।
स्निग्धैस्तु स्नेहिको वाते स्वादुशीतैः प्रसादनः ।
पित्ते कट्वम्ललवणैरुष्णैः संशोधनः कफे ।।
कषायतिक्तमधुरैः कदुष्णो रोपणो व्रणे ।
चतुष्प्रकारो गण्डूषः कवलश्चापि कीर्तितः ।।

(शा. सं. उ. ख. 10/1-3)

अर्थात् आचार्यों ने कवल को स्नैहिक, प्रसादी (शमन), शोधन एवं रोपण भेद से चार प्रकार का माना है।

1. **स्नैहिक कवल:-** स्निग्ध और उष्ण कवल को मुख में धारण करने पर वातज विकार नष्ट हो जाते हैं।

2. **प्रसादी (शमन) कवल:-** मधुर और शीत गुण युक्त द्रव्यों का कवल मुख में धारण करने पर पित्तज विकार नष्ट हो जाते हैं।

3. **शोधन कवल:-** कटु, अम्ल, लवण, रूक्ष और उष्ण गुण युक्त द्रव्यों का कवल मुख में धारण करने पर कफज विकार नष्ट हो जाते हैं।

4. रोपण गण्डूषः–कषाय, तिक्त, मधुर, कटु और उष्ण गुण युक्त द्रव्यों का कवल मुख में धारण करने पर मुखज व्रण नष्ट हो जाते हैं।

मातुलुङ्गादि कवलः–

केसरं मातुलुङ्गस्य सैन्धवोषणसंयुतम्।
हन्यात् कवलतो जाड्यमरूचिं कफवातजाम्।।

(शा. सं. उ. ख. 10/16)

अर्थात् बिजौरा नींबू का केशर, सैंधव लवण और मरिच से निर्मित कवल को मुख में धारण करने पर मुख की जड़ता एंव वातकफज अरुचि का नाश हो जाता है।

कवल में प्रक्षेप मात्राः–

कर्षप्रमाणः कल्कश्च दीयते कवले बुधैः।। (शा. सं. उ. ख. 10/5)

अर्थात् कवल के लिए रोगनाशक औषधियों का कल्क 1 कर्ष (12 ग्राम) की मात्रा में मिलाना चाहिए।

कवल के लाभः–

मुखपाके सिराकर्म शिरः कायविरेचनम्।
मूत्रतैलघृत क्षौद्रक्षीरैश्च कवलग्रहाः।।

(च. चि. 26/204)

अर्थात् मुखपाक में सिराकर्म, शिरोविरेचन, कायविरेचन और गोमूत्र, तिलतैल, गोघृत, गोदुग्ध, और मधु का कवल धारण करना हितकारी होता है।

गण्डूष कवल धारणार्थ वयः–

धार्यन्ते पञ्चमाद्वर्षाद् गण्डूषकवलादयः।
गण्डूषान् सुस्थितः कुर्यात् स्विन्नभालगलादिकः।।
मनुष्य स्त्रींस्तथा पञ्चसप्त वा दोषनाशनात्।
कफपूर्णास्यता यावच्छेदो दोषस्य वा भवेत्।।
नेत्रघ्राणस्नुतिर्यावद् तावद् गण्डूषधारणम्।।

(शा. सं. उ. ख. 10/6-7)

अर्थात् पाँच वर्ष की आयु के बाद ही गण्डूष कवल को धारण करना चाहिए। इसके लिए शिरः एवं गला आदि का स्वेदन करके स्वस्थ होकर पुरुष एवं स्त्री को तीन, पाँच, सात बार अथवा दोष का नाश होने तक गण्डूष धारण करना चाहिए। मुख में कफ पूर्ण होने तक अथवा दोष नष्ट होने तक और नेत्र तथा नासिका से स्राव होने तक गण्डूष एवं कवल का धारण करना चाहिए।

गण्डूष कवल सम्यक् योग लक्षण:-

व्याधेरपचयस्तुष्टिर्वैशद्यं वक्त्रलाघवम्।
इन्द्रियाणां प्रसादश्च गण्डूषे शुद्धि लक्षणम्।।

(शा. सं. उ. ख. 10/20)

अर्थात् रोग का क्षय होना, रोगी के हृदय में परितोष, मुख में लघुता और इन्द्रियों का प्रसन्न होना गण्डूष एवं कवल के सम्यक् योग का लक्षण माना गया है।

गण्डूष एवं कवल में भेद

क्र.सं.	गण्डूष	कवल
1.	गण्डूष की मात्रा असञ्चारी होती है।	कवल की मात्रा सञ्चारी (चलाने योग्य) होती है, आचार्य वाग्भट्ट ने कवल को कण्ठ तक संचारण करने का निर्देश दिया है।
2.	आचार्य शार्ङ्गधर ने गण्डूष द्रव पदार्थों से करने का निर्देश किया है।	आचार्य शार्ङ्गधर ने कवल को कल्क से धारण करने का निर्देश किया है।

प्रतिसारण:-

अंगुली या रूई लगी हुई सलाई की नोक पर औषध लेकर उसको मुँह, कंठ और तालु में अन्दर लगाने की क्रिया को प्रतिसारण कहते हैं।

विभज्य भेषजं बुद्धया कुर्वीत प्रतिसारणम्।।
कल्को रसक्रिया क्षौद्रं चूर्णं चेति चतुर्विधम्।
अङ्गुल्यग्रप्रणीतं तु यथास्वं मुखरोगिणाम्।।

(सु. चि. 40/69)

कल्कोऽवलेहश्चूर्णं च त्रिविधं प्रतिसारणम्।
अङ्गुल्यग्रप्रणीतं तु यथास्वं मुखरोगिणाम्।।

(शा. सं. उ. ख. 10/17)

अर्थात् अंगुली के अग्रभाग पर औषधिद्रव्य को लगाकर मुख के भीतर रुग्ण स्थान पर मलना, लगाना आदि को प्रतिसारण कहते हैं। बुद्धिमान् चिकित्सक को कल्क, रसक्रिया, क्षौद्र (मधु) और चूर्ण आदि का प्रतिसारण करना चाहिए। मुख के रोगों में अंगुली के अग्रभाग से औषधि का प्रयोग करने का आचार्यों ने निर्देश दिया है।

प्रतिसारण भेदः-

आचार्य सुश्रुत ने कल्क, रसक्रिया, क्षौद्र (मधु) और चूर्ण भेद से प्रतिसारण को चार प्रकार का माना है। जबकि आचार्य शार्ङ्गधर ने कल्क, अवलेह और चूर्ण भेद से प्रतिसारण को तीन प्रकार का माना है।

औषध द्रव्यों का कल्क बनाकर उसे मुँह में लगाने को 'कल्क प्रतिसारण', रसक्रिया को मुँह में लगाने को 'रसक्रिया प्रतिसारण', केवल क्षौद्र या क्षौद्र (मधु) में मिले हुए टंकण आदि के मुँह में लगाने को 'क्षौद्रप्रतिसारण' और चूर्ण को मुँह में लगाने को 'चूर्ण प्रतिसारण' कहते हैं। कर्म भेद से प्रतिसारण के भी स्नेहन, शमन (प्रसादन, स्तम्भन, निर्वापण), शोधन और रोपण चार भेद होते हैं।

दाँतों पर जो मंजन किया जाता है, उनका चूर्ण प्रतिसारण में और Tooth-paste आदि का कल्क प्रतिसारण में अन्तर्भाव होता है। मुखरोगों में प्रतिसारणीय क्षार भी लगाया जाता है, उसको क्षार प्रतिसारण कहते हैं, इसका रसक्रिया प्रतिसारण में अन्तर्भाव होता है।

प्रतिसारण में प्रयुक्त औषधः-

यस्यौषधस्य गण्डूषस्तस्यैव प्रतिसारणम्।
कवलश्चापि तस्यैव ज्ञेयोऽत्र कुशलैः नरैः।।

(शा. सं. उ. ख. 10/15)

अर्थात् गण्डूष में प्रयुक्त औषधियों का कल्क, क्वाथ, स्वरस, मधु, घृत आदि को प्रतिसारण एवं कवल में भी प्रयुक्त किया जाना चाहिए।

प्रतिसारण विधि एवं प्रभावः-

कोलास्थिमात्रेण पिण्डेन यथादोषं यथाव्याधिं पञ्च सप्त वा वारान् हीन-मध्योत्तमेषु व्याधिषु च प्रतिसारणं कुर्वीत। न चैनमतिघर्षयेत्। अतिघर्षणादोष-चोषदाहक्लेदश्वयथु तृष्णाभक्तच्छन्दवाक्संगा भवन्ति।असम्यक् प्रतिसारणात् पैच्छिल्यगुरुत्वानन्नाभिलाष प्रमोहविकारानुपशयाः सम्यक् प्रतिसारणाद्वैशद्यं क्षवथुप्रसेकोऽन्नाभिलाषश्च।। (सु. चि. 40/69 डल्हण टीका)

अर्थात् कोलास्थि के समान पिण्ड (कल्क) से दोष एवं रोग के अनुसार पाँच या सात बार अल्प, मध्यम और उत्तम रोगों में प्रतिसारण करना चाहिए अतिघर्षण करने पर ओष, चोष, दाह, क्लेद, शोथ, तृष्णा, अरुचि एवं पिच्छिलता, गुरुता, भोजन में अरुचि, प्रमोह आदि विकार उत्पन्न हो जाते हैं। अतः सम्यक् प्रतिसारण करने पर मुखवैशद्य, लघुता, छींक आना, लालास्राव की कमी और भोजन के प्रति रुचि उत्पन्न हो जाती है।

कुष्ठादि प्रतिसारण:-

कुष्ठं दार्वी समङ्गा च पाठा तिक्ता च पीतिका।
तेजनी मुस्तलोध्रे च चूर्णं स्यात् प्रतिसारणम्।।
रक्तस्रुतिं दन्तपीडां शोथं दाहं च नाशयेत्।।

(शा. सं. उ. ख. 10/18-18½)

अर्थात् कुष्ठ, दारुहरिद्रा, मंजिष्ठा, पाठा, कुटकी, हरिद्रा, तेजबल, मुस्तक और लोध्र त्वक् के समान भाग सूक्ष्म चूर्ण को यथावश्यक मात्रा में अंगुली के अग्रभाग से मुख में प्रतिसारण करना चाहिए। इस प्रकार उक्त प्रतिसारण से मसूड़ों का रक्तस्राव, शोथ, दन्तपीड़ा और मुखदाह का नाश हो जाता है।

दशनसंस्कार चूर्ण :-

शुण्ठी हरीतकी मुस्ता खदिरं घनसारकम्।
गुवाक् भस्म मरिचं देवपुष्पं तथा त्वचम्।।
एतेषां समभागेन चूर्णमेवं विनिर्दिशेत्।
तत्समं प्रक्षिपेत्तत्र चूर्णं कठिनिसम्भवम्।
एतद्दशनसंस्कारचूर्णं दन्तास्यरोगजित्।।

(भै. र. मुखरोग 73-74)

घटक द्रव्य:-

1. शुण्ठी	- 1 भाग	2. हरीतकी	- 1भाग
3. मुस्ता	- 1 भाग	4. खदिर	- 1 भाग
5. कर्पूर	- 1 भाग	6. सुपारी भस्म (अन्तर्धूम)	- 1 भाग
7. मरिच	- 1 भाग	8. लवङ्ग	- 1 भाग
9. दालचीनी	- 1 भाग	10. खटिका	- 1 भाग

मुख्य उपयोग:-दन्तमंजन करने से मुखरोग, दन्तरोग नाशक है।

Dental Preparation (Dentifrices)

दाँतो पर प्रयोग किये जाने वाले औषध योग जैसे Tooth paste और Tooth powder डेन्टिफ्रिसेज (Dentifrices) कहलाते हैं। दाँतों को स्वच्छ करने के लिए इनका प्रयोग टूथब्रुश या हाथ की अँगुली पर लगाकर किया जाता है। ये दाँतों की सुन्दरता को बढ़ाते हैं, दन्तक्षय (Tooth decay), मुँह की दुर्गन्ध को रोकते हैं तथा मसूढ़ों (gums) को स्वस्थ रखते हैं। वर्तमान में दन्तक्षय को रोकने एवं मसूढ़ो

(gums) के रोगों को दूर करने में सक्षम कई Dentifrices विकसित हो चुके हैं। इस तरह के Dental preparation में प्रयुक्त घटक सामान्यतः Stannous fluoride और Chlorophyll है।

Dentifrices के निर्माण में निम्नलिखित घटक प्रयुक्त होते हैं:-

(i) Polishing agents (Abrasive):- इनका उपयोग दाँतो का कचरा, अवशिष्ट धब्बे हटाने तथा दाँतों को चमकाने के लिए किया जाता है। ये श्वेत, स्वच्छ एवं ठोस द्रव्य है। dentifrices के कुल वजन में आधा भाग इन द्रव्यों का होता है। सामान्यतया प्रयुक्त होने वाले Polishing agents (abrasive) निम्न है:- Precipitated calcium carbonate, Tribasic calcium phosphate, Calcium pyrophosphate, Hydrated alumina, Magnesium trisilicate आदि।

(ii) Surface active agents (Detergents):- इनको Polishing agents की क्रिया बढ़ाने के लिए मिलाया जाता है। ये दाँत और आहार कण को आर्द्र करके तथा श्लेष्मा (mucous) को emulsify करके polishing agents की क्रिया को बढ़ाते हैं। surface active agents निम्न है:-Dioctyl sodium sulphosuccinate, Sodium lauryl sulphate आदि।

(iii) Humectant:- ये द्रव्य toothpaste को आर्द्र बनाये रखने के लिए मिलाये जाते हैं। ये paste को शुष्क होने से बचाता है। ये ठोस द्रव्यों को मिलाने (mixing) में भी सहायक होते हैं। सामान्यतः प्रयुक्त होने वाले Humectant glycerin, Sorbitol और Propylene glycol है। ये 5 से 10% की मात्रा में मिलाये जाते हैं।

(iv) Binders:- ये ठोस (solids) और द्रव (liquids) को एकरूप बनाये रखने और paste की consistency (गाढ़ापन) को बनाये रखने के लिए मिलाये जाते हैं। प्रयुक्त किये जाने वाले मुख्य binders निम्न है:- Gum tragacanth, Gum karaya, Sodium alginate आदि। ये 1 से 2.5% की मात्रा में मिलाये जाते हैं।

(v) Sweetening agents:- इनको paste में मधुरता लाने के लिए प्रयुक्त किया जाता है तथा flavouring agents में मिलाकर मिलाया जाता है। इसके लिए saccharin 0.005 से 0.25% की मात्रा में मिलाया जाता है।

(vi) Flavouring agents:- ये dentifrices के महत्वपूर्ण घटक द्रव्य है। मुख्य रूप से Peppermint, Winter green, Cinnamon-mint आदि flavouring द्रव्य है। इनकी मात्रा 0.5% से 2% तक प्रयुक्त की जाती है।

(vii) Preservatives:- Toothpaste में नमी और कार्बोहाइड्रेट होने के कारण जीवाणु वृद्धि हो सकती है, अतः इनमें Preservative मिलाये जाते हैं। इसके लिए Methyl paraben और Propyl paraben प्रयुक्त किये जाते हैं।

(viii) Therapeutic agents:- दाँतों के रोग और दुर्गन्ध को दूर करने के लिए इस प्रकार के औषधि द्रव्य मिलाये जाते है, जो bactericidal, bacteriostatic, enzyme inhibiting या acid neutralizing property वाले होते हैं। सामान्यतः fluoride, chlorophyll, urea, dibasic ammonium phosphate, sodium dehydroacetate आदि औषधिय द्रव्य प्रयुक्त किये जाते हैं।

Toothpaste:- Toothpaste को toothbrush पर लगाकर दाँतों को स्वच्छ करके oral hygiene को सही रखने हेतु प्रयोग किया जाता है। Toothpaste के आवश्यक घटक Polishing agent (abrasive), surfactant, humectant, binders, sweeteners, flavouring agent आदि है। वर्तमान में दंतविशेषज्ञ द्वारा fluoride toothpaste के उपयोग की सलाह दी जाती है।

Dentifrices के गुण:- Toothpaste या tooth powder में निम्न गुण होने चाहिए।

1. जब इन्हें दाँतों पर प्रयुक्त किया जाये तो विजातीय द्रव्य, आहार कण plague आदि को दूर कर दाँतों को स्वच्छ करना चाहिए।
2. इन्हें विषाक्त नहीं होना चाहिए।
3. इनमें यथोचित सुगन्ध और मधुरता होनी चाहिए।

Tooth powder:- इनका प्रयोग Toothpaste के विकल्प के रूप में किया जाता है। यह चूर्ण (Powder) के रूप में होता है।

Mouth wash:- Mouth wash स्वादिष्ट और सुगन्धित जलीय घोल है, जो Rinsing (कुल्ला करने या स्वच्छ करने), Deodorant (दुर्गन्ध दूर करने) Refreshing या Antiseptic कार्य करने के लिए प्रयुक्त होता है। इसमें Alcohol, glycerin, sweetening agents, surface active agents, flavouring agents और colouring agents होते हैं। Medicated mouth wash में astringents, antibacterial agents, protein precipitants आदि द्रव्य भी प्रयुक्त होते हैं। एक सामान्य mouthwash जैसे-Compound sodium chloride mouth wash, sodium chloride और sodium bicarbonate को pipperment जल में मिलाकर बनाया जाता है।

बस्ति कल्पना

आयुर्वेदीय चिकित्सा में पञ्चकर्म का महत्वपूर्ण स्थान है। पञ्चकर्म संशोधन चिकित्सा है, जिसके द्वारा शरीर के वृद्ध दोषों को शरीर से बाहर निकालकर चिकित्सा की जाती है। चरक मतानुसार पञ्चकर्म में वमन, विरेचन, अनुवासन बस्ति, निरुह बस्ति और नस्य कर्म आते हैं। सुश्रुत संहिता में वमन, विरेचन, बस्ति, शिरोविरेचन और रक्तमोक्षण को पञ्चकर्म में माना है।

पञ्चकर्म में बस्ति की मुख्य कर्मों में गणना की गई है। पक्वाशय, मूत्राशय, गर्भाशय में गुदमार्ग, मूत्रमार्ग, योनिमार्ग द्वारा औषधद्रव्यों का क्वाथ, सिद्धस्नेह, मांसरस, अम्ल द्रव, मधु आदि द्रव पदार्थ प्रवेश कराया जाता है, उस प्रक्रिया को बस्ति कहते हैं।

बस्ति निरुक्तिः-

नाभिप्रदेशं कटिपार्श्वकुक्षिं गत्वा शकृद्दोषचयं विलोड्य ।।
संस्नेह्य कायं सपुरीषदोषः सम्यक् सुखेनैति च यः स बस्तिः ।।
(च. सि. 1/40)

बस्तिभिर्दीयते यस्मात्तस्माद्वस्तिरिति स्मृतः ।।
(शा. सं. उ. ख. 5/1)

अर्थात् जो औषधि द्रव नाभिप्रदेश, कटि, पार्श्व और उदर में पहुँचकर मल एवं दोष संचय को मथकर शरीर का स्नेहन करके मल एवं दोषों के साथ सुखपूर्वक भली भाँति बाहर आ जाती है, उसे बस्ति कहते हैं। आचार्य शार्ङ्गधर के अनुसार मृत पशुओं के बस्ति (मूत्राशय) को सुखाकर स्वच्छ करके उसमें नलिका लगा दी जाती है, उसे बस्ति यन्त्र कहा है। बस्ति यन्त्र में औषध द्रव भरकर पक्वाशय आदि में पहुँचाने को बस्ति कहते हैं।

बस्ति की परिभाषाः-गुदामार्ग, मूत्रमार्ग एवं योनिमार्ग द्वारा बस्तियन्त्र से विविध रोगनाशक औषधियों के स्वरस, क्वाथ, क्षीर, औषधि सिद्ध स्नेह, क्षारादि को यथावश्यक मात्रा में लेकर पक्वाशय, मूत्राशय एवं गर्भाशय में पहुँचाने की प्रक्रिया को बस्ति कहते हैं।

बस्ति में प्रयुक्त उपकरण या द्रव्यः-

जारद्गवो माहिषहारिणौ वा स्याच्छौकरो बस्तिरजस्य वाऽपि ।
दृढस्तनुर्नष्टसिरो विगन्धः कषायरक्तः सुमृदुः सुशुद्धः ।।
नृणां वयो वीक्ष्य यथानुरूपं नेत्रेषु योज्यस्तु सुबद्धसूत्रः ।
बस्तेरलाभे प्लवजो गलो वा स्यादङ्कपादः सुघनः पटो वा ।।
(च. सि. 3/10-11)

मृगाजशूकरगवां महिषस्यापि वा भवेत्।
मूत्रकोषस्य बस्तिस्तु तदलाभेन चर्मजः।।
कषायरक्तः सुमृदुर्बस्तिः स्निग्धो दृढो हितः।

(शा. सं. उ. ख. 5/13)

अर्थात् आचार्यों ने वृद्ध बैल, गाय, भैंस, हरिण, सूअर या बकरे की मजबूत, पतली, छिद्र रहित, गन्धरहित, कषाय रक्त, मृदु, चिकनी और शुद्ध बस्ति (मूत्राशय) में बस्ति नेत्र बाँधकर बस्ति देने का निर्देश दिया है। इनके अभाव में जल में रहने वाले पक्षी (प्लव) या चमगादड़ की चर्म अथवा गाढ़े स्थूल वस्त्र से निर्मित बस्ति का प्रयोग करने का निर्देश दिया है। आधुनिक समय में एनिमा पोट (Enema pot) में रबर ट्यूब तथा प्लास्टिक सिरिंज लगाकर बस्ति दी जाती है।

बस्ति की प्रधानता:-

शाखागताः कोष्ठगताश्च रोगा मर्मोर्ध्वसर्वावयवाङ्गजाश्च।
ये सन्ति तेषां न हि कश्चिदन्यो वायोः परं जन्मनि हेतुरस्ति।।
विण्मूत्रपित्तादि मलाशयानां विक्षेपसंघातकरः स यस्मात्।
तस्यातिवृद्धस्य शमाय नान्यद् बस्तिं बिना भेषजमस्ति किञ्चित्।।
तस्माच्चिकित्सार्धमिति ब्रुवन्ति सर्वां चिकित्सामपि बस्तिमेके।।

(च. सि. 1/38-39)

अर्थात् शाखा, कोष्ठ, मर्मप्रदेश, ऊर्ध्वाङ्ग या सर्वाङ्गों में होने वाले समस्त रोग वात दोष के बिना उत्पन्न नहीं होते हैं। क्योंकि पुरीष, मूत्र, पित्त आदि मलाशयों के विक्षेप (पृथक् करना) और संघात कर्म वायु द्वारा ही होते हैं। उस वायु के अत्यधिक बढ़ जाने पर उसके शमन के लिए बस्ति कल्पना के अलावा दूसरी श्रेष्ठ औषधि नहीं है। इस कारण से कुछ आचार्य बस्ति कल्पना को अर्ध चिकित्सा तथा कुछ आचार्य संपूर्ण चिकित्सा मानते हैं।

बस्ति वर्गीकरण:-

अनुवासनं निरुहश्चोत्तरबस्तिश्च स त्रिविधः।।

(च. सि. 10/8)

तत्र द्विविधो बस्तिः नैरूहिकः, स्नैहिकश्च।

(सु. चि. 35/18)

बस्तेरूत्तरसंज्ञस्य विधिं वक्ष्याम्यतः परम्।।

(सु. चि. 37/100)

बस्तिस्त्रिविध–आस्थापनम् अनुवासनम् उत्तरबस्ति चेति।
(अ. सं. सू. 28/6)

बस्तिर्द्विधाऽनुवासाख्यो निरुहश्च ततः परम्।
(शा. सं. उ. ख. 5/1)

अतः परं प्रवक्ष्यामि बस्तिमुत्तरसंज्ञितम्।
(शा. सं. उ. ख. 7/1)

अर्थात् सभी आचार्यों ने आस्थापन, अनुवासन और उत्तर बस्ति भेद से बस्ति को तीन प्रकार का माना है। आस्थापन को निरुह एवं अनुवासन को स्नैहिक बस्ति नाम से भी जाना जाता है। सुश्रुत संहिता चि.35/8 में नैरूहिक और स्नैहिक बस्ति दो भेद किये हैं, किन्तु सु.चि. 37/100 में उत्तरबस्ति का वर्णन किया है। इसी प्रकार शार्ङ्गधर संहिता उत्तर खण्ड 5/1 में अनुवासन और निरुह बस्ति दो भेद बताये हैं, किन्तु शा. सं. उ. ख. 7/1 में उत्तरबस्ति का पृथकशः वर्णन किया है। इस प्रकार सभी आचार्यों ने बस्ति के तीन भेद माने हैं।

बस्ति लक्षण:–

यः स्नेहैर्दीयते सः स्यादनुवासननामकः।
कषायक्षारतैलैर्यो निरुहः स निगद्यते॥
(शा. सं. उ. ख. 5/2)

अर्थात् स्नेह द्वारा दी जाने वाली बस्ति को अनुवासन और कषाय (क्वाथ आदि), क्षार एवं तैल के मिश्रण से दी जाने वाली बस्ति को निरुह कहते हैं।

1. आस्थापन (निरुह) बस्ति :–

स दोषनिर्हरणाच्छरीरनीरोहणाद्वा निरुहः, वयः स्थापनादायुः स्थापनाद्वा आस्थापनम्। (सु. चि. 35/17)

तद्वयःस्थापनाद्दोषनिर्हरणादचिन्त्यवीर्यप्रभावतया चास्मिन्नूहासम्भवान्नि–रूह इति॥ (अ. सं. सू. 28/6)

निरुहस्यापरं नाम प्रोक्तमास्थापनं बुधैः।
स्वस्थानस्थापनाद्दोषधातूनां स्थापनं मतम्॥
(शा. सं. उ. खं. 6/2)

अर्थात् दोषों को बाहर निकालकर शरीर का रोहण (वृद्धि) करने के कारण निरुह कहते हैं। शरीर और वय को स्थिर करने तथा दोष और धातुओं को अपने स्थान पर स्थिर करने के कारण इसका नामकरण आस्थापन बस्ति किया गया है। इसके अतिरिक्त अचिन्त्य वीर्य एवं प्रभाव के कारण भी निरुह कहते हैं।

तत्रास्थापनं दोषदूष्याद्यनुसारेण नानाद्रव्य संयोगादि निवृत्तम्।
(अ. सं. सू. 28/5)

कषायक्षारतैलैर्यो निरुह स निगद्यते। (शा. सं. उ. ख. 5/2)

अर्थात् दोष-दूष्यों के अनुसार विविध औषधियों के क्वाथादि एवं कषाय, क्षार, तैल आदि के मिश्रण का प्रयोग करने के कारण आस्थापन या निरुह बस्ति कहते हैं।

आस्थापन बस्ति के भेदः-

तस्य भेदाः उत्क्लेशनं संशोधनं संशमनं लेखनं बृहणं
वाजीकरणं पिच्छाबस्तिर्माधुतैलिकमित्यादयः।
माधुतैलिकस्य पर्याया यापनो युक्तरथो दोषहरः।
सिद्धबस्तिरिति। तेषां नामभिरेव स्वरूपमाख्यातम्।।

(अ. सं. सू. 28/5)

अर्थात् आचार्य वाग्भट ने उत्क्लेशन, संशोधन, संशमन, लेखन, बृंहण, वाजीकरण, पिच्छाबस्ति और माधुतैलिक आदि कई भेद किए है। यापन, युक्तरथ, दोषहर और सिद्धबस्ति को माधुतैलिक का पर्याय माना है। इनके नामकरण में ही बस्ति का स्वरूप दर्शाया गया है।

(i) उत्क्लेशन बस्ति :-

एरण्डबीजं मधुकं पिप्पली सैन्धवं वचा।
हपुषा फलकल्कश्च बस्तिरुत्क्लेशनः स्मृतः।।

(शा. सं. उ. ख. 6/17)

अर्थात् एरण्ड बीज, मुलेठी, पिप्पली, सैन्धव लवण, वचा और हपुषा का फलकल्क मिलाकर यथावश्यक मात्रा में दी गई उत्क्लेशन बस्ति दोष एवं मलों को उत्क्लिष्ट कर आशयों में लीन दोषों को पतला करके बाहर निकालती है।

(ii) शोधन बस्तिः-

शोधनद्रव्यनिष्क्वाथैस्तत्कल्कैः स्नेहसैन्धवैः।

(सु. चि. 38/81)

युक्त्या खजेन मथिता बस्तयः शोधनाः स्मृताः।।

(शा. सं. उ. ख. 6/19)

अर्थात् दन्ती, त्रिफला, अमलतास आदि शोधन द्रव्यों का क्वाथ तथा कल्क, स्नेह (तैल) और सैंधव लवण का मिश्रण करके मथानी से मथकर निर्मित

शोधन बस्ति का प्रयोग करने पर उत्क्लिष्ट दोषो एवं मलों को बाहर करके उदरविकारों को नष्ट करती है।

(iii) शमन बस्तिः-

प्रियङ्गु मधुकं मुस्ता तथैव च रसाञ्जनम्। (सु. चि. 38/95)
सक्षीरः शस्यते बस्तिर्दोषाणां शमनः स्मृतः ।।
(शा. सं. उ. ख. 6/20)

अर्थात् प्रियंगु, मुलेठी, मुस्ता, रसाञ्जन और दूध का मिश्रण करके तैयार की गई शमन बस्ति का प्रयोग करने पर दोषों को शरीर में ही शमन करके प्रभाव दर्शाती है।

(iv) लेखन बस्तिः-

त्रिफलाक्वाथगोमूत्र क्षौद्रक्षारसमायुताः। (सु. चि. 38/82)
ऊषकादिप्रतीवापैर्बस्तयो लेखनाः स्मृताः ।।
(शा. सं. उ. ख. 6/21)

अर्थात् त्रिफला क्वाथ, गोमूत्र, मधु और क्षार का मिश्रण करके तैयार की गई लेखन बस्ति में ऊषकादि गण का प्रक्षेप डालकर प्रयोग करने पर मेदो धातु एवं कफ दोष का लेखन करके शरीर से बाहर निकालकर मेद और कफ को कम करती है।

(v) बृंहण बस्तिः-

बृंहणद्रव्यनिष्क्वाथाः कल्कैर्मधुरकैर्युताः।
(सु. चि. 38/83)
सर्पिर्मांसरसोपेता बस्तयो बृंहणाः स्मृताः ।।
(शा. सं. उ. ख. 6/22)

अर्थात् अश्वगंधा, शतावरी आदि बृंहणद्रव्यों के क्वाथ में द्राक्षा, खर्जूर आदि मधुर द्रव्यों का कल्क, घृत और मांसरस के मिश्रण से तैयार की गई बृंहण बस्ति का प्रयोग करने पर शरीर की संपूर्ण धातुओं की वृद्धि करके शरीर का बृंहण करती है।

(vi) वाजीकरण बस्तिः-

चटकाण्डोच्चटा क्वाथाः सक्षीरघृतशर्कराः।
आत्मगुप्ताफलावापाः स्मृता वाजीकरा नृणाम् ।।
(सु. चि. 38/84)

अर्थात् चटक के अण्डे एवं श्वेत गुञ्जा के क्वाथ में क्षीर, घृत, चीनी मिलाकर कौंच बीज चूर्ण का प्रक्षेप डालकर या अश्वगंधा, मूसली, अकरकरा, कौंच बीज आदि का क्षीरपाक करके तैयार की हुई वाजीकरण बस्ति का प्रयोग करने पर वीर्य की वृद्धि होकर मैथुन की शक्ति बढ़ जाती है।

(vii) पिच्छा बस्तिः–

बदर्यैरावतीशेलुशाल्मली धन्वनाङ्कुराः।
क्षीरसिद्धाः क्षौद्रयुताः सास्रा पिच्छिलसंज्ञिताः।।
वाराहमाहिषौरभ्रवैडालैणेयकौक्कुटम्।
सद्यस्कमसृगाजं वा देयं पिच्छिलबस्तिषु।।

(सु. चि. 38/85-86)

अर्थात् बेर के पत्ते, नागबला के पत्ते, श्लेष्मातक के पत्ते, सेमल फूल, धन्वन (धामन) के पत्ते इन सभी को क्षीरपाक विधि से पाक करके ठण्डा होने पर मधु, सूअर रक्त, भैंस का रक्त, हरिण रक्त, भेड़ का रक्त मिश्रित करने से निर्मित पिच्छिल बस्ति का प्रयोग करने पर रक्ताधान या रक्तस्तम्भन हो जाता है।

(viii) माधुतैलिक बस्तिः–

मधुतैलेसमे ख्यातां क्वाथश्चैरण्डमूलजः।
पलार्ध शतपुष्पायास्ततोऽर्ध सैन्धवस्य च।।
फलेनैकेन संयुक्तः खजेन च विलोडितः।
देयः सुखोष्णो भिषजा माधुतैलिकसंज्ञितः।।

(सु. चि. 38/100-101)

यस्मान्मधु च तैलं च प्राधान्येन प्रदीयते।
माधुतैलिक इत्येवं भिषग्भिर्बस्तिरुच्यते।।

(सु. चि. 38/114)

सुखिनाल्पदोषाणां नित्यं स्निग्धाश्च ये नराः।
मृदुकोष्ठाश्च ये तेषां विधेया माधुतैलिकाः।।

(सु. चि. 38/117)

नृपाणां तत्समानानां तथा सुमहतामपि।
नारीणां सुकुमाराणां शिशुस्थविरयोरपि।।
दोषनिर्हरणार्थाय बलवर्णोदयाय च।
समासेनोपदेक्ष्यामि विधानं माधुतैलिकम्।।

(सु. चि. 38/96-97)

मेदोगुल्मकृमिप्लीहमलोदावर्त्तनाशनः।
बलवर्णकरश्चैव वृष्यो दीपनबृंहणः।।

(शा. सं. उ. ख. 6/31)

अर्थात् मधु 4 पल (192 ग्राम), तैल 4 पल (192 ग्राम), एरण्डमूल क्वाथ 8 पल (384 मिली), सौंफ आधा पल (24 ग्राम), सैंधव लवण 1 कर्ष (12 ग्राम) और मदनफल एक नग का चूर्ण इन सभी को मथानी से मथकर निर्मित माधुतैलिक बस्ति का सुखोष्ण ही प्रयोग किया जाता है। इसमें मधु एवं तैल की प्रधानता होने के कारण आचार्यों ने इसे माधुतैलिक कहा है। सुखी, अल्पदोषयुक्त, हमेशा स्निग्ध रहने वाले और मृदु कोष्ठ वाले व्यक्तियों को माधुतैलिक बस्ति दी जानी चाहिए। राजा एवं उसके समान व्यक्ति, वैभवशाली व्यक्ति, स्त्री, सुकुमार, शिशु एवं वृद्ध पुरुषों के दोषों को दूर करके बल वर्ण की वृद्धि करने के लिए माधुतैलिक बस्ति दी जाती है। इस बस्ति का प्रयोग करने पर मेद, गुल्म, कृमि, प्लीहा रोग, विबन्ध, उदावर्त नाशक एवं वर्ण्य, बल्य, वृष्य, दीपन और बृंहण का कार्य करती हैं।

आचार्य वाग्भट ने उपरोक्त भेदों को मानकर यापन, युक्तरथ, दोषहर और सिद्धबस्ति को माधुतैलिक का पर्याय माना है। जबकि आचार्य सुश्रुत ने वातहर, पित्तहर, कफहर, रक्त, शोधन, लेखन, बृंहण, वाजीकरण, पिच्छिल, ग्राहिणी, उत्क्लेशन, दोषहर, शमन, माधुतैलिक, युक्तरथ, दोषहर, सिद्ध बस्ति, यापन बस्ति आदि का निरुह बस्ति प्रकरण में उल्लेख किया है।

वात बस्ति:-

वातघ्नौषधनिष्क्वाथाः सैन्धवत्रिवृतायुताः।
साम्लाः सुखोष्णा योज्याः स्युर्बस्तयः कुपितेऽनिले।।

(सु. चि. 38/77)

अर्थात् वातनाशक औषधियों के क्वाथ में सैंधव लवण, त्रिवृत और अम्ल द्रव के मिश्रण से निर्मित सुखोष्ण वात बस्ति का प्रयोग करने पर प्रकुपित वात का नाश हो जाता है।

पित्त बस्ति:-

न्यग्रोधादिगणक्वाथाः काकोल्यादिसमायुताः।
विधेया बस्तयः पित्ते ससर्पिष्काः सशर्कराः।।

(सु. चि. 38/78)

अर्थात् न्यग्रोधादि गण के क्वाथ में काकोल्यादि गण का कल्क, घृत और शर्करा के मिश्रण से निर्मित पित्त बस्ति का प्रयोग करने पर पित्त दोष का नाश हो जाता है।

कफ बस्तिः-

आरग्वधादिनिष्क्वाथाः पिप्पल्यादिसमायुताः।
सक्षौद्रमूत्रा देयाः स्युर्बस्तयः कुपिते कफे।।

(सु. चि. 38/79)

अर्थात् आरग्वधादि गण के क्वाथ में पिप्पल्यादि गण का कल्क, मधु और मूत्र के मिश्रण से निर्मित कफ बस्ति का प्रयोग करने पर कफ का नाश हो जाता है।

रक्त बस्तिः-

वाराहमाहिषौरभ्रबिडालैणेयकौक्कुटम् ।
सद्यस्कमसृगाजं वा देयं पिच्छिलवस्तिषु ।।

(सु. चि. 38/86)

अर्थात् सूअर, माहिष, भेड़, विड़ाल, कृष्णमृग, मुर्गा और बकरे के ताजा रक्त से रक्तबस्ति दी जाती है या पिच्छा बस्ति में इनका ताजा रक्त मिलाकर रक्तबस्ति दी जाती है। इसका प्रयोग रक्तातिसार, रक्तपित्त, रक्तार्श या आघातजरक्तस्राव से उत्पन्न रक्तक्षय में रक्तवृद्धि के लिए किया जाता है।

शर्करेक्षुरसक्षीरघृतयुक्ताः सुशीतलाः।
क्षीरवृक्षकषायाढ्या बस्तयः शोणिते हिताः ।।

(सु. चि. 38/80)

अर्थात् न्यग्रोधादि क्षीर वृक्षों के क्वाथ में शर्करा, ईक्षुरस, दूध, घृत आदि के संयोग से निर्मित रक्त बस्ति का प्रयोग करने पर रक्तक्षय का नाश हो जाता है।

ग्राहिणी बस्तिः-

प्रियङ्ग्वादिगणक्वाथा अम्बष्ठाद्ये न संयुताः।
सक्षौद्राः सघृताश्चैव ग्राहिणो बस्तयः स्मृताः ।।

(सु. चि. 38/87)

अर्थात् प्रियङ्ग्वादि गण के क्वाथ में अम्बष्ठादि गण का कल्क, मधु और घृत के मिश्रण से निर्मित बस्ति का प्रयोग अतिसार आदि में आमपाचन कर ग्रहिणी होती है।

दोषहर बस्तिः-

शताह्वा मधुकं बीजं कौटजं फलमेव च।
सकाञ्जिकः सगोमूत्रो बस्तिर्दोषहरः स्मृतः ।।

(सु. चि. 38/94)

अर्थात् शतपुष्पा (सौंफ), मुलेठी, बिल्वफल, कुटज फल के कल्क में काञ्जी और गोमूत्र मिलाकर निर्मित दोषहर बस्ति का प्रयोग करने पर दोषों को शरीर से बाहर निकालती है।

दीपन बस्तिः–

क्षौद्राज्यक्षीरतैलानां प्रसृतिः प्रसृतं भवेत्।
हपुषासैन्धवाक्षांशो बस्तिः स्याद् दीपनः परः ।।

(शा. सं. उ. ख. 6/32)

अर्थात् मधु, घृत, दुग्ध और तैल 2-2 पल, हाऊबेर एवं सैंधवलवण एक-एक तोला के मिश्रण से निर्मित दीपन बस्ति का प्रयोग करने पर अग्निदीपन हो जाता है।

युक्तरथ बस्तिः–

वचामधुकतैलं च क्वाथः सरससैन्धवः।
पिप्पलीफलसंयुक्तो बस्तिर्युक्तरथः स्मृतः ।।

(सु. चि. 38/102)

एरण्डमूलनिष्क्वाथो मधु तैलं ससैन्धवम्।
एष युक्तरथो बस्तिः सवचापिप्पलीफलः ।।

(शा. सं. उ. ख. 6/33)

रथेष्वपि च युक्तेषु हस्त्यश्वे चापि कल्पिते।
यस्मान प्रतिषिद्धोऽयमतो युक्तरथः स्मृतः ।।

(सु. चि. 38/115)

अर्थात् वचा, मुलेठी, सैन्धव लवण, पिप्पली, मदनफल के क्वाथ में तैल और मांसरस के मिश्रण अथवा एरण्डमूल क्वाथ, मधु, तैल, सैन्धव लवण में वचा पिप्पली एवं मदनफल के प्रक्षेप से निर्मित बस्ति को युक्तरथ बस्ति कहते हैं। इस बस्ति का प्रयोग रथ, हाथी एवं घोड़े की सवारी के समय भी किया जा सकता है, इसलिए इसे युक्तरथ बस्ति कहते हैं।

सिद्धबस्तिः–

यवकोलकुलत्थानां क्वाथो मागधिका मधु।
ससैन्धवः सयष्टाह्वः सिद्धबस्तिरिति स्मृतः ।।

(सु. चि. 38/105)

बलोपचयवर्णानां यस्माद् व्याधिशतस्य च।
भवत्येतेन सिद्धिस्तु सिद्धबस्तिरतो मतः ।।

(सु. चि. 38/116)

अर्थात् यव, बेर एवं कुलत्थ के क्वाथ में पिप्पली, मधु, सैन्धवलवण और मुलेठी के मिश्रण से निर्मित बस्ति को सिद्धबस्ति कहते हैं। इस बस्ति का प्रयोग बल, वर्णवृद्धि एवं हजारों व्याधियों को नष्ट करके सिद्धि प्राप्त करने के लिए किया जाता है।

यापना बस्ति:-

यापनाश्च बस्तयः सर्वकालं देयाः। (च. सि. 12/15)
इत्येते बस्तयः स्नेहाश्चोक्ता यापन संज्ञिताः।
स्वस्थानामातुराणां च वृद्धानां चाविरोधिनः॥
अतिव्यवायशीलानां शुक्रमांसबलप्रदाः।
सर्वरोगप्रशमना सर्वेष्वृतुषु यौगिकाः॥
(च. सि. 12/20-21)

अर्थात् यापन नामक निरुह और अनुवासन बस्तियाँ स्वस्थ, रोगी, वृद्ध व्यक्ति और अतिमैथुन करने वाले व्यक्ति में शुक्र, मांस एवं बल की वृद्धि करने वाली, रोगों की शामक तथा सम्पूर्ण ऋतुओं में किसी भी समय दी जा सकती है। इस प्रकार स्वस्थ व्यक्ति के स्वास्थ्य की रक्षा एवं आतुर व्यक्तियों का रोग दूर करके आयु की वृद्धि करने के कारण यापना बस्ति कहलाती है।

संख्या के आधार पर बस्ति भेद:-

त्रिंशन्मताः कर्म नु बस्तयो हि कालस्ततोऽर्धेन ततश्च योगः।
सान्वासना द्वादश वै निरुहाः प्राक् स्नेह एकः परतश्च पञ्च॥
काले त्रयोऽन्ते पुरतस्तथैकः स्नेहा निरुहान्तरिताश्च षट् स्युः।
योगे निरुहास्त्रय एव देयाः स्नेहाश्च पञ्चैव परादिमध्याः॥
(च. सि. 1/47-78)

कालः पञ्चदशैकोऽत्र प्राक् स्नेहोऽन्ते त्रयस्तथा।
षट् पञ्च बस्त्यन्तरिताः योगोऽष्टौ बस्तयोऽत्र तु॥
(अ. ह. सू. 19/64)

अर्थात् आचार्य चरक ने कर्म बस्ति, काल बस्ति और योग बस्ति भेद से बस्ति को तीन प्रकार का मानकर कर्म बस्ति में 30 बस्ति, काल बस्ति में 16 बस्ति और योग बस्ति में 8 बस्ति देने का उल्लेख किया है। जबकि वाग्भट ने कर्म बस्ति में 30, काल बस्ति में 15 और योग बस्ति में 8 बस्ति का निर्देश दिया है।

कर्म बस्ति:- सर्वप्रथम एक अनुवासन बस्ति फिर क्रमशः 12 अनुवासन, और 12 निरूह बस्ति तथा अन्त में 5 अनुवासन बस्ति-इस प्रकार कर्मबस्ति में कुल 30 बस्तियाँ दी जाती है।

काल बस्तिः- सर्वप्रथम एक अनुवासन बस्ति, फिर क्रमशः 6 अनुवासन और 6 निरुह बस्ति तथा अन्त में 3 अनुवासन बस्ति-इस प्रकार काल बस्ति में कुल 16 बस्तियाँ दी जाती है।

योग बस्तिः- सर्वप्रथम एक अनुवासन फिर क्रमशः 3 अनुवासन और 3 निरुह बस्ति तथा अन्त में एक अनुवासन बस्ति-इस प्रकार योग बस्ति में कुल आठ बस्तियाँ दी जाती है।

बस्ति नेत्रः-

सुवर्णरूप्यत्रपुताम्ररीतिकांस्यास्थिशस्त्रद्रुमवेणुदन्तैः ।
नलैर्विषाणैर्मणिभिश्च तैस्तैर्नेत्राणि कार्याणि त्रिकर्णिकानि ।।
षड्द्वादशाष्टाङ्गुलसम्मितानि षड्विंशति द्वादशवर्षजानाम् ।
स्युर्मुद्गकर्कन्धुसतीनवाहिच्छिद्राणि वर्त्यापिहितानि चैव ।।
यथावयोऽङ्गुष्ठकनिष्ठिकाभ्यां मूलाग्रयोः स्युः परिणाहवन्ति ।
ऋजूनि गोपुच्छसमाकृतीनि श्लक्ष्णानि च स्युर्गुडिकामुखानि ।।
स्यात् कर्णिकैकाऽग्रचतुर्थभागे मूलाश्रिते बस्ति निबन्धने द्वे ।

(च. सि. 3/7-10)

अर्थात् स्वर्ण, रजत, वंग, ताम्र, पीतल, कांस्य, अस्थि, लौह, लकड़ी, बांस, दाँत, नल, सींग और मणि आदि के द्वारा तीन कर्णिका युक्त बस्ति नेत्र का निर्माण किया जाना चाहिए। इनके अभाव में रबर एवं प्लास्टिक से बनी हुई उत्तम क्वालिटी की नली का प्रयोग किया जाना चाहिए।

बस्ति नेत्र 6 वर्ष तक की आयु के बालक के लिए 6 अंगुल लम्बा एवं मूंग के आकार के छिद्र युक्त, 6 वर्ष से 12 वर्ष की आयु के लिए 8 अंगुल लम्बा मटर के आकार के छिद्रयुक्त और 20 वर्ष तक की आयु के लिए 12 अंगुल लम्बा बेर के आकार के छिद्रयुक्त बनाया जाना चाहिए। इस बस्ति नेत्र के छिद्र को कपड़े की वर्ति से बन्द रखा जाना चाहिए। मनुष्य की आयु के अनुसार नली के ऊपर का अग्रभाग अंगूठे की तरह मोटा गोल और नली के नीचे का भाग कनिष्ठिका अंगुली की तरह मोटा गोल होना चाहिए। बस्ति नेत्र सीधा, स्निग्ध और गोपुच्छ के समान उतार चढ़ाव वाला होना चाहिए। बस्ति नेत्र का मुख गुटिका जैसा गोल, चतुर्थ भाग में आगे की ओर एक कर्णिका और मूल भाग में बस्तिपुटक को बाँधने के लिए दो कर्णिकाएँ बनायी जानी चाहिए।

बलादि निरुह बस्ति विधिः-

आस्थापनार्हं पुरुषं विधिज्ञः समीक्ष्य पुण्येऽहनि शुक्लपक्षे।।
प्रशस्तनक्षत्रमुहूर्तयोगे जीर्णान्नमेकाग्रमुपक्रमेत।
बलां गुडूचीं त्रिफलां सरास्नां द्वे पञ्चमूले च पलोन्मितानि।।
अष्टौ फलान्यर्धतुलां च मांसाच्छागात् पचेदप्सु चतुर्थशेषम्।
पूतं यवानीफलबिल्वकुष्ठवचाशताह्वाघनपिप्पलीनाम्।।
कल्कैर्गुड क्षौद्रघृतैः सतैलेर्युतं सुखोष्णैस्तु पिचुप्रमाणैः।
गुडात् पलं द्विप्रसृतां तु मात्रां स्नेहस्य युक्त्या मधु सैन्धवं च।।
प्रक्षिप्य बस्तौ मथितं खजेन सुबद्धमुच्छ्वास्य च निर्वलीकम्।
अंगुष्ठमध्येन मुखं पिधाय नेत्राग्रसंस्थामपनीय वर्तिम्।।
तैलाक्तगात्रं कृतमूत्रविट्कं नातिक्षुधार्तं शयने मनुष्यम्।
समेऽथवेषन्नतशीर्षके वा नात्युच्छ्रिते स्वास्तरणोपपन्ने।।
सव्येन पार्श्वेन सुखं शयानं कृत्वर्जुदेहं स्वभुजोपधानम्।
सङ्कोच्य सव्येतरदस्य सक्थि वामं प्रसार्य प्रणयेत्ततस्तम्।।
स्निग्धे गुदे नेत्रचतुर्थभागं स्निग्धं शनैर्ऋज्वनु पृष्ठवंशम्।
अकम्पनावेपनलाघवादीन् पाण्योर्गुणांश्चापि विदर्शयंस्तम्।।
प्रपीड्य चैकग्रहणे दत्तं नेत्रं शनैरेव ततोऽपकर्षेत्।
(च. सि. 3/12-20)

अर्थात् दोष, वय, बल आदि का भली भांति विचार करके शुक्ल पक्ष में शुभ दिन, शुभ नक्षत्र, शुभ मुहूर्तयोग, रोगी का पहले का खाया हुआ आहार पच जाने पर और मन एकाग्र होने पर उस रोगी को निरुह बस्ति देनी चाहिए।

बला, गुड्ची, आमलकी, हरीतकी, बिभीतकी, रास्ना, बिल्व, अग्निमंथ, श्योनाक, पाटला, गम्भारी, शालिपर्णी, पृश्निपर्णी, बृहती, कण्टकारी, गोक्षुर प्रत्येक द्रव्य एक-एक पल, 8 नग मदनफल, बकरे का मांस आधा तुला को चतुर्गुण जल में क्वाथ करके चतुर्थांश शेष रखकर उसमें अजवायन, मदनफल, बिल्व, कुष्ठ, वचा, सौंफ, नागरमोथा और पिप्पली प्रत्येक द्रव्य एक-एक तोला का कल्क, गुड एक पल, मधु, घृत, तैल एवं सैन्धव लवण निर्धारित मात्रा में दोषानुसार गर्म क्वाथ में ही मिश्रित करके मथानी से मथकर बलादि निरुह बस्ति का निर्माण किया जाता है।

बस्ति नेत्र के अग्रभाग में लगी हुई वर्ति को बाहर करके बस्ति में नली को अच्छी तरह से बाँधना चाहिए। अब बस्ति को दबाकर नली के अन्दर की वायु को

बाहर निकालकर बस्ति यन्त्र में औषधि द्रव भर दिया जाता है। अब बस्ति योग्य व्यक्ति को जो मलमूत्र विसर्जित किया हुआ, शरीर पर तैल का अभ्यंग किया हुआ हो और भूख से पीड़ित नहीं हो उसको बस्ति के लिए उपयुक्त टेबल पर बिछे हुए बिस्तर पर आरामदायक अवस्था में लिटाया जाता है। अब रोगी वाम करवट में बाँयें हाथ का तकिया लगाकर लेटे तथा बाँयें पैर को फैलाकर एवं दाँयें पैर को मोड़कर मध्यभाग को सीधा करके लेटा रहे। अब चिकित्सक रोगी की गुदा में स्नेह लगाकर स्निग्ध करें। बस्ति नेत्र के अग्रभाग को भी स्निग्ध करना चाहिए।

अब बस्तिनेत्र के एक चौथाई भाग को पृष्ठवंश के समानान्तर गुदा में प्रविष्ट कराकर मध्यम गति से बस्ति यन्त्र को दबाकर संपूर्ण औषध को पक्वाशय में प्रविष्ट करा कर अन्त में नली को बाहर निकालकर रख दिया जाता है। इस प्रकार निरुह बस्ति का रोगी में प्रयोग किया जाता है।

निरुह बस्ति की मात्रा:-

निरुहमात्रा प्रसृतार्धमाद्ये वर्षे ततोऽर्धप्रसृताभिवृद्धिः ।।
आद्वादशात् स्यात् प्रसृताभिवृद्धिरष्टादशाद् द्वादशतः परं स्युः ।
आसप्ततेस्तद्विहितं प्रमाणमतः परं षोडशवद्विधेयम् ।।
निरुहमात्रा प्रसृतप्रमाण बाले च वृद्धे च मृदुर्विशेषः ।
(च. सि. 3/31-33)

अर्थात् निरुह बस्ति की मात्रा एक वर्ष के बालक के लिए एक पल, इसके बाद प्रतिवर्ष एक-एक पल बढ़ाते हुए 12 वर्ष के बालक के लिए 12 पल (6 प्रसृत), इसके पश्चात् एक-एक प्रसृत प्रतिवर्ष बढ़ाते हुए 18 वर्ष के व्यक्ति के लिए 12 प्रसृत (24 पल) की मात्रा देनी चाहिए। 18 वर्ष से 70 वर्ष तक 12 प्रसृत (24 पल) की मात्रा देनी चाहिए। 70 वर्ष के बाद सोलह वर्ष के समान 10 प्रसृत (20 पल) दी जाती है। बालक एवं वृद्ध व्यक्तियों में विशेष रूप से मृदु निरुह बस्ति की कल्पना करनी चाहिए। इस प्रकार निरुह बस्ति की श्रेष्ठ मात्रा 12 प्रसृत (24 पल या 96 तोला) मानी गयी है।

बस्ति निर्माण एवं प्रयोग में सावधानी:-

पूर्वं हि दद्यान्मधु सैन्धवं तु स्नेहं विनिर्मथ्य ततोऽनु कल्कम् ।।
विमथ्य संयोज्य पुनर्द्रवैस्तं बस्तौ निदध्यान्मथितं खजेन ।
वामाश्रये हि ग्रहणीगुदे च तत् पार्श्वसंस्थस्य सुखोपलब्धिः ।।

लीयन्त एवं बलयश्च तस्मात् सव्यं शयानोऽर्हति बस्तिदानम्।
विड्वातवेगो यदि चार्धदत्ते निष्कृष्य मुक्तं प्रणयेदशेषम्।।
उत्तानदेहश्च कृतोपधानः स्याद्वीर्यमाप्नोति तथाऽस्य देहम्।
(च. सि. 3/23-26)

अर्थात् पहले मधु और सैन्धव लवण को घृत, तैल में मिश्रित कर भली भांति हाथ से मथकर कल्क में मिलाकर हाथ से मलकर बने हुए मिश्रण को क्वाथ में डालकर मथानी से मथकर बस्ति यन्त्र में भरा जाना चाहिए।

व्यक्ति के वाम भाग में ग्रहणी एवं गुदा होने से रोगी को वाम करवट में सुलाने से औषधद्रव पक्वाशय में सुखपूर्वक पहुँचने के लिए गुदा की वलियाँ अवरोध नहीं करती है। अतः वाम करवट में ही बस्ति के लिए रोगी को शयन कराया जाना चाहिए।

यदि औषध द्रव के आधी मात्रा में पहुँचने पर ही मल या अपान वायु का वेग उत्पन्न हो जाय तो नली को गुदा से बाहर निकालकर रोगी को मल या अपानवायु को बाहर निकालने का अवसर देकर पुनः शेष बचे हुए द्रव को अन्दर प्रविष्ट करावें। इसके पश्चात् रोगी को उतान शयन करवाकर, नितम्ब के नीचे तकिया लगाकर रखने से बस्ति संपूर्ण शरीर में पहुँच जाता है। अतः उपरोक्त सावधानियाँ रखना आवश्यक होता है।

निरुह बस्ति पश्चात् कर्मः-

प्रत्यागते कोष्णजलावसिक्तः शाल्यन्नमद्यात्तनुना रसेन।
जीर्णे तु सायं लघु चाल्पमात्रं भुक्तोऽनुवास्यः परिबृंहणार्थम्।।
(च. सि. 3/27)

भोज्यं पुनर्व्याधिमवेक्ष्य तद्वत् प्रकल्पयेद्यूषपयोरसाद्यैः।।
(च. सि. 3/34)

अर्थात् निरुह बस्ति की औषध निकलने के पश्चात् सुखोष्ण जल से स्नान करके यूष, मांसरस, दूध आदि के साथ शालि चावलों के भात का भोजन देना हितकारी होता है।

बस्तियों में प्रक्षेप द्रव्यः-

सुरदारुशताह्वैलाकुष्ठमधुकपिप्पलीमधुस्नेहाः।
ऊर्ध्वानुलोमभागाः ससर्षपाः शर्करा लवणम्।।
(च. सि. 10/16)

अर्थात् देवदारू, सौंफ, इलायची, कुष्ठ, मधुक, पिप्पली, मधु, घृत, तैल, वमन, विरेचन द्रव्य, सर्षप, चीनी और सैन्धव लवण को बस्ति निर्माण के समय प्रक्षेप के रूप में डालना चाहिए।

निरुह बस्ति संख्या:-

स्निग्धोष्ण एकः पवने समांशो द्वौ स्वादुशीतौ पयसा च पित्ते।
त्रयः समूत्राः कटुकोष्णतीक्ष्णाः कफे निरुहा न परं विधेया।।

(च. सि. 3/69)

अर्थात् वातजरोगों में समांश युक्त स्निग्धोष्ण एक निरुह बस्ति, पित्तज रोगों में मधुर, शीतल, दूध युक्त दो निरूह बस्ति और कफज रोगों में कटु, उष्ण द्रव्य, गोमूत्र युक्त तीन निरुह बस्ति का प्रयोग करना चाहिए। इस संख्या से ज्यादा निरुह बस्ति नहीं देनी चाहिए।

निरुह बस्ति धारण कालः-

आगतौ परमः कालो मुहूर्तो मृत्यवे परम्।।

(अ. हृ. सू. 19/47)

अर्थात् निरुह बस्ति या अनुवासन बस्ति में बस्ति द्रव को एक मुहुर्त (48 मिनट) तक पक्वाशय में रखना चाहिए। इससे अधिक देर तक रहने पर मृत्यु का कारण हो जाता है।

निरुह बस्ति में पथ्यापथ्य:-

स्नानमुष्णोदकैः कुर्याद् दिवास्वप्नमजीर्णताम्।
वर्जयेदपरम् सर्वमाचरेत् स्नेहबस्तिवत्।।

(शा. सं. उ. ख. 6/35)

अर्थात् निरुह बस्ति सेवन कर्ता को उष्ण जल से स्नान करना चाहिए और दिवास्वप्न, अर्जीण का परित्याग तथा शेष सभी कार्य अनुवासन के समान करने चाहिए।

निरुह बस्ति सम्यक् योग लक्षण:-

प्रसृष्टविण्मूत्रसमीरणत्वं रूच्यग्निवृद्धयाशयलाघवानि।
रोगोपशान्तिः प्रकृतिस्थता च बलं च तत् स्यात् सुनिरूढलिङ्गम्।।

(च. सि. 1/41-41½)

अर्थात् मल, मूत्र एवं वायु का भलीभाँति विसर्जन होना, भोजन में रुचि होना, अग्नि की वृद्धि होना, आशयों में लघुता, रोग शमन, स्वास्थ्य ठीक रहना और शरीर में बल का अनुभव होना निरुह बस्ति के सम्यक् योग का लक्षण है।

निरुह बस्ति गुणः–

बस्तिर्वयःस्थापिता सुखायुर्बलाग्निमेधास्वरवर्णकृच्च।
सर्वार्थकारी शिशुवृद्धयूनां निरत्ययः सर्वगदापहश्च।।
विट्श्लेष्म पित्तानिलमूत्रकर्षी दार्ढ्यावहः शुक्रबलप्रदश्च।
विष्वकस्थितं दोषचयं निरस्य सर्वान् विकारान् शमयेन्निरूहः।।
(च. सि. 1/27-28)

अर्थात् निरुह बस्ति आयु स्थिर करने वाली, सुखकारक, बल्य, अग्निदीपक, मेध्य, स्वर प्रसादक, वर्ण्य आदि सभी कार्यों को सिद्ध करती है। बालक, युवा और वृद्ध सभी व्यक्तियों के लिए लाभदायक होती है। यह बिना उपद्रव के संपूर्ण रोगों को नष्ट करती है। यह मल, कफ, पित्त, वात, मूत्रादि को शरीर से बाहर कर शरीर को दृढ़ करके शुक्र एवं बल को बढ़ाती है। इस प्रकार निरुह बस्ति शरीर में प्रकुपित दोषों को बाहर निकालकर समस्त रोगों को दूर करती है।

2. अनुवासन बस्तिः–

अनुवसन्नपि न दुष्यत्यनुदिवसं वा दीयत इत्यनुवासनः।
(सु. चि. 35/18)

अनुवासनं यथाहौषधसिद्धः स्नेहनार्थे स्नेहः।
(अ. सं. सू. 28/7)

यः स्नेहैर्दीयते स स्यादनुवासननामकः।
(शा. सं. उ. ख. 5/2)

अर्थात् जिस बस्ति द्रव के शरीर में रहने पर भी निरूपद्रवकारक एवं प्रतिदिन देने से उपयोगी हो और दोष एवं रोगियों के अनुसार औषधियों से सिद्धस्नेह या केवल स्नेह का बस्ति में प्रयोग हो तो उसे अनुवासन बस्ति कहते हैं।

अनुवासन बस्ति मात्राः–

यथाप्रमाणगुणविहितः स्नेहबस्तिविकल्पोऽनुवासनः पादावकृष्टः तस्यापिविकल्पोऽर्धार्धमात्रावकृष्टोऽपरिहार्यो मात्राबस्तिरिति।
(सु. चि. 35/18)

यथावयो निरुहाणां या मात्राः परिकीर्तिता।
पादावकृष्टास्ताः कार्याः स्नेहबस्तिषु देहिनाम्।।
(सु. चि. 37/4)

षट्पली तु भवेच्छ्रेष्ठा त्रिपली मध्यमा भवेत्।
कनीयस्यर्धपलिका त्रिधा मात्राऽनुवासने।।

(सु. चि. 37/4 पर डल्हण टीका)

उत्तमस्य पलैः षड्भिर्मध्यमस्य पलैस्त्रिभिः।
पलस्यार्धेन हीनस्य युक्ता मात्राऽनुवासने।।

(शा. सं. उ. ख. 5/20)

अर्थात् मात्रा के आधार पर स्नेह बस्ति, अनुवासन बस्ति एवं मात्रा बस्ति भेद से अनुवासन बस्ति के तीन उपभेद माने हैं। मात्रा बस्ति को अनुवासन बस्ति का विकल्प माना गया है। अनुवासन बस्ति की श्रेष्ठ मात्रा 6 पल (24 तोला) को स्नेह बस्ति, मध्यम मात्रा 3 पल (12 तोला) को अनुवासन बस्ति और ह्रस्व मात्रा 1½ पल (6 तोला) को मात्रा बस्ति कहा जाता है। आयु के अनुसार अनुवासन बस्ति की मात्रा निरुह बस्ति की मात्रा से अनुवासन बस्ति की मात्रा चतुर्थांश में प्रयुक्त की जानी चाहिए।

मात्रा बस्ति का उपयोगः–

कर्मव्यायामभाराध्वयानस्त्रीकर्षितेषु च।
दुर्बले वातभग्ने च मात्राबस्तिः सदा मतः।।
यथेष्टाहारचेष्टस्य सर्वकालं निरत्ययः।
ह्रस्वायाः स्नेहमात्राया मात्राबस्तिः समो भवेत्।।
बल्यं सुखोपचर्यं च सुखं सृष्टपुरीषकृत्।
स्नेहमात्राविधानं हि बृंहणं वातरोगनुत्।।

(च. सि. 4/52-54)

अर्थात् प्रतिदिन व्यायाम करने वाला, भारवहन करने वाला, मार्ग गमन करने वाला, नित्य सवारी करने वाला, अतिमैथुन से कृषित, दुर्बल एवं वातव्याधि में मात्राबस्ति हितकारी होता है। इच्छानुसार आहार विहार करने वाले और शारीरिक चेष्टा करने वाले व्यक्तियों के लिए सभी ऋतुओं में निरूपद्रव इस मात्राबस्ति का प्रयोग करना चाहिए। यह मात्रा बस्ति स्नेहपान की सबसे छोटी मात्रा के समान होती है। यह बलवर्धक, सुख से उपचार करने वाली, सुखपूर्वक मलमूल विसर्जन कराने वाली, बृंहण करने वाली और वातरोगों का नाश करने वाली होती है।

अनुवासन बस्ति विधि (दशमूलादि स्नेहवस्ति):-

दशमूलं बलां रास्नामश्वगन्धां पुनर्नवाम्।
गुडूच्येरण्डभूतीकभार्ङ्गीवृषकरोहिषम् ॥
शतावरीं सहचरं काकनासां पलांशिकम्।
यवमाषातसीकोलकुलत्थान् प्रसृतोन्मितान्॥
चतुर्द्रोणेऽम्भसः पक्त्वा द्रोणशेषेण तेन च।
तैलाढ़कं समक्षीरं जीवनीयैः पलोन्मितैः॥
(च. सि. 4/4-6)

निरुहपादांशसमेन तैलेनाम्लानिलघ्नौषधसाधितेन।
दत्त्वा स्फिचौ पाणितलेन हन्यात् स्नेहस्य शीघ्रागमरक्षणार्थम्॥
ईषच्च पादाङ्गुलियुग्ममाञ्छेदुत्तानदेहस्य तलौप्रमृज्यात्।
स्नेहेन पाष्र्ण्यङ्गुलिपिण्डिकाश्च ये चास्य गात्रावयवा रुगार्ताः॥
तांश्चावमृद्नीत सुखं ततश्च निद्रामुपासीत कृतोपधानः।
(च. सि. 3/28-30)

अर्थात् बिल्व, अग्निमंथ, श्योनाक, पाटला, गम्भारी, शालिपर्णी, पृश्निपर्णी, बृहती, कण्टकारी, गोक्षुर, बलामूल, रास्ना, अश्वगन्धा, पुनर्नवा, गुडूची, एरण्डमूल, अजवायन, भारङ्गी, वासापत्र, सुगन्धतृण, शतावरी, सहचर, काकनासा प्रत्येक द्रव्य 1-1 पल और यव, उड़द, अलसी, बेर, कुलत्थ 2-2 पल उपरोक्त समस्त द्रव्यों का यवकुट चूर्ण करके चार द्रोण जल में पकाकर एक द्रोण शेष क्वाथ बनाया जाता है। फिर क्वाथ को छानकर उसमें एक आढ़क तिल तैल एवं जीवनीय वर्ग की समस्त औषधि का कल्क मिलाकर दशमूलादि अनुवासन बस्ति का निर्माण किया जाता है।

अब निरुह बस्ति की तरह रोगी का परीक्षण एवं पूर्वकर्म करके रोगी को टेबिल पर वाम करवट में बाँयें हाथ का तकिया लगाकर उत्तान शयन करवाकर बस्ति यन्त्र में अनुवासन बस्ति तैल को भरकर पूर्वोक्त बस्ति नेत्र से नली जोड़कर 6 पल (24 तोला) की मात्रा में गुदा द्वारा देकर बस्तिधारण काल तक रोगी को आराम से सुलाकर रखना चाहिए। फिर बस्ति देने के बाद तलवे से नितम्ब के ऊपर बार-बार थपथपाया जाता है। इस प्रकार करने पर स्नेह तुरन्त वापिस बाहर नहीं निकलता है।

फिर दोनों पैर की दो अंगुलियों को थोड़ा खींचा जाना चाहिए। उत्तान सोये हुए व्यक्ति के पैर के तलवे, एड़ी, अंगुलियों एवं पिण्डिकाओं में तैल की मालिश करके रोगी को सीधा उत्तान अवस्था में शयन करना चाहिए। फिर स्नेह के बाहर निकलने पर निरुह बस्ति की तरह सुपाच्य भोजन एवं उष्ण जल का प्रयोग करना चाहिए।

बस्ति का प्रभावः-

आपादतलमूर्धस्थान् दोषान् पक्वाशये स्थितः।
वीर्येण बस्तिरादत्ते खस्योऽर्को भूरसानिव।।

(च. सि. 7/64)

अर्थात् बस्ति पक्वाशय में रहने से स्वशक्ति द्वारा पैर के तलवे से मस्तिष्क तक के कुपित दोषों को नष्ट करती है। जिस तरह सूर्य आकाश में रहते हुए भी स्वशक्ति से पृथ्वी रस को खींच लेता है।

अनुवासन बस्ति संख्याः-

एकं वा त्रीन् कफजे विकारे पित्तात्मके पञ्च तु सप्त वाऽपि।
वाते नवैकादश वा पुनर्वा बस्तीनयुग्मान् कुशलो विदध्यात्।।

(च. सि. 1/25)

अर्थात् कुशल वैद्य को कफ रोगों में एक या तीन, पित्तज रोगों में पाँच या सात और वातज रोगों में नो या ग्यारह अनुवासन बस्ति का विषम मात्रा में प्रयोग करना चाहिए।

अनुवासन बस्ति धारण कालः-

यस्येह यामाननुवर्तते त्रीन् स्नेहो नरः स्यात् स विशुद्धदेहः।।
आश्वागतेऽन्यस्तु पुनर्विधेयः स्नेहो न संस्नेहयति ह्यतिष्ठन्।

(च. सि. 1/46)

अर्थात् अनुवासन बस्ति का तैल शरीर में 3 याम (9 घंटे) तक ठहरकर बाहर निकलने से शरीर पूर्ण रूप से शुद्ध हो जाता है। जिससे अयोग एवं अतियोग से होने वाले उपद्रव नहीं होते हैं। स्नेह के शीघ्र बाहर आने पर पुनः अनुवासन बस्ति का प्रयोग करें। क्योंकि स्नेह के शरीर में निर्धारित समय तक नहीं रुकने से भलीभाँति स्नेहन नहीं हो पाता है।

अनुवासन बस्ति सम्यक् योग लक्षणः-

प्रत्येत्यसक्तं सशकृच्च तैलं रक्तादिबुद्धीन्द्रियसंप्रसादः।
स्वप्नानुवृत्तिर्लघुता बलं च सृष्टाश्च वेगाः स्वनुवासिते स्युः।।

(च. सि. 1/44)

अर्थात् अनुवासन बस्ति का उचित रूप से प्रयोग होने पर बिना किसी अवरोध के मल के साथ तैल के गुदा से बाहर आ जाने से रक्तादि धातु, बुद्धि, इन्द्रियां स्वच्छ होकर सुखपूर्वक निद्रा आ जाती है। वेगों के नहीं रुकने से शरीर में लघुता एवं बलवृद्धि हो जाती है।

अनुवासन बस्ति गुणः-

देहे निरुहेण विशुद्धमार्गे सस्नेहनं वर्णबलप्रदं च।
न तैलदानात् परमस्ति किञ्चिद्रव्यं विशेषेण समीरणार्ते।।
स्नेहेन रौक्ष्यं लघुतां गुरुत्वादौष्ण्याच्च शैत्यं पवनस्य हत्वा।
तैलं ददात्याशु मनःप्रसादं वीर्यं बलं वर्णमथाग्निपुष्टिम्।।
मूले निषिक्तो हि यथा द्रुमः स्यान्नीलच्छदः कोमलपल्लवाग्र्यः।
काले महान् पुष्पफलप्रदश्च तथा नरः स्यादनुवासनेन।।

(च. सि. 1/29-31)

अर्थात् निरुह बस्ति द्वारा शरीर के स्रोतों का शोधन होने के बाद अनुवासन बस्ति का प्रयोग करने पर शरीर का वर्ण एवं बल की वृद्धि हो जाती हैं। विशेषतः वात व्याधियों की वेदना को शान्त करने के लिए अनुवासन तैल के प्रयोग से बढ़कर अन्य औषधि नहीं है। इसका कारण यह है कि तैल अपने स्नेह गुण से वायु की रूक्षता, गुरु गुण से वायु की लघुता, उष्णवीर्य से वायु की शीतलता का नाश करके शीघ्र ही शरीर एवं मन को प्रसन्नता देता है। इसके अलावा बल, वर्ण, वीर्य एवं जाठराग्नि की वृद्धि कर शरीर को पुष्ट करता है। जिस प्रकार वृक्ष के मूल में जल डालने पर पेड़ के अग्रभाग में नीलवर्ण की कोमल-कोमल पत्तियाँ आकर कुछ समय बाद फल और फूल देने वाला हो जाता है। उसी प्रकार अनुवासन बस्ति के उचित रूप में सेवन से व्यक्ति स्वस्थ, बलवीर्यादि से युक्त और अनेक सन्तानों से युक्त हो जाता है।

अनुवासन बस्ति काल :-

दिवा शीते बसन्ते च स्नेहबस्तिः प्रदीयते।
ग्रीष्मवर्षाशरत्काले रात्रौ स्यादनुवासनम्।।

(शा. सं. उ. ख. 5/16)

अर्थात् हेमन्त, शिशिर, बसन्त में दिन के समय एवं ग्रीष्म, वर्षा, शरद ऋतु में रात्रि के समय अनुवासन बस्ति का प्रयोग करना चाहिए।

अनुवासन बस्तिद्रव्यः-

शताह्वासैन्धवाभ्यां च देयं स्नेहे च चूर्णकम्।
तन्मात्रोत्तममध्यान्ताः षट्चतुर्द्वयमाषकैः।।

(शा. सं. उ. ख. 5/21)

अर्थात् अनुवासन बस्ति के स्नेह में उत्तम पुरुष के लिए सौंफ एवं सैन्धव लवण का चूर्ण 6 ग्राम, मध्यम पुरुष के लिए चार ग्राम और अल्प (हीन) पुरुष के लिए दो ग्राम की मात्रा में डाला जाना चाहिए।

अनुवासन बस्ति में पथ्यापथ्य:-

जीर्णान्नमथ सायाह्ने स्नेहे प्रत्यागते पुनः।
लघ्वन्नं भोजयेत् कामं दीप्ताग्निस्तु नरो यदि।।

(शा. सं. उ. ख. 5/32)

पानाहारविहाराश्च परिहाराश्च कृत्स्नशः।
स्नेहपान समाः कार्या नात्र कार्या विचारणा।।

(शा. सं. उ. ख. 5/51)

अर्थात् भोजन का पाचन हुए व्यक्ति को स्नेह के बाहर आने पर सायंकाल इच्छानुसार लघु भोजन खाना चाहिए। यदि जाठराग्नि दीप्त नहीं हो तो भोजन अल्पमात्रा में या बिल्कुल नहीं देना चाहिए। इसके अतिरिक्त अनुवासन बस्ति में खान पान, विहार और परहेज का स्नेहपान के समान ही प्रयोग करना चाहिए।

उत्तरबस्तिः-

उत्तरबस्तिसंज्ञा उत्तरमार्गदीयमानतया, किंवा श्रेष्ठगुणतया उत्तरबस्तिः।

(च. सि. 9/50 पर चक्रपाणि टीका)

सः निरुहादुत्तरमुत्तरेण वा मार्गेण दीयत इत्युत्तरबस्तिः।

(अ. सं. सू. 28/8)

अर्थात् उत्तरमार्ग (मूत्र मार्ग या योनि मार्ग) में दी जाने के कारण, श्रेष्ठ गुण युक्त होने के कारण तथा निरुह व अनुवासन बस्ति के पश्चात् दी जाने के कारण इसे उत्तर बस्ति कहते हैं।

उत्तर बस्ति नेत्रः-

पुष्पनेत्रं तु हेमं स्याच्छ्लक्ष्णमौत्तरबस्तिकम्।
जात्यश्वहनवृन्तेन समं गोपुच्छसंस्थितम्।
रौप्यं वा सर्षपच्छिद्रं द्विकर्णं द्वादशाङ्गुलम्।।

(च. सि. 9/50-52)

पुष्पनेत्रप्रमाणं तु प्रमदानां दशाङ्गुलम्।
मूत्रस्रोतः परिणाहम् मुद्गस्रोतोऽनुवाहि च।।

अपत्यमार्गे नारीणां विधेयं चतुरङ्गुलम्।
द्वयङ्गुलं मूत्रमार्गे तु बालायास्त्वेकमङ्गुलम्।।
(च. सि. 9/65-66)

चतुर्दशाङ्गुलं नेत्रमातुराङ्गुलसम्मितम्।
मालतीपुष्पवृन्ताग्रं छिद्रं सर्षपनिर्गमम्।।
(सु. चि. 37/101)

निविष्टकर्णिकं मध्ये नारीणां चतुरङ्गुले।
मूत्रस्रोतः परिणाहं मुद्गवाहि दशाङ्गुलम्।।
मेढ्रायाससमं केचिदिच्छन्ति खलु तद्विदः।
तासामपत्यमार्गे तु निदध्याच्चतुरङ्गुलम्।।
द्वयङ्गुलं मूत्रमार्गे तु कन्यानां त्वेकङ्गुलम्।
विधेयं चाङ्गुलं तासां विधिवत् वक्ष्यते यथा।
(सु. चि. 37/103-105)

अर्थात् उत्तरबस्ति का नेत्र स्वर्ण या रजत का चमेली अथवा कनेर के फूल के वृन्त के सदृश सूक्ष्म और गाय की पूँछ के सदृश आकृति वाला बना हुआ होना चाहिए।

पुरुषों के लिए पुष्पनेत्र में सर्षप के आकार का छिद्र, नेत्र 12 अङ्गुल लम्बा एवं द्विकर्णिका युक्त होना चाहिए। आचार्य सुश्रुत ने 14 अंगुल लम्बी नली बनाने का निर्देश दिया है।

स्त्रियों के लिए पुष्पनेत्र 10 अंगुल लम्बा, मूत्रवहस्रोत के परिणाह वाला बना हुआ होना चाहिए। इस पुष्पनेत्र में मूंग के आकार का छिद्र बना हुआ हो, इस पुष्पनेत्र को स्त्रियों के योनि मार्ग में चार अंगुल, मूत्रमार्ग में 2 अंगुल और दस वर्ष से कम उम्र की बालिकाओं में एक अंगुल अन्दर प्रविष्ट किया जाना चाहिए।

इस प्रकार पुरुषों के लिए पुष्पनेत्र 12 या 14 अंगुल लम्बा एवं स्त्रियों के लिए पुष्पनेत्र दश अंगुल लम्बा कहा गया है। पुरुषों के पुष्पनेत्र में एक कर्णिका मूल भाग एवं दूसरी कर्णिका मध्य में (6 अंगुल दूर) तथा स्त्रियों के पुष्पनेत्र में एक कर्णिका मूलभाग एवं दूसरी कर्णिका चार अंगुल छोड़कर बनायी जाती है। इस नली से मूत्रमार्ग एवं योनिमार्ग में बस्ति का प्रयोग किया जाता है। स्त्रियों के योनिमार्ग में चार अंगुल,

मूत्रमार्ग में 2 अंगुल एवं कन्याओं के मूत्रमार्ग में 1 अंगुल अन्दर प्रविष्ट कराया जाता है। बालाओं (10 से 12 वर्ष तक) के योनिमार्ग में बस्ति का प्रयोग नहीं किया जाता है। क्योंकि बालिकाओं में गर्भाशय की विकृति नहीं होती है।

उत्तर बस्ति मात्रा :-

तेनाजबस्तियुक्तेन स्नेहस्यार्धपलं नयेत्।
यथावयोविशेषेण स्नेहमात्रां विकल्प्य वा।।

(च. सि. 9/52)

स्नेहप्रमाणं परमं प्रकुञ्चश्चात्र कीर्तितः।
पञ्चविंशादधो मात्रां विदध्याद् बुद्धिकल्पिताम्।।

(सु. चि. 37/102)

योनिमार्गेषु नारीणां स्नेहमात्रा द्विपालिकी।
मूत्रमार्गे पलोन्माना बालानां च द्विकार्षिकी।।

(शा. सं. उ. ख. 7/9)

अर्थात् आचार्य चरक ने उत्तरबस्ति के लिंए द्रव की मात्रा 2 तोला अथवा 25 वर्ष के पुरुष के लिए अनुवासन उत्तरबस्ति 4 तोला एवं निरुह उत्तरबस्ति की मात्रा 8 तोला बतलायी गयी है। इसी प्रकार आचार्य सुश्रुत ने स्त्रियों के लिए अनुवासन उत्तरबस्ति की मात्रा 8 तोला और निरुह उत्तर बस्ति की गर्भाशय शोधनार्थ 16 तोला की मात्रा में देने का निर्देश किया है। जबकि आचार्य शार्ङ्गधर के मतानुसार स्त्रियों में योनिमार्ग द्वारा गर्भाशयगत उत्तरबस्ति की मात्रा 8 तोला, मूत्राशयगत उत्तरबस्ति की मात्रा 4 तोला और 12 वर्ष तक की बालाओं में मूत्राशयगत उत्तरबस्ति की मात्रा 2 तोला बतलायी है।

पुरुषों में उत्तरबस्ति विधिः-

स्नातस्य भुक्तभक्तस्य रसेन पयसाऽपि वा।
सृष्टविण्मूत्रवेगस्य पीठे जानुसमे मृदौ।।
ऋजोः सुखोपविष्टस्य हृष्टे मेढ्रे घृताक्तया।
शलाकयाऽन्विष्य गतिं यद्यप्रतिहता व्रजेत्।।
ततः शेफप्रमाणेन पुष्पनेत्रं प्रवेशयेत्।
गुदवन्मूत्रमार्गेण प्रणयेदनुसेवनीम्।।
हिंस्यादतिगतं बस्तिमूने स्नेहो न गच्छति।
सुग्नं प्रपीड्य निष्कम्पं निष्कर्षेन्नेत्रमेव च।।

प्रत्यागते द्वितीयं च तृतीयं च प्रदापयेत्।
आगच्छनुपेक्ष्यस्तु रजनीव्युषितस्य च।।
(च. सि. 9/53-57)

अर्थात् मलमूत्र का त्याग करने के बाद स्नान करके मांसरस या दूध के साथ भोजन किए हुए पुरुष को जानु के समान ऊँचे टेबल या चारपादिका पर कोमल बिस्तर बिछाकर आराम से बिठा दिया जाता है। फिर स्नेहन स्वेदन से शिश्न को खड़ा करके घृत स्निग्ध शलाका से मूत्रमार्ग की लम्बाई का पता लगाया जाता है। फिर बस्तियन्त्र में द्रव भरकर पुष्पनेत्र को जोड़कर शिश्न में बिना अवरोध पुष्पनेत्र के जाने तक अन्दर प्रविष्ट कर बस्तियन्त्र को दबाकर उत्तरबस्ति द्रव को अन्दर किया जाता है। बस्ति देते समय और निकालते समय हाथ नहीं काँपना चाहिए। एक बार दी गयी उत्तर बस्ति का स्नेह बाहर आ जाने पर द्वितीय और द्वितीय बार दी गयी उत्तरबस्ति का स्नेह बाहर आ जाने पर तृतीय उत्तर बस्ति दी जानी चाहिए। यदि उत्तरबस्ति द्वारा प्रविष्ट किया स्नेह बाहर नहीं निकले तो उसकी उपेक्षा करके रात्रि व्यतीत हो जाने पर दूसरे दिन पिप्पल्यादि वर्ति लगाकर स्नेह को बाहर निकालना चाहिए।

स्त्रियों में उत्तरबस्ति विधि:-

उत्तानायाः शयनायाः सम्यक् सङ्कोच्य सक्थिनी।।
अथास्याः प्रणयेन्नेत्रमनुवंशगतं सुखम्।
द्विस्त्रिश्चतुरिति स्नेहानहोरात्रेण योजयेत्।।
बस्तौ, बस्तौ प्रणीते च वर्तिः वीनतरा भवेत्।
त्रिरात्रं कर्म कुर्वीत स्नेहमात्रां विवर्धयेत्।।
अनेनैव विधानेन कर्म कुर्याद् पुनरन्यहात्।
(च. सि. 9/67-70)

सम्यक् प्रपीडयेद्योनिं दद्यात् सुमृदुपीडितम्।
त्रिकर्णिकेन नेत्रेण दद्याद्योनिमुखं प्रति।।
(सु. चि. 37-115)

उत्तानायाः शयनायाः सम्यक् सङ्कोच्य सक्थिनी।
ऊर्ध्वजान्वास्त्रिचतुरानहोरात्रेण योजयेत्।।
बस्तींस्त्रिरात्रमेवं च स्नेहमात्रां विवर्धयेत्।
त्र्यहमेव च विश्रम्य प्रणिदध्यात्पुनस्त्र्यहम्।।
(अ. सं. सू. 28/73-74)

अर्थात् उत्तरबस्ति देने योग्य स्त्री को टेबिल पर उत्तान सुलाकर दोनों पैरों को संकुचित कराकर आराम से सुलाया जाता है। फिर बस्तियन्त्र में द्रव भरकर पुष्पनेत्र को नली से जोड़कर स्त्री की योनि या मूत्रमार्ग में पुष्पनेत्र को चार अंगुल प्रविष्ट कर बस्तियन्त्र को दबाकर औषध को पहुँचाया जाता है। एक दिन रात में 2,3 या 4 बार उत्तरबस्ति को दिया जाना चाहिए। यदि उत्तरबस्ति का स्नेह बाहर नहीं आये तो पूर्व की भाँति मोटाई में अधिक बनी हुई पिप्पल्यादि वर्ति को डालकर स्नेह को बाहर निकालना चाहिए। स्नेह की मात्रा की वृद्धि करते हुए तीन दिन तक उत्तरबस्ति देकर, फिर तीन दिन रुकने के बाद पुनः स्त्रियों में उत्तरबस्ति देनी चाहिए।

स्त्रियों में उत्तरबस्ति कालः-

स्त्रीणामार्तवकाले तु प्रतिकर्म तदाचरेत्।
गर्भासना सुखं स्नेहं तदाऽऽदत्ते ह्यपावृतः ।।
गर्भ योनिस्तदा शीघ्रं जिते गृह्णति मारूते।
बस्तिजेषु विकारेषु योनिविभ्रंशजेषु च।।
योनिशूलेषु तीव्रेषु योनिव्यापत्स्वसृग्दरे।
अप्रस्रवति मूत्रे च बिन्दुं बिन्दुं स्रवत्यपि।।
विदध्यादुत्तरं बस्तिं यथास्वौषधसंस्कृतम्।

(च. सि. 9/62-65)

स्त्रीणामार्तवकाले तु योनिर्गृह्णत्यपावृतेः।
विदधीत तदा तस्मादनृतावपि चात्यये।।
योनिविभ्रंशशूलेषु योनिव्यापद्यसृग्दरे।।

(अ. सं. सू. 28/70)

अर्थात् स्त्रियों के ऋतुकाल में गर्भाशय का मुख खुला रहने से योनि शीघ्र ही स्नेह को ग्रहण कर लेती है। इसलिए स्त्रियों में उत्तर बस्ति विशेषतः ऋतुकाल में ही दी जाती है। इस उत्तर बस्ति का प्रयोग करने पर गर्भाशय की वायु नष्ट हो जाने से योनि शीघ्र ही गर्भधारण करती है। स्त्रियों के बस्ति रोग, योनिभ्रंश, योनिशूल, तीव्र योनिव्यापद, श्वेतप्रदर, रक्तप्रदर, मूत्रावरोध, मूत्रकृच्छ्र आदि में दोषघ्न औषधसिद्ध स्नेह की उत्तरबस्ति दी जाती है। आचार्य वाग्भट ने योनिभ्रंश, योनिशूल, रक्तप्रदर, श्वेतप्रदर आदि आत्ययिक अवस्थाओं में ऋतुकाल के अलावा भी उत्तर बस्तियों का विधान किया है।

उत्तर बस्ति गुणः-

शुक्रं दुष्टं शोणितं चाङ्गनानां पुष्पोद्रेकं तस्य नाशं च कष्टम्।
मूत्राघातान्मूत्रदोषान् प्रवृद्धान् योनिव्याधिं संस्थितिं चापरायाः।।
शुक्रोत्सेकं शर्करामश्मरीं च शूलं बस्तौ वङ्क्षणे मेहने च।
घोरानन्यान् बस्तिजांश्चापि रोगान् हित्वा मेहानुत्तरो हन्ति बस्तिः।।

(सु. चि. 37/125-126)

अर्थात् उत्तरबस्ति से प्रमेह, दूषित शुक्र एवं आर्तव, रज की अधिकता, रजोनाश, रजकृच्छ्रता, मूत्राघात, मूत्रदोष, योनिव्यापद्, अपरा का अवरोध, शुक्रक्षरण, शर्करा, अश्मरी, बस्तिशूल, वंक्षणशूल, लिङ्गशूल और बस्तिगत अन्य विविध भयंकर रोग नष्ट हो जाते हैं।

उत्तरबस्ति लक्षण समन्वयः-

सम्यग्दत्तस्य लिङ्गानि व्यापदः क्रम एव च।
बस्तेरूत्तरसंज्ञस्य समानं स्नेहबस्तिना।।

(शा. सं. उ. ख. 7/14)

अर्थात् उत्तर बस्ति का सम्यक् योग लक्षण, उपद्रवों के लक्षण, चिकित्सा एवं पथ्यापथ्य आदि अनुवासन बस्ति के समान जानना चाहिए।

एकादश अध्याय

मानकीकरण
(Standardization)

औषध मानकीकरण परिचय–वर्तमान में सभी प्रकार की औषधियों के लिए चिकित्सक एवं रोगी (उपभोक्ता) व्यवसायिक औषधि निर्माताओं पर आश्रित रहते हैं और निर्माता स्वयं भी कच्ची औषधियों के लिए अन्य व्यापारियों पर निर्भर रहते हैं, जबकि प्राचीन काल में वैद्यगण स्वयं वनों से प्रामाणिक कच्ची औषधियों का संग्रह कर, उनसे आवश्यकतानुसार शास्त्रोक्त विधि से गुणवत्ता युक्त औषधियों का निर्माण कर प्रयोग करते थे। परन्तु वर्तमान में जनसंख्या वृद्धि के कारण औषधियों की मांग बढ़ जाने से तथा कच्ची औषधियों की उपलब्धता कम होने के कारण औषधि निर्माता व्यापारिक दृष्टि से इस क्षेत्र में आ रहे हैं, जो कम से कम लागत पर अधिक से अधिक लाभ पाने की योजनायें बनाते हैं। मुख्य द्रव्य के अभाव में दूसरे समान द्रव्य का मिश्रण आज के युग में साधारण बात हो गयी है। निर्माता शास्त्रोक्त निर्माण विधि का पूर्ण रूप से पलन नहीं करते हें। उक्त सभी कारणों से औषधि की क्रियाशीलता प्रभावित होती है।

प्राचीन आयुर्वेदीय ग्रन्थों में कच्ची औषधियों और निर्मित औषधियों के गुणवत्ता मानक प्रचुरता से मिलते हैं। इसे निम्न तीन स्तरों में विभाजित किया जा सकता हैः-

1. कच्ची औषधि स्तर पर गुणवत्ता नियन्त्रण।
2. औषधि निर्माण स्तर पर गुणवत्ता नियन्त्रण।
3. अन्तिम उत्पाद स्तर पर गुणवत्ता नियन्त्रण।

आयुर्वेद चिकित्सक कच्ची औषधि का ग्रहण उसके रस, गन्ध, वर्ण, स्वरूप आदि देखकर करते थे। जिस औषधि के रस, गंध, वर्ण, स्पर्श, प्रभाव आदि अकाल, आतप, अग्नि, जलवायु व कृमि आदि के प्रभाव से नष्ट न हुए हो, उचित ऋतु एवं उचित देश में उत्पन्न हो, उचित भाजन (पात्र) में संग्रह की गई हो, उसको औषध निर्माण हेतु ग्रहण करते थे।

प्राचीन ग्रन्थों में औषध कल्पनाओं के सिद्धि लक्षण अर्थात् मानक (निर्मित होने के लक्षण) निर्दिष्ट है। यथा:-

1. **क्वाथ:**-क्वाथ के लिए गतरसत्व मानक बताया है अर्थात् कच्ची औषध के रसादि गुण क्वाथ में आने तक क्वथित करना चाहिए।

2. **चूर्ण:**-चूर्ण महीन वस्त्र से छना हुआ होना चाहिए।

3. **अवलेह:**-अवलेह सिद्धि के लक्षण (मानक) तन्तुमत्वं, अप्सुमज्ज्नं, स्थिरत्वं, पीडिते मुद्रा और गन्धवर्णरसोत्पत्ति है।

4. **स्नेह (घृत, तैल):**-स्नेह सिद्धि के लक्षण वर्तिवत् स्नेहकल्क, शब्दहीनोऽग्निनिक्षिप्त, फेनोद्गम (तैल) या फेनशान्ति (घृत) और गन्धवर्णरसोत्पत्ति है।

5. **संधान कल्पना (आसवारिष्ट):**-सन्धान सिद्धि के लिए जातरसं अर्थात् द्रव्यों के रसादि गुण द्रव में आ जाने चाहिए। सन्धान पात्र के पास कान लगाकर सुनने पर सुन सुन की आवाज नहीं आनी चाहिए। जलती हुई दियासलाई पात्र के अन्दर ले जाने पर बुझनी नहीं चाहिए। सन्धान सिद्धि के उक्त लक्षण बताये हैं।

6. **पथ्य कल्पना:**-मण्ड, पेया, यवागू और विलेपी के लक्षण (मानक):-

सिक्थकै: विरहितो मण्ड: पेयासिक्थसमन्विता।
यवागूबहुसिक्था स्यात् विलेपी विरलद्रवा।।

(सु. सू. 46/344)

इसी प्रकार प्राचीन ग्रन्थों में कल्पनाओं तथा औषध योगों के निर्माण में द्रव्य की मात्रा, जल की मात्रा, पाक का समय, निर्माण विधि आदि उल्लिखित है। आयुर्वेदीय ग्रन्थों में उल्लिखित उचित द्रव्यों एवं उपयुक्त निर्माण विधि से निर्मित औषध ही गुणकारी होती है। परन्तु उपर्युक्त मानक भौतिक (Physical-Organoleptic) है, जो वैज्ञानिक दृष्टि से पर्याप्त नहीं है। वर्तमान भौतिक युग में अधिक लाभ की कामना से औषधि निर्माता बिना प्रामाणिक द्रव्य से औषध का निर्माण करते हैं तथा शास्त्रोक्त निर्माण प्रक्रिया का भी पूर्ण रूप से पालन नहीं करते हैं। किसी भी स्तर पर घटक द्रव्यों के बदलने पर, मात्रा में परिवर्तन कर देने पर या निर्माण विधि का पूर्णतया पालन नहीं करने पर औषध की कार्मुकता परिवर्तित हो जाती है तथा औषध विषाक्त हो जाती है।

इसलिए आयुष विभाग के मार्गदर्शन तथा केन्द्रीय आयुर्वेद विज्ञान अनुसंधान परिषद् के प्रयास से भारतीय आयुर्वेदीय भेषज संहिता (Ayurvedic pharmacopoeia of India) भाग-1 तथा भाग-2 में औषधियों के गुणवत्ता मानक निर्धारित

किये गए है। इन मानको का पालन करने से आयुर्वेदिक औषधियों में समरूपता व गुणवत्ता बनी रहेगी।

आयुर्वेदिक फार्मेकोपिया ऑफ इण्डिया (A.P.I) में निर्धारित कच्ची कच्ची काष्ठौषधियों के विश्लेषणात्मक मानक :-

1. काष्ठौषधि कच्ची औषधि:-

(1) Identification
- (i) Macroscopic
- (ii) Microscopic
- (iii) Powder characteristics

(2) Loss on drying at 105°c

(3) Total ash

(4) Acid-insoluble ash

(5) Assay

(6) Water soluble extractive

(7) Alcohol soluble extractive

(8) TLC/HPTLC-Profile with marker (wherever possible)

(9) Test for heavy / toxic metals

Mercury	Cadmium
Lead	Arsenic

(10) Microbial contamination
- Total bacterial count
- Total fungal count

(11) Test of specific pathogen
- E. coli
- Salmonella spp.
- S. aureus
- Pseudomonas aeruginosa

(12) Pesticide residue
- Organochlorine pesticides
- Organophosphorus pesticides
- Pyrethroids

(13) Test for Aflatoxins (B_1,B_2,G_1,G_2)

2. Metals\Minerals:-

1. Physical properties-Nature, Colour, Streak, Cleavage, Fracture, Lusture, Tenacity, Transparency, Magnetism, Hardness, Specific gravity, Fluorescence, XRD

2. Optical properties-Refractive Index

3. Chemical properties- Effect of heat, Solubility, Assay for the major ingredient, trace elements and heavy metals.

आयुर्वेदिक फार्मेकोपिया में निर्धारित विभिन्न कल्पनाओं के सामान्य विश्लेषणात्मक मानक:–

1. **काष्ठौषधि योग** अर्क, आसव/अरिष्ट, अवचूर्णन योग, अवलेह, चूर्ण/क्वाथ चूर्ण, लेप/मलहर, नेत्रबिन्दु कर्णबिन्दु, अंजन, वर्ति, पिष्टि, घनसत्त्व, स्नेह, गुग्गुलु, वटी, शार्कर	1. Organoleptic characters like colour, odour, Taste, Consistency.
	2. pH, Total ash, Acid insoluble ash, water soluble extractive. Alcohal soluble extractive.
	3. Loss on drying at 105°c
	4. Indentification (TLC, HPTLC, HPLC, GLC)
	5. Specific gravity at 25°c
	6. Tests for heavy metals (Lead, Arsenic, Mercury, Cadmium)
	7. Microbial contamination (Total bacterial count & fun gal count)
	8. Tests for specific patho gen (E.coli, salmonella spp., S. aureus, pseudomonas aeruginosa)

	9. Pesticide residue (Orga nochlorine pesticides, Orga nophosphorus pesticides, pyrethroides) 10. Test of aflatoxins (B_1,B_2, G_1, G_2)
2. रसयोग भस्म, लौह, मण्डूर, सिन्दूर, पर्पटी, पोट्टली आदि।	1. Organoleptic character like colour, odour, taste, touch, consistency.
	2. Identification (Chemical)
	3. Partical size (# 200-300)
	4. Loss on drying at 105°c
	5. Total ash, acid insoluble ash, water soluble ash
	6. Assay of element(s)
	7. Ayurvedic specification (Nishchandra, Rekhapurna, varitara, Nirdhoom, niswadu, Apunarbhav)

विभिन्न कल्पनाओं के विशेष विश्लेषणात्मक मानक

क्र.सं.	कल्पना	मानक
1.	अर्क	(i) Volotile matter (ii) Specific gravity at 25°c (iii) Clarity test
2.	आसव/अरिष्ट	(i) Specific gravity at 25°c (ii) Total solids (iii) Alcohol Content & Tests for methanol

		(iv) Reducing sugar (v) Non-reducing sugar (vi) Total acidity
3.	अवचूर्णन योग	(i) Partical size (#125-150) (ii) Tap density, flow density (angle of respose) (iii) Tests for magnesium, carbonate, silica, Aluminium, Iron, Chloride
4.	अवलेह	(i) Total solids (ii) Fat Content (iii) Reducing sugar (iv) Total sugar
5.	चूर्ण/क्वाथ चूर्ण	(i) Particle size (# 80-100 for churna; 40-60 for kwatha churna) (ii) Bulk density (iii) Tap density
6.	लेप/मलहर	(i) Rancidity test (ii) Uniformity of contents/consistency (iii) Fat content (iv) Spreadability (v) Viscocity (vi) Particle size (if powdered drugs are added (#125-150))
7.	नेत्रबिन्दु, कर्णबिन्दु, अंजन	(i) Clarity test (ii) Sterility test
8.	पिष्टि	(i) Particle size (#125-150) (ii) Assay of element (s)
9.	स्नेह (घृत/तैल)	(i) weight / ml (in case of Taila) (ii) Refractive index at 25°c (iii) Viscosity

		(iv) Iodine value (v) Saponification value (vi) Acid value (vii) Peroxide vlaue (viii) Rancidity (ix) Free fatty acid (x) Total fatty matter
10.	वटी/गुटिका/मोदक	(i) Hardness (ii) Uniformity of weight (iii) Disintegration time (In general disintegration time should not be more than 15 min. and for guggulu it is 60 min.) (iv) Total sugar and reducing sugar (if sugar is added)
11.	वर्ति	(i) Hardness (ii) Melting temperature (iii) Uniformity of contents (iv) Volatile oil content
12.	शार्कर/शरबत (Syrup)	(i) Total solids (ii) Reducing sugar (iii) Total sugar (iv) Weight / ml (v) Viscosity
13.	शार्कर, सिकता/खण्ड (Granules)	(i) Bulk density (ii) Tap density (iii) Compressibility (iv) Flow property
14.	घनसत्त्व (Plant extracts)	(i) Particle size (Bulk density, tap density)

आयुर्वेदिक फार्मेकोपिया ऑफ इण्डिया (A.P.I) मेंआयुर्वेदिक औषधियों में Microbial contamination, heavy metals, pesticide residues and aflatoxins की मात्रा निर्धारित की है, जो निम्न प्रकार है:-

S. N.	Microbial contamination	Limits
(1)	Total bacterial count	1×10^5 CFU/g 1×10^7 CFU/g (For topical use)
(2)	Yeast & Mould	1×10^3 CFU/g
(3)	E. Coli	Absent
(4)	Salmonella	Absent
(5)	P. aeruginosa	Absent
(6)	S. aureus	Absent

S. N.	Heavy Metals	Limits
(1)	Lead	10ppm
(2)	Mercury	1 ppm
(3)	Arsenic	3 ppm
(4)	Cadmium	0.3 ppm

S. N.	Aflatoxins	Limits
(1)	B_1	0.5 ppm
(2)	B_2	0.5 ppm
(3)	G_1	0.1 ppm
(4)	G_2	0.1 ppm

	Pesticide Residues	Limits
	Organo-chloro group	Less than 1ppm

If the level crosses, then the seven pesticides mentioned by W.H.O. should be analyzed for Individual limits.

(1)	Quinolphos	0.01ppm
(2)	DDE	1 ppm
(3)	Aldrin	0.05 ppm
(4)	Dieldrin	0.05 ppm
(5)	DDT	1 ppm
(6)	DDD	1 ppm
(7)	HCH	0.3 ppm

Ayurvedic pharmacopoeial committee (A.P.C)

भारत सरकार द्वारा 20 सितम्बर 1962 को APC Committee का गठन किया गया। APC द्वारा Ayurvedic formulary and pharmecopoeias बनाने का कार्य निरन्तर किया जा रहा है। इसका उद्देश्य आयुर्वेदिक औषध की पहचान, शुद्धता और क्रियाशीलता (Indentiy, purity and strength) को अन्तर्राष्ट्रीय मानको के अनुरूप निश्चित करना है। APC द्वारा अब तक निम्न पुस्तक प्रकाशित की जा चुकी है:-

1. Ayurvedic formulary of India (AFI) : इसमें आयुर्वेदिक औषध योगों का वर्णन है। इसके तीन भाग प्रकाशित हो चुके हैं:-

(i) Ayurvedic Formulary of India Part-I 444 औषध योग
(ii) Ayurvedic formulary of India Part-II 192 औषध योग
(iii) Ayurvedic formulary of India Part-III 350 औषध योग

2. Ayurvedic Pharmacopoeia of India (API) :- फार्मेकोपिया में औषध की Identity, Purity and Strength के मानक हैं। इनमें एकल औषधों के साथ औषध योगों (Compound formulations) के Testing protocol भी निर्दिष्ट है। एकल औषध द्रव्यों के मानक API Part-I में तथा औषध योगों के मानक API Part-II में प्रकाशित है।

API Part-I (एकल औषध):- इसमें एकल औषधियों की Identity, purity and strength निर्दिष्ट है। अभी तक API Part Ist के 8 भाग प्रकाशित हो चुके हैं, जिनका संक्षिप्त विवरण निम्न प्रकार है:-

1. API Part-I Volume-I 078 औषध द्रव्य
2. API Part-I Volume-II 080 औषध द्रव्य
3. API Part-I Volume-III 100 औषध द्रव्य

4. API Part-I Volume-IV 068 औषध द्रव्य
5. API Part-I Volume-V 092 औषध द्रव्य
6. API Part-I Volume-VI 101 औषध द्रव्य
7. API Part-I Volume-VII 021 औषध द्रव्य (खनिज द्रव्य)
8. API Part-I Volume-VIII 060 औषध द्रव्य

API Part-II (औषध योग):-इसमें औषध योगों के मानक निर्दिष्ट है। अभी तक इसके तीन भाग प्रकाशित हो चुके हैं, जो निम्न है:-

1. API Part-II Volume-I 50 औषध योग
2. API Part-II Volume-II 51 औषध योग
3. API Part-II Volume-III 50 औषध योग

Defermination of Powder fineness

The degree of coarseness or fineness of a powder is expressed by reference to the nominal mesh aperture size of the sieves for measuring the size of the powders. For practical reasons, the use of sieves, for measuring powder fineness for most pharmaceutical purposes, is convenient but device other than sieves must be employed for the measurement of particles less than 100 mm in nominal size.

The following terms are used in the description of powders :-

Coarse powder - A powder, all the particles of which pass through a sieve with a nominal mesh aperture of 1.70 mm and not more than 40.0 percent through a sieve with a nominal mesh aperture of 355 µm.

Moderately coarse powder - A powder, all the particles of which pass through a sieve with a nominal mesh aperture of 710 µm and not more than 40.0 percent through a sieve with a nominal mesh aperture of 250 µm.

Moderately fine powder - A powder, all the particles of which pass through a sieve with a nominal mesh aperture of 355 µm and not more than 40.0 per cent through a sieve with a nominal mesh aperature of 180 µm.

Fine powder - A powder, all the particles of which pass through a sieve with a nominal mesh aperture of 180 µm.

Very fine powder - A powder, all the particles of which pass through a sieve with a nominal mesh aperture of 125 µm.

When the fineness of a powder is described by means of a number, it is intended that all the particles of the powder shall pass through a *sieve* of which the nominal mesh aperture, in µm, is equal to that number.

When a batch of a vegetable drug is being ground and sifted, no portion of the drug shall be rejected but it is permissible except in the case of assays, to withhold the final tailings, if an approximately equal amount of tailings from a preceding batch of the same drug has been added before grinding.

Method

(i) For coarse and moderately coarse powders - Place 25 to 100 g of the powder being examined upon the appropriate sieve having a close fitting receiving pan and cover. Shake the sieve in a rotary horizontal direction and vertically by tapping on a hard surface for not less than twenty minutes or until sifting is practically complete. Weigh accurately the amount remaining on the sieve and in the receiving pan.

(2) For fine and very fine powder - Proceed as described under coarse and moderately coarse powders, except that the test sample should not exceed 25 g and except that the sieve is to be shaken for not less than thirty minutes, or until sifting is practically complete.

With oily or other powders, which tend to clog the openings, carefully brush the screen at interval during siftings. Break up any lumps that may form. A mechanical sieve shaker, which reproduces the circular and tapping motion given to sieves in hand sifting but has a uniform mechanical action may be employed.

Sieves

Sieves for pharmacopoeial testing are constructed from wire cloth with square meshes, woven from wire of brass, bronze, stainless steel or any other suitable material. The wires should be

of uniform circular cross-section and should not be coated or plated. There must be no reaction between the material of the sieve and the substance being sifted.

Sieves conform to the following specifications :-

Approximate sieve number*	Nominal mesh aperture size mm	Tolerance average aperture size ± mm
4	4.0	0.13
6	2.8	0.09
8	2.0	0.07
10	1.7	0.06
12	1.4	0.05
16	1.0	0.03
—	µm	±µm
22	710	25
25	600	21
30	500	18
36	425	15
44	355	13
60	250	13(9.9)**
85	180	11(7.6)
100	150	9.4(6.6)
120	125	8.1(5.8)
150	106	7.4(5.2)
170	90	6.6(4.6)
200	75	6.1(4.1)
240	63	5.3(3.7)
300	53	4.8(3.4)
350	45	4.8(3.1)

*Sieve number is the number of meshes in a length of 2.54 cm. In each transverse direction parallel to the wires.

**Figures in brackets refer to close tolerances, those without brackets relate to full tolerances.

Determination of foreign matter :-

The sample shall be free from visible signs of mold growth, "Sliminess, stones, rodent excreta, insects or any other noxious foreign matter when examined as given below.

Take a representative portion from a large container, or remove the entire contents of the packing if 100 g or less, and spread in a thin layer in a suitable dish or tray. Examine in daylight with unaided eye. Transfer suspected particles, il any, to a petri dish, and examine "with 10 x lens in daylight.

Determination of Total Ash

Incinerate about 2 to 3 g accurately weighed, of the ground drug in a tared platinum or silica dish at a temperature not exceeding 450°C until free from carbon, cool and weigh. If a carbon free ash cannot be obtained in this way, exhaust the charred mass with hot water, collect the residue on an ashless filter paper, incinerate the residue and filter paper, add the filtrate, evaporate to dryness, and ignite at a temperature not exceeding 450°C. Calculate the percentage of ash with reference to the air-dried drug.

Determination of Acid-Insoluble Ash

To the crucible containing total ash, add 25 ml of *dilute hydrochloric acid*. Collect the insoluble matter on an ashless filter paper (Whatman 41) and wash with hot water until the filtrate is neutral. Transfer the filter paper containing the insoluble matter to the original crucible, dry on a hot-plate and ignite to constant weight. Allow the residue to cool in a suitable desiccator for 30 minutes and weigh without delay. Calculate the content of acid-insoluble ash with reference to the air-dried drug.

Determination of Water Soluble Ash

Boil the ash for 5 minutes with 25 ml of water; collect insoluble matter in a Gooch crucible or on an ashless filter paper, wash with hot water, and ignite for 15 minutes at a temperature not exceeding 450°C. Subtract the weight of the insoluble matter from the weight of the ash; the difference in weight represents

the water-soluble ash. Calculate the percentage of water-soluble ash with reference to the air-dried drug.

Determination of Sulphated Ash

Heat a silica or platinum crucible to redness for 10 minutes, allow to cool in a desiccator and weigh. Put 1 to 2 g of the substance, accurately weighed, into the crucible, ignite gently at first, until the substance is thoroughly charred. Cool, moisten the residue with 1 ml *of sulphuric acid,* heat gently until white fumes are no longer evolved and ignite at $800^0C \pm 25^0C$ until all black particles have disappeared. Conduct the ignition in a place protected from air currents. Allow the crucible to cool, add a few drops *of sulphuric acid* and heat. Ignite as before, allow to cool and weigh. Repeat the operation until two successive weighing do not differ by more than 0.5 mg.

Determination of Alcohol Soluble Extractive

Macerate 5 g of the air dried drug, coarsely powdered, with 100 ml of alcohol the specified strength in a closed flask for twenty-four hours, shaking frequently during six hours and allowing to stand for eighteen hours. Filter rapidly, taking precautions against loss of solvent, evaporate 25 ml of the filtrate to dryness in a tared flat bottomed shallow dish, and dry at 105^0C, to constant weight and weigh. Calculate the percentage of alcohol-soluble extractive with reference to the air-dried drug.

Determination of Water Soluble Extractive

Proceed as directed for the determination of alcohol-soluble extractive, using *chloroform-water* instead of ethanol.

Determination of Ether Soluble Extractive (Fixed Oil Content)

Transfer a suitably weighed quantity (depending on the fixed oil content) of the air-dried, crushed drug to an extraction thimble, extract with *solvent ether (or petroleum ether,* b.p. 40^0C to 60^0C) in a continuous extraction apparatus (Soxhlet extractor) for 6 hours. Filter the extract quantitatively into a tared evaporating dish and evaporate of the solvent on a water bath. Dry the residue

at 105°C to constant weight. Calculate the percentage of ether-soluble extractive with reference to the air-dired drug.

Derternination of Moisture Content (Loss on Drying)

Procedure set forth here determines the amount of volatile matter (i.e., water drying off from the drug). For substances appearing to contain water as the only volatile constituent, the procedure given below, is appropriately used.

Place about 10g of drug (without preliminary drying) after accurately weighing (accurately weighed to within 0.01 g) it in a tared evaporating dish. For example, for unground or unpowdered drug, prepare about 10 g of the sample by cutting shredding so that the parts are about 3 mm in thickness.

Seeds and fruits, smaller than 3 mm should be cracked. Avoid the use of high speed mills in preparing the samples, and exercise care that no appreciable amount of moisture is lost during preparation and that the portion taken is representative of the official sample. After placing the above said amount of the drug in the tared evaporating dish, dry at 105°C for 5 hours, and weigh. Continue the drying and weighing at one hour interval until difference between two successive weighing corresponds to not more than 0.25 per cent. Constant weight is reached when two consecutive weighing after drying for 30 minutes and cooling for 30 minutes in a desiccatro, show not more than 0.01 g difference.

Determination of Volatile Oil in Drugs

The determination of volatile oil in a drug is made by distilling the drug with a mixture of *water* and *glycerin*, collecting the distillate in a graduated tube in which the aqueous portion of the distillate is automatically separated and returned to the distilling flask, and measuring the volume of the oil. The content of the volatile oil is expressed as a percentage v/w.

The apparatus consists of the following parts (see Fig.). The clevenger's apparatus described below is recommended but any similar apparatus may be used provided that it permits complete distillation of the volatile oil. All glass parts of the apparatus should be made of good quality resistance glass.

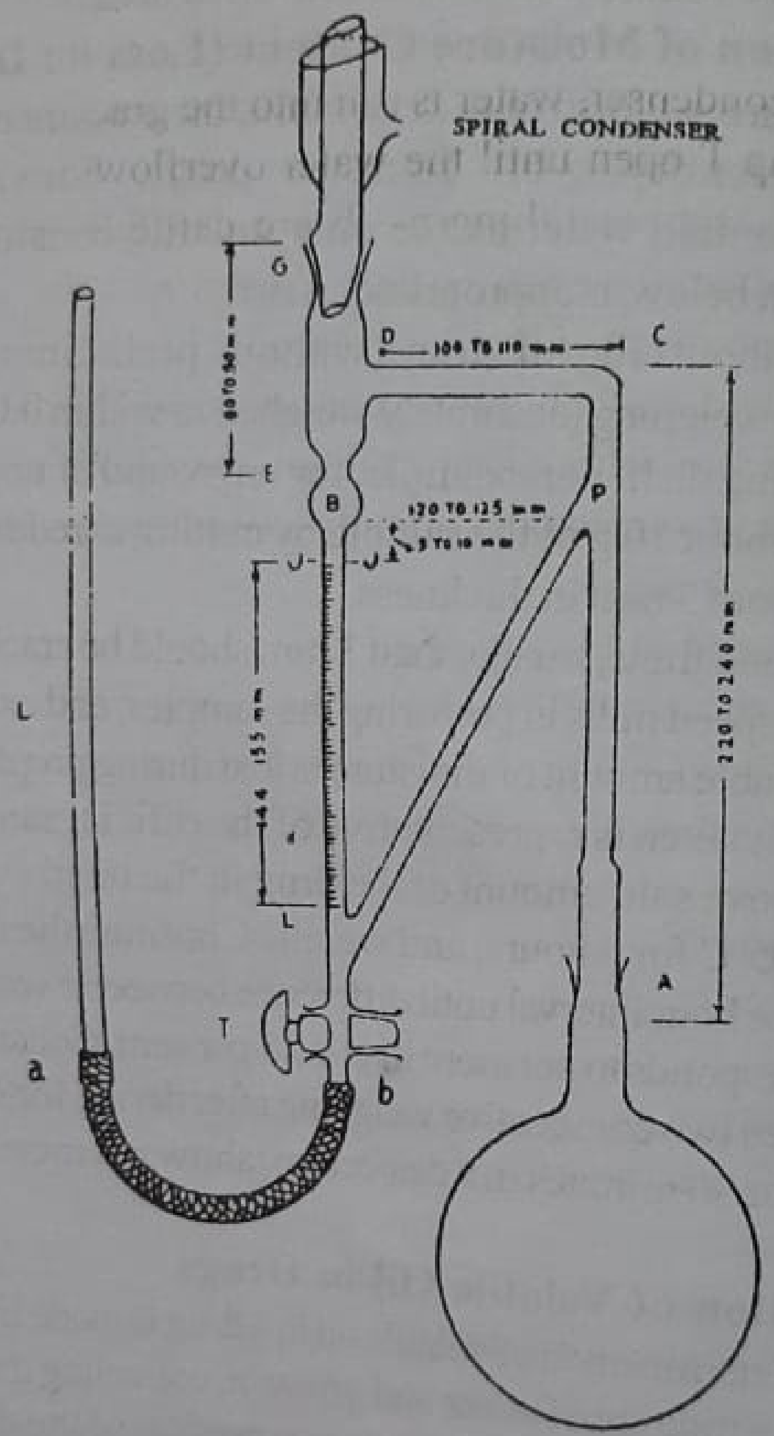

Apparatus for Volatile Oil Determination

The apparatus is cleaned before each distillation by washing successively with *acetone* and *water*, then inverting it, filling it with *chromic sulphuric acid* mixture, after closing the open end at G and allowing to stand, and finally rinsing with water.

Method of determination

A suitable quantity of the coarsely powdered drug together with 75 ml of *glycerin* and 175 ml of *water* in the one litre distilling flask and a few pieces of porous earthen ware and one filter paper

15 cm cut into small strips, 7 to 12 mm wide, are also put in the distilling flask, which is then connected to the still head. Before attaching the condenser, water is run into the graduated receiver, keeping the tap T open until the water overflows, at P. Any air bubbles in the rubber tubing a—b are carefully removed by pressing the tube. The tap is then closed and the condenser attached. The contents of the flask are now heated and stirred by frequent agitation until ebullition commences. The distillation is continued at a rate, which keeps the lower end of the condenser cool. The flask is rotated occasionally to wash down any material that adheres to its sides.

At the end of the specified time (3 to 4 hours) heating is discontinued, the apparatus is allowed to cool for 10 minutes and the tap T is opened and the tube L_1 lowered slowly; as soon as the layer of the oil completely enters into the graduated part of the receiver the tap is closed and the volume is read.

The tube L_1 is then raised till the level of water in it is above the level of B, when the tap T is slowly opened to return the oil to the bulb. The distillation is again continued for another hour and the volume of oil is again read, after cooling the apparatus as before. If necessary, the distillation is again continued until successive readings of the volatile oil do not differ.

The measured yield of volatile oil is taken to be the content of volatile oil in the drug. The dimensions of the apparatus may be suitably modified in case of necessity.

Special Processes Used in Alkaloidal Assays

A-Continuous extraction of drug :-

Where continuous extraction of a drug of any other substance is recommended in the monograph, the process consists of percolating it with suitable solvent at a temperature approximately that of the boiling point of the solvent. Any apparatus that permits the uniform percolation of the drug and the continuous flow of the vapour of the solvent around the percolator may be used. The type commonly known as the Soxhlet apparatus is suitable for this purpose.

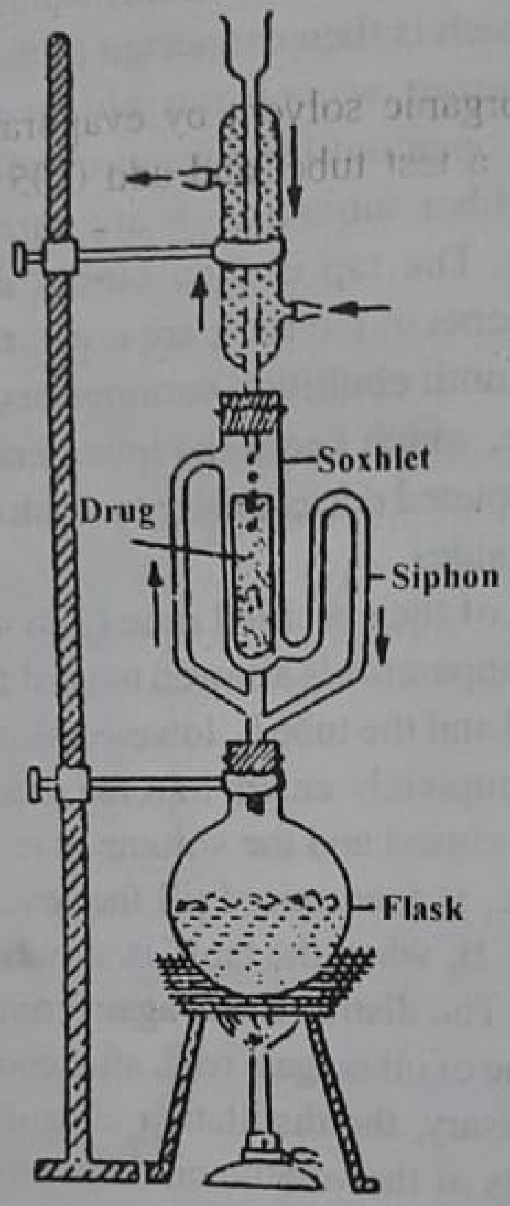

Apparatus for the continous extraction of drugs (soxhlet apparatus)

B -Tests for complete extraction of alkaloids:- Complete extraction is indicated by the following tests:

When extracting with an aqueous or alcoholic liquid:- After extracting at least three times with the liquid, add to a few drops of the next portion, after acidifying with 2 *N hydrochloric acid* if necessary, 0.05 ml of *potassium mercuri-iodide solution* or for solanaceous alkaloids 0.05 ml of *potassium iodobismuthate solution*; no precipitate or turbidity, is produced,

When extracting with an immiscible solvent:

After extracting at least three times with the solvent, add to 1 to 2 ml of the next portion 1 to 2 ml of 0.1 *N hydrochloric acid,* remove the organic solvent by evaporation, transfer the aqueous residue to a test tube, and add 0.05 ml *of potassium mercuri-iodide solution* for solanaceous alkaloids 0.05 ml of *potassium iodobismuthate solution* or for emetine, 0.05 ml of *iodine solution;* not more than a very faint opalescenece is produced.

Thin-Layer Chromatography (TLC)

Thin-layer chromatography is a technique in which a solute undergoes distribution between two phases, stationary phase acting through adsorption and a mobile phase in the form of a liquid. The adsorbent is a relatively thin, uniform layer of dry finely powdered material applied to a glass, plastic or metal sheet or plate. Precoated plates are most commonly used. Separation may also be achieved on the basis of partition or a combination of partition and adsorption, depending on the particular type of support, its preparation and its use with different solvent.

Identification can be effected by observation of spots of identical R_f value and about equal magnitude obtained, respectively, with an unknown and a reference sample chromatographed on the same plate. A visual comparison of the size and intensity of the spots usually serves for semi-quantitative estimation.

Apparatus

(a) Flat glass plates of appropriate dimensions which allow the application at specified points of the necessary quantities of the solution being examined and appropriate reference solutions and which allow accommodation of the specified migration path-length. The plates are prepared as described below; alternatively, commercially prepared plates may be used.

(b) An aligning tray or a flat surface on which the plates can be aligned and rested when the coating substance is applied.

(c) The adsorbent or coating substance consisting of finely divided adsorbent materials, norm: 5 µm to 40 µm in diameter is suitable for chromatography. It can be applied directly to the plate or can be bonded to the plate by means of plaster of paris (Hydrated Calcium Sulphate) or with any other suitable binders. The adsorbent may contain fluorescing material to help in visualising spots that absorb ultra-violet light.

(d) A spreader which, when moved over the glass plate, will apply a uniform layer of adsorbent of desired thickness over the entire surface of the plate.

(e) A storage rack to support the plates during drying and transportation.

(f) A developing chamber that can accommodate one or more plates and can be properly closed and sealed. The chamber is fitted with a plate support rack that supports the plates, back to back, with lid of the chamber in place.

(g) Graduated micro-pipettes capable of delivering microlitre quantities say 10 µl and less.

(h) A reagent sprayer that will emit a fine spray and will not itself be attacked by the reagent.

(i) An ultra-violet light, suitable for observation at short (254 nm) and long (366 nm) ultra-violet wavelengths.

Preparation of plates:

Unless otherwise specified in the monograph, the plates are prepared in the following manner. Prepare a suspension of the coating substance in accordance with the instructions of the supplier and, using the spreading device designed for the purpose, spread a uniform layer of the suspension, 0.20 to 0.30 mm thick, on a flat glass plate 20 cm long. Allow the coated plates to dry in air, heat at 100°C to 105°C for at least 1 hour (except in the case of plates prepared with cellulose when heating for 10 minutes is normally sufficient) and allow to cool, protected from moisture. Store the plates protected from moisture and use within 3 days of preparation. At the time of use, dry the plates again, if necessary, as prescribed in the monographs. Now a days pre coated plates of silica gel on glass/aluminium/ plastic sheets are also available.

Method :-

Unless unsaturated conditions are prescribed, prepare the tank by lining the walls with sheets of filter paper; pour into the tank, saturating the filter paper in the process, sufficient of the mobile phase to form a layer of solvent 5 to 10 mm deep, close the tank and allow to stand for 1 hour at room temperature. Remove a narrow strip of the coating substance, about 5 mm wide, from the vertical sides of the plate. Apply the solutions being examined in the form of circular spots about 2 to 6 mm in diameter, or in the form of bands (10 to 20 mm x 2 to 6 mm unless otherwise, specified) on a line parallel with, and 20 mm from, one end of the plate, and not nearer than 20 mm to the sides; the spots should be 15 mm apart. If necessary, the solutions may be applied in portions, drying between applications. Mark the sides of the plate 15 cm, or the distance specified in the monograph, from the starting line. Allow the solvent to evaporate and place the plate in the tank, ensuring that it is as nearly vertical as possible and that the spots or bands are above the level of the mobile phase. Close the tank and allow to stand at room temperature, until the mobile phase has ascended to the marked line. Remove the plate and dry and visualise as directed in the monograph; where a spraying technique is prescribed it is essential that the reagent be evenly applied as a fine spray.

For two-dimensional chromatography dry the plate after the first development and carry out the second development in a direction perpendicular to the first.

When the method prescribed in the monograph specifies 'protected from light' or 'in subdued light' it is intended that the entire procedure is carried out under these conditions.

Visualisation

The phrases *ultra-violet light (254 nm)* and *ultra-violet light (366 nm)* indicate that the plate should be examined under an ultra-violet light having a maximum output at about 254 or at about 365 nm, as the case may be.

The term *secondary spot* means any spot other than the principal spot. Similarly, a *secondary band* is any band other than the principal band.

R_f Value

Measure and record the distance of each spot from the point of its application and calculate the R_f value by dividing the distance travelled by the spots by the distance travelled by the front of the mobile phase.

Refractive Index

The refractive index (η) of a substance with reference to air is the ratio of the sine of the angle of incidence to the sine of the angle of refraction of a beam of light passing from air into the substance. It varies with the wavelength of the light used in its measurement.

Unless otherwise prescribed, the refractive index is measured at 25° (±0.5) with reference to the wavelength of the D line of sodium (λ 589.3 nm). The temperature should be carefully adjusted and maintained since the refractive index varies significantly with temperature.

The Abbe's refractometer is convenient for most measurements of refractive index but other refractometer of equal or greater accuracy may be used. Commercial refractometers are normally constructed for use with white light but are calibrated to give the refractive index in terms of the D line of sodium light.

To achieve accuracy, the apparatus should be calibrated against *distilled water* which has a refractive index of 1.3325 at 25° or against the reference liquids given in the following table.

Table

Reference Liquid	η_D 20°	Temperature Co-efficient $\Delta n/\Delta t$
Carbon tetrachloride	1.4603	-0.00057
Toluene	1.4969	-0.00056
α-Methylnaphthalene	1.6176	-0.00048

* Reference index value for the D line of sodium, measured at 20°

The cleanliness of the instrument should be checked frequently by determining the refractive index of distilled water, which at 25° is 1.3325.

Weight per millilitre:-

The weight per millilitre of a liquid is the weight in g of 1 ml of a liquid when weighed in air at 25° , unless otherwise specified.

Method

Select a thoroughly clean and dry pycnometer. Calibrate the pycnometer by filling it with recently boiled and cooled *water* at 25° and weighing the contents. Assuming that the weight of 1 ml of *water* at 25° when weighed in air of density 0.0012 g per ml, is 0.99602 g. Calculate the capacity of the pycnometer. (Ordinary deviations in the density of air from the value given do not affect the result of a determination significantly). Adjust the temperature of the substance to be examined, to about 20° and fill the pycnometer with it. Adjust the temperature of the filled pycnometer to 25°, remove any excess of the substance and weigh. Substract the tare weight of the pycnometer from the filled weight of the pycnometer. Determine the weight per milliliter dividing the weight in air, expressed in g, of the quantity of liquid which fills the pycnometer at the specified temperature, by the capacity expressed in ml, of the pycnometer at the same temperature.

Specific gravity:-

The specific gravity of a liquid is the weight of a given volume of the liquid at 25° (unless otherwise specified) compared with the weight of an equal volume of water at the same temperature, all weighing being taken in air.

Method

Proceed as described under wt. per ml. Obtain the specific gravity of the liquid by dividing the weight of the liquid contained in the pycnometer by the weight of water contained, both determined at 25° unless otherwise directed in the individual monograph.

Determination of *pH* Values

The *pH* value of an aqueous liquid may be defined as the common logarithum of the reciprocal of the hydrogen ion concentration expressed in g per litre. Although this definition provides a useful practical means for the quantitative indication of the acidity or alkalinity of a solution, it is less satisfactory from a strictly theoretical point of view. No definition of *pH* as a measurable quantity can have a simple meaning, which is also fundamental and exact.

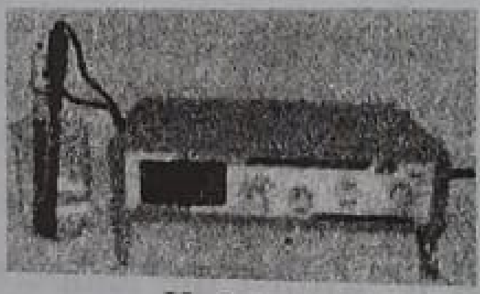

pH. Meter

The *p*H value of a liquid can be determined potentiometrically by means of the glass electrode, a reference electrode and a pH meter either of the digital or analogue type.

Determination of Viscosity

Viscosity is a property of a liquid, which is closely related to the resistance to flow.

In C.G.S. system, the dynamic viscosity (n) of a liquid is the tangential force in dryness per square centimeter exerted in either of the two parallel planes placed, 1cm apart when the space between them is filled with the fluid and one of the plane is moving in its own plane with a velocity of 1 cm

per second relatively to the other. The unit of dynamic viscosity is the poise (abbreviated p). The centi poise (abbreviated cp) is 1/100th of one poise.

While on the absolute scale, viscosity is measured in poise or centi poise, it is mot convenient to use the kinematic scale in which the units are stokes (abbreviated S) and centi-stokes (abbreviated CS). The centistokes is 1/100th of one stoke. The kinematic viscosity of a liquid is equal to the quotient of the dynamic viscosity and the density of the liquid at the same temperature, thus:

$$\text{Kinematic Viscosity} = \frac{\text{Dynamic Viscosity}}{\text{Density}}$$

Viscosity of liquid may be determined by any method that will measure the resistance to shear offered by the liquid.

Absolute viscosity can be measured directly if accurate dimensions of the measuring instruments are known but it is more common practice to calibrate the instrument with a liquid of known viscosity and to determine the viscosity of the unknown fluid by comparison with that of the known.

Procedure:

The liquid under test is filled in a U tube viscometer in accordance with the expected viscosity of the liquid so that the fluid level stands within 0.2 mm of the filling mark of the viscometer when the capillary is vertical and the specified temperature is attained by the test liquid. The liquid is sucked or blown to the specified weight of the viscometer and the time taken for the meniscus to pass the two specified marks is measured. The kinematic viscosity in centistokes is calculated from the following equation:

Kinematic viscosity = Kt

Where K=the constant of the viscometer tube determined by observation on liquids of known kinematic

viscosity; t=time in seconds for meniscus to pass through the two specified marks.

Determination of Total Solids

Determination of total solids in Asava/ Aristha is generally required. Asava/ Aristha containing sugar or honey should be examined by method 1, sugar or honey free Asava/ Arista and other material should be examined by method 2.

Method 1:-

Transfer accurately 50 ml of the clear Asava/ Arista an evaporable dish and evaporate to a thick extract on a water bath. Unless specified otherwise, extract the residue with 4 quantities, each of 10 ml, of dehydrated ethanol with stirring and filter. Combine the filtrates to another evaporating dish which have been dried to a constant weight and evaporate nearly to dryness on a water bath, add accurately 1 g of diatomite (dry at 105° for 3 hours and cooled in a desiccator for 30 min), stir thoroughly, dry at 105° for 3 hours, cool the dish in a desiccator for 30 min, and weigh immediately. Deduct the weight of diatomite added, the weight of residue should comply with the requirements stated under the individual monograph.

Method 2:-

Transfer accurately 50 ml of the clear Asava/ Arista to an evaporable dish, which has been dried to a constant weight and evaporate to dryness on a water bath, then dry at 105° for 3 hours. After cooling the dish containing the residue in a desiccator for 30 min, weigh it immediately. The weight of residue should comply with the requirements stated under the individual monograph.

Solubility in Water

Take 100 ml of distil water in a *Nessler cylinder* and add air-dried and coarsely powdered drug up to saturation.

Then stir the sample continuously by twirling the spatula (rounded end of a microspatula) rapidly. After 1 minute, filter the solution using Hirsch funnel, evaporate the filtrate to dryness in a tared flat bottomed shallow dish and dry at 105° to constant weight and calculate the solubility of the drug in water (wt. in mg/100ml).

Determination of Saponification Value

The saponification value is the number of mg of potassium hydroxide required to neutralize the fatty acids. resulting from the complete hydrolysis of 1 g of the oil or fat. when determined by the following method :

Dissolve 35 to 40 g of potassium hydroxide in 20 ml water, and add sufficient alcohol to make 1,000 ml. Allow it to stand overnight, and pour off the clear liquor.

Weigh accurately about 2 g of the substance in a tared 250 ml flask, add 25 ml of the alcoholic solution of potassium hydroxide, attach a reflux condenser and boil on a water-bath for one hour, frequently rotating the contents of the flask cool and add 1 ml of solution of phenolphthalein and titrate the excess of alkali with 0.5 N hydrochloric acid. Note the number of ml required (a). Repeat the experiment with the same quantities of the same reagents in the manneromitting the substance. Note the number of ml required (b) Calculate the saponification value from the following formula: —

$$\text{Saponification Value} = \frac{(b-a) \times 0.02805 \times 1.000}{W}$$

Where ' W' is the weight in g of the substance taken.

Determination of Iodine Value

The Iodine value of a substance is the weight of iodine absorbed by 100 part by weight of the substance, when determined by one of the following methods:-

Iodine Flasks—The Iodine flasks have a nominal capacity of 250 m

A. *Iodine Monochloride Method:-*

Place the substance accurately weighed, in dry iodine flask, add 10 ml of *carbon tetrachloride* and dissolve. Add 20 ml of iodine monochloride solution, insert the stopper, previously moistened with solution of potassium iodine and allow to stand in a dark place at a temperature of about 17° or thirty minutes. Add 15 ml of solution of potassium iodine and 100 ml water; shake, and titrate with 0.1 N sodium thiosulphate, using solution of starch as indicator. Note the number of ml required (a). At the same time carry out the operation in exactly the same manner, but without the substance being tested, and note the number of ml of *0.1 N sodium thiosulphate* required (b).

Calculate the iodine value from the formula:—

$$\text{Iodine value} - \frac{(b\text{-}a) \times 0.01269 \times 100}{W}$$

Where W' is the weight in g of the substance taken.

The approximate weight, in g, of the substance to be taken may be calculated by dividing 20 by the highest expected iodine value. If more than half the available halogen is absorbed, the test must be repeated, a smaller quantity of the substance being used.

Iodine Monochloride Solution: The solution may be prepared by either of the two following methods:

(1) Dissolve 13 g of iodine in a mixture of 300 ml of carbon tetrachloride and 700 ml of glacial acetic acid. To 20 ml of this solution, add 15 ml *of solution of potassium iodide* and 100 ml *of water*, and titrate the solution with *0.1N sodium thiosulphate*. Pass chlorine, washed and dried, through the remainder of the iodine solution until the amount of 0.1 N sodium thiosulphate required for the titration is approximately, but more than, doubled.

(2) Iodine trichloride 8 g
Iodine 9 g
Carbon tetrachloride 300 ml
Glacial acetic acid, sufficient to produce 1000 ml

Dissolve the iodine trichloride in about 200 ml of glacial acetic acid, dissolve the iodine in the carbon tetrachloride, mix the two solutions, and add sufficient glacial acetic acid to produce 1000 ml. Iodine Monochloride Solution should be kept in a stoppered bottle, protected from light and stored in a cool place.

B. *Pyridine Bromide Method:-*

Place the substance, accurately weighed, in a dry iodine flask, add 10 ml of *carbon tetrachloride* and dissolve. Add 25 ml of pyridine bromide solution, allow to stand for ten minutes in a dark place and complete the determination described under iodine monochloride method, beginning with the words. Add 15 ml.

The approximate weight in gram, of the substance to be taken may be calculated by dividing 12.5 by the highest expected iodine value. If more than half the available halogen is absorbed the test must be repeated, a small quantity of the substance being used.

Pyridine bromide Solution: Dissolve 8 g pyridine and 10 g *of sulphuric acid* in 20 ml *of glacial acetic acid*, keeping the mixture cool. Add 8 g *of bromine* dissolved in 20 ml *of glacial acetic acid* and dilute to 100 ml with *glacial acetic acid.*

Pyridine bromide Solution should be freshly prepared.

Determination of Acid Value

The acid value is the number of mg *of potassium hydroxide* required to neutralize the free acids in 1 g of the substance, when determined by the following method:

Weigh accurately about 10 g of the substance (1 to 5) in the case of a resin into a 250 ml flask and add 50 ml of a mixture

of equal volumes of alcohol and solvent ether, which has been neutralized after the addition of 1 ml of sôlution of phenolphthalein. Heat gently on a water-bath, if necessary until the substance has completely melted, titrate with *0.1 N potassium hydroxide*, shaking constantly until a pink colour which persists for fifteen seconds is obtained. Note the number of ml required. Calculate the acid value from the following formula:

$$\text{Acid Value} = \frac{a \times 0.00561 \times 1000}{W}$$

Where 'a' is the number of ml of *0.1 N potassium hydroxide* required and 'W' is the weight in g; of the substance taken.

Determination of Peroxide Value

The peroxide value is the number of milliequivalents of active oxygen that expresses the amount of peroxide contained in 1000 g of the substance.

Method

Unless otherwise specified in the individual monograph, weigh 5 g of the substance being examined, accurately weighed, into a 250-ml glass-stoppered conical flask, add 30 ml of a mixture of 3 volumes of *glacial acetic acid* and 2 volumes of *chloroform*, swirl until dissolved and add 0.5ml volumes of saturated *potassium iodide soluton*. Allow to stand for exactly 1 minute, with occasional shaking, add 30 ml of *water* and titrate gradually, with continuous and vigorous shaking, with *0.01M sodium thiosulphate* until the yellow colour almost disappears. Add 0.5 ml of *starch solution* and continue the titration, shaking vigorously until the blue colour just disappears (a ml). Repeat the operation omitting the substance being examined (b ml). The volume of *0.01M sodium thiosulphate* in the blank determination must not exceed 0.1 ml.

Calculate the peroxide value from the expression

Peroxide value = 10 (a - *b*)/*W*

Where *W* = weight in g. of the substance.

Determination of Unsaponifiable Matter

The unsaponifiable matter consists of substances present in oils and fats, which are not saponifiable by alkali hydroxides and are determined by extraction with an organic solvent of a solution of the saponified substance being examined.

Method

Unless otherwise specified in the individual monograph, introduce about 5 g of the substance being examined, accurately weighed, into a 250-ml flask fitted with a reflux condenser. Add a solution of 2 g *of potassium hydroxide* in 40 ml of *ethanol (95percent)* and heat on a water-bath for 1 hour, shaking frequently. Transfer the contents of the flask to a separating funnel with the aid of 100 ml of hot water and, while the liquid is still warm, shake very carefully with three quantities, each of 100 ml, *of peroxide-free ether.* Combine the ether extracts in a second separating funnel containing 40 ml of water, swirl gently for a few minute, allow to separate and reject the lower layer. Wash the ether extract with two quantities, each of 40 ml, of water and with three quantities, each of 40 ml, of a 3 percent w/v solution *of potassium hydroxide,* each treatment being followed by a washing with 40 ml of water. Finally, wash the ether layer with successive quantities, each of 40 ml, of water until the aqueous layer is not alkaline to *phenolphthalein solution.* Transfer the ether layer to a weighed flask, washing out the separating funnel with *peroxide-free ether.* Distil off the ether and add to the residue 6 ml of *acetone*. Remove the solvent completely from the flask with the aid of a gentle current of air. Dry at 100° to 105° for 30 minutes. Cool in a desiccator

and weigh the residue. Calculate the unsaponifiable matter as per cent w/w.

Dissolve the residue in 20 ml of *ethanol (95percent)*, previously neutralised to *phenolphthalein solution* and titrate with *O.I M ethanolic potassium hydroxide*. If the volume of *0.1M ethanolic potassium hydroxide* exceeds 0.2 ml, the amount weighed cannot be taken as the unsaponifiable matter and the test must be repeated.

Detection of Mineral oil (Hold's test)

Take 22 ml of the alcoholic potassium hydroxide solution in a conical flask and add 1ml of the sample of the oil to be tested. Boil in a water bath using an air or water cooled condenser till the solution becomes clear and no oily drops are found on the sides of the flask. Take out the flask from the water bath, transfer the contents to a wide mouthed warm test tube and carefully add 25ml of boiling distilled water along the side of the test tube, Continue shaking the tube lightly from side to side during the addition. The turbidity indicates presence of mineral oil, the depth of turbidity depends on the percentage of mineral oil present.

Rancidity Test (Kreis Test)

The test depends upon the formation of a red colour when oxidized fat is treated with conc. *hydrochloric acid* and a solution of phloroglucinol in ether. The compound in rancid fats responsible for the colour reaction is epihydrin aldehyde. All oxidized fats respond to the Kreis test and the intensity of the colour produced is roughly proportional to the degree of oxidative rancidity.

Procedure

Mix 1 ml of melted fat and 1 ml of conc. *Hydrochloric acid* in a test tube. Add 1 ml of a 1 percent solution of phloroglucinol in *diethyl ether* and mix thoroughly with the fat-acid mixture. A pink colour formation indicates that the fat is slightly oxidized while a red colour indicates that the fat is definitely oxidized.

Determination of Alcohol Content

The ethanol content of a liquid is expressed as the number of volumes of ethanol contained in 100 volumes of the liquid, the volumes being measured at 24.9° to 25.1°. This is known as the "percentage of ethanol by volume". The content may also be expressed in g of ethanol per 100 g of the liquid. This is known as the 'percentage of ethanol by weight".

Use Method I or Method II, as appropriate, unless otherwise specified in the individual monograph.

Method I

Carry out the method for gas chromatography, using the following solutions. Solution (1) contains 5.0 per cent v/v of ethanol and 5.0 per cent v/v of 1-propanol (internal standard). For solution (2) dilute a volume of the preparation being examined with water to contain between 4.0 and 6.0 per cent v/v of ethanol. Prepare solution (3) in the same manner as solution (2) but adding sufficient of the internal standard to produce a final concentration of 5.0 per cent v/v.

The chromatographic procedure may be carried out using a column (1.5 m × 4 mm) packed with porous polymer beads (100 to 120 mesh) and maintained at 150°, with both the inlet port and the detector at 170°, and nitrogen as the carrier gas.

Calculate the percentage content of ethanol from the areas of the peaks due to ethanol in the chromatogram obtained with solutions 1 and 3

Method II

For preparations where the use of Industrial Methylated Spirit is permitted in the monograph, determine the content of ethanol as described in Method I but using as solution (2) a volume of the preparation being examined diluted with water to contain between 4.0 and 6.0 per cent v/v of total ethanol and methanol.

Determine the concentration of methanol in the following manner. Carry out the chromatographic procedure described under Method I but using the following solutions. Solution (1) contains 0.25 per cent v/v of methanol and 0.25 per cent v/v of 1-propanol (internal standard). For solution (2) dilute a volume of the preparation being examined with water to contain between 0.2 per cent and 0.3 per cent v/v of methanol. Prepare solution (3) in the same manner as solution (2) but adding sufficient of the internal standard to produce a final concentration of 0.25 per cent v/v.

The sum of the contents of ethanol and methanol is within the range specified in the individual monograph and the ration of the content of methanol to that of ethanol is commensurate with Industrial Methylated Spirit having been used.

Method III

This method is intended only for certain liquid preparations containing ethanol. Where the preparation contains dissolved substances that may distil along with ethanol Method III B or III C must be followed.

Apparatus

The apparatus consists (see fig.) of a round-bottomed flask (A) fitted with a distillation head (B) with a steam trap and attached to a vertical condenser (C). A tube is fitted to the lower part of the condenser and carries the distillate into the lower part of a 100-ml or 250-ml volumetric flask (D). The volumetric flask is immersed in a beaker (E) containing a mixture of ice and water during the distillation. A disc with a circular aperture, 6 cm in diameter, is placed under the distillation flask (A) to reduce the risk of charring of any dissolved substances.

Method III A

Transfer 25 ml of the preparation being examined, accurately measured at 24.9° to 25.1°, to the distillation flask.

Dilute with 150 ml of water and add a little pumice powder. Attach the distillation head and condenser. Distil and collect not less than 90 ml of the distillate into a 100-ml volumetric flask. Adjust the temperature to 24.9° to 25.1° and dilute to volume with distilled water at 24.9° to 25.1°. Determine the relative density at 24.9° to 25.1°. The values indicated in column 2 of Table are multiplied by 4 in order to obtain the percentage of ethanol by volume contained in the preparation. If the specific gravity is found to be between two values, the percentage of ethanol should be obtained by interpolation. Alter calculation of the ethanol content, report the result to one decimal place.

NOTE - (1) If excessive frothing is encountered during distillation, render the solution strongly acid with phosphoric acid or treat with a small amount of liquid paraffin or silicone oil.

(2) The distillate should be clear or not more than slightly cloudy. If it is turbid or contains oily drops, follow Method IIIC. When steam-volatile acids are present, make the solution just alkaline with *1 M sodium hydroxide* using solid *phenolphthalein* as indicator before distillation.

Method III B

Follow this method or the following one if the preparation being examined contains appreciable proportions of volatile materials other than ethanol and water.

Mix 25 ml of the preparation, accurately measured at 24° to 25.1°, with about 100 ml of water in a separating funnel. Saturate this mixture with sodium chloride, add about 100 ml of *hexane* and shake vigorously for 2 to 3 minutes. Allow the mixture to stand for 15 to 20 minutes. Run the lower layer into the distillation flask, wash the *hexane* layer in the separating funnel by shaking vigorously with about 25 ml of *sodium chloride* solution, allow to separate and run the wash

liquor into the first saline solution. Make the mixed solutions just alkaline with I M sodium hydroxide using solid phenolphthalein as indicator, add a little pumice powder and 100 ml of water, distil 90 ml and determine the percentage v/v of ethanol by Method IIIA beginning at the words Apparatus for determination of ethanol by distillation method "Adjust the temperature...".

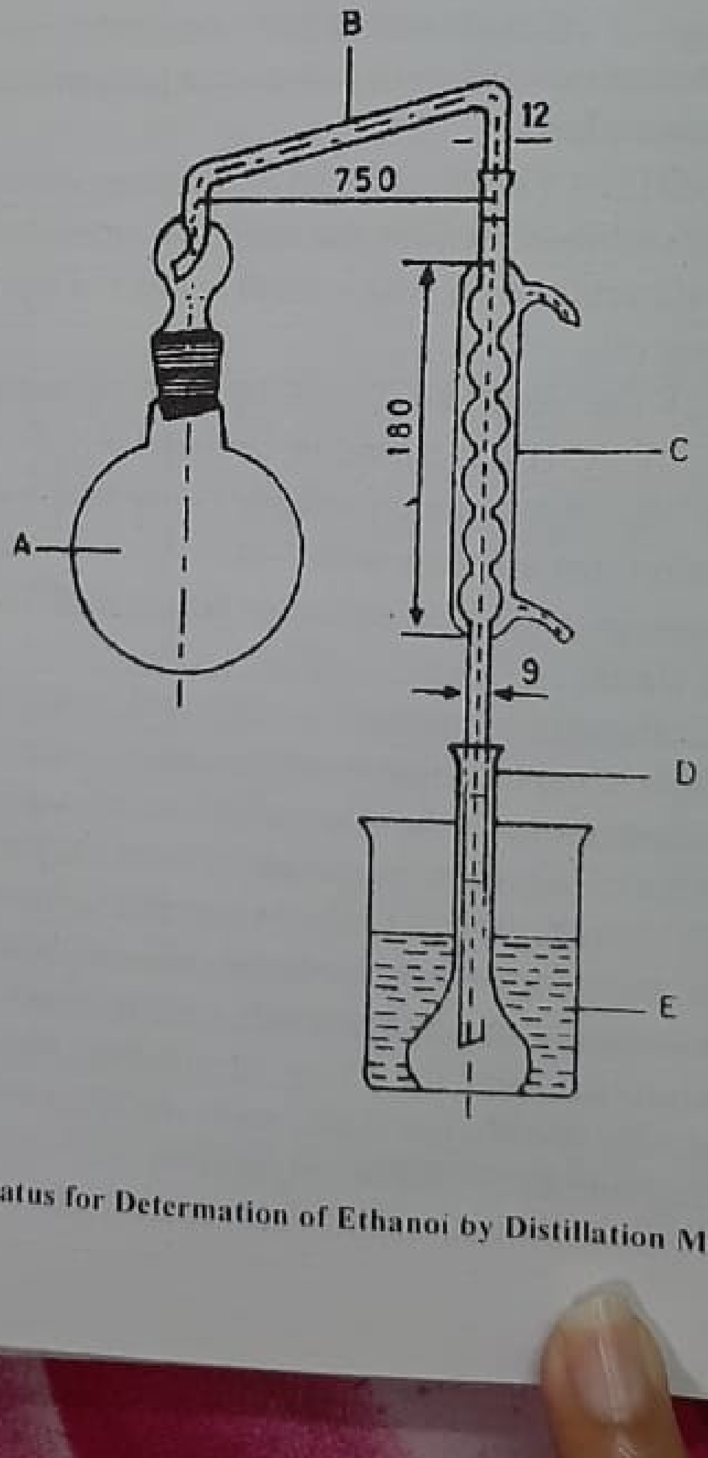

Apparatus for Determation of Ethanoi by Distillation Method

Table

Specific gravity at 25°	Ethanol content*
1.0000	0
0.9985	1
0.9970	2
0.9956	3
0.9941	4
0.9927	5
0.9914	6
0.9901	7
0.9888	8
0.9875	9
0.9862	10
0.9850	11
0.9838	12
0.9826	13
0.9814	14
0.9802	15
0.9790	16
0.9778	17
0.9767	18
0.9756	19
0.9744	20
0.9733	21
0.9721	22
0.9710	23
0.9698	24
0.9685	25

*per cent v/v at 15.56°.

Method III C

Transfer 25 ml of the preparation, accurately measured at 24.9° to 25.1° to the distillation flask. Dilute with 150 ml of water and add a little pumice powder. Attach the distillation head and condenser. Distil and collect about 100 ml. Transfer to a separating funnel and determine the percentage v/v of ethanol by Method III B beginning at the words "Saturate this mixture...".

Estimation of Sugars :-

Method A

Nelson - Somogyi photometric method

Estimate total soluble and reducing sugars according to Nelson - Somogyi photometric method for the determination of glucose.

Preparation of calibration curve for d-glucose (Dextrose)

Dissolve accurately weighed 500 mg of dextrose in a 100-ml volumetric flask (5 mg / ml). From the above stock solution pipette out aliquots of 0.05 ml to 0.3 ml in to 10-ml volumetric flask and makeup the volume with *double distilled water.* Add 1 ml of alkaline reagent to each tube (25 parts of Reagent I + 1 part of Reagent II).

Reagent I : Dissolve 25 g of anhydrous *sodium carbonate* 25 g of Rochelle salt or sodium potassium tartrate, 20 g of *sodium bicarbonate* and 200 g of anhydrous *sodium sulphate* in about 800 ml of water and dilute to 1 L.

Reagent II : Add 15 per cent *copper sulphate* containing concentrated *sulphuric acid* per 100 ml to the tube. Mix the contents and heat for 20 min in a boiling water-bath. Then cool the tubes and add the solution 1 ml of

arsenomolybdic acid reagent (dissolve 250 mg of *ammonium molybdate* in 45 ml *of purified water.* To this, add 2.1 ml of *concentrated sulphuric acid and* mix well. To this solution, dissolve 3 g *of sodium arsenate* in 25 ml of *purified water,* mix well and place in incubator maintained at 37 ° C for 24 hr). Dilute the contents of the test tube to 10 ml by adding *purified water* mix well and then read color intensity at 520 nm using a *ultra violet* visible spectrophotometer. Record the absorbance and plot a standard curve of absorbance *vs.* concentration.

Reducing sugars

For reducing sugars, weigh accurately 500 mg of the sample, dissolve in 100 ml of *double distilled water* and make up the volume to 100 ml in a volumetric flask. Then follow method as mentioned for the preparation of calibration curve.

Total sugars

Place 25 ml of the solution from the 100 ml stock solution prepared for the reducing sugars in a 100 ml beaker. To this, add 5 ml of hydrochloric *acid: purified water* (1:1 v/v), mix well and allow to stand at room temperature for 24 hr for inversion. Neutralize the sample with 5 N *sodium hydroxide* and make up to 50 ml with *purified water.* From this diluted sample, use 1 ml of aliquot for the estimation of total soluble sugars using the method described in preparation of calibration curve for dextrose.

Method B

Reducing and Non-redueing sugars

Non- sugars are determined by subtracting the content of reducing sugars from the amount of total sugars.

Clarifying reagent:

Solution 1: Dissolve 21.9 g *of zinc acetate* and 3 ml *of glacial acetic acid* in *purified water* and make the volume to 100 ml.

Solution II: Dissolve 10.6 g of *potassium ferrocyanide* in water and make up to 100 ml.

Reducing sugars: Take suitable amount of the sample and neutralize with *sodium hydroxide solution* (10 percent in water). Evaporate the neutralized solution to half the volume on a water bath at 50° to remove the alcohol. Cool the solution add 10 ml of the clarifying solution I followed by 10 ml of the clarifying solution II. Mix, filter through a dry filter paper and make up the volume to 100 ml. Take 10 ml of the *Fehling's solution* and from a burette and add sugar solution (above prepared sample) in a drop wise manner and heat to boiling over the hot plate (maintained at 80°) until the mixture of Copper *(Fehling's solution)* appears to be nearly reduced. Add 3-5 drops of I percent *methylene blue* and continue the titration till the blue colour is discharged. Note down the readings and calculate the percentage of glucose.

The proportions of invert sugar, equivalent to 10 ml of Fehling's solution. Calculate the reducing sugar, invert sugar.

Non-reducing sugars: Take suitable amount of the sample and neutralize with *sodium hydroxide solution* (10 percent in water). Evaporate the neutralized solution to half the volume on a water bath at 50°C to remove the alcohol. Cool the solution add 10 ml of the clarifying solution I followed by 10 ml of the clarifying solution II. Mix, filter through a dry filter paper. To the Filter add 15 ml of 0.1 N *hydrochloric acid*. Cover with stopper and heat to boiling

for two minutes. Add *phenolpthlein* and neutralize with *sodium hydroxide* solution (10 percent). Transfer to 100 ml volumetric flask and make the volume to 100 ml and perform the titration as done for the reducing sugars. Calculate the percentage of the total sugars. Subtract the percentage of the reducing sugars from the sugars to obtain non reducing sugars.

Uniformity of Weight (Tablets)

It is desirable that all the tablets of a particular batch should be uniform in weight. If any weight variation is there, that should fall within the prescribed limits (generally ±10% for tablets weighing 120 mg. or less, ± 7.5% for tablets weighing 120 mg to 300 mg and ± 5% for tablets weighing more than 300 mg). The test is considered correct if not more than two tablets fall outside this range if 20 tablets are taken for the test and not more than one tablet falls outside this range if only ten tablets are taken for the test. The difference of weight in tablets can lead to variation in doses. Therefore all the tablets of a batch must conform to this test. For carrying out this test generally 20 tablets at random are taken and weighed. The average weight is calculated, then each tablet is weighed individually and weight noted. The weights of individual tablets are then compared with the average weight already calculated and see that not more than two tablets fall outside the range. This test is repeated after short intervals of time to ensure that tablets of required weight are produced.

Determination of Hardness (Tablets)

The hardness of tablet depends on the weight of the material used, space between the upper and lower punches at the time of compression and pressure applied during compression. The hardness also depends on the nature and quantity of excipients used during formulation.

If the finished tablet is too hard, it may not disintegrate in the required period of time and if the tablet is too soft it may not withstand the handling during packing and transporting. Therefore it is very necessary to check the hardness of tablets when they are being compressed and pressure adjusted accordingly on the tablet machine.

Tablet hardness can roughly be determined by holding the tablet in between the fingers of the hand and throwing it lightly on the floor, if it does not break it indicates that proper hardness has been obtained. A number of hardness testers are used for determining the tablet hardness but Monsanto hardness testers and Pfizer hardness testers are commonly used.

(a) Monsanto Hardness Tester

It is a small, portable hardness tester which was manufactured and introduced by Monsanto Chemical Company. It consists of a spring which can be compressed by moving the screw knob forward.

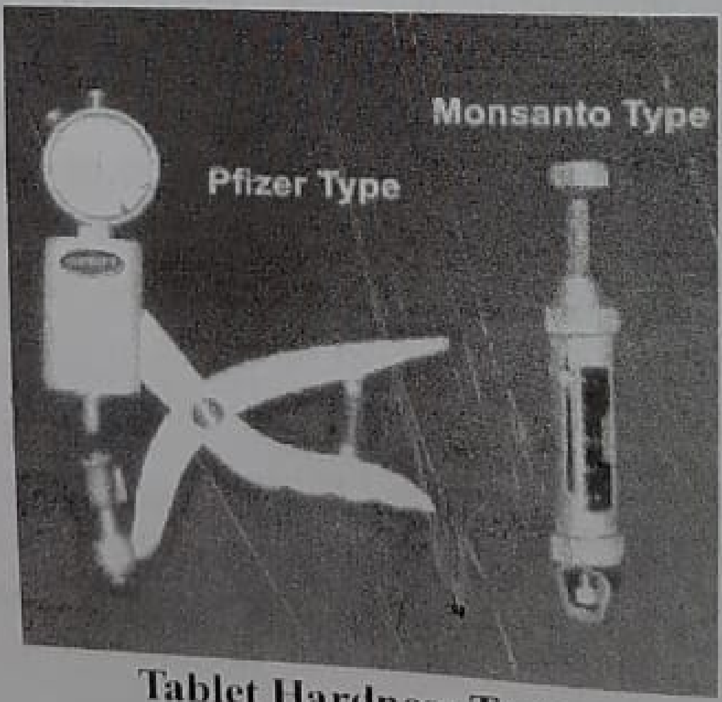

Tablet Hardness Tester

The tablet to be tested is held between a fixed and a moving jaw and reading of the indicator adjusted to zero. The force applied to the edge of the tablet is gradually increased by moving the screw knob forward until the tablet breaks. The reading is noted from the scale which indicates the pressure required in kg or Ib to break the tablet. Hardness of 4 kg is considered suitable for handling the tablets. Hardness of 6 kg or more will produce tablets of highly compact nature.

(b) Pfizer Tablet Hardness Tester

It is another instrument used for testing the hardness of a tablet. It works on the principle of a plier and is similar in shape to that of a plier. It is fitted with a dial. The tablet under test is held vertically in between the jaws which are pressed with hand until the tablet breaks. The reading is noted from the needle of the pressure dial which may be expressed in kilograms or pounds of force.

Determmation of Friability (Tablets)

Friability test is performed to evaluate the ability of the tablets to withstand abrasion in packing, handling and transporting. The instrument used for this test is known as 'Friability Test Apparatus' or 'Friabilator'. It consists of a plastic chamber which is divided into two parts and revolves at a speed of 25 r.p.m. A number of tablets are weighed and placed in the tumbling chamber which is rotated for four minutes or for 100 revolutions. During each revolution the tablets fall from a distance of six inches to undergo shock. After 100 revolutions the tablets are again weighed and the loss in weight indicates the friability. The acceptable limits of weight loss should not be more than 0.8 per cent.

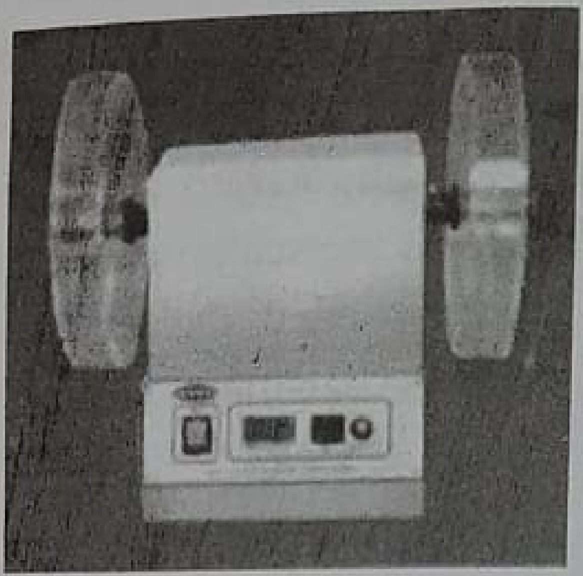

Friability Test Apparatus

Disintegration Test (Tablets)

The disintegration test is performed to find out that within how much time the tablet disintegrates. This test is very important and necessary for all the tablets, coated or uncoated to be swallowed because the dissolution rate depends upon the time of disintegration which ultimately affects the rate of absorption of drugs.

The apparatus used for this test is known as disintegration test apparatus. This apparatus consists of a glass or plastic tube which is open at one end and the other end is fitted with a rust proof No. 10 mesh sieve.

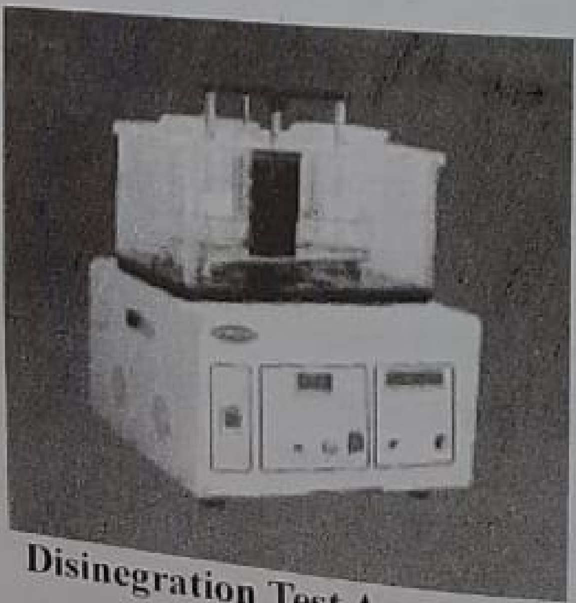

Disinegration Test Apparatus

The tube is suspended in a bath of water or suitable liquid which is thermostatically maintained at a temperature of 37°C. The tube is allowed to move up and down at a constant rate i.e. 30 times per minute through a distance of 75 mm. The volume of the liquid and distance of movement is adjusted in such a way that at the highest point the mesh screen just breaks the surface of the liquid to give a turbulent movement to the tablets and at the lowest point the mesh screen remains about 2.5 cm. above the bottom of the container.

About five tablets are placed in the tube alongwith a plastic disk over the tablets unless otherwise stated in the monograph. The plastic disk does not allow the tablets to float and imparts a slight pressure on the tablets. The tube is allowed to move up and down and disintegration time noted when all the tablets have passed through the sieve. This time shôuld comply with the time stated in the monograph for that tablet. The test fails if all the tablets do not pass through the sieve within specified time. Generally the disintegration time for uncoated tablets is 30 minutes and for coated tablets one hour.

Dissolution Test (Teblets)

The rate of dissolution of a solid drug plays an important role in the absorption and physiological availability of the drug in the blood stream. Therefore determination of dissolution rate of any solid drug is very necessary. For this purpose there are a number of tests available in the literature but none is official. This test is performed for tablets and capsules when stated in the individual drug monograph.

The apparatus for dissolution test consists of (i) a cylindrical stainless steel basket which is attached to the end of the stirrer shaft (ii) a 1000 ml vessel made of glass or other inert, transparent material fitted with a cover having four holes, one

for the shaft of the stirrer second for placing the thermometer and remaining two for removing the samples (iii) a variable speed motor driven stirrer which can rotate at a speed of 25-150 revolutions per minute (iv) a suitable thermostatically controlled water bath to maintain the temperature of the dissolution medium at a temperature of 37°C ±0.5°C.

For performing the test a suitable volume of dissolution medium like distilled water, hydrochloric acid or phosphate buffer at a pH of 7.3 as stated in the individual monograph is filled in the glass vessel which is submerged in the water

bath maintained at 37°C. The tablet or capsule to be tested is introduced in the basket and fitted in position. The motor is started and its revolutions adjusted according to monograph. The samples are withdrawn at specified intervals and filtered immediately through a suitable filter medium. Generally 5 ml sample solution is withdrawn each time which is replaced

Dissolution Test Apparatus

with 5 ml of medium at 37°C in order to maintain a constant volume in the vessel. The samples are tested by chemical analysis for proportion of drug dissolved which should meet the requirements as stated in the monograph.

औषध एवं प्रसाधन अधिनियम–1940 एवं नियम 1945

यह अधिनियम औषध एवं प्रसाधन अधिनियम 1940 एवं नियम 1945 कहा जाता है, जिसके अन्तर्गत औषधियों एवं प्रसाधन सामग्रियों के आयात, निर्माण, वितरण और विक्रय आदि को नियंत्रित किया जाता है।

औषधियों में मिलावट, नकली एवं सब स्टेण्डर्ड औषधियों के उत्पादन से जनस्वास्थ्य पर प्रतिकूल असर हो रहा है, इसलिए समय-समय पर इस अधिनियम में संशोधन किये गये, दण्डों का वर्धन किया गया, जिससे असामाजिक तत्त्वों पर प्रभावी कार्यवाही की जा सके।

इस अधिनियम में 5 chapters, 38 Sections, 2 Schedules (I & II), Schedule a to y, Parts i to xix है।

Chapter - I:- यह Introductory chapter है। इसमें 1 से 4 तक Section है, जिसमें से Section-3 आयुर्वेद, सिद्ध और यूनानी औषधियों से सम्बन्धित है।

1-3

Chapter-II:- इसमें 5 से 7 तक Section है। यह The drugs Technical Advisory board, the central drugs laboratory और The drugs consultative committee से सम्बन्धित है।

5-7

Chapter-III:- इसमें 8 से 15 तक Section है। यह औषध एवं प्रसाधन सामग्रियों से सम्बन्धित है।

Chapter IV:- इसमें 16 से 33 Section है। यह औषध एवं प्रसाधन सामग्रियों के निर्माण, विक्रय और वितरण से सम्बन्धित है।

Chapter IV A:- इसमें 33 B से 33 O तक Section है। इसमें आयुर्वेदिक, सिद्ध और यूनानी औषधियों से सम्बन्धित प्रावधान है।

Chapter V :- इसमें 33 P से 38 तक Section है।

Schedule I st A :- आयुर्वेदिक और सिद्ध चिकित्सा पद्धति की प्रामाणिक पुस्तकों से सम्बन्धित है।

I st B - यूनानी की प्रामाणिक पुस्तकों से सम्बन्धित है।

Schedule II :- Standards to be complied with by Imported drugs and by drugs manufactured for sale, stocked or exhibited for sale or distributed

Schedule A to Y है, जिसमें से Schedule E (i) आयुर्वेदिक विष द्रव्यों से सम्बन्धित है तथा Schedule T- G.M.P. से सम्बन्धित है।

Parts xvi, xviA, xvii, xviii, xix आयुर्वेद से सम्बन्धित है, जिसमें 151 से 170 तक Rules है।

परिभाषा-3(a):-आयुर्वेदिक, सिद्ध या यूनानी औषधि के अन्तर्गत वे सभी औषधियाँ शामिल हैं, जो प्रथम अनुसूची में विनिर्दिष्ट उक्त पद्धतियों की प्रामाणिक पुस्तकों में उल्लिखित है, जो मनुष्यों या पशुओं के रोगों के निदान, उपचार, शमन या निवारण के लिए आभ्यन्तर या बाह्य प्रयोग के लिए निर्दिष्ट हो एवं उनमें वर्णित फार्मूले के अनुसार अनन्य रूप से विनिर्मित हो।

3(aa):-आयुर्वेदिक, सिद्ध और यूनानी औषधि के संबंध में सेक्शन 33C के अधीन गठित आयुर्वेदिक, सिद्ध एण्ड यूनानी तकनीकी सलाहकार बोर्ड (Drugs Technical Advisory Board)।

3(c)-सरकारी विश्लेषक (Government Analyst):-आयुर्वेदिक, सिद्ध और यूनानी औषधि के संबंध में केन्द्र सरकार या राज्य सरकार द्वारा सेक्शन 33F के अधीन नियुक्त सरकारी विश्लेषक।

3(e)-निरीक्षक (Inspector):-आयुर्वेदिक, सिद्ध और यूनानी औषधि के संबंध में केन्द्र सरकार या राज्य सरकार द्वारा सेक्शन 33G के अधीन नियुक्त निरीक्षक।

3(h) पेटेण्ट (प्रोपराईटरी) औषधि:-आयुर्वेदिक, सिद्ध एवं यूनानी पद्धति के वे सभी योग (फार्मूले) आते हैं, जिनके घटक द्रव्यों का वर्णन प्रथम अनुसूची में विनिर्दिष्ट उक्त पद्धतियों की प्रामाणिक पुस्तकों में उल्लिखित हो, किन्तु इन्जेक्शनों एवं 3(a) में विनिर्दिष्ट प्रामाणिक पुस्तकों में उल्लिखित औषधि योंगों के अतिरिक्त हो।

CHAPTER IV A

33B:-यह अध्याय केवल आयुर्वेदिक/सिद्ध/यूनानी औषधियों पर लागू होगा।

33C:-आयुर्वेदिक, सिद्ध और यूनानी औषधि तकनीकी सलाहकार बोर्ड:-केन्द्र सरकार इस अध्याय में उत्पन्न होने वाले तकनीकी मामलों पर केन्द्र सरकार और राज्य सरकारों को परामर्श देने के लिए और इस अध्याय द्वारा उसे सौंपे गये अन्य कार्यों को करने के लिए शासकीय राजपत्र में अधिसूचना द्वारा आयुर्वेदिक, सिद्ध और यूनानी तकनीकी सलाहकार बोर्ड गठित करेगी। बोर्ड में विभिन्न तकनीकी अधिकारी

पदेन या नामजद होंगे, साथ ही केन्द्र सरकार किसी व्यक्ति को बोर्ड का सचिव नियुक्त करती है। एवं बोर्ड के लिए लिपिकीय और अन्य कर्मचारी उपलब्ध कराती है।

33(D):–आयुर्वेदिक, सिद्ध और यूनानी परामर्शदात्री समिति:–केन्द्रीय सरकार आयुर्वेदिक, सिद्ध और यूनानी औषधियों के प्रावधानों के समान क्रियान्वयन की दृष्टि से आयुर्वेदिक, सिद्ध और यूनानी औषधि परामर्शदात्री समिति का गठन करती है, जिसमें केन्द्र सरकार से दो एवं प्रत्येक राज्य से एक से अधिक सदस्य नहीं होता है, यह "आयुर्वेदिक सिद्ध एवं यूनानी औषधि परामर्शदात्री समिति" कहलाती है।

33(E) :–मिथ्या छापवाली औषधियाँ (Misbranded Drugs):– इस धारा के प्रयोजनों के लिए किसी आयुर्वेदिक, सिद्ध या यूनानी औषधि को मिथ्या छाप वाली समझा जायेगा:–

(a) यदि वह इस प्रकार रंजित, विलेपित (Coated), चूर्णकृत या पॉलिश की हुई है कि नुकसान छिप जाता है, या यदि वह उससे बेहतर या अधिक चिकित्सकीय महत्व की अभिव्यक्त होती है, जितनी की वह वास्तव में है।

(b) यदि उस पर लेबल (Label) विहित रीति से नहीं लगाया गया हो।

(c) यदि उसके लेबल या पात्र या उसके साथ की किसी चीज पर कोई ऐसा कथन, डिजायन या आकृति है, जो औषधि के लिए मिथ्या दावा करती है या किसी विशिष्टी में मिथ्या या भुलावा देने वाली है।

33(EE) अपमिश्रित–मिलावटी औषधियाँ (Adulterated drugs):–इस धारा के प्रयोजनों के लिए किसी आयुर्वेदिक/सिद्ध/यूनानी औषधि को अपमिश्रित समझा जायेगा:–

(a) यदि वह पूर्णतः या भागतः किसी गंदे, गलित या विघटित पदार्थ से बनी है।

(b) यदि वह अस्वच्छ परिस्थितियों में निर्मित की गयी, पैक की गयी या भण्डार में रखी गयी है, जिससे वह गंदगी से दूषित हो गयी हो या जिससे वह स्वास्थ्य के लिए हानिकर हो गई हो।

(c) यदि उसका पात्र पूर्णतः या भागतः किसी विषैले या हानिकारक पदार्थ से बना हो, जो उसकी अन्तर्वस्तुओं को स्वास्थ्य के लिए हानिकर बना दें।

(d) यदि केवल रंजन के प्रयोजनों के लिये उसमें ऐसा रंग है, जो निर्धारित रंग से भिन्न है।

(b) इस एक्ट के किसी अधिनियम या नियम का उल्लंघन करने के बाद किसी आयुर्वेदिक, सिद्ध या यूनानी औषधियों का विक्रय, संग्रह या प्रदर्शन या विक्रय का प्रस्ताव या वितरण किया गया हो।

ये नियम वैद्य या हकीम, जो अपने रोगियों के लिए औषध निर्माण करते हैं, पर लागू नहीं होंगे।

33EED:–**जनहित में किसी आयुर्वेदिक, सिद्ध या यूनानी औषधि के निर्माण आदि को प्रतिबंध करने की भारत सरकार की शक्ति:**–किसी साक्ष्य या अन्य उपलब्ध तथ्यों के आधार पर मनुष्यों या पशुओं में किसी प्रकार की हानि होने की संभावना पर या जो गुण धर्म दर्शाये है, उनके नहीं होने पर राजपत्र में अधिसूचना जारी कर निर्माण, विक्रय या वितरण पर प्रतिबंध लगाया जा सकता है।

33F:–**राजकीय विश्लेषक:**–भारत सरकार या राज्य सरकार राजपत्र में अधिसूचना जारी कर निर्धारित योग्यता वाले व्यक्ति को राजकीय विश्लेषक नियुक्त करती है।

33G :–**निरीक्षक (Inspector) :-**

33H:–धारा 22, 23, 24 या 25 के उपबंध और तदधीन बनाये गये नियम यदि कोई हो, इस अध्याय के अधीन नियुक्त निरीक्षक और राजकीय विश्लेषक के संबंध में औषधि का अर्थ आयुर्वेदिक, सिद्ध, यूनानी औषधि के प्रति निर्देश समझकर यावतशक्य वैसे ही लागू है, जैसे कि वे अध्याय 4 के अधीन नियुक्त निरीक्षक और सरकारी विश्लेषक के संबंध में लागू होते हैं।

33 I:–इस अध्याय के उल्लंघन में आयुर्वेदिक, सिद्ध या यूनानी औषधियों के निर्माण, विक्रय आदि के लिए शास्ति (Penalty) निम्नानुसार है:-

1. विक्रय या वितरण के लिए औषधि निर्माणः-

(a) एडल्ट्रेटेड या बिना वैध निर्माण लाईसेंस के औषधि निर्माण करने पर एक वर्ष तक की सजा एवं आर्थिक दण्ड, जो दो हजार रूपये से कम नहीं हो, होगा।

(b) स्पूरियस औषधि निर्माण के मामले में तीन वर्ष तक की सजा (कम से कम एक वर्ष) एवं आर्थिक दण्ड, जो 5000 रू. से कम नहीं हो, होगा।

2. उक्त (a) (b) के प्रावधानों के अलावा अन्य प्रावधानों/नियमों/शर्तों के उल्लंघन पर तीन माह तक की सजा एवं आर्थिक दण्ड जो 500 रू. से कम नहीं हो, होगा।

33J:–पश्चात् वर्ती अपराधों के लिए दुगुनी सजा का प्रावधान है।

33K:-कोई औषधि इस अध्याय के अधीन सिद्धदोष की गयी है, उस औषधि का स्टॉक जिसके संबंध में उल्लंघन हुआ है, अधिहरणीय होगा।

33L:-इस अध्याय के सभी प्रावधान (33K के प्रावधानों को छोड़कर) सरकारी विभागों पर भी लागू होंगे।

33M:-इस अध्याय के अधीन कोई अभियोजन निरीक्षक द्वारा ही संस्थित किया जा सकेगा एवं प्रेसिडेन्सी मजिस्ट्रेट या प्रथम श्रेणी के मजिस्ट्रेट से अवर कोई न्यायालय इस अध्याय के अधीन दण्डनीय अपराध का विचारण नहीं करेगा।

33N:-केन्द्र सरकार बोर्ड के साथ परामर्श करने के पश्चात् और राजपत्र में अधिसूचना द्वारा पूर्व प्रकाशन के पश्चात् इस अध्याय के उपबन्धों को प्रभावी करने के प्रयोजन के लिए नियम बना सकेगी।

33O:-केन्द्र सरकार को प्रथम अनुसूची में जो प्रामाणिक पुस्तकें आयुर्वेदिक, सिद्ध एवं यूनानी पद्धतियों की दी गई है, उनमें संशोधन करने की शक्ति निहित है।

33P:-केन्द्र सरकार इस अधिनियम के उपबन्धों को राज्य में निष्पादन के लिये निर्देश दे सकेगी।

प्रथम अनुसूची-अधिकृत प्रामाणिक पुस्तकों की सूची:-

आयुर्वेद :-

1. आरोग्यकल्पद्रुम
2. अर्कप्रकाश
3. आर्यभिषक्
4. अष्टांग हृदय
5. अष्टांग संग्रह
6. आयुर्वेद कल्पद्रुम
7. आयुर्वेद प्रकाश
8. आयुर्वेद संग्रह
9. भैषज्य रत्नावली
10. भारत भैषज्य रत्नाकर
11. भावप्रकाश
12. बृहद निघण्टु रत्नाकर
13. चरक संहिता
14. चक्रदत्त
15. गदनिग्रह
16. कूपीपक्व रसायन
17. निघण्टुरत्नाकर
18. रसचण्डांशु
19. रसराज सुन्दर
20. रसरत्नसमुच्चय
21. रसतन्त्रसार सिद्ध प्रयोग संग्रह
22. रसतरंगिणी
23. रसयोग सागर
24. रसयोग रत्नाकर
25. रसयोग संग्रह
26. रसेन्द्र सार संग्रह

27. रसप्रदीपिका
28. सहस्रयोग
29. सर्वरोग चिकित्सारत्नम्
30. सर्वयोग चिकित्सा रत्नम्
31. शार्ङ्गधर संहिता
32. सिद्ध भैषज्य मञ्जूषा
33. सिद्धयोगसंग्रह
34. सुश्रुत संहिता
35. वैद्य चिन्तामणि
36. वैद्यक शब्द सिन्धु
37. वैद्यक चिकि त्सासार
38. वैद्य जीवन
39. बसवराजीयम्
40. योगरत्नाकर
41. योगतरंगिणी
42. योगचिन्तामणि
43. काश्यप संहिता
44. भेलसंहिता
45. विश्वनाथ चिकित्सा
46. वृन्दचिकित्सा
47. आयुर्वेदचिन्तामणि
48. अभिनवचिन्तामणि
49. आयुर्वेद रत्नाकर
50. योगरत्नसंग्रह
51. रसामृत
52. द्रव्यगुणनिघण्टु
53. रसमंजरी
54. बंगसेन

54 A -आयुर्वेदिक फार्मुलरी ऑफ इण्डिया

54 B -आयुर्वेद सार संग्रह

54 C -आयुर्वेदिक फार्मेकोपिया ऑफ इण्डिया

Schedule E (i) - विष द्रव्यों की सूची

1. वानस्पतिक द्रव्यः-

1.	अहिफेन	-	Papaver somniferum Linn.
2.	अर्क	-	Calotropis gigantea (Linn)-R; Br; ex, Ait.
3.	भल्लातक	-	Semecarpus anacardium Linn. f.
4.	भंगा	-	Cannabis Sativa Linn
5.	दन्ती	-	Baliospermum montanum muell arg.
6.	धत्तूरा	-	Datura metal Linn.
7.	गुञ्जा	-	Abrus precatorius Linn.
8.	जयपाल	-	Croton tiglium Linn.
9.	करवीर	-	Nerium indicum Mill.
10.	लांगली	-	Gloriosa superba Linn.
11.	पारसीक यवानी	-	Hyoscyamus nigar Linn.

12. स्नुही - Euphorbia nerifolia Linn.
13. वत्सनाभ - Aconitum chasmanthum stapfex Holm.
14. विषमुष्टि - Strychnos nuxvomica Linn.
15. श्रृंगीविष - Aconitum chasmanthum stapfex Holm.

2. जान्तव द्रव्य:-

16. सर्पविष - Snake poison

3. खनिज द्रव्य :-

17. गौरीपाषाण - Arsenic
18. हरताल - Arsenic trisulphide
19. मनःशिला - Arsenic disulphide
20. पारद - Mercury
21. रसकर्पूर - Hydragyri subchloridum
22. तुत्थ - Copper sulphate
23. हिंगुल - Cinnabar
24. सिन्दूर - Red oxide of lead
25. गिरिसिन्दूर - Red oxide of mercury

Part-XVI – आयुर्वेदिक, सिद्ध या यूनानी औषधियों के विक्रय हेतु निर्माण से सम्बन्धित है, जिसमें निम्न नियम है :-

नियम	विषय
151	एक से अधिक स्थानों पर निर्माण (Manufacture on more than one set of premises)
152	अनुज्ञापक अधिकारी (Licensing Authorities)
153	निर्माण के लिए अनुज्ञप्ति के लिए आवेदन पत्र (Application for licence to manufacture ayurvedic, siddha or unani drugs)
153 A	निर्माणार्थ ऋण अनुज्ञप्ति के लिए आवेदन पत्र (Application for loan licence to manfacture ayurvedic, siddha or unani drugs)
154	आयुर्वेदिक, सिद्ध या यूनानी औषधियों के निर्माणार्थ अनुज्ञप्ति का फॉर्म (Form of loan Licence to manufacture ayurvedic siddha or unani Drugs)

163 A - PLIM के कार्य (Functions of the pharmacopoeial laboratory for indian medicine, Ghaziabad)

163 B - PLIM निदेशक के कार्य (Functions of the Director, PLIM- Ghaziabad)

163 C - परीक्षण या विश्लेषण के लिये औषध के नमूने प्रेषित करना (Dispatch of samples for test or analysis)

163 D - औषध नमूने के पैकेट की स्थिति का विवरण (Recording of condition of seals)

163 E - औषध के परीक्षण या विश्लेषण की रिपोर्ट (Report of result of test or analysis)

163 F - शुल्क (Fees)

163 G - परीक्षण के प्रमाणपत्र पर हस्ताक्षर (Signature of certificates)

164 - (Method for test or analysis to be employed in relation to ayurvedic (including siddha) or unani drugs)

165 - सरकारी विश्लेषक की योग्यतायें (Qualifications of government analyst)

166 - सरकारी विश्लेषक के कार्य

167 - निरीक्षक की योग्यता

Part XIX-

168 - Standards to be complied with in manufacture for sale or for distribution of ayurvedic, siddha and unani drugs

169 - Permitted excipents

170 - Guidelines for evaluation of Ayurveda. siddha and unani drugs and other traditional medicines of India.

Schedule A

Form No.

24 D - Application for the grant/renewal of licence to manufacture for sale of ayurvedic; siddha or unani drugs

154 A - आयुर्वेदिक, सिद्ध या यूनानी औषधियों के निर्माणार्थ ऋण अनुज्ञप्ति का फार्म (Form of Loan licence to manufacture ayurvedic, Siddha or Unani Drugs)

155 - अनुज्ञप्ति का नवीनीकरण का प्रमाण पत्र (Certificate of Renewal)

155 A - ऋण अनुज्ञप्ति का नवीनीकरण का प्रमाण पत्र (Certificate of Renewal of A loan licence)

155 B - आयुर्वेदिक, सिद्ध, यूनानी औषधियों के विनिर्माणार्थ G.M.P. प्रमाणपत्र (Certificate of award of good manufacturing practices ayurveda, siddha and unani drugs)

156 - अनुज्ञप्ति की अवधि (Duration of licence)

156 A - ऋण अनुज्ञप्ति की अवधि (Duration of loan licence)

157 - अनुज्ञप्ति की स्वीकृति या नवीनीकरण के लिए शर्तें (Conditions for the grant or renewal of a licence in form 25 D or 26 D)

158 - अनुज्ञप्ति की शर्तें (Condition of Licence)

158 A - ऋण अनुज्ञप्ति की शर्तें (Conditions of loan licence)

159 - अनुज्ञप्ति का निलंबन और निरस्तीकरण (Cancellation and suspension of licences)

160 - कच्ची औषधियों का परीक्षण (पहचान) (Identification of raw materials)

Part XVI A - आयुर्वेदिक, सिद्ध और यूनानी औषधियों के विनिर्माणार्थ अनुज्ञप्ति धारक को औषधियों और कच्ची औषधियों के परीक्षणार्थ संस्थान को अनुमति (Quality Control Laboratory) से सम्बन्धित है।

151 - एक से अधिक स्थानों पर निर्माण

160 A - आयुर्वेदिक, सिद्ध और यूनानी औषधियों के परीक्षण के अनुमोदन की स्वीकृति के लिए आवेदन पत्र (Application for grant of approval for testing ayurvedic, siddha and unani drugs)

160 B - अनुज्ञप्ति धारक को आयुर्वेदिक, सिद्ध और यूनानी औषधियों के परीक्षण की स्वीकृति के अनुमोदन का फॉर्म (Form in which approval to be granted for carrying out

tests on ayurvedic, siddha and unani drugs on behalf of licensees for manufacture of ayurvedic, siddha and unani drugs)

160 C - अनुमोदन की अवधि (Duration of Approval)

160 D - अनुमोदन की शर्तें (Conditins of Approval)

160 E - अनुमोदन की स्वीकृति से पूर्व निरीक्षण (Inspection before grant of approval)

160 F - निरीक्षण की रिपोर्ट (Report of Inspection)

160 G - अनुमोदन (Procedure of approving authority)

160 H - निरस्ती के बाद आवेदन पत्र (Application after rejection)

160 I - नवीनीकरण (Renewal)

160 J - अनुमोदन का निलंबन और निरस्तीकरण (Withdrawal and suspension of approvals)

161 - (Labelling, packing and limit of alcohol)

161A - Exemption in labelling and packing provisions for export of ayurvedic (Including siddha) and unani drugs

161 B - सवीर्यता अवधि (Period of self life)

Part XVIII – आयुर्वेदिक, सिद्ध और यूनानी औषधियों के लिए सरकारी विश्लेषक और निरीक्षक

162 - निरीक्षक के कार्य विशेषतः आयुर्वेदिक, सिद्ध और यूनानी औषधियों के विनिर्माण के निरीक्षण के लिए अधिकृत (Duties of Inspectors specially authorized to inspect the menufacture of ayurcedic (including siddha) or unani drugs)

162 A - अनुज्ञापक अधिकारी की योग्यतायें (Oualifications for state drug licencing authority for licensing of ayurveda, siddha and unani drugs)

163 - सरकारी विश्लेषक को औषध के नमूने प्रेषित करने की प्रक्रिया और सरकारी विश्लेषक द्वारा पावती (Procedure for Dispatch of sample to government analyst and its receipt by the govt. analyst)

- 24 E - Applications for grant or renewal of a loan licence to manufacture for sale of ayurvedic (Including siddha) or unani drugs
- 25 D - Licence to manufacture for the sale of ayurvedic (Including siddha) or unani drugs
- 25 E - Loan licence to manufacture for sale ayurvedic (Including siddha) or unani drugs
- 26 D - Certificate of renewal of licence to manufacture for sale ayurvedic (Including siddha) or unani drugs
- 26 E - Cectificate of renewal of loan licence to manufacturer for sale ayurvedic (Including siddha) or unani drugs
- 26 EI - Certificate of good manufacturing practices (GMP) to manufacturer of ayurvedic (Including siddha) or unani drugs
- 47 - Application for grant or renewal of approval for carrying out tests on ayurvedic, siddha and unani drugs or raw material used in the manufacture there of on behalf of licensees for manufacture for sale of ayurvedic, siddha and unani drugs.
- 48 - Approval for carrying out teste or analysis on ayurvedic, siddha and unani drugs or raw material used in the manufacture there of on behalf of licensees for manufacture for sale of ayurvedic, siddha and unani drugs.
- 49 - Certificate of renewal for carrying out tests or analysis on ayurvedic, siddha or unani drugs or raw materials used in the manufacture there of on behalf of licensees for manufacture for sale of ayurvedic, siddha or unani drugs
- 50 - Report of test or analysis by approved laboratory

Schedule B-I	-	Fees for the test or analysis by the pharmacopoeial laboratory for Indian medicine (PLIM) or the government analyst
Schedule-T	-	G.M.P
Schedule - y	-	Requirements and guidelines for permission to import and or manufacture of New Drugs for Sale or to undertake clinical trials.

औषध निर्माण शाला (Pharmacy)

आयुर्वेद औषधियों का निर्माण पारम्परिक रूप से प्राचीन काल से होता आ रहा है। इनमें प्रयुक्त की जाने वाली कच्ची औषधियों (Raw drugs) को एकत्रित करने एवं उनसे औषधयोग बनाने की विधियाँ हमारे प्राचीन ग्रन्थों में लिखी हुई है। वैज्ञानिक युग में नवीन मशीनों, उपकरणों को उपयोग में लेते हुए बहुपरीक्षित विधियों से नवीनतम स्वरूप में औषधियों का निर्माण करना समय की मांग है। इसके साथ ही आयर्वेद औषधियों की बढ़ती मांग एवं अधिकतम लाभ प्राप्त करने के लिए कुछ लोग निर्धारित मापदण्डों के विपरीत औषधि निर्माण करने लग गये हैं। उन पर नियंत्रण करने के लिए हमारे देश में औषध एवं प्रसाधन अधिनियम 1940 लागू किया गया है। औषध निर्माणशालाओं का स्तर निर्धारित करने की दृष्टि से Good manufacturing practices अर्थात् अच्छी विनिर्माण पद्धति का प्रावधान इस अधिनियम में जोड़ा गया है। यह प्रावधान आयुर्वेद औषधियों के स्तर को समुन्नत करता है।

अच्छी विनिर्माण पद्धति (GMP) के दिशा निर्देशों का पालन करते हुए औषध का निर्माण करने पर गुणवत्ता युक्त औषध प्राप्त होती हैं। यह अधिनियम औषध की गुणवत्ता, प्रभावकारिता एवं सुरक्षा की दृष्टि से आयुर्वेद, सिद्ध एवं यूनानी औषध निर्माणशालाओं के लिए बनाया गया है। यह अधिनियम 23 जून 2000 से लागू किया गया है। इसे Schedule 'T' में जोड़ा गया है।

GMP सर्टिफिकेट लेने के लिए नियम 157 (1) A के अनुसार प्लेन पेपर पर निर्माण की वर्तमान संसाधनों की स्थिति की सूचना के साथ आवेदन अपेक्षित है। आवेदन के तीन माह के भीतर अनुज्ञप्ति प्राधिकारी Schedule 'T' के अनुसार अपेक्षाओं के सत्यापन के पश्चात् नियम 157 B (फार्म 26 E1) में GMP प्रमाणपत्र जारी करता है।

Schedul-T

आयुर्वेदिक, सिद्ध और यूनानी औषधियों के लिए अच्छी विनिर्माण पद्धतियाँ (GMP) :-

उद्देश्य-निम्नलिखित उद्देश्यों को सुनिश्चित करने के लिए भाग-1 और भाग-2 में अच्छी विनिर्माण पद्धतियाँ (GMP) उल्लिखित की गई हैः-

(i) औषध के निर्माण में प्रयुक्त कच्ची औषधियाँ (Raw drugs) प्रामाणिक, निर्धारित गुणवत्ता युक्त तथा प्रदूषण मुक्त होगी।

(ii) गुणवत्ता को बनाये रखने के लिए उल्लिखित निर्माण प्रक्रिया का पालन किया जायेगा।

(iii) पर्याप्त गुणवत्ता नियन्त्रण मानक स्वीकार किए जाते हैं।

(iv) निर्मित औषधि, जो विक्रय के लिए निकाली जाती है, ग्राह्य गुणवत्ता की है।

(v) उपरोक्त उद्देश्यों को पूरा करने के लिए, प्रत्येक अनुज्ञप्तिधारक (Lincensee) औषधियों के निर्माण के लिए ऐसी पद्धति विज्ञान (Methodology) और प्रक्रियायों को विकसित करेगा, जिसका निर्देशिका के रूप में दस्तावेजीकरण (Documentation) होगा और निर्देशार्थ तथा निरीक्षण के लिए जायेगा। तथापि भारतीय चिकित्सा केन्द्रीय परिषद् अधिनियम, 1970 (IMCC Act 1970) के अधीन रजिस्ट्रीकृत वैद्य, सिद्ध और हकीम और जो स्वयं तैयार करके अपने रोगियों को औषधियों बाँटते हैं और ऐसी औषधियों का बाजार में विक्रय नहीं करते हैं, वे अच्छी विनिर्माण पद्धति (GMP) के नियम से छूट प्राप्त है।

अच्छी विनिर्माण पद्धति (GMP) के दो भाग हैः-

भाग-1. रसायनशाला परिसर (Factory premises)

भाग-2. औषधियों के विभिन्न प्रवर्गों के विनिर्माण के लिए सिफारिश की गई आवश्यक मशीनरी, उपकरण और न्यूनतम विनिर्माण परिसरों की सूची

भाग-1 :- अच्छी विनिर्माण पद्धतियाँ

रसायनशाला परिसर (Factory Premises)

निर्माण संयंत्र में निम्नलिखित के लिए पर्याप्त स्थान होना चाहिए-

(i) कच्ची औषधियों को प्राप्त करना और भण्डारण (Receiving and storing Raw material)

(ii) निर्माण प्रक्रिया क्षेत्र (Manufacturing Process area)

(iii) क्वालिटी नियन्त्रण विभाग (Quality control section)

(iv) निर्मित औषध भण्डार (Finished goods store)

(v) कार्यालय (Office)

(vi) अस्वीकृत माल/औषधि भण्डार (Rejected goods/drugs store)

(1) साधारण अपेक्षाएँ (General requirements):-

(क) अवस्थिति एवं परिवेश (Location and surroundings):- आयुर्वेद, सिद्ध और यूनानी औषधियों के निर्माण के लिए कारखाने का भवन निर्माण इस तरह से हो जो खुली सीवरेज, गंदी नालियाँ, सार्वजनिक शौचालय या किसी ऐसे कारखाने के प्रदूषण से बचाव कर सके, जिससे अरुचिकर, घृणाजनक दुर्गन्ध, अत्यधिक कालिख, धुँआ और धूल निकलती है।

(ख) भवन (Building):- रसायनशाला के लिए निर्मित भवन स्वास्थ्यकर स्थितियों में औषधियों का उत्पादन करने वाला और मकड़ जाल, कीट आदि से मुक्त होना चाहिए। जिसमें पर्याप्त प्रकाश और रोशनदान होने चाहिए। फर्श, दीवारों आदि पर सीलन नहीं होनी चाहिए। औषध निर्माण, पैकेज और लेबल लगाने के लिए प्रयुक्त स्थान कारखाना अधिनियम के उपबन्धों के अनुरूप होने चाहिए। यह इस प्रकार अवस्थित हो, जिससे किः-

I. यह उसमें या उससे लगे हुए परिसर में की जाने अन्य निर्माण प्रक्रियाओं के अनुरूप होना चाहिए।

II. उपस्कर एवं सामग्री के व्यवस्थित और उपयुक्त स्थान के लिए कार्यकारी स्थान की पर्याप्त रूप से व्यवस्था हो, जिससे विभिन्न औषधियों या उनके संघटकों के आपस में मिश्रित होने, अन्य औषधियों एवं पदार्थों द्वारा प्रदूषित होने और किसी निर्माण प्रक्रिया के छूट जाने से बचा जा सकता है।

III. भवन की आन्तरिक दीवारें, फर्श और छत चिकनी एवं दरार मुक्त होनी चाहिए, जिससे कृमि, कीट आदि का प्रवेश नहीं हो सके तथा भवन को आसानी से स्वच्छ एवं विसंक्रमित किया जा सकता है।

IV. औषध निर्माण क्षेत्र में उचित जल निष्कासन, स्वच्छता संबंधित फिटिंग और विद्युत फिटिंग समुचित एवं सुरक्षित होनी चाहिए।

V. भट्टी अनुभाग चिमनी युक्त टिन की छत से ढ़का हुआ एवं समुचित संवातन युक्त होना चाहिए तथा मक्खियों और धूल के निवारण के लिए पर्याप्त सावधानी बरतनी चाहिए।

VI. अग्नि सुरक्षा के लिए अग्निशमन यन्त्र होना चाहिए और वहाँ समुचित निकास भी होने चाहिए।

VII. कच्ची औषधियाँ, निर्मित औषधियाँ और पैकिंग से पूर्व शुष्कन के लिए पृथक् स्थान होना चाहिए, जो उचित फर्श, जालियों वाली खिड़की, शीशे या अन्य सामग्री द्वारा धूल मक्खियों और कीटों आदि से संरक्षित होना चाहिए।

(ग) जलप्रदाय (Water supply):– रसायनशाला भवन परिसर की सफाई के लिए पानी की पर्याप्त व्यवस्था और औषध निर्माण में प्रयुक्त जल शुद्ध एवं पीने योग्य होना चाहिए।

(घ) अपशिष्टों का निस्तारण (Disposal of waste):–औषध निर्माण अनुभागों और प्रयोगशालाओं के अपशिष्ट जल और अन्य अवशिष्ट द्रव्यों का निस्तारण किया जाना चाहिए। जिससे जन स्वास्थ्य या कार्यरत श्रमिकों पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़े।

(ङ) पात्रों की स्वच्छता (Containers cleaning):–शीशे की बोतलें, शीशियाँ और मर्तबानों का उपयोग करने के पश्चात् धोने, साफ करने और सुखाने के लिए निर्माण प्रक्रिया परिसर से अलग पर्याप्त व्यवस्था की जानी चाहिए।

(च) भण्डार (Stores):–भण्डार समुचित संवातन युक्त और सीलन रहित होना चाहिए। भण्डार में विभिन्न प्रकार की सामग्रियाँ यथाः–कच्ची सामग्री, पैकेजिंग सामग्री और निर्मित औषध के भण्डारण के लिए अलग से पर्याप्त स्थान होना चाहिए।

(अ) कच्ची सामग्री (Raw materials):–औषध निर्माण के लिए प्राप्त की गई सभी कच्ची सामग्रियों को कच्ची सामग्री भंडार में भंडारित किया जाना चाहिए। विनिर्माता को अनुभव और आयुर्वेद, सिद्ध, यूनानी पद्धति में प्रयुक्त विशिष्ट सामग्रियों के लक्षणों के आधार पर सामग्री की गुणवत्ता का संरक्षण करने वाले पात्र का प्रयोग करना चाहिए। साथ ही सीलन, सूक्ष्मजैविकी प्रदूषण, कीट आदि के नुकसान से भी बचाव किया जाना चाहिए।

इसके अतिरिक्त कुछ कच्ची औषधियों के लिए नियन्त्रित पर्यावरणीय दशाओं की अपेक्षा होने पर कच्ची सामग्री के भण्डारों को उचित बाउण्ड्री के साथ इस प्रकार उपविभाजित करें कि उन्हें उपयुक्त केबिनों में बाँटकर उन दशाओं को उपलब्ध कराया जा सके।

कच्ची सामग्री (औषधि) भण्डार में ऐसे पात्रों, अलमारियों या क्षेत्रों के अभिकल्पन के समय निम्नांकित विभिन्न वर्गों की कच्ची सामग्रियों को रखने के लिए सावधानी बरतनी चाहिए:-

1. धात्विक मूल की कच्ची सामग्री
2. खनिज मूल की कच्ची सामग्री
3. पशु स्रोत की कच्ची सामग्री

अभिलेख रखने की अवधि, बैच के अवसान (समाप्ति) होने की तारीख लिखी होनी चाहिए। भस्म, रस, कूपीपक्व, पर्पटी, सिन्दूर, कर्पूर, आसव, अरिष्ट आदि आयुर्वेदिक औषधियों के कतिपय प्रवर्ग में समाप्ति की तारीख नहीं होती, इसके विपरीत समय के साथ-साथ उनकी प्रभावकारिता बढ़ती जाती है। अतः स्टॉक निःशेष होने के 5 वर्ष तक अभिलेख रखे जाने की आवश्यकता है।

(ड)बाजार शिकायतों का अभिलेख (**Record or market complaints**):-विनिर्माता द्वारा बाजार में विक्रय किए गए उत्पादों के सम्बन्ध में प्राप्त बाजार शिकायतों की सभी रिपोर्टों को लेखबद्ध करने के लिए एक रजिस्टर रखना चाहिए। विनिर्मिता ऐसी बाजार शिकायतों पर प्राप्त सभी आंकड़ो, उन शिकायतों से संबंधित विनिर्माताओं द्वारा किए गए अन्वेषणों की प्रविष्टि करें, साथ ही बाजार शिकायतों की पुनरावृत्ति को रोकने के लिए आरंभ की गई सुधार कार्यवाही का अभिलेख रखना चाहिए। विनिर्माता को छः माह की अवधि में एक बार अनुज्ञापन प्राधिकारी को ऐसी शिकायतों का अभिलेख भी प्रस्तुत करना चाहिए। रजिस्टर परिसर के किसी भी निरीक्षण के दौरान निरीक्षण के लिए उपलब्ध होगा।

प्रत्येक विनिर्माता द्वारा आयुर्वेदिक औषधियों के उपयोग के परिणाम स्वरूप किसी प्रतिकूल प्रतिक्रिया की रिपोर्ट के लिए एक पृथक् रजिस्टर रखा जाना चाहिए। विनिर्माता किसी प्रतिकूल प्रतिक्रिया का अन्वेषण यह निष्कर्ष निकालने के लिए करेगा कि वह उत्पाद में किसी विकृति के कारण है और क्या ऐसी प्रतिक्रियाएँ शास्त्रों में पहले से ही अभिलिखित है या यह नया संप्रेक्षण है।

(द) क्वालिटी (गुणवत्ता) नियन्त्रण (Quality control):-प्रत्येक अनुज्ञप्तिधारी को अपनी ही परिसरों में या सरकार द्वारा अनुमोदित परीक्षण प्रयोगशाला के माध्यम से गुणवता नियन्त्रण अनुभाग के लिए सुविधा उपलब्ध करानी चाहिए।

परीक्षण आयुर्वेद भैषजीय मानक (Ayurvedic pharmacopeal standard) के अनुसार होना चाहिए। जहाँ परीक्षण उपलब्ध नहीं है, वहाँ परीक्षण विनिर्माता के विनिर्देश या अन्य उपलब्ध सूचना के अनुसार किए जाने चाहिए। गुणवत्ता नियन्त्रण अनुभाग सभी कच्ची सामग्रियों का सत्यापन, अंतः प्रक्रिया गुणवत्ता की जाँच का मोनिटर और उस तैयार माल की गुणवत्ता का नियन्त्रण करेगा, जिसकी तैयार माल भण्डार से निकासी की जा रही है। ऐसे क्वालिटी नियन्त्रण के लिए एक पृथक् विशेषज्ञ होगा। गुणवत्ता नियन्त्रण अनुभाग (Quality control section) में निम्नांकित सुविधाएँ होगी। यथा:-

1. गुणवत्ता नियन्त्रण अनुभाग के लिए 150 वर्ग फीट का क्षेत्र होना चाहिए।

2. कच्ची औषधि की पहचान के लिए निर्देश पुस्तकें (Reference books) एवं निर्देश नमूने (Reference samples) रखे जाने चाहिए।

3. विभिन्न प्रक्रियाओं के लिए विनिर्माण अभिलेख रखे जाने चाहिए।

4. तैयार उत्पादों के सत्यापन के लिए प्रत्येक बैच के तैयार उत्पादों के नियन्त्रित नमूने उत्पाद की अवसान (Expiry) की तारीख तक रखे जाने चाहिए।

5. उन दशाओं की जिनके अधीन कच्ची सामग्री, अर्ध तैयार किए उत्पाद और तैयार उत्पाद रखे जायेंगे, की पर्याप्तता का पर्यवेक्षण और मोनिटर किया जाना चाहिए।

6. औषधियों के लिए निधानी आयु (Self life) प्रमाणन और भण्डारण अपेक्षाओं का अभिलेख रखना चाहिए।

7. ऐसे विनिर्माता, जो पेटेंट सांपत्तिक आयुर्वेद औषधियों का विनिर्माण कर रहे हैं, ऐसी निर्मित औषधियों बाबत् अपने निजी विनिर्देश और नियन्त्रण निर्देश प्रदान करेंगे।

8. निर्मित औषध की विनिर्दिष्ट पद्धति और प्रक्रिया का अभिलेख अर्थात् भावना, मर्दन, पुट का अभिलेख और विनिर्माता द्वारा की गई प्रत्येक प्रक्रिया का अभिलेख रखा जाना चाहिए।

9. पहचान, शुद्धता औरा प्रबलता के लिए उन मानकों का, जो भारत सरकार द्वारा प्रकाशित औषधियों के आयुर्वेद पद्धति से संबंधित फार्माकोपिया में दिए गए हैं, अनुपालन किया जाना चाहिए।

10. सभी कच्ची औषधियों का ऐसे संदूषण (Contamination) को कम करने की दृष्टि से फफूंदी, जीवाणु संदूषण के लिए मोनीटर किया जाना चाहिए।

11. गुणवत्ता नियन्त्रण अनुभाग में कम से कम निम्नलिखित व्यक्ति होने चाहिए। यथा:-

(i) एक व्यक्ति, जिसके पास भारतीय चिकित्सा केन्द्रीय परिषद् अधिनियम, 1970 (1970 का 48) की अनुसूची 2 के अधीन मान्यता प्राप्त आयुर्वेद की अर्हता हो तथा दो अन्य व्यक्ति जिनके पास वनस्पति विज्ञान/रसायन विज्ञान/भेषज विज्ञान में स्नातक अर्हता वाले हो, को अंशकालिक या संविदात्मक आधार पर नियुक्त किया जाना चाहिए।

(ii) विनिर्माता एकक (Manufacturing unit) में धारा 35(ii) में यथा उल्लिखित गुणवत्ता नियन्त्रण अनुभाग होगा और विकल्पानुसार ये गुणवत्ता नियन्त्रण उपबन्ध किसी मान्यता प्राप्त आयुर्वेद औषधि प्रयोगशाला से औषधि और प्रसाधन सामग्री अधिनियम के नियम 160 (A) के अधीन परीक्षण के द्वारा पूरे किए जाने चाहिए।

(ii) सिफारिश की गई उपकरणों की सूची भाग 2 (C) में उपदर्शित है।

1.(2) निर्जीवाणु उत्पाद के लिए अपेक्षाएँ:-

(अ) विनिर्माण क्षेत्र:- निर्जीवाणु आयुर्वेदिक औषधियों के विनिर्माण के लिए ऐसे पृथक् परिवेष्टित क्षेत्र की व्यवस्था की जावें, जो विनिर्दिष्ट रूप से इस प्रयोजन के लिए अभिकल्पित किया जाए। ऐसे क्षेत्र में प्रवेश के लिए वायुतालक व्यवस्था (Air lock system) युक्त, धूल से मुक्त और वायु प्रदाय के साथ वातानुकूलित होने चाहिए। ऐसे सभी क्षेत्रों के लिए जहाँ अपूतिक (Aseptic) विनिर्माण किया जाना है, वायु का जीवाणु प्रतिधारित करने वाले निष्पंदक (Bacteria retaining filter-HEPA filters) के माध्यम से निष्पंदन किया जाना चाहिए। जो लगे हुए क्षेत्रों के दबाव से उच्चतर दबाव पर होना चाहिए। इन निष्पंदकों की स्थापना पर कार्य संपादन की जाँच की जाएगी और उसके बाद कालिकतः जाँच का अभिलेख रखा जाएगा। निर्जीवाणु क्षेत्र में सभी भूतलों की स्वच्छता और विसंक्रामण को सुकर बनाने के लिए अभिकल्पित किया जाना चाहिए। निर्जीवाणु विनिर्माण के लिए सभी आयुर्वेदिक औषधि विनिर्माण क्षेत्र का संक्रियाओं के दौरान नित्य सूक्ष्मजैविक काउंट किया जाना चाहिए। ऐसे काउंट के परिणामों की अतःस्थापित मानकों से जाँच करके उनका अभिलेख रखा जाना चाहिए।

विनिर्माण क्षेत्र में प्रवेश प्राधिकृत कार्मिकों की न्यूनतम संख्या तक ही प्रतिबन्धित होगा। विनिर्माण क्षेत्र में प्रवेश करने और छोड़ने के लिए अनुसरण की जाने वाली विशेष प्रक्रिया लिखित और संप्रदर्शित होनी चाहिए। ऐसी आयुर्वेदिक औषधि के विनिर्माण के लिए, जिन्हें उनके अंतिम पात्रों में निर्जीवाणुकृत किया जा सकता है, क्षेत्रों की डिजाइन से, निर्जीवाणुकरण के लिए आशयित उत्पादों के पहले से निर्जीवाणुकृत उत्पादों में मिल जाने की संभाव्यता को रोका जाना चाहिए। अंतिम रूप से निर्जीवाणुकृत उत्पादों की दशा में, क्षेत्रों में डिजाइन से, गैर निर्जीवाणुकृत और निर्जीवाणुकृत उत्पादों के आपस में मिल जाने की संभावना को रोका जाना चाहिए।

(आ) संदूषण और मिश्रण के प्रति सावधानियाँ:-

(क) पर्याप्त रूप से पृथक्-पृथक् भवन के पृथक् खण्ड में विनिर्माण संक्रियाएं करना या भवन के भीतर पृथक्-पृथक् कक्ष में निर्माण करना चाहिए।

(ख) प्रसंस्करण क्षेत्र में भेददर्शक समुचित दबाव का उपयोग करना चाहिए।

(ग) यथोचित निष्कासक पद्धति (Exhaust system) की व्यवस्था करनी चाहिए।

(घ) निर्जीवाणु उत्पादों के लिए स्तरीय प्रवाह निर्जीवाणुकृत वायु पद्धतियों (Laminar flow sterile air system) की अभिकल्पना करना।

(ङ) पराबैंगनी दीपों (UV Lamps) की रोगाणुनाशी क्षमता से जाँच करके दहल घंटों को उपदर्शित करते हुए उनका अभिलेख रखा जाना चाहिए।

(च) द्रवों और ऑफ्थालमिक घोलों के अलग-अलग पात्रों को भरण के पश्चात् विजातीय निलंबित पदार्थ वाले संदूषण से मुक्ति को सुनिश्चित करने के लिए विसरित प्रकाश से जड़ित श्याम-श्वेत पृष्ठभूमि (Black white background fitted with diffused light) में परीक्षा की जानी चाहिए।

(छ) अनुज्ञापन प्राधिकारी द्वारा अनुमोदित तकनीकी कर्मचारी को बैच के अंतिम वितरण के पूर्व सैद्धान्तिक उत्पादन से वास्तविक उत्पादन की जाँच कर तुलना करनी चाहिए।

मास्टर फार्मूला के अधीन यथापेक्षित सभी प्रक्रिया नियन्त्रण जिसके अन्तर्गत कक्ष तापमान, सापेक्षित आर्द्रता, भारित, आयतन (Volume filled), रिसन (Leakage) और निर्मलता की जाँच करके उनका भी अभिलेख रखा जाना चाहिए।

भाग-2

(अ) आयुर्वेदिक औषधियों के विभिन्न प्रवर्गों के विनिर्माण के लिए सिफारिश की गई अपेक्षित मशीनरी, उपकरण और न्यूनतम विनिर्माण परिसरों की सूची।

औषधि के एक प्रवर्ग के लिए उपदर्शित एक मशीन औषधि के अन्य प्रवर्ग के विनिर्माण के लिए भी उपयोग की जा सकेगी। उसी प्रकार कुछ विनिर्माणकारी क्षेत्र अर्थात् चूर्णन, भट्टी तथा द्रव अवलेह पाक की पैकिंग सम्मिलित रूप से की जा सकेगी।

क्र.सं.	औषधि का प्रवर्ग	अपेक्षित न्यूनतम विनिर्माण स्थान	मशीनरी/उपकरण
		न्यूनतम 1200 वर्ग फीट का आच्छादित क्षेत्र होना चाहिए, जिसमें प्रत्येक क्रिया कलाप के लिए पृथक् केबिन या विभाजन होना चाहिए। यदि यूनानी औषधि भी उसी परिसर में निर्मित की जाती है तो 400 वर्ग फीट का अतिरिक्त क्षेत्र होना चाहिए।	
1.	अंजन/पिष्टी	100 वर्ग फीट	खरल (यंत्रीकृत/मोटरीकृत), एण्डरनर, बालमिल, छलनी
2.	चूर्ण/नस्य/मंजन/लेप/क्वाथ चूर्ण	200 वर्ग फीट	ग्राइन्डर, डिसिन्टीग्रेटर, पल्वराइजर, पावडर मिक्सर, शिफ्टर, सीव्ज
3.	गोली, वटी, गुटिका	100 वर्ग फीट	बालमिल, द्रव्य मिश्रण यन्त्र, पाउडर मिश्रण यन्त्र, ग्रेनुलेटर, ड्रायर, टेबलेट कम्प्रेसिंग मशीन गोली/वटी कटिंग मशीन, स्टेनलेस स्टील पात्र, सुगर कोटिंग पेन, पॉलिशिंग पेन, मेकेनाइज्ड चट्टू मशीन (गुग्गुल मिश्रण हेतु)

4.	कूपीपक्व, क्षार, पर्पटी, लवण, भस्म, सत्त्व, सिंदूर कर्पूर	150 वर्ग फीट	भट्ठी, कड़ाही, स्टीलपात्र, पतीला, फ्लास्क, मुलतानी मिट्टी, प्लास्टर ऑफ पेरिस, ताम्र छड़, विद्युतचालित भट्ठी (मफल फर्नेस), एण्डरनर, एजरनर, निष्कासक पंखा, स्पेचुला
5.	काजल	100 वर्ग फीट	काजल संग्रहण हेतु मिट्टी के दीप, त्रिरोलर मिल, एण्डरनर, चालनी, स्टील, पतीला, भरण/पैकिंग सामग्री, निष्कासक पंखा, पराबैंगनी दीप
6.	केप्सूल	100 वर्ग फीट	वातानुकूलक, (A.C.) निराद्रीकारक (De-humidefer), आर्द्रतामापी (Hygrometer), तापमापी, केप्सूल फिलिंग मशीन, रासायनिक तुला
7.	मरहम (Ointment)	100 वर्ग फीट	ट्यूब भरण मशीन, क्रिम्पिंग औषधि आयन्टमेन्ट मिश्रण यन्त्र, एण्डरनर, स्टीलभण्डार पात्र, स्टील पतीला

8.	पाक, अवलेह, खण्ड मोदक	100 वर्ग फीट	निष्कासक पंखा युक्त भट्टी कक्ष, लोहे की कड़ाही, स्टील पतीला, स्टील भंडारण पात्र
9.	पानक, शर्बत, प्रवाही क्वाथ	150 वर्ग फीट	टिक्टम प्रेस, निष्कासक पंखा लगा हुआ और, फ्लाई प्रूफ भट्टी अनुभाग, बोतल धोवन मशीन, फिल्टर प्रेस गुरुत्वीय फिल्टर, टोंटी युक्त द्रवभरण टंकी, पी.पी. कापिंग मशीन
10.	आसव अरिष्ट	200 वर्ग फीट	ऊपर वर्णित उपस्कर + किण्वन टंकी पात्र, आसवन संयन्त्र, फिल्टर प्रेस
11.	सुरा	100 वर्ग फीट	ऊपर वर्णित+अंतरण यन्त्र (Transfer pump)
12.	अर्क	100 वर्ग फीट	द्रव संमर्दन टंकी, (Maceration tank), आसवन संयन्त्र, टोंटी युक्त द्रव भरण टंकी, गुरुत्वीय फिल्टर, फिल्टर प्रेस, दृश्य निरीक्षक बॉक्स (Visual inspection box)

13.	तैल, घृत	100 वर्ग फीट	भट्टी, कड़ाही, स्टील पतीला, स्टील भंडारण पात्र, चलनी (Filtra -tion equipment), टोंटी युक्त भरण टंकी/ द्रवभरण मशीन (Liquidfilling machine)
14.	आश्च्योतन, नेत्र मलहम, कर्ण बिंदु, नासा बिंदु	100 वर्ग फीट	हॉट एयर ओवन, केतली, ऑयन्टमेन्ट मिल, ट्यूबभरण उपकरण, मिश्रण और भण्डारण हेतु स्टील की टंकियाँ, काँच फनेल, सीट्ज फिल्टर या फिल्टर कैंडल, द्रवभरण मशीन, ऑटोक्लेव
15.	(अ) प्रत्येक विनिर्माण एकक में भट्टी, फर्नेश बायलर, पुट आदि के लिए पृथक क्षेत्र होगा, जिसमें समुचित संवातन, धूम निकास, कीट निवारण की व्यवस्था होगी, टिन की छत होगी।	200 वर्ग फीट	

(ब) आंतरिक गुणवत्ता नियन्त्रण अनुभाग (In House Quality control section) के लिए सिफारिश किए गए उपकरणों की सूची।

(क) रसायन शास्त्र अनुभाग

1. एल्कोहल डिटरमिनेशन एपरेटस
2. वोलेटाइल ऑयल डिटरमिनेशन एपरेटस
3. ब्वायलिंग पॉइन्ट डिटरमिनेशन एपरेटस
4. मेलटिंग पॉइन्ट डिटरमिनेशन एपरेटस
5. रिफ्रेक्टोमीटर
6. पोलेरिमीटर
7. विसकोमीटर
8. टेबलेट डिसिन्टीग्रेटर एपरेटस
9. म्वाइसचर मीटर
10. मफल फर्नेश
11. इलेक्ट्रोनिक बेलेन्स
12. गुरुत्व विलोढ़क (Magnetic stirrer)
13. हॉट एयर ओवन
14. रेफ्रीजिरेटर
15. ग्लास/स्टील डिस्टिलेशन एपरेटस
16. बर्नर सहित एल.पी.जी. गैस सिलेण्डर
17. वाटर बाथ (तापमान नियंत्रित)
18. हीटिंग मेन्टलस/हॉट प्लेट्स
19. टीएलसी एपरेटस विथ आल एसेसरीज
20. पेपर क्रोमेटोग्राफी
21. 10 से 120 नं की सीब्ज विथ सीव शेकर
22. सेन्ट्रीफ्यूज मशीन
23. आर्द्रतारोधी-डि-ह्यूमिडिफायर
24. पीएच मीटर
25. लिमिट टेस्ट एपरेटस

(ख) भेषजगुण विज्ञान अनुभाग

1. सूक्ष्मदर्शी द्विनेत्री (माइक्रोस्कोप बाइनोकुलर)
2. डिसेक्टिंग माइक्रोस्कोप
3. माइक्रोटोम
4. भौतिक तुला
5. एल्युमिनियम स्लाइड ट्रेज
6. स्टेज माइक्रोमीटर
7. कैमरा ल्यूसिड़ा
8. केमिकल्स, ग्लास वेयर्स आदि